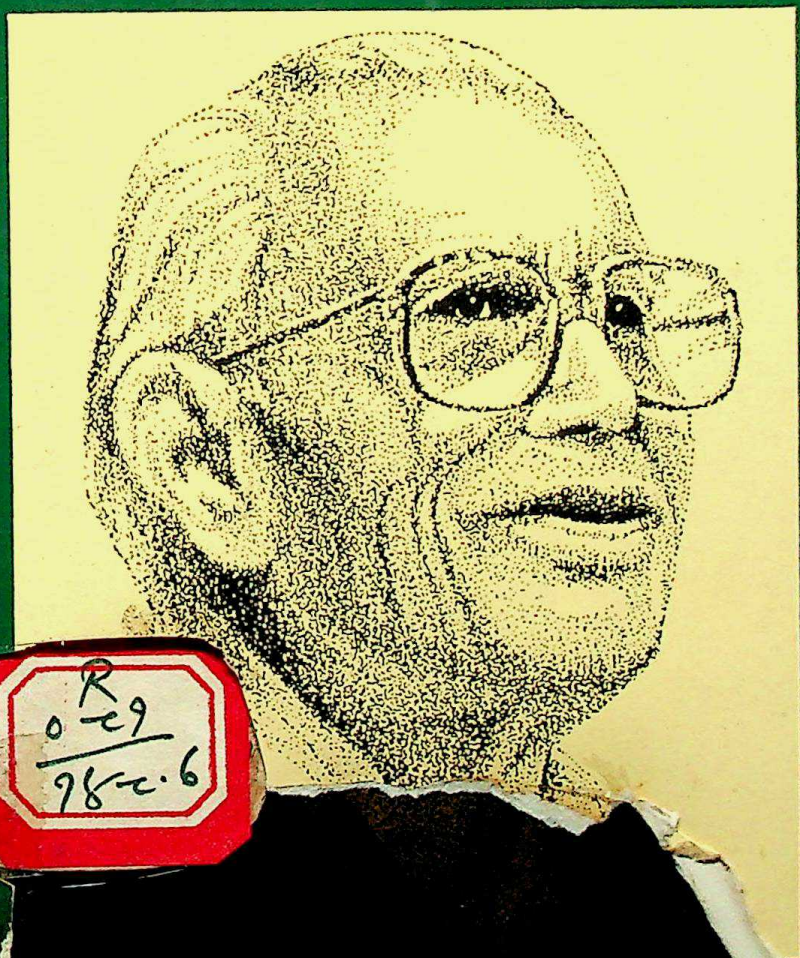


धर्मवीर भारती

ग्रन्थावली

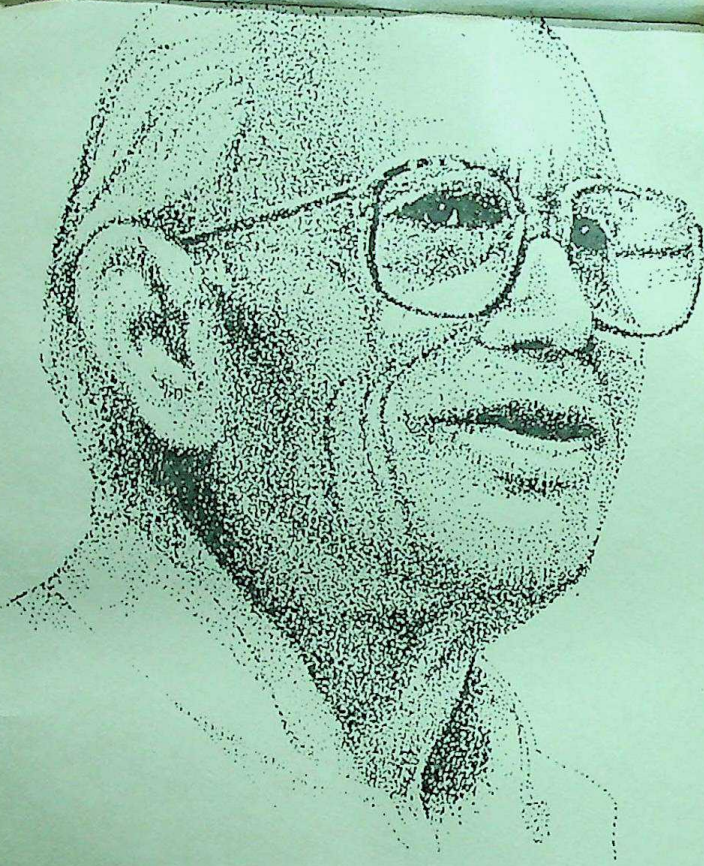


धर्मवीर भारती ग्रंथावली के इस सातवें खंड में उनका यात्रा साहित्य संकलित है। ये अध्यापकीय पृष्ठभूमि वाले पत्रकार के यात्रा-वृत्तांत हैं। इनमें संवेदनशील साहित्यकार की अंतर्दृष्टि से मात्र स्थानों की नहीं, विभिन्न संस्कृतियों, समाजों और विचारों की अंतर्ग्राह्य भी दर्ज हैं। भारती का यह यात्रा-साहित्य इस मायने में पारंपरिक यात्रा-कथाओं से अलग है कि इसमें देश-विदेश का प्रकृतिपरक विवरण नहीं है। इनके माध्यम से दुनिया के भिन्न-भिन्न कोनों में बसने वाले लोगों के आचरण-व्यवहार, रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा तक की सूक्ष्म और सार्थक यात्रा पाठक कर लेता है। इन पठनीय यात्रा-गाथाओं में राष्ट्र की पहचान, सामाजिक मूल्यपरकता, परंपरा से जुड़ाव, विश्व-राजनीति का यथार्थ, संस्कृति-बोध, नई जगहों के प्राचीन लोगों के गुण—यानी अवधारणा, व्यक्ति, घटना और प्रकृति के सृजनात्मक बिम्ब उपस्थित हुए हैं।

भारती ने यात्रा-साहित्य को विस्तार दिया है। इनमें रिपोर्ताज की भी विशेषताएँ मिलती हैं। कल्पनाशीलता, रोचकता और भाषा-सौंदर्य-संपन्न तात्कालिक घटनाओं का यथार्थ और मर्मस्पर्शी प्रस्तुति ऐसी है कि उन्हें पाठक अपने सामने घटित होते अनुभव करता है। इनकी संरचना में कलात्मक प्रयोगशीलता तथा कथ्य में स्वाभाविकता, निष्पक्षता, मार्मिकता है। सृजक के बहुमुखी व्यक्तित्व के कारण पाठक ऐसी अंतर्ग्राह्य करता है जिसमें घृणा-प्रेम, व्यंग्य-करुणा, आशा-निराशा प्रत्यक्ष हो जाते हैं और वह आत्म-परिष्कार की प्रक्रिया से गुजरकर एक बड़ी दुनिया का हिस्सा बन जाता है।

(अगले पलैप पर जारी)

सम्पूर्ण ग्रंथावली (नौ खण्ड)
रुपये चार हजार मात्र



अनिल माथ

धर्मवीर भारती ग्रन्थ

धर्मवीर भारती ग्रन्थावली

खण्ड : एक

उपन्यास और लंबी कहानियाँ

खण्ड : दो

कहानियाँ और एकांकी

खण्ड : तीन

कविताएँ और गीति-नाट्य

खण्ड : चार

निबंध साहित्य

खण्ड : पांच

समीक्षा साहित्य

खण्ड : छः

संस्मरण साहित्य

खण्ड : सात

यात्रा साहित्य

खण्ड : आठ

अनूदित साहित्य

खण्ड : नौ

शोध साहित्य



113498

धर्मवीर भारती ग्रन्थावली

खण्ड : सात

11

सम्पा

चन्द्रकान्त बांदिवडेकर



वाणी प्रकाशन

नयी दिल्ली-110002

R
0-29
98-0.6



ISBN 81-7055-619-8

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 1999
© श्रीमती पुष्पा भारती

कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110093
द्वारा लेज़र कम्पोज़

मेहरा ऑफसेट प्रेस, नयी दिल्ली-110002
द्वारा मुद्रित

DHARAMVIR BHARTI
GRANTHAWALI-7
Edited by Chandrakant Bandiwadekar

संपादकीय

डॉ. धर्मवीर भारती ग्रंथावली का यह सातवाँ खंड उनके यात्रा-साहित्य पर केंद्रित है।

एक सृजनशील अध्येता साहित्यकार जब यात्रा पर निकलता है तब वह यात्रा अनिवार्यतः एक सांस्कृतिक अभियान होता है। इस सांस्कृतिक पक्ष में राष्ट्रीय अस्मिता, सामाजिक मूल्यबोध और समाज, संस्कृति, परंपरा के प्रति विवेकपूर्ण लगाव, वैश्विक राजनीति की कूट चालों का भान और राजनैतिक सिद्धांतों का गहरा ज्ञान, समृद्ध सांस्कृतिक व्यक्तित्व का शुभ और श्रेय के प्रति समर्पित जुड़ाव, नए स्थलों और नए लोगों की विशिष्टता, पृथगात्मता और नएपन की अनुभूति से उत्पन्न रसपूर्ण चमत्कृति और इस सबके साथ व्यक्तियों, घटनाओं और प्रकृति के प्रतीतिपूर्ण दृक-चित्र निर्मित करने की अदम्य सृजनशीलता इत्यादि का गहरा भाव-बोध अंतर्निहित होता है। इसे पढ़ते समय पाठक अनुभव की ऐसी ही प्रगाढ़ उन्मेषशील वृत्तियों में डूबता उतराता जाता है। यात्रा चित्र कितने स्तरों पर सृजनशील हो सकते हैं, इसका एक अपूर्व उदाहरण डॉ. धर्मवीर भारती की ये यात्राएँ प्रस्तुत करती हैं। यह केवल विशिष्ट देशों की बहिर्यात्राएँ नहीं हैं इनके साथ जुड़े लेखकीय व्यक्तित्व के अनेक आयामी गहन संस्पर्श पाठक को सुख-दुख, हर्ष-खेद, आशा-निराशा, आवेग-संवेग, हास्य-क्षोभ, घृणा और आत्मीयता की दुनिया में ले जाते हैं और बहुत बार आत्मालोचन और चिंतन की प्रक्रिया से भी गुजरने को बाध्य करते हैं। यह बाहरी दुनिया इसलिये विलक्षण आंतरिक लगती है क्योंकि सृजनशील मानस की स्वाभाविक कल्पना और महान लेखक की चिंतनशीलता की मिलीजुली प्रक्रिया इस यात्रा-अनुभव को समृद्ध जीवंतता का स्पर्श देती चलती है। यथार्थ कैसे रोमांचक होता है, प्रकृति कैसे मानवीय संस्पर्श से संप्राण होती है, अदम्य साहसिकता कैसे सहज क्रीड़ा बनती है, बौद्धिक तलाश कैसे सुखमय और बहु-प्रसवा होती है, नए लोक, नए प्रदेश, नए रीति-रिवाज, नई विचारधाराएँ कैसे आत्मीयता के घेरे में आकर आलोकित करती हैं, इस सबका अनुभव

ओतप्रोत है इस में। नितान्त वैयक्तिक और अत्यंत आत्मीय क्षणों को विवशता में वाणी देते समय लेखक का शील कैसे संकेतपूर्ण, संयत, सौजन्य से भारान्वित और कृतज्ञता-बोध से विनम्र होता है, इसके भी कुछ अनुभव पाठक को एक निर्मल भाव संसार में ले जाते हैं।

धर्मवीर भारती का प्राध्यापकीय कुर्सी को छोड़कर 'धर्मयुग' के संपादकीय आसन पर जमना उनके साहित्य के लिए कुछ अवरोधक सिद्ध हुआ, यह टीका-टिप्पणी हुई। उसमें साहित्य के प्रति आत्मीयता भी थी, भारती के प्रति थी भी और नहीं भी थी। परंतु यह सही है कि एक संपादक के लिए प्राध्यापक की कुर्सी छोटी थी और यह यात्रा खंड पड़ते समय यह बात अधिक तीव्रता से प्रतीत होती है। हर दिन नए रूपों में आने वाली राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं से वाकिफ रहना, उनसे अंदर और बाहर जूझते रहना, जूझते समय संभावित संकटों और खतरों से चौकन्ना रहना, दूरगामी परिणामों के प्रति सजग रहना, यात्रा की ऐयाशी और बहार के लिए नहीं बल्कि साहसपूर्ण चुनौतियों के लिए कटिबद्ध रहना एक अलग किस्म के व्यक्तित्व की बुनावट की माँग करता है। भारती साहित्यकार तो सबसे पहले हैं परंतु यह साहित्यकार भावनात्मक पक्ष को अत्यधिक महत्व देते हुए भी उसकी नींव में उपस्थित संस्कृति और परंपरा की सुदृढ़ आधारभूमि को स्वीकार करता है, उसको पुख्ता बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। भारती की इन यात्राओं में भारतीय और पश्चिमी संस्कृतियों के स्वरूप का गहरा बोध प्रकट हुआ है। अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक जड़ों के प्रति गहरा लगाव और तज्जन्य विवेकशील अस्मिता उनके संवादों में, आकलन में, सौंदर्य-प्रत्ययों में स्थान-स्थान पर प्रकट हुई है। भारती केवल भारत के इतिहास को ही नहीं जानते उनके इतिहास का और बदलती राजनैतिक हवाओं का ज्ञान चीन, जर्मन, मॉरिशस, ब्रिटेन—सभी यात्राओं में स्पष्टतः परिलक्षित किया जा सकता है। संस्कृत साहित्य और रवींद्रनाथ टैगोर के साहित्य के अनुभूत संदर्भ जितनी सहजता से आते हैं उतनी ही सहजता से रोमैंटिक अंग्रेजी कवियों से लेकर टी.एस. इलियट तक के कवियों की पंक्तियाँ, शेक्सपीयर के साहित्य के संदर्भ आते रहते हैं। ये संदर्भ प्रदर्शन के लिए नहीं, उनके चिंतन के सहज प्रस्फुटन के बीच झलक कर पाठक को चमत्कृत करते हैं। इस सबके बीच से गुजरते हुए धर्मवीर भारती के लेखकीय व्यक्तित्व के प्रति दो महत्वपूर्ण वैशिष्ट्यों का सतत एहसास होता रहता है। एक, उनकी गहरी राष्ट्रीय अस्मिता और दूसरे, उनकी शोषितों के प्रति विलक्षण आत्मीयता, चीन की दीवार, राजाओं का इतिहास, जर्मन देश का विभाजन, युद्धों की परिणतियाँ, बंगला देश के शोषितों का स्वातंत्र्यसंग्राम, मॉरिशस के भारतीय मूल के लोगों का शोषण और उनका अपनी संस्कृति और भाषा को जीवित रखने का जीवट, विस्थापितों की यातना, उपनिवेशवादी सभ्यता द्वारा बहु-राष्ट्रीय शोषण इत्यादि कतिपय स्थलों पर धर्मवीर भारती की यह अकृत्रिम आत्मीयता पाठक को

प्रभावित करती है। युद्ध की भयावहता के बीच देशभक्तों की कुर्बानी से अभिभूत होकर अपने प्राणों को भी संकट में डालने की तैयारी के दर्शन होते हैं, तब भारती का यह कथन कि रोमांटिकता और क्रांतिकर्मा साहसिकता का गहरा संबंध होता है, पाठक के प्रत्यक्ष अनुभव की बात बन जाती है। इन सारे वृत्तांतों से गुजरते हुए लेखकीय व्यक्तित्व की, दूसरे मनुष्य को गौरव देने की, उसके व्यक्तित्व का सम्मान करने की सहज प्रवृत्ति के सुखद दर्शन पाठक को व्यक्तित्व की मधुर उपस्थिति का भान कराते हैं। इसीलिए ये यात्राएँ जितना बाहर का बोध बढ़ाती हैं उतना ही आंतरिकता का रसास्वादन भी कराती हैं।

—चंद्रकांत बांदिवडेकर

अनुक्रम

इंग्लैण्ड-जर्मन-इण्डोनेशिया-मॉरिशस

इंग्लैण्ड : मगर कौन-सा	15
इंग्लैण्ड : मगर कौन-सा	17
कोहरे का नगर : ट्यूलिप के द्वार	26
पुराने किले : घुमावदार नदी	40
गोरी नगरी, काले साये	52
जर्मनी : पश्चिमी बर्लिन-पूर्वी बर्लिन	75
नकाबों के पीछे : दीवारों के पार	77
इण्डोनेशिया : तीन स्मृतियाँ	91
आकाशदीप रत्नम्	93
भारत माता	98
गांधी-स्मृति : आधी रात का बाजार	103
प्रगाढ़ मैत्रियों का द्वीप	
मॉरिशस : इन्द्रधनुष, कादपती प्रत्यंचा	109

युद्ध यात्राएँ : मुक्तक्षेत्रे युद्धक्षेत्रे-युद्ध यात्रा-युद्धोपरान्त

मुक्त क्षेत्रे : युद्ध क्षेत्रे	123
ऊँघते कस्बे	125
धनुष-सी नदी	129
पुराने पुल	136
वे ही बनते दीप	142
अथातो युद्धजिज्ञासा	148
प्रभु इस रस को,	
नए रस को क्या कहते हैं ?	160
वह किशोर योद्धा	168

रेल भंजकों को जगने दो !	172
के बोले माँ	178
अंत में सेना नायक के समक्ष	182
मेरे सगे बड़े भाई : शेख मुजीब	191
युद्ध यात्रा	
युद्ध यात्रा : कालिंदी तट की भटकन	209
युद्ध : अप्रत्याशित आरंभ	217
ब्रह्मपुत्र की मोर्चेबंदी	226
आधी रात का हमला	246
जमालपुर और तदुपरांत	260
ब्रह्मपुत्र और सेतुबंध	268
ढाका की मुक्ति कथा :	
ब्रिगेडियर क्लेयर के शब्दों में	
बंगबंधु की वापसी	275
युद्धोपरांत	283
युद्धोपरांत	285
भरी दोपहर अँधियारा	287
पश्चिमी सरहदों पर उनकी जिंदगी	294
चीन : अर्वाचीन : प्राचीन	307
पेकिंग-परिदृश्य	309
मुसीबत एक मुर्गे की	345
चीन : सामयिक और समयातीत	366
किंवदंतियों की नगरी में कविता की झील	383

चक्रार्पण

यात्राएँ, यात्राएँ—रोमांचक यात्राएँ
बचपन से यही मेरा ख्वाब था
कौन चाहता था कवि बनना, लेखक बनना ?
नहीं, मैं तो चाहता था नेवी में भर्ती होना।
नीली टोपी, सफेद वर्दी, हाथ में दूरबीन
अथाह सागर में उत्ताल तरंगों को
चीरता जहाज ! जहाँ मुझे कोई अछूता अपरिचित
द्वीप दिखे वहीं उतर पड़ूँ। अकेले
घने जंगलों बियावान चट्टानों
के बीच भटकता हुआ। शायद कहीं
कोई समुद्री वृद्ध मिल जाए,
कहीं किसी समुद्री लुटेरे का खज़ाना
मिल जाए, शायद कमर तक बाल
बिखेरे कोई जलपरी मिल जाए !
बचपन में पिता ने बाल आरब्योपन्यास
(अरेबियन नाइट्स का हिंदी अनुवाद)
लाकर पढ़ने को दिया था, और
तिलिस्मी रहस्यों वाले उपन्यास—
सो बचपन का कच्चा मन यही सपने
देखा करता था। मेरे हीरो थे सिन्दबाद जहाजी और
राबिन्सन क्रूसो।

पर जब सचमुच यात्राएँ कीं तो पाया कि यात्राओं का रोमांच तो होता है पर वैसा नहीं। हम अपरिचित देशों में जाते हैं। अनजानी भाषा, अनजाने लोग, अपरिचित

प्रकृति-परिवश और अलग तरह का रहन-सहन, इन सबसे परिचय का एक रोमांच तो होता ही है, पर एक और चीज़ होती है। इन यात्राओं में आप केवल एक भौगोलिक बिन्दु से ही नहीं गुज़रते। एक इतिहास के मोड़ से भी गुज़रते हैं। इतिहास के एक दौर से आप गुज़र रहे होते हैं और वे सब, उनका देश उनका समाज भी इतिहास के एक दौर से गुज़र रहे होते हैं। यात्राओं में स्थान (भूगोल) के साथ समय (इतिहास) का भी यह आयाम जुड़ जाए तो यात्रा का रोमांच और भी सार्थक हो उठता है।

यह विचित्र संयोग रहा कि अनेक यात्राओं में इतिहास के किसी आकस्मिक मोड़ से गुज़रना पड़ा—जर्मनी में बर्लिन-दीवार का संकट गहराया हुआ था अपने चरम बिन्दु पर; मॉरिशस में उसी समय स्वाधीनता मिली थी और लेबर पार्टी की पहली स्वाधीन सरकार बनी थी और पहले प्रधानमंत्री बने थे भारतवंशी चाचा सर शिवसागर राम गुलाम, इण्डोनेशिया में राजनीतिक उथल-पुथल एक निर्णायक मोड़ पर आ रही थी और चीन में 'गैंग ऑफ फोर' की तथाकथित 'सांस्कृतिक क्रांति' कुछ ही दिन पहले निरस्त की जा चुकी थी और भारत पर चीनी आक्रमण के 16 साल बाद पहली बार दोनों देशों का अनबोला खत्म हुआ था और भारतीय पत्रकारों का हमारा प्रतिनिधि मंडल ही इस नए दौर का अग्रदूत बनाया गया था।

और इससे भी ज्यादा रोमांचक और अर्थवान होता है किसी देश की क्रांतिकारी उथल-पुथल में स्वयं सहभागी रहना और वहाँ की जनता के मुक्ति आंदोलन का एक भाग बन सकना। यह मेरा भाग्य ही समझिए कि बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम में साक्षी बनने का अवसर मिला। हवाई हमलों, फूटते बमों, गरजती तोपों, बरसती गोलियों, जलती जीपों और खेतों में बिखरी लाशों के बीच से गुज़रना—उफ़ ! कहाँ गया था भय उस समय ?

ऐसी अद्भुत अनुभूतियाँ क्या अनजान द्वीपों से सहसा मिल जाने वाले समुद्री लुटेरों के गुप्त खज़ानों से कम हैं ? और अनंत काल से चला आता हुआ यह इतिहास ही क्या वह सफेद बरौनियों और झूलती पलकों वाले रहस्यमय समुद्री बुढ़े से ज्यादा रहस्यमय नहीं है—

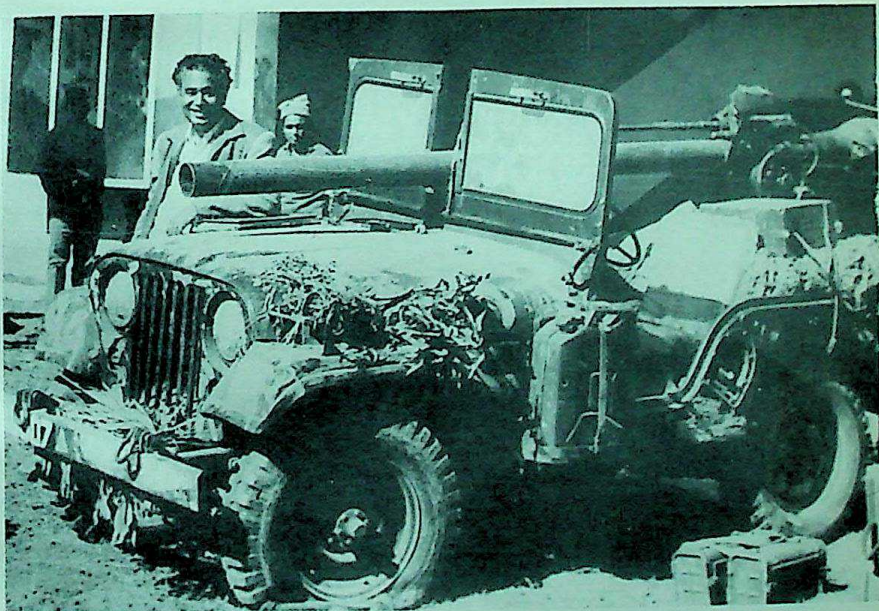
और जलपरी ? हाँ, यह सवाल जरा टेढ़ा है। इतनी यात्राओं में जलपरी तो कहीं नहीं मिली। पर कैसा अचरज है कि यात्राओं में तो नहीं, पर जब-जब किसी भी यात्रा से वापस घर लौटा तो वह जलपरी घर पर ही इंतजार करती मिली। और उसका चिरपरिचित चेहरा और सुपरिचित नाम—पुष्पा भारती। आपने भी सुना होगा। उसी को मेरी यह यात्राएँ ही क्या पूरी जीवन-यात्रा ही समर्पित है।

15 अगस्त, 1994

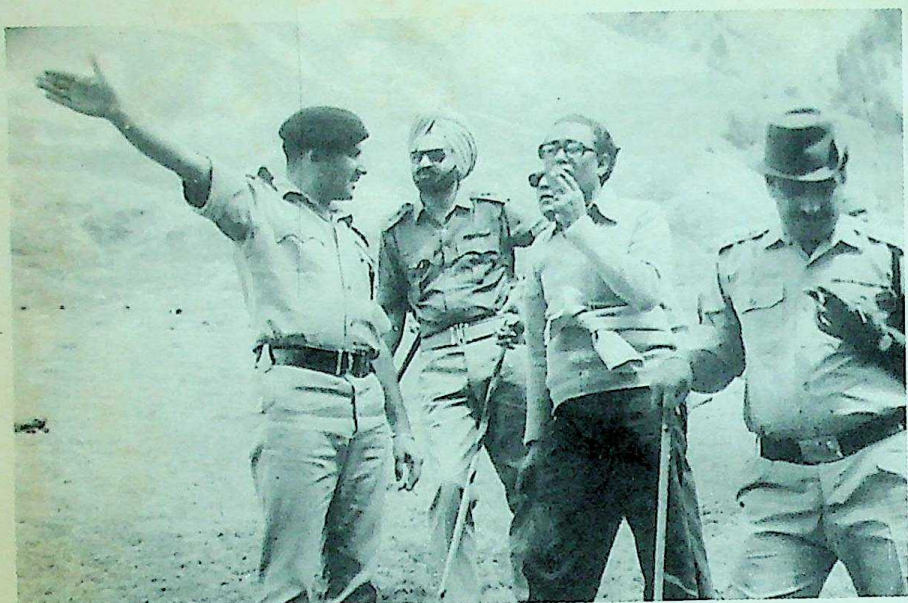
—धर्मवीर भारती



शेख मुजीब के साथ धर्मवीर भारती



ब्रह्मपुत्र के उस पार जीप पर लाद कर लाई गई इसी तोप से धर्मवीर भारती और उनके सैनिक साथियों पर गोलाबारी की गई थी। पाकिस्तानियों के आत्मसमर्पण के बाद उस जीप और तोप के साथ धर्मवीर भारती



भारत-पाकिस्तान की पश्चिमी सीमा पर सैनिकों के साथ युद्ध बिंदुओं का निरीक्षण करते हुए धर्मवीर भारती



बी.एस.एफ. की चौकी पर सैनिक निरीक्षण करते धर्मवीर भारती



जनरल मानेकशों के साथ धर्मवीर भारती



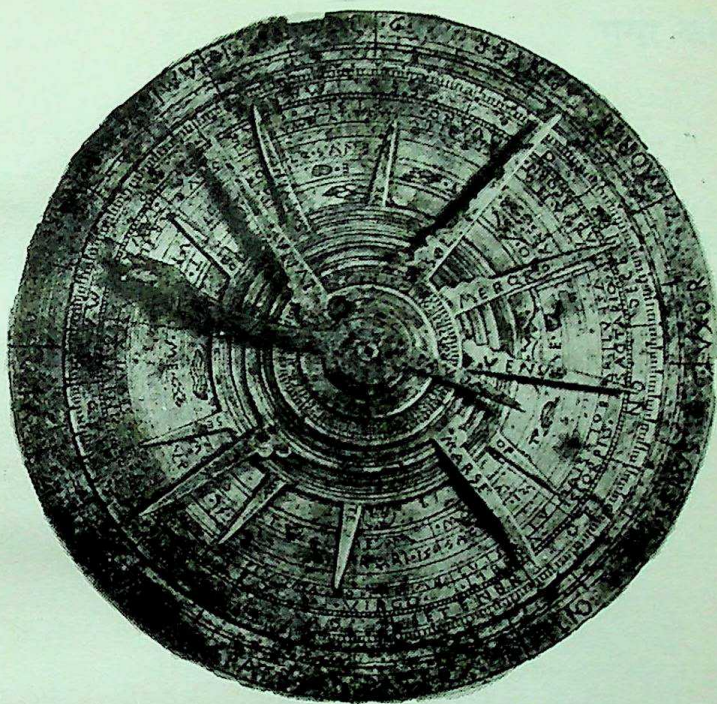
भारत की सीमा पर तैनात सैनिक टुकड़ी को संबोधित करते धर्मवीर भारती
Hindi Premi



चीन के येंगत्से ब्रिज पर नानकिंग में धर्मवीर भारती



बंगलादेश के कैप्टन नजरूल हक, विष्णुकांत शास्त्री और धर्मवीर भारती



इंगलैण्ड-जर्मनी-इण्डोनेशिया-मॉरिशस

इंग्लैण्ड :
मगर कौन-सा

□ मई 1962

: उपनिषद्
क-क-क-क

संस्कृत २४ □

इंग्लैण्ड : मगर कौन-सा

यात्राओं के बारे में एक बात मैंने महसूस की है जो बड़ी अजीब है, लेकिन बहुत सच। मेरा खयाल है कि दूसरे यात्रियों ने भी इसे जरूर महसूस किया होगा लेकिन अचरज है कि उन्होंने कहा क्यों नहीं ? अक्सर ऐसा होता है कि इसके बहुत पहले कि हम सात समुद्र पार किसी अनदेखे देश में जायें, उसे देखें—वह पहले से ही हमारी कल्पना में बसा हुआ होता है। कुछ सुना, कुछ पढ़ा, कुछ अनुमान किया हुआ। और जब हम सचमुच एक दिन वहाँ जाते हैं तो उसी का एक बिलकुल निजी, अपना संस्करण साथ लेते हुए जाते हैं। भूगोल एक बाहर का है, एक हमारे अन्दर का। यात्राएँ दोनों साथ होती हैं। हम बाहर भी जाते हैं और साथ-साथ स्मृतियों और कल्पनाओं के देश में भी समानान्तर यात्रा करते चलते हैं।

बचपन से एक इंग्लैण्ड मेरा था, बिलकुल मेरा। कुछ बचपन से बनी धारणाओं, किताबों में पढ़े विवरणों, गोल्डस्मिथ से लेकर जान आसबर्न तक की कृतियों से संकलित प्रतिक्रियाओं और कविता पुस्तकों और ऐलबमों का एक बिलकुल अपना निजी इंग्लैण्ड ! अपने देश की सीमा पहली बार लॉघकर अनजान दिशा में जाने का उचटाव जब जरा शमित हुआ तब मैंने अकस्मात् महसूस किया कि मैं अकेले नहीं जा रहा हूँ, एक इंग्लैण्ड मेरे साथ जा रहा है।

आधी रात ! गर्मियों का तारों भरा, खुला, असीम आकाश। तीस हजार फीट की ऊँचाई पर सैकड़ों मील रफ्तार से उड़ता हुआ जेट, लेकिन अन्दर एक ठहराव, सन्नाटा और आधी रात की धुँधली रोशनी। दूर पर अपने से बहुत नीचे दीखने वाले सितारों को निहारने का मोह छोड़कर आँखें बन्द कर चुपचाप सोचना या बिना कुछ सोचे सिर्फ महसूस करना। जेट-प्लेन सैकड़ों मील की रफ्तार से आगे जा रहा है, मन उम्र की डगर पर उतनी ही तेजी से पीछे !

अँधेरा !

अकस्मात् एक तेज सुरीली आवाज से एक बच्चा चौंककर जाग जाता है। एक-दो

तारे अब भी झिलमिला रहे हैं लेकिन भोर होने को आ गयी है। नींद में अधसुनी सुरीली आवाज फिर गूँज उठती है :

जागो ऐ हिन्द वालो, हर सू हुआ सबेरा !
सब लूट करके अपने घर ले गया लुटेरा ।
जगमग महल बकिंघम, वर्धा में है अँधेरा”

बच्चा गौर से सुनता है। वह जानता है कि यह बेनी काका की आवाज है। रोज सुबह चार बजे जमुना जी जाते हुए मुँह-अँधेरे बेनी काका गिन-गिनकर पाँच सौ कदम पर रुकते हैं, यह ढेर लगाते हैं, फिर ‘वन्देमातरम् !’ कहते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। रास्ते में धाना पड़ता है। वहाँ तीन बार परिक्रमा देते हैं इसे बार-बार गाते हैं और फिर जमुना जी की ओर निकल जाते हैं। धाना उनका तीरथ है। यहाँ उनका जवान लड़का सत्याग्रह के दिनों में शहीद हो गया था। उनकी जायदाद अंग्रेजों ने जब्त कर ली थी। तब से पियक्कड़, जुआड़ी और नाच-मुजरे के बेहद शौकीन, रईस बेनी काका मानचेस्टर और लंकाशायर के कपड़ों की होती जलाकर गाढ़ा खट्टर पहनकर ‘सुराजी’ हो गये थे। ठीक मुँह-अँधेरे जमुना जी जाते थे। अपने ‘पुत्रतीरथ’ की परिक्रमा करते हुए, ढेर लगाते हुए” “जगमग महल बकिंघम, वर्धा में है अँधेरा।”

बच्चा फिर चादर ओढ़कर लेट जाता है। उसने बकिंघम का अर्थ पहले-पहल बेनी काका से जाना था। फिरंगी के टापू में जार्जपंजुम का बहुत बड़ा महल है बकिंघम। उसकी तस्वीर उसने देखी थी और पहली बार देखी थी— लाल जरीदार वर्दी और काली-लन्बी बालदार टोपियों वाले रायल गार्डों की तस्वीर ! बेनी काका ने बताया था कि बकिंघम-महल के आसपास बड़े-बड़े तहखाने हैं जिनमें हिन्दुस्तान की सारी दौलत लूटकर भर दी गयी है। इस फिरंगी के टापू को इंग्लैण्ड कहते हैं। जब सुराज होगा तब सब दौलत गांधी जी ले आयेंगे और सबको सबकी चीज लौटा दी जायेगी।

कोई मुझे छूता है। मैं चौंककर जाग जाता हूँ। एयर होस्टेस सहारे से मेरा सर जरा उठाकर तकिया लगा रही है। मेरी नींद उचट जाती है। मैं कॉफी माँगता हूँ। अँधेरे में फिर, इलाहाबाद में सुना, देखा, जाना इंग्लैण्ड उभरने लगता है। वह, जिसे मैं कब का भूल चुका था मगर जो कहीं ज्यों का त्यों मौजूद था और आज मेरे साथ जा रहा था।

एक वादामी कागज की स्कूली कॉपी। चमकदार बैजनी स्याही से लिखी हुई एक बड़े-बड़े अक्षरों वाली कविता :

I remember, I remember
The house where I was born,
The little window where the sun
Came peeping in the morn,

(मुझे याद आता है, याद आता है मुझे
वह घर जहाँ मैं पैदा हुआ था
वह छोटी-सी खिड़की जिसमें से
सुबह-सुबह सूरज झाँककर कहता था 'ता !')

I remember, I remember
The roses red and white
The violets and the lilycups
Those flowers made of light,

(मुझे याद आते हैं, याद आते हैं मुझे
गुलाब कुछ लाल, कुछ सफेद
वायलेट और लिलीकप
ये फूल मानो रोशनी के बने हों,)

The lilacs where Robin built nest
And where my brother set,
The laburnum on his birthday,
The tree is living yet.

(लिलैक का झाड़ जहाँ राबिन
चिड़िया का घोंसला था
जन्मदिन पर मेरे भाई का लगाया लैबर्नम
आज भी वह पेड़ वहाँ खड़ा होगा।)

कौन था यह कवि टामस मूर ? कहाँ है वह घर जहाँ वह पैदा हुआ था... ? और बच्चा
होल्डर के उल्टी तरफ से बैजनी स्याही से मोटी-मोटी लाइनों से हाशिये पर एक घर
बनाता है। टामस मूर कौन था वह भूल गया। यह लाइनें अब उसकी हो गयी हैं। यह
घर उसका है। यहाँ पैदा हुआ था। इसमें सबेरे धूप झाँकती थी। यहाँ बाहर गुलाब
और लिली और वायलेट के फूल थे। लिलैक की झाड़ी में एक चिड़िया ने घोंसला
बनाया है और उसके भइया ने लैबर्नम का पौधा लगाया है। लिली, वायलेट और
लिलैक उसने कभी नहीं देखे—मगर शायद कभी-न-कभी जरूर देखे हैं, ऐसा उसे याद
पड़ता है। वायलेट का फूल ऐसा होता होगा ! लिलैक की झाड़ी ऐसी होती होगी !
और चिड़िया कौन-सी जरूर वही गौरैया होगी जो उसके दर्जे में ब्लैकबोर्ड के पास
घोंसला बना रही है। वह पाँचवें दर्जे में है। इंगलिश पोइंट्री पढ़ने और याद करने में
उसे एक सुन्दर किताब इनाम में मिली है जिसे वह बैठकर वादामी कॉपी में बैजनी
स्याही से उतारा करता है। उसको सपने में भी कयास नहीं कि लिली और वायलेट,
लिलैक और डैफोडिल, स्काईलार्क और नाईटिंगेल उसी देश में हैं जहाँ बकिंघम-पैलेस
है। उसे यह भी नहीं मालूम कि शायद बकिंघम-पैलेस के बाग में लिली और वायलेट,
चंदी और डैफोडिल फूलते होंगे। नहीं, वहाँ तो बस तहखाने हैं और उसमें छिपी है

हिन्द की दौलत। इंग्लैण्ड शायद दो होंगे। एक में बकिंघम-पैलेस होगा, एक में वह घर जिसकी याद कवि को आती है और इसीलिए उस बच्चे को भी आती है।

काँफी खत्म हो गयी। हाथ बढ़ाकर मैंने जहाज की खिड़की के ऊपर लगी, पढ़ने वाली बत्ती भी बुझा दी है। अब प्लेन के इतने लम्बे-चौड़े कारीडोर में अँधेरा है। सिर्फ ऊपर छत पर एक बहुत बड़ा गोल अर्द्ध पारदर्शी शीशा लगा है जिसमें से बाहर गुजरते हुए आसमान का प्रतिबिम्ब झलकता है। जहाज चल रहा है। उस शीशे में झलकने वाले आसमान के हल्के बैजनी से गोल टुकड़े में तारे स्थिर नहीं हैं। बिखरते हुए हीरों की तरह वे केन्द्र से दুলकते हुए शीशे की गोल कोर की तरफ जाते हैं और फिर खो जाते हैं। आसमान खुद शीशे में बैजनी फूलों के काँपते हुए गोल गुच्छे की तरह लगता है। कहाँ देखे हैं मैंने ऐसे फूल ? क्या नाम था उनका ?

डाल में लदे-फँदे उन बैजनी फूलों का नाम मेरे मित्र आत्मन् ने बताया था, बहुत दिनों बाद, 'जैकरांडा' ! पर वे फूल मैंने देखे थे बहुत पहले, कैशोर्य में, जब बैजनी और फालसही रंग से बेहद प्यार था। यूनिवर्सिटी-लाइब्रेरी के बाहर पतला-लम्बा जैकरांडा का पेड़ था। जहाँ तक मुझे याद है, फूलता था उन दिनों जब पढ़ाई जोरों पर रहती है, यानी फागुन-चैत-बैसाख ! मेरे मन में वे फूल रोमैंटिक काल के कवियों के साथ जुड़ गये हैं। शेले, कीट्स, वर्ड्सवर्थ को पढ़ता था और बीच-बीच में जालीदार खिड़की में से जैकरांडा की बैजनी फूल लदी डाली का एक गोल झब्बा हवा में झूम-झूमकर मुझे झाँक जाता था। उमर वह, जब जीवन के पहले-पहले बहुत पवित्र, बहुत सुकुमार, बहुत तन्मय करने वाले प्यार में आकण्ठ डूबा था। कीट्स की हर पंक्ति के साथ कोई एक ममतामयी निगाह, कोई एक स्नेह भरा संस्पर्श, कोई एक मिसरीघुला बोल मन कचोटता रहता था। हर वक्त शेले की वायवीय, अशरीरी, सूक्ष्मतम अनुभूतियों वाली एक ज्योतिर्मयी सगिनी अपने निजी जीवन के आसपास बनी रहती थी।

प्रेम की उस अशरीरी, बहुत मीठी, तन्मय करने वाली अनुभूति के साथ-साथ एक आग की लपट भी मन में थी। अंग्रेजी कवि शेले ने पहली बार 'प्रामेथ्यूस अनबाउण्ड' की कथा सुनायी थी, उस चिरन्तन विद्रोही की कथा जो सत्य और आलोक के लिए बड़ी-से-बड़ी सत्ता के खिलाफ विद्रोह करता है और बड़ी-से-बड़ी मार्मिक यन्त्रणा को बिना उफ किये झेलता है। मुझे उन दिनों अक्सर लगता था कि जिन्दगी उस हल्की खूबसूरत कैमिकल आग की लपट की तरह होनी चाहिए जिसमें नीले रंग की धारी भी होती है और दहकते लाल रंग की भी। सौन्दर्य भी विद्रोह भी। राजनीति में सब मुझे उलझे हुए और कुछ अंशों तक समझौतावादी लगते थे। आदर्श थे सुभाष ! अंग्रेजों से उन्हीं के राजनीतिक मुहावरे में मुँहफट बोलने का साहस रखने वाले, उन आडम्बरप्रिय गोरे उपनिवेशवादियों के साम्राज्यवादी घमण्ड को सैन्यशक्ति के सहारे चुनौती देने वाले ! और अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी जाति की उपनिवेशवादी आडम्बर-प्रियता को तहेदिल से नफरत करने वाले उस मेरे विद्रोही किशोर मन को सहारा और ताकत देती थी एक अंग्रेज कवि की पंक्तियाँ।

शेले और सुभाष ! अजीब समीकरण था।

“यूनियन का बरामदा खून से लथपथ, इन्सानियत को नाजियों से बचाने का दावा करने वाले अंग्रेजों ने सन् 1942 के आन्दोलन का दमन करने में नाजियों को मात दे दी थी। शेले और कीट्स की किताबें आलमारी में रखकर विद्यार्थी ‘भारत छोड़ो’ का नारा लगाते हुए निकल पड़े हैं। वे अकेले हैं। जिन नेताओं से उम्मीद थी वे बिना कुछ रस्ता बताये जेल चले गये हैं और जेल जाकर उनके कर्तव्य की इतिश्री हो चुकी है। कम्युनिस्ट, जो तरुण छात्रों की प्रेरणा थे, इस समय अंग्रेजों की खुफियागिरी और जनयुद्ध का प्रचार करने में लगे थे। विद्यार्थी अपनी लड़ाई खुद लड़ रहे हैं। अंग्रेजों ने संगीन लगी बन्दूकें सँभाल ली हैं, कचहरी के पास, चौक के पास, यूनिवर्सिटी के पास, खून से सड़कें रँग दी हैं। बेनी काका के बच्चे फिर मारे जा रहे हैं। जोश मलीहाबादी ने एक कविता लिखी है : हिटलर को पैगाम भेजते हुए कि लन्दन जाना तो हमारी ओर से एक गोला बकिंघम-पैलेस पर गिराते आना ! मेरे सिरहाने शेले की किताब के नीचे एक छोटी-सी किताब छिपी हुई है—गांधी जी की ‘क्विट इंडिया’। ‘गोल्डेन ट्रेजरी’, रीड की वड्सवर्थ और ‘कीट्स लेटर्स टु फेनी’ के पीछे रखा हुआ है एक तेज वायर-कटर, प्लास जो हमें हमारी टुकड़ी के नेता ने दिया है कि कल सुबह तक मोहल्ले के सारे तार कट जाने चाहिए। इस अंग्रेजी राज को हम उलट कर रहेंगे। हमारे आन्दोलन की तीखी आलोचना बहुत से भयभीत बुजुर्ग कर रहे हैं और कम्युनिस्ट कामरेड लोग भी और मैं शेले का काव्य-संकलन खोलकर पर लिखता हूँ : अगस्त’ 42।

Such is this conflict—When man
With its oppressors in a strife of blood
Or when free thoughts, like lightning
And in each bosom of the multitude
Justice & truth with custom's hydra
Wage silent war.....
The world's foundations tremble!

कितना सुकून मिलता है इन्हें फिर पढ़कर ! हमारी सन् 42 की क्रांति निरर्थक नहीं है।

“योर अटेंशन प्लीज”—फ्लेन के माइक्रोफोन से आवाज आती है, “पेटियाँ बाँध लीजिए, जहाज कैरो के हवाई अड्डे पर उतरेगा।” काहिरा काफी गरम है। हम लोग उतरकर हवाई अड्डे के स्वागत-गृह में कॉफी पीने आये हैं। मैं बाहर टहल रहा हूँ। इन बत्तियों की रोशनी के पार रेगिस्तान है, दूर तक फैला हुआ, बंजर, रेतीला सुनसान ! और टी.एस. इलियट दिमाग में घूम जाता है—‘वेस्ट लैण्ड’। और फिर इलियट से लेकर जान आसबर्न की ‘एग्री यंग मैन’ पीढ़ी तक एक दूसरे इंग्लैण्ड का स्वर उभरता है। विशुद्ध, तीखा, आडम्बरों, झूठी नकाबों, गलत पाखण्डपूर्ण मूल्यों की घञ्जियाँ उड़ता

हुआ, किपलिंग से लेकर चर्चिल तक के इंगलैण्ड से बिलकुल पृथक्।

जीने पर पिरामिडों के पुराने भित्तिचित्रों की अनुकृतियाँ बनी हैं, बैरे लम्बे मिस्री चोगे और तुर्की टोपियाँ पहने हैं, तेज अरबी कहवे की महक खुशनुमा लग रही है। यात्रियों की भीड़ में अफ्रीकी सरदारों की भरमार है, अपनी-अपनी कबायली पोशाकें पहने। यह सब इतना अच्छा, तरोताजा कर देने वाला लग रहा है पर मन अभी भी उचटकर घर की ओर क्यों लौटता है ?

हम सब जहाज पर वापस आ गये हैं और फिर वही तीस-बत्तीस हजार फीट की ऊँचाई पर उड़ान। काहिरा पर मिस्र के स्वागत-विभाग ने जहाज के अन्दर पिचकारियों से इत्र छिड़क दिये हैं और सारा जहाज फूलों के कुंज की तरह महक उठा है। मन फिर तितली की तरह उड़ रहा है—इस ख्याल से उस ख्याल पर ! मई का महीना है। इंगलैण्ड में वसन्त होगा, कौन-से फूल मिलेंगे। क्या लिलैक की झाड़ी खिल आयी होगी ? क्या सुनहले डैफोडिल झीलों के किनारे झूमते हुए दिखाई देंगे ? मेरे साथ-साथ जाने कितने इंगलैण्ड जा रहे हैं। सच, भूगोल कई स्तर पर होता है, बाहर भी, अन्दर भी। यात्राएँ समानान्तर होती चलती हैं। मन उचटकर घर की ओर लौटता है। जिस पवित्र तन्मय प्यार के आलोक में पहली बार लिलैक और डैफोडिल, शेले और कीट्स का जादू जाना था वह प्यार कहाँ है ? कीट्स की रूपासक्ति और शेले की वायवीयता के ताने-बाने से बुनी भाव-प्रतिमा जिन्दगी के हाथों तार-तार क्यों हो गयी ? फिर मन पूर्ण संकल्प से जिसे लाया वह तो मुझी में बाँधे आकाश-सा अग्राह्य निकला, और जो अनजाने ही घर के आँगन में लिलैक की झाड़ी की तरह खिल आया, तन-मन में महक गया, वह... ! और यह सब मैं क्या सोच रहा हूँ और क्यों ? और क्यों सोच रहा हूँ कि घर से हजारों मील दूर निकल आया हूँ। घनघोर अन्धकार में, नीचे अथाह गहरे भूमध्य सागर के ऊपर उड़ रहा हूँ। और अभी इस हवाई जहाज को कुछ हो जाय तो ? अलविदा !... क्या यह मरण का अज्ञात भय है ? या अपनी जिन्दगी के नैरन्तर्य से जरा ऊपर उठकर उसे देखने की प्रक्रिया है ? और लो, अब सब भूल गया है, यह देश, वह देश, यह यात्रा, वह इतिहास, केवल मैं हूँ और बाहर का सीमाहीन अँधेरा, मैं एक विराट शून्य के समक्ष घबराया हुआ और फूल लदी लचकीली डालियों-सी दो बाँहों की याद, मुझे घेरकर माथा गोद में छिपाकर आश्वासन देने की मुद्रा में...

क्या इलियट ने किसी ऐसे ही क्षण में लिलैक के फूल की याद की होगी ?

Now that the Lilacs are in bloom
She has a bowl of Lilacs in her room
And twists one in her finger while she talks.
“Ah my friend, you do not know you do not know
What life is, you who hold it in your hands”?
(Slowly twisting the lilac stalks)
You let it flow from you, you let it flow,.....

बहुत बड़ी, बहुत फैली-फैली बातों के भटकाव में जब मन बहुत उलझ जाता है तो अक्सर बहुत छोटी-छोटी तात्कालिक बातों में सब-कुछ भूलकर रमने की कोशिश करता है। यूँ भी जेट-विमान की सुदूर यात्रा में छोटी-छोटी कितनी ही चीजें मन को रमा लेने वाली होती हैं। थोड़ी-थोड़ी देर पर स्टीवार्ड एक चार्ट घुमाता है जिसमें हम कहाँ उड़ रहे हैं, कितनी ऊँचाई पर उड़ रहे हैं, बाहर कितना तापमान है, स्थानीय समय क्या है, इन सबका विधिवत निर्देश होता है। थोड़ी-थोड़ी देर पर खान-पान के रोचक कार्यक्रम, छोटे-छोटे उपहार और कुछ नहीं तो एयर होस्टेस की रसभरी मुस्कानमयी साज-सँभार ! अच्छा लग रहा है पाँवों में होस्टेस द्वारा दिये हुए रेशमी मोजे चढ़ाकर, आँखों पर उपहार में मिली काली रेशमी शायन-पट्टिका चढ़ाकर सोने का अभिनय करना। मगर सच यह है कि भारत के स्टैंडर्ड समय के अनुसार सुबह हो चुकी है इसलिए नींद भी नहीं आती। वहाँ सूर्योदय हो चुका होगा। यहाँ नीचे चारों ओर क्षितिज के पार तक फैला हुआ भूमध्यसागर ! आसमान बिलकुल साफ था, नीचे एक भी बादल नहीं। हम बत्तीस हजार फीट की ऊँचाई पर थे (यानी एवरेस्ट से चार हजार फीट ऊँचे) लेकिन नीचे नीले पानी की चादर साफ दीखती थी।

और सहसा एक अद्भुत चीज देखी। हम पश्चिम की ओर जा रहे थे—चार सौ मील प्रति घण्टे की रफ्तार से। पीछे देखा, पूर्व के आकाश में उजाले की एक फाँक अन्तरिक्ष पर फट आयी। मैंने आसमान कई तरह का देखा है : रात का, दिन का, साँझ का, सूर्योदय का ! लेकिन ऐसा कभी नहीं देखा था कि पूर्व के आकाश में सिर्फ एक पतली फाँक सूर्योदय की हो और बाकी सारा अथाह आकाश घनघोर अँधेरे का ! और आकाश की छाया के नीचे नीले सागर का गोलाद्ध। पूरब की फाँक चौड़ाती गयी। धीरे-धीरे बादल की रेखाएँ दीखीं। बहुत नीचे समुद्र के पूर्वी छोर के किनारे-किनारे उसके समानान्तर गहरे जामुनी रंग की पट्टियाँ जैसे बादल अक्सर निकोलस रोरिख के चित्रों में दीख पड़ते हैं। रहस्यमय आकारवाले ! मानो कोई धनुर्धारी बादल के तीर चला रहा हो। अनसुनी प्रत्यंचाएँ टंकार रही हों। सूरज की कोर तो क्षितिज के ऊपर नहीं दीखी मगर थोड़ी देर में वह एक फाँक नारंगी रंग में रँगने लगी। धीरे-धीरे केसरिया, और उसके बाद एक पतली रेखा चमकदार कलकतिया सिंदूर की ! सूरज की पतली कोर शायद दीखने ही वाली रही होगी कि जहाज सो-दो सौ मील आगे निकल गया। सूर्योदय फिर पीछे छूटने लगा। बदलते रंगों वाली वह फाँक अपनी जगह ज्यों-की-त्यों थी और बाकी आकाश ज्यों-का-त्यों बिलकुल अँधेरा ! धीरे-धीरे फाँक भी पीछे छूट गयी।

यह जीवन का एक अद्भुत अनुभव था। मुझे कल्पना भी नहीं थी कि इतनी ऊँचाई से इतनी वेगवान गति से देखने पर सूर्योदय ऐसा होता होगा। एक विराट अज्ञात लोमहर्षक रहस्य और अतर्कित अतींद्रिय सौंदर्य ने मन को अभिभूत कर लिया था। मैं स्तब्ध था। विराट सौंदर्य के समक्ष धुला हुआ, नम्र, समर्पित !

कुछ देर बाद चेतना लौटी। नीचे फिर वही समुद्र की नीली चादर थी। आसमान

पर—दूर क्षितिज के पास वही धनुर्धारी आकार की बादलों की पट्टी दीख रही थी, नीचे दूर-दूर पर कुछ टापू भी दीखने लगे थे। इसी सागर में इन्हीं टापुओं पर पड़ाव डालते हुए यूनान और रोम के जहाजी बेड़े सारी दुनिया को जीतने के लिए झड़े उड़ते हुए कभी जाते होंगे। क्लियोपेट्रा के सौन्दर्य की कहानी सुनकर कभी सीजर इसी रास्ते मिस्र गया होगा। क्या इन्हीं में से कोई टापू वह भी था, जहाँ थके हुए यूनानी नाविक जाकर शिथिल पड़ रहे थे—‘लोटसईटर्स का टापू ! (कमल भक्षकों का द्वीप) टैनीसन की पंक्तियाँ याद आ रही थीं :

There is sweet music here that softer falls
Than petals from blown roses on the grass...
Music that gentlier on the spirit lies
Than tired eyelids on tired eyes.....

ट्राय के दस वर्ष के थका देने वाले युद्ध के बाद जहाजी घूमते-भटकते इस कदर थक गये थे कि इस द्वीप पर आकर वे बोले कि अब हम आगे नहीं जायेंगे। पत्नियों के उष्ण आलिंगन, बच्चों की दूधिया हँसी, घर के आमन्त्रण भरे द्वार सब उन्हें बार-बार याद आते थे पर यात्रा ने उन्हें थका दिया था। समुद्र और पतवार देखकर अब उनका खून सर्द पड़ता जाता है। यहाँ घने पेड़ों की छाया में कमल का मधु पीते हुए वे पड़े रहेंगे।

कभी अच्छी लगी थी यह कविता। मीठे शब्द, खूबसूरत-सुकुमार कल्पनाएँ। लेकिन मेरे लिए नहीं— जिसके लिए युद्ध अब भी खत्म नहीं हुआ, जिसके लिए चलना अनिवार्य है क्योंकि “चलने में ही हम दूरों और अधूरों का शायद कुछ होगा नया गठन, आश्रय देंगे हमको अपने जर्जर पर अपराजेय चरण !”

पार हुआ भूमध्य सागर, रोम का हवाई अड्डा और अब हवाई जहाज की मोटे शीशे वाली गोल खिड़की के नीचे आल्प्स की हिमढकी चोटियों का लम्बा सिलसिला बिछ गया। बीच-बीच में हरी-भरी घाटियाँ, कहीं-कहीं पतली, लम्बी बल खाती हुई सड़कें और हरे चरागाह ! धूप में बरफ झलमला रही थी। लेकिन (संकीर्ण राष्ट्रीयता का दोष न लगाया जाय) सच तो यह है कि हिमालय की झलमलाती चोटियों के आगे आल्प्स बहुत बौना, बहुत बचकाना, कुछ अंशों में बहुत सतही लग रहा था। (पहले खयाल आया कि शायद इतने ऊपर से देख रहा हूँ इसलिए यह प्रभाव मन पर छूट गया, लेकिन अगले वर्ष फिर यूरोप आना हुआ तो गार्मिश की घाटी से, ओबेर आमर गाँव से आल्प्स को बार-बार देखा। नहीं, हिमालय की बात यहाँ कहाँ) उससे कहीं ज्यादा खूबसूरत था परत-दर-परत ऊँची-नीची चोटियों वाला बादल का वह कल्पित जादू का-सा पर्वत-प्रदेश जो लन्दन के ऊपर की उड़ान में हमें मिला। सच तो यह है कि जब बहुत ऊपर से नीचे उतरते हुए हमने पहली बार विचित्र रहस्यमय आकारों वाले उस ऊबड़-खाबड़ बादल-प्रदेश में प्रवेश किया तो लगा कि जहाज अब चोटियों से टकराया, अब टकराया ? लेकिन ऊपर, नीचे,

आगे, पीछे जमे हुए कपासी बादलों की पर्वत-शृंखलाओं में जहाज एक खूबसूरत मछली की तरह तैरता रहा। मालूम हुआ कि लन्दन पर गहरा कोहरा है। अभी उतरने का संकेत नहीं मिला।

लन्दन ! मन एकदम झन्कार उठा। बादलों की इस गहरी पर्त के नीचे वह विराट महानगर है। टैम्स, वेस्ट मिनिस्टर एवे, सेंट-पाल गिरजाघर, पिकैडिली, ब्राउनिंग, डिकेन्स, इलियट और जान आसबर्न का लन्दन ! थोड़ी देर में बादल और कोहरे का पर्दा हटेगा—और कौन-सा लन्दन हमारे स्वागत के लिए आगे आयेगा ? बर्किंगम-पैलेस वाला ? क्लाइव और लार्ड कर्जन वाला ? या कीट्स और ब्राउनिंग वाला ! शेले की सर्पेण्टाइन झील कोहरे में छिपी होगी या धूप में जगमग ? डिकेन्स की प्यारी गलियाँ रौनक अफरोज होंगी ? क्या लिलैक और चेरी खिल आयी होगी ?”

कोहरे का नगर : ट्यूलिप के द्वार

...और लो, अब मैं तुम्हारे पास हूँ। अजनबी शहर का पहला कुतूहल, स्वागत-सत्कार, सैर-संपाटा, भीड़-भाड़, दौड़-धूप-भरे ये दो-तीन दिन नदी के पहले सैलाब की तरह उफनकर उतर गये और अब एक खाली, सूनी, ठण्डी, कोहरे-भरी शाम है, गैस-हीटर से गरम कमरे में आरामकुर्सी पर लेटा, पलंग के तकिये पैर के नीचे लगाये, आँखें झपे, थका-अलसाया मैं—हजारों मील वापस घर लौटकर तुम्हारे पास हूँ—अपनी स्टडी में। जानती हो, परदेश की पहली अनुभूति क्या है ? घर कितना अच्छा लगने लगता है !

यहाँ अभी शाम है। मैंने सपर अभी-अभी लिया। वहाँ शायद आधी रात हो चुकी होगी। सो रही हो ? उठो, देखो तुम्हारे लिए दो ही तीन दिन में कितनी-कितनी चीजें बटोरी हैं ? जरा हल्के से इन परतों को खोलो और देखो अन्दर क्या-क्या है। यह लो, एक मुट्ठी कोहरा, लन्दन की मशहूर चीज। सुबह-शाम सारे कार्यक्रम स्थगित कर अक्सर ओवरकोट लपेटकर इस कोहरे में निरुद्देश्य भटकता रहा हूँ ! मेरा माया, मेरी पलकें, मेरे होंठ, मेरे उड़ते-बिखरते बाल—इस कोहरे का अजनबी सर्द स्पर्श इन सब पर अभी ताजा है। इस कोहरे पर भी मेरे माथे, होंठ, पलकों का स्पर्श बारीकी से गुँथा हुआ है। लो इसे सहेजो। और यह लो—जरा धीरे से दोनों हथेलियों में बाँधो, नहीं तो अभी-अभी सारा कमरा अस्त-व्यस्त हो जायेगा। जानती हो क्या है ? बेहद खूबसूरत कस्बे मॉर्लों के पास, टेम्स के किनारे की सराय के बाहर वाले आँगन में चलती हुई तेज बर्फीली हवा का झोंका जो नकली झरने को छेड़ता हुआ आया था, फूल-लदी डालियों को झकझोरकर ढेर-के-ढेर चेरी के फूल हमारी खिड़की के बन्द शीशों पर फेंक गया था, झर-झर। इस ढीठ झकोरे को आँचल में गाँठ बाँधकर रखो। और यह लो, यह छोटा नीला फूल किसी जंगली लतर का। मगर जानती हो, यह लतर कहाँ थी ! उस उदास शोकगीत एलेजी के लेखक ग्रे के स्मारक के पास, एक बाड़ पर खिली थी और बेहद ठण्ड थी और झींसी पड़ रही थी। घुटनों-घुटनों ऊँची घास थी, मगर यह फूल

तोड़ना था ताकि इस गिरजेघर और ग्रे की कब्र के पास का अनुभव तुमसे यह नीचा फूल बतला सके—और अन्त में यह लो, मेरे आश्चर्य में अधबुले होंट, जड़ी हुई निगाह और नाचता हुआ उल्लास, जो मैंने महसूस किया अपनी जिन्दगी में पहली बार ट्यूलिप देखकर, ढेर-के-ढेर, अविश्वसनीय दर्जनों रंगों में खेतों के बराबर क्यारियों में खड़े—अद्भुत रंगारंग ट्यूलिप ! हाइडपार्क में, कैन्सिग्टन पैलेस के बगीचे में, पार्लियामेंट के पास—ट्यूलिप ! ट्यूलिप ! ट्यूलिप !”

सच तो यह है कि अगर यहाँ आते ही आते ट्यूलिप न मिले होते तो पहली शाम से ही यह लन्दन मुझे कोहरे का कैदखाना मालूम देने लगता। आये तो कोहरा था, उतरे तो कोहरा था। होटल पहुँचे, कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस। मेजबानों के प्रतिनिधि स्वागत-सत्कार कर, अगले दिनों का कार्यक्रम बताकर चले गये। नीचे उतरे, लाउन्ज में बैठकर कॉफी पी तो देखा शाम होने को आ गयी थी। बायीं ओर दूर पर प्रिन्सेस मार्गरेट का केन्सिग्टन महल था और मीलों लम्बा बाग। शाम विलकुल खाली थी—क्या किया जाए ?

यूँ शाम से शायद तुम्हारे मन में यादें जुड़ जाती हों—शिवकुटी के पास गंगा तट की सिन्दूरी शामों की। या इमामबाड़े के पास के ढाल से गोमती पार की गाढ़ी-गुलाबी शामों की, या उड़ती पतंगों, धुँधलके में पर मारते पाँखियों और इक्का-दुक्का टिमटिमाते तारों वाली शामों की—मगर तुम्हें सुनकर ताज्जुब होगा कि लन्दन में यह सब कुछ नहीं होता। तुम बम्बई की शामों पर ही खीझती हो। विश्वास करो लन्दन की शामें देखकर तुम बम्बई को मुक्त हृदय से क्षमा कर दोगी। ईलियट ने शाम की उपमा ऑपरेशन की टेबल पर लेटी रोगिणी से दी तो दुनिया भर के अंग्रेजी पाठक रोमांचित हो उठे। कैसी अभिनव उपमा है ! मगर ईलियट का चमत्कार दूसरा है। नयी-पुरानी की बात दीगर, उसने तो बिना उपमेय के ही उपमान चस्पां कर दिया। लन्दन में तो शाम नाम की चीज होती ही नहीं। दिन अक्सर कोहरे से ढँका रहता है, नहीं तो बादल छाये रहते हैं। दिन कब ढला, इसका पता आसमान से नहीं सड़कों से चलता है। जब दफ्तर और इमारतें भीड़ उगलने लगे, पटरियों पर हैण्डपर्स के छोटे शीशे में मुँह देखकर लिपस्टिक लगाती औरतों और बगल में छाता और हाथ में शाम का अखबार दबाये लोगों की भीड़ ठसाठस भर जाए तब समझिए कि दिन ढल गया, पाँच बज गये। थोड़ी देर में जब सड़कें सुनसान हो जाएँ, फुटपाथ पर इक्का-दुक्का राहगीर नजर आये, दफ्तरों की बत्तियाँ बुझ चुकी हों, दूकानें बन्द हों, शो-केस रौशन हों, तब समझिए कि अब शाम बीत चली, रात होने को है। जब सड़कों के दोनों ओर नियोन विज्ञापन जगमगा उठें, प्रदर्शन-गृहों के आगे क्यू लगे हों और सड़क चलते या राह किनारे बेंचों पर बैठे प्रेमीयुग्म समस्त संसार को अपना शयन-कक्ष समझने की उदार भावना का प्रदर्शन करने लगे तो समझिए कि अब रात आ गयी। पर इन तमाम क्रमिक परिवर्तनों के लिए आसमान की ओर देखने की जरूरत नहीं। वहाँ तो वही मटमैला चन्दोबा एकरस, एक-सा टँगा हुआ नजर आयेगा, गोया किसी उजड़े रईस जागीरदार का नीला

मखमली शामियाना उत्सव खत्म हो जाने के बाद भी टँगा रह गया हो। बरस-दर-बरस धूप और धूल, बारिश और बर्फ ने उसके नीले मखमली रंग को उदास मटमैला और बदरंग बना दिया हो।

और उस पर तुरा यह कि 8-9 बजे रात तक सूरज का उजाला कायम रहता है। छिः, यह भी कोई शाम-सी शाम हुई ! कोई सुरुचि-सम्पन्न आदमी ऐसी शामों को उदास होने लायक भी न मानेगा। तभी न यहाँ अधिकतर लोग शाम को सपर लेते हैं और मौसम और राजनीति पर बातें करते हैं।

मगर यह सब तो दो-तीन शामों के बाद मालूम हुआ। पहले दिन तो पांच बजे कि शाम की सूनी सड़कें और गहरे स्याह पड़ते हुए हरे लॉन और शाम की बढ़ती हुई ठण्डक बहुत आकर्षक लगने लगी। ओवरकोट लिया, मफलर लपेटा, दस्ताने पहने और (अन्दर गैस से पूरी तरह उष्ण) होटल के घूमते दरवाजे से बाहर निकले और सर्द कोहरे मिली बर्फानी हवा का पहला झोंका मुँह पर लगा कि मन बेहद ताजा हो आया। फुटपाथ खाली थे, सड़कें सूनी और पार्क मीलों तक फैला चला ही गया था। कहाँ किस मोहल्ले में हैं हम, किस ओर क्या है, यह सब कुछ नहीं मालूम ! बस, पार्क के किनारे-किनारे चलते चले जा रहे थे। इधर-उधर मकानों के फाटकों पर, मूर्तियों के नीचे, अपरिचित नामों और परिचयों को पढ़ते, पोस्टरों को पढ़ते, लाल पोस्ट बाक्सों पर लगे नम्बरों और डाक निकलने के वक्तों को पढ़ते, जगह-जगह ट्रैफिक की नोटिसों को पढ़ते। यह लन्दन से मेरी पहली एकान्त बातचीत थी। और जब एक फाटक के पास शक्ल से निहायत भद्र लगने वाला पुलिस कौप खड़ा नजर आया तो महज बात करने के इरादे से मैं उसके पास गया और पूछा—“इस पार्क का क्या नाम है ?”

“हाइड पार्क !” जवाब मिला।

तो यह मशहूर हाइड पार्क था। इस बार एक नयी प्रत्याशा से चारों ओर दूर-दूर तक देखा। महज हरियाली ज्यादा थी वरना अपने शहरों में पुराने कम्पनी बागों की तरह दूर-दूर तक घास के मैदान, बीच में पक्की सड़कें, कच्चे रास्ते, ऊँचे पेड़ और बीच-बीच में झाड़। कहाँ हैं वे सोप-बाक्सों पर खड़े होकर तकरीरें देने वाले वक्ता ? कहाँ है सप्रेन्टाइन नदी-झील ? कहाँ हैं मशहूर प्रेमी जोड़े और उनकी क्रीड़ाएँ—वह सब जिनके लिए हाइड पार्क मशहूर है। दूर-दूर तक कुछ नहीं। महज दो लड़कियाँ घुड़सवारी करती जा रही थीं और एक बूढ़ा चहलकदमी करते चला आ रहा था, उसका एक कुत्ता घास में दौड़ लगा रहा था।

मन कुछ निराश हो आया। सच तो यह था कि घर की याद आने लगी थी और

सोच रहा था कि हजारों मील उड़कर क्यों आया ? फिर भी कच्ची मिट्टी वाला रास्ता बहुत दिन बाद दीखा था और मैं उस पर चलता चला गया और अकस्मात् पेड़ों के पार दीखे रंग, फूलों के रंग ! और पास गया। ट्यूलिप के खेत ! क्या-क्या रंग थे कि मैं कभी कल्पना नहीं कर सकता था कि फूलों में ये रंग भी हो सकते हैं । पहले तो मैं यह भी नहीं पहचान सका कि ये फूल कौन-से हैं; विमुग्ध रंग-हत खड़ा रहा । टूली रंग का लाल इस कदर चमकीला हो सकता है ? और गुलाबी ? और यह बैजनी ? यह नीला ? कभी-कभी सपनों में जो असंभव रंग दिखाई देते हैं न, उससे भी ज्यादा असंभव अद्भुत रंग ! और खेत-के-खेत ! रंग-रंग के जाल मानों सहसा फैले और मुझे उलझा ले गये।

और जब चेतना लौटी, तो महसूस हुआ कि अब लन्दन अजनबी नहीं रहा। अभी तक मानो हर ओर कोहरे की एक दीवार थी और मैं लन्दन के बाहर था, दरवाजे बन्द थे। शहर निष्प्राण था, जड़, निस्पन्द ! ट्यूलिप मिलते ही लगा जैसे कोई एक बन्द दरवाजा, लन्दन का कोई अन्तरंग द्वार खुला और मैं अन्दर ले लिया गया। फूलों-लिखे आमन्त्रण पत्र द्वारा !

लौटकर आया तो रंग-रंग के विशाल जाल उड़ते हुए साथ चले आये। कमरे में गया तो, नीचे डाइनिंग हॉल में गया तो, लाउन्ज में बैठकर खाने के बाद की कॉफी पी तो—वे रंग-रंग के ट्यूलिप के खेत पंख फड़फड़ाकर विशाल रंगीन तितलियों की तरह उड़ते रहे।

और तुम यकीन नहीं करोगी कि मैं सोकर उठा और चैम्बर-मेड बेड-टी के साथ सुबह का अखबार लायी, तो मैंने देखा कि टाइम्स के मुखपृष्ठ पर जो सबसे बड़ा समाचार-चित्र छपा हुआ है वह है पार्लियामेंट के सामने के ट्यूलिप फूलों का—और नीचे चित्र-परिचय था कि लन्दन की सबसे महत्वपूर्ण खबर यह है कि ट्यूलिप की क्यारियाँ खिल आयी हैं, अपने भरपूर तबस्सुम पर हैं।

जो शहर फूलों के खिलने को मुखपृष्ठ की खबर मान सकता है उससे मेरी अन्तरंग दोस्ती ! उसे मेरा अमिट प्यार !

लन्दन ने अपना ट्यूलिप का दरवाजा खोला तो मेरे लिए—मगर जानती हो वह दरवाजा खुला किस आँगन में ? पार्लियामेंट के पिछवाड़े, डाउनिंग स्ट्रीट की राजकीय इमारतों के बीच का वह पत्थर जड़ा पुराना आँगन जो ब्रिटिश साम्राज्य की हिन्दुस्तानी हुकूमत के सूत्र-संचालन का मुख्य केन्द्र रहा है। दूसरे दिन सुबह ही मैं यहाँ आया अपने मेजबान से मिलने। यही वह आँगन है जहाँ से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की देख-रेख होती

थी, यही वह जगह है जहाँ से हिन्दुस्तान के बारे में नीतियाँ तय होती थीं और घोषणाएँ तैयार की जाती थीं। आज साम्राज्य उजड़ गया है। हाथ से निकली जागीरों का बकाया हिसाब-किताब और उन जागीरों में शासक-रूप में नहीं वरन् मित्र रूप में अपनी रही-सही प्रतिष्ठा बनाये रखने का काम भी अब इसी आँगन से होता है। इण्डिया हाउस की लाइब्रेरी भी यहीं है। कामनवेल्थ रिलेशन्स आफिस भी यहीं है। काई जमे, गढ़े हुए बड़े पत्थरों की इमारतों की अपनी एक आतंकमयी भव्यता होती है। अन्दर बड़े-बड़े गलियारों में चिदम्बरम्, बनारस, मथुरा और त्रिचनापल्ली के तैल-चित्र लगे हैं। कभी इन गलियारों में अंग्रेज बहादुर खड़े होकर इन चित्रों को देखते होंगे और गर्व से फूल उठते होंगे कि यह सब उनकी मिलिक्यत है, उनकी सम्पत्ति है। आज उन्हें देखकर क्या भाव उठते हैं ?

गलियारा जहाँ खत्म होता है वहाँ सामने दीवार पर नेपाल के प्रख्यात सशक्त शासक राणा जंग बहादुर का कहेआदम चित्र लगा हुआ है। वे पहले राजा थे जो गदर के तुरन्त बाद पण्डितों के विरोध के बावजूद इंग्लैण्ड आये थे। अन्दर इयूक के कमरे में अँगीठी के ठीक ऊपर प्रख्यात गद्यकार चार्ल्स लैम्ब का तैल-चित्र टँगा हुआ था। चार्ल्स लैम्ब इसी इण्डिया हाउस में कभी मुनीम था। इयूक हमारे खास मेजबान थे, शासक-दल कन्जर्वेटिव पार्टी की ओर से कामनवेल्थ देशों के सांस्कृतिक सम्बन्धों के इन्चार्ज ! अभी खासे युवक-चुस्त और जागरूक। वह मखमली फर्श का कमरा, पुरानी बहुमूल्य लकड़ी का फर्श, छत और दीवारें, दरवाजों पर सुनहरी पच्चीकारी, कार्निश पर ट्र्यूलिप के फूल, और इयूक का दोस्ती भरा स्वागत और खास दार्जिलिंग की हरी चाय...। वी.आई.पी. होने की एक अलग खुमारी है जो धीरे-धीरे मुझ पर चढ़ रही है...मगर यह भारतीय संगीत स्वर कहाँ से आ रहा है ? क्या हमारे स्वागत के लिए इन्होंने भारतीय रेकार्ड भी लगवाये हैं ? मगर इतना परुष स्वर ? कौन गा रहा है ?...जागो ऐ हिन्द वालो हरसू हुआ सबेरा, सब लूट करके अपने घर ले गया लुटेरा !...ओह यह हैं बेनी काका ? यादों की गुफा से उभर कर इनका भटकता हुआ प्रेत-स्वर यहाँ इस क्षण मुझे क्या याद दिलाने आया है !

मुँह में अकस्मात् चाय बदमजा हो जाती है। मैं प्याला रख देता हूँ। मेजबान से कुछ भी कहना अभद्रता होगी लेकिन कमरे का गैस से उष्ण आरामदेह वातावरण अकस्मात् बेहद गरम हो उठता है—गुजरते जुलूस का शोर, नारे, पुलिस के दौड़ते घोड़ों की टापें, फायर !...और बेनी काका का बच्चा खून में लथपथ नीचे किरता है। चार्ल्स लैम्ब का भोला चेहरा मुझे तस्वीर में से देखता है। मैं इयूक से कुछ नहीं कहता। लैम्ब की ओर देखकर कहता हूँ मन-ही-मन, “मुझे माफ करो भाई। मेरे मन में कोई कुनह नहीं, कोई गुरेज नहीं, तुम्हारे मुल्क को मैं दोस्त मानता हूँ। लेकिन अपने मुल्क के साथ जो गुजरी है”...

मैं यह प्रसंग भूलना चाहता हूँ। इयूक की बातों में मन लगाता हूँ, कोशिश करके। सुबह के अखबारों में कई जगह स्थानीय काउन्टी कौंसिल आदि के चुनावों में

कन्जर्वेटिव पार्टी की लगातार हार हुई है। आज सारे इंग्लैण्ड में उसी की चर्चा है। इयूक भी उसी के बारे में बातें कर रहे हैं। मैं बहुत उत्साह से बातें करता हूँ गोया मुझको कन्जर्वेटिव और लेबर के झगड़ों का विशद ज्ञान है। और बातें बढ़ती हैं। इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान की दोस्ती बहुत जरूरी है : जो हुआ उसे भूल जाना चाहिए। निःसन्देह मैं भी सोचता हूँ कि इतनी उदार कौम कौन होगी जो इस तरह आजादी दे दे। एक पुर्तगाली भी तो हैं !

बाहर आया, दूसरी तरफ से सीढ़ियों से उतरना था। देखा कि बहुत बड़ा बुत खड़ा है तना हुआ, उद्धत हाथ की तलवार जमीन पर टेके। आसमान की बुलन्दी को चूमता हुआ यह बुत किसका है ? गौर से देखा, पत्थर पर लिखे अक्षर पढ़े— क्लाइव !

दोस्ती की उभरती हुई भावनाओं पर फिर जैसे हथौड़े की चोट पड़ी। वह धूर्त, जालसाज, बंगाल का लुटेरा शासक आज भी इस आँगन पर हावी है। फिर इस आँगन में हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड की दोस्ती कैसे पनपेगी ? आखिर वे अंग्रेज भी तो थे जिन्होंने हिन्दुस्तान को प्यार किया। यहाँ सी.एफ. एण्ड्रूज का बुत क्यों नहीं है ? यहाँ ए.ओ.ह्यूम की मूर्ति क्यों नहीं है ? यहाँ एनी बीसेण्ट की प्रतिमा क्यों नहीं है ? इंग्लैण्ड उन्हें क्यों नहीं प्रतिष्ठित करता जिन्होंने हमसे दोस्त की तरह प्यार किया ? उन्हें क्यों याद रखता है जिन्होंने हमें गुलाम मानकर हम पर राज किया ? हाँ, जो कुछ हुआ उसे हम भूल जायेंगे मगर हम क्या करें कि क्लाइव के इस बुत के इर्द-गिर्द बेनी काका का भटकता हुआ विक्षुब्ध स्वर आज तक हमें याद दिला रहा है कि भूलो मत, इस बुत के आधार-स्तम्भ के नीचे कोई दफन है। कौन ?

तब से इन दो-तीन दिनों में कई बार उधर से गुजरा हूँ। क्लाइव एक वीर विदूषक की तरह तलवार की मूठ पर हाथ रखे उस साम्राज्य की रक्षा कर रहा है जो अब रहा ही नहीं। और ऊपर छाया कर रहा है लन्दन का वही आसमान—किसी उजड़े रईस का उड़े रंगों वाला शामियाना—बदरंग, बेमानी !

लन्दन सचमुच एक अजीब से ऐतिहासिक असमंजस में है। एक ओर दोनों महायुद्धों ने अकस्मात् उसका विशाल साम्राज्य खत्म कर दिया है। वे नीवें, जिन पर यह महल, यह मीनारें, यह शान-शौकत, यह वैभव, यह सजी-सजाई शाही सेनाएँ, यह अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा खड़ी थी, वे नीवें अकस्मात् खिसक गयी हैं। किसी तरह कामनवेल्थ के ही नाम पर सही एक पारिवारिक सम्बन्ध वह इन देशों से बनाये रखना चाहता है लेकिन सम्बन्ध निभाने के लिए अपनी तरफ से कुछ देने को उसके पास नहीं रहा। एक जमाना था कि हिन्दुस्तान से गिरमिटिया मजदूर जहाजों में भर-भर कर चारों ओर भेजे

जाते थे कि वे ब्रिटिश साम्राज्य में सरकारी फौजों के लिए जंगल साफ करें, सड़के बनायें, इंग्लैण्ड की मिलों के लिए कोयला खोदें, कपास उगायें। मगर आज लन्दन में चारों ओर इमीग्रेशन बिल की चर्चा है जिससे द्वारा महीने-दो महीने के अन्दर हिन्दुस्तानियों का कामगार के रूप में आकर इंग्लैण्ड में बसना बन्द कर दिया जायेगा। लेकिन अगर यह कामनवेल्थ देशों से सम्बन्ध तोड़ते भी हैं तो यूरोप के देश इंग्लैण्ड को अपनी आर्थिक बिरादरी में लेंगे भी या नहीं, इसका कोई ठिकाना नहीं। जर्मनी और फ्रांस दोनों इस बात के खिलाफ हैं कि इंग्लैण्ड को यूरोपीय साझा बाजार में शामिल किया जाए। बेचारे ये लोग समझ नहीं पा रहे हैं कि किधर दोस्ती का हाथ बढ़ायें, कौन उसे स्वीकार करेगा ?

मगर मजे की बात यह है कि ये शासक थे, विश्व-विजेता थे—इसे सहसा भूल भी नहीं पाते। न सिर्फ इनके मन में बल्कि जगह-जगह इमारतों और संग्रहालयों में इन्होंने वह यादें सुरक्षित कर रखी हैं।

किस्मत की बात कि पूरा दिन इसी किस्म के माहौल में इसी किस्म की चीजें देखते हुए बीता। क्रामवेल से सम्बद्ध पार्लियामेण्ट के पास वाली सड़क, वह खिड़की जहाँ से राजा चार्ल्स को वध करने ले जाया गया था, और अन्त में क्रूरता, अत्याचार, आतंक और खुफिया षड्यन्त्रों की खौफनाक यादगार 'टावर आफ लन्दन' ! एक बहुत विशाल पुराना शाही किला, गुप्त दरवाजे, जमींदोज सुरंगें, अँधेरे तहखाने और रहस्यमय काल-कोठरियाँ ! जाने कितनी सदियों तक यह शाही कैदखाने के रूप में भी इस्तेमाल होता रहा। यहाँ क्या नहीं रहा ! विलियम कौंकरर ने इसे लन्दन की देखरेख के लिए बनवाया था। फिर यहाँ सैनिक-शिविर रहा, राजाओं का विलास-गृह रहा, सिक्के ढालने की टकसाल रही, शाही कागजातों का दफ्तर रहा, मौसम देखने की वेधशाला रही और सबसे बढ़कर राजाओं-रानियों और राजवंश के राजद्रोहियों के लिए एक खौफनाक कैदखाना रहा। एडवर्ड ड्यूक आफ बर्किंगम, सेंट टामस मोर, महारानी ऐन बोलीन, क्रामवेल, अर्ल ऑफ ऐसेक्स, ड्यूक आफ सामरसेट यह सब इसी किले की मेहराबों के नीचे हथकड़ियों में बँधकर आये और फाँसी के तख्ते की ओर ले जाये गये। इसकी ऊबड़-खाबड़ दीवारों पर चढ़ी हुई बहुत पुरानी पत्थर लताएँ जरूर इस रक्तरंजित जमीन से पोषण पाती रही हैं। इसके पहले घुमावदार जीने अब भी षड्यन्त्रों का आभास देते हैं। इसके बड़े-बड़े अनगढ़ अँधेरे हॉल अब भी आतंक पैदा करते हैं। अंग्रेजी साम्राज्य समाप्त हो गया मगर उसकी नींव जिस भय और खुरेजी पर कायम थी वह आज भी यहाँ सुरक्षित है।

यह खुरेजी दो किस्म की थी—एक, तख्त पर कब्जा करने के लिए आपस में एक-दूसरे का वध, एक-दूसरे के खिलाफ षड्यन्त्र और दूसरी खुरेजी थी, मिलकर अपनी सेनाएँ सजाकर एशिया और अफ्रीका के कमजोर और शान्तिप्रिय लोगों की खुरेजी ! इन दोनों के संग्रहालयों को दो अलग-अलग नाम दिये गये हैं। ओल्ड आर्मरी और न्यू आर्मरी ! ओल्ड आर्मरी में वे जिरह बख्तर हैं, पूरे बदन की लोहे की पोशाकें हैं, सैकड़ों

किस्म के भाले हैं, किस्म-किस्म की तलवारें हैं जिनसे योद्धा एक-दूसरे पर अपनी वीरता आजमाते थे। मगर असली चीज वह कुल्हाड़े हैं जो कभी-कभी जल्लाद और कभी-कभी पड़यन्त्रकारी स्वयं शत्रु की गरदन उतारने के लिए इस्तेमाल करते थे। यन्त्रणा देने वाली वे भयानक चखियाँ और कलपुर्जे हैं, जो अपराध कबूल करवाने के लिए काम में लाये जाते थे। वे पत्थर हैं, जिन पर अपराधी का सर रखकर कुल्हाड़ा चलाया जाता था। वे अपराधी कभी शासक के भाई होते थे, कभी उसके भतीजे, कभी उसके दीवान और सेनापति ! और कभी-कभी उसकी अंकशायिनी—फूल जैसी नाजुक प्रेयसियाँ। बाहर न्यू आर्मरी। घर की इस खूँखार मार-काट को भूलकर यह बहादुर विश्व-विजय के लिए जाते थे। जिन जातियों ने गुलाम बनने से इनकार किया, इनकी आधुनिक बन्दूकों और कुटिल राजनीति का मुकाबला अपनी साधारण तलवारों और अपने सरल एशियाई और अफ्रीकी विश्वास भरे मन से किया और पराजित हो गयीं, उन जातियों के अस्त्र-शस्त्रों को ये बहादुर लोग एकत्र कर लाये। उसका प्रदर्शन न्यू आर्मरी में होता है। मिस्र और सूडान के अरब और हब्शी योद्धा, आस्ट्रेलिया के आदिवासी, मलाया, सिंगापुर, बर्मा के पुराने हथियार और अन्त में हिन्दुस्तान के राजपूतों और पठानों के पुराने अस्त्र-शस्त्र ! इस अंग्रेज वीरता की गवाही देने वाले संग्रहालय की शुरुआत की थी उसी लार्ड क्लाइव ने। खासतौर से एक हाथी का जिरहबख्तर वहाँ क्लाइव ने लाकर रखा था ताकि वह मालिकों को दिखा सके कि उसने एक ऐसी कौम को जीता है जहाँ सिपाही तो दूर हाथी जैसे विराट जन्तु भी लोहे की चादर से ढके रहते थे।

सच तो यह है कि यह सब देखते-देखते मन में एक अजीब-सा क्षोभ, खिन्नता और कुछ-कुछ दबा क्रोध भी उभरने लगा। लेकिन सिर्फ एक बात सोची हर संस्कृति अपनी श्रेष्ठ उपलब्धि दूसरे के समक्ष रखती आयी है। मैंने अपने ट्यूलिप वाले नये दोस्त लन्दन से कहा कि मुझे हमदर्दी है कि तुम्हारे पास तुम्हारी पुरानी सांस्कृतिक उपलब्धि के नाम पर शायद यही चीज प्रदर्शनीय है। वैसे हैं तो तुम्हारे पास और भी चीजें ! शायद इससे कहीं ज्यादा मानवीय और कहीं ज्यादा मूल्यवान। लेकिन तुम्हारे पूर्व इतिहास का जो कोहरा तुम्हें हर वक्त ढके रहता है। उसमें से शायद अभी उन चीजों का मूल्य तुम उस हद तक नहीं समझ पा रहे हो।

और मजे की बात देखो कि जब हम यह सब देखकर वापस लौट रहे थे तो देखा, इस भयानक यन्त्रणा दुर्ग के दरवाजे पर एक मिट्टी का बहुत खूबसूरत करुणा और स्नेह जगाता हुआ प्यारा-सा कुत्ता रखा है। उसके गले में एक कार्ड लटक रहा है, जिस पर लिखा है, 'मुझे क्रूरता से बचाने के लिए कृपया दान दीजिए।' जानवरों को क्रूरता से बचाने के लिए रायल सोसाइटी की ओर से यह कुत्ता यहाँ द्वार पर रखा गया है।

इतिहास की कितनी दयनीय असंगति है ! मनुष्य पर मनुष्य के दुर्दान्त अत्याचार की गौरवगाथा के लिए संग्रहालय और दरवाजे पर जानवरों पर दया करने की करुण याचना !

मैं नहीं जानता कि क्या सारा इंग्लैण्ड इन विघटित मूल्यों के दुरंगे असमंजस में उलझा हुआ है या कोई नया इंग्लैण्ड ऐसा भी है जो उभरकर इस कोहरे के पार देख रहा है। इस पुरानी साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी पीढ़ी के मुखौटों को ध्वस्त करता हुआ, इनके झूठे अहंकार की धज्जियाँ उड़ाता हुआ ! अगर कोई है तो वह जरूर हमारा दोस्त है, हमारा सहधर्म है क्योंकि हमें भी आज इसी ऐतिहासिक प्रक्रिया में से गुजरना पड़ रहा है !

दूसरे दिन उस नये इंग्लैण्ड की तो नहीं पर उस इंग्लैण्ड की झलक जरूर मिली, जिसका इन दिग्विजयों के आडम्बर से कोई ताल्लुक नहीं था। सिपाहियों का नहीं, कवियों का इंग्लैण्ड ! हरे खेतों, पुराने पेड़ों, प्यारी-मीठी चिड़ियों, फूलों और सुकुमार कविताओं का इंग्लैण्ड ! लेकडिस्ट्रिक्ट, स्कॉटलैण्ड, शेक्सपीयर के नगर जाने का कार्यक्रम तो बाद में है पर जोन्स ने मेरा मूड देखकर कार्यक्रम बनाया कि वे लंदन के काफी निकट एक ऐसी जगह ले चलेंगे जहाँ जाकर सचमुच मेरे मन से क्लाइव के लन्दन का भार उतर सके। जोन्स बेहद समझदार दास्त है और उनकी रुचियाँ तो कमाल की हैं। डकोटा वायुयान के इतिहास से लेकर ईलियट के पद्यनाटकों के मर्म तक पर उनसे घण्टों तक बात कर लीजिए। और जाने क्यों मेरी तीव्र आलोचनाओं के बावजूद उनके मन में मेरे लिए बहुत स्नेह है।

लन्दन पार करके देहातों से गुजर रहे हैं। हरे खेत, उफ़ किस कदर हरे जिसे जोन्स 'लशग्रीन' कहते हैं ! सड़क के दोनों ओर पीले जंगली फूल और कहीं-कहीं काली चितकबरी गायें। गजब के साफ-सुथरे गाँव, कितने प्यारे कॉटेज और जगह-जगह बरवीना के नीले-नीले फूल आयतन।

(बरवीना की याद है न तुम्हें ! नीले फूलों का वह सुन्दर प्रसार मैडोना की मूर्ति के सामने अपने इलाहाबाद वाले गिरजाघर में) थोड़ी देर बाद खेल खत्म और जंगल शुरू। पहाड़ी रास्ते। मगर इतना घना हरा जंगल, पर जरा भी भयावना नहीं। रंग बिलकुल तोतापंखी। बिलकुल जैसे किसी झाँकी में जंगल बनाया गया हो। और जानती हो, जंगली जानवर क्या हैं ? तेन्दुए, चीते को तो भूल जाओ। मैंने पूछा, "भेड़िए हैं ?" तो बताया गया है कि "भेड़िए तो पोलैण्ड, उत्तरी ध्रुव जैसे खौफनाक देशों में रहते हैं, यहाँ उनका क्या काम ? हाँ, लोमड़ी हैं, खरगोश हैं।" जब मैंने पूछा कि "यहाँ आखिर कुछ ऐसा है जो रहस्य या भय का सुखद रोमांच दे सके।" तो जोन्स ने कहा—"यहाँ के भूत मशहूर हैं।" "क्या" मैंने अविश्वास से पूछा तो वे हँसकर बोले, "आपको मालूम होना चाहिए कि भूत इंग्लैण्ड की एक खास

पैदावार है। अमूमन जंगली रास्तों, पुराने किलों, खण्डहरों वगैरह में होते हैं। अंग्रेज अपने उन भूतों की बड़ी कदर करते हैं, उन पर उन्हें फख्र है और उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी वे सहेजते चलते हैं। जिस जंगल या गाँव या किले का अपना कोई निजी भूत नहीं होता वहाँ के लोग अपने को बहुत हीन मानते हैं।" मालूम हुआ कि अमरीकन और यूरोपीय सैरवीनों की ज्यादा भीड़ उन्हीं किलों या पुरानी हवेलियों में जाती है जहाँ पुराने और सम्माननीय भूत कई पीढ़ी से रहते आ रहे हैं। अक्सर कई गाँवों ने सैरवीनों को आकर्षित करने के लिए पुरानी हवेलियों में नये भूतों की प्रतिष्ठा की है और उनका बाकायदा विज्ञापन किया है।

जोन्स की बातों में रास्ता कब कट गया कुछ पता ही नहीं चला। और यह हम लोग आ कहाँ गये ? कितनी खूबसूरत नदी—कितना प्यारा पुल, और यह सफेद फूलों से लदे-लदे सेब के पेड़ और यह गुलाबी परिधान वाली चेरी ! नदी टेम्स थी, कस्बे का नाम माल्लो। कितना सजाया है इस जगह इन्होंने नदी को ! उस पार चिनार के ऊँचे खूबसूरत पेड़ों की पूरी कतार थी। मालूम हुआ कि चिनार दलदली पानी को सोखते हैं। करीब तीन सौ गैलन खींचकर हवा में फेंक देते हैं। इस ओर देवदार की कतार, टैम्स पर पानी का कृत्रिम झरना ! नदी-तट पर सराय ! सराय का नाम 'कम्पलीट एंग्लर', बाहर नदी तट पर घास के लान पर लगी मेजें और छतरियाँ, घास में बिखरे हुए चेरी के फूल, नदी में बहते हुए चेरी के फूल, हवा में उड़ते हुए चेरी के फूल। यहाँ चुपचाप एक प्याला कॉफी पी जायेगी।

हम लोग दायें सहन के पास वाली खिड़की के पास बैठे हैं। कॉफी उठायी ही थी कि हवा के झोंके से चेरी के फूल उड़कर आये और शीशे से टकराकर बाहर नीचे गिर गये झर-झर-झर और चौकोर सहन में हवा के झोंके दीवारों से टकराकर घूमे कि चेरी की झरी हुई पंखुरियाँ कतार की कतार नाच गयीं। कभी-कभी छोटी-छोटी चीजें मन की जाने किस परत को कहाँ कैसे झनकार जाती हैं। यह चेरी की गुलाबी पत्तियों का एक चन्द्राकार कतार में नाच जाना मन को जाने कहाँ उन्मुक्त कर गया ! जाने कौन-सी गाँठ खोल गया ! जाने कौन-सी परत बींध गया ! ऐसी अनुभूतियों का एक नशा होता है। तमाम दोपहर वह नशा उतरा नहीं। माथे के चारों ओर वे चेरी की पंखुरियाँ चन्द्राकार नाचती रहीं।

जोन्स मेरी ओर सन्तोष से देख रहा है। क्या इसी जगह के लिए चले थे हम लोग ? नहीं यह तो पड़ाव था। अभी आगे ! और जरा दूर पर !

बादल झुक आए हैं और हल्की झींसी पड़ने लगी है। गाड़ी भी अन्दर से बिजली से गरम है वरना सर्दी बला की है। इस बार अभी तक वसन्त आया ही नहीं। लेकिन पेड़ झींसी से भींगकर अच्छे लग रहे हैं और एक फाटक पर गाड़ी खड़ी हो गयी है। हम उतरते हैं। एक बहुत पुराना गिरजा बेमरम्मत-सा दूर पर दीख रहा है। पहले कब्रिस्तान है। घास में हर कब्र पर फूल हैं, ट्यूलिप, एण्टीरेनम, बरवीना, नरगिस। चलते-चलते एक बहुत गहरी उदासी मन पर छा गयी है। क्यों ?

यह कहाँ आ गये हैं हम लोग ? इतना उदास मैंने अपने को शायद ही कभी पाया हो। अकारण। कालिदास ने कहीं लिखा है कि “रम्याणि वीक्ष्य...” सुन्दर वस्तुओं को देखकर भी एक उदासी हम पर छा जाती है जो कभी-कभी पूर्वजन्म के आसंगों से आती है। पर यहाँ तो हवा तक मैं जैसे उदासी है। उदास गिरजाधर, उदास खड़े पेड़ !

और एक पत्थर के पास आकर हम रुक गये हैं और जोन्स ने कहा—“यही वह पत्थर है, जिस पर बैठकर ग्रे ने अपनी मशहूर एलेजी (शोकगीत) लिखी थी। यही वह यू का पेड़ है जिसकी उदास छाया पड़ रही थी।” अंग्रेजी की वह अमर कविता—शाम की उदासी की अमर कृति :

“कफर्यू टाल्स द नेल आफ पार्टिंग डे
द लोईग हर्ड वाइण्ड स्लोली ओवर द ली
द प्लाउमैन होमवार्ड प्लाइस हिज वीयरी वे
एण्ड लीव्ज द वर्ल्ड टु डार्कनेस एण्ड टु मी !”

तब लन्दन से यहाँ तक का पैदल दो दिन का रास्ता था। ग्रे वहाँ से पैदल चल कर यहाँ आता था। उसका पिता सूदखोर था, कठोर और निर्मम ! माँ ने किसी तरह पेट काटकर उसे ईटन और कैम्ब्रिज भेजा था। यहीं उसकी माँ दफन हुई। यही वह पुराने गिरजे की पतली मीनार है जिसका जिक्र उस एलेजी में है। ग्रे की मृत्यु हुई, तो उसकी इच्छानुसार यहीं अपनी माँ की कब्र में उसे सुला दिया गया।

गिरजा अन्दर से बहुत ठण्डा था, अँधेरा। कहीं-कहीं कड़ियाँ झूलने लगी हैं। उसी यू वृक्ष की लकड़ी के कुछ पेपर नाइफ, कुछ क्रास बिक्री के लिए रखे थे। एक बूढ़ा नीचे फर्श झाड़न से पोंछ रहा था। और एक कोने में एक युवक बाँहों से अपनी सगिनी को घेरे घुटने टेके साथ-साथ बाइबिल पढ़ रहा था। बाहर झींसी पड़ रही थी। उसी झींसी में भींगते हुए मैं ग्रे के स्मारक तक गया। झाड़ पर एक नीले फूल की लतर थी। एक फूल तुम्हारे लिए तोड़कर डायरी में दबा लिया है। (लेकिन सच बात यह है कि आज पता नहीं क्यों इतने दिनों बाद मुझे गिरधर गोपाल की बेहद याद आ रही है। उसके प्रथम काव्य संग्रह ‘अग्निमा’ के गीतों की गाढ़ी उदासी और अजब सामंजस्य कि उसने वह संग्रह दादी-माँ को भेंट किया था।)

ग्रे की कविता को शायद हर अंग्रेजी जानने वाले ने कभी-न-कभी पढ़ा है, बार-बार पढ़ा है। मुझे जहाँ-तहाँ दो-एक लाइनें याद हैं, जोन्स उन्हें पूरी कर रहे हैं :

विनीथ दोज रोज एल्स, दैट यू द्रीज शेड
ह्वेर हीव्ज द टर्फ इन मेनी ए मोल्डरिंग हीप
ईच इन हिज नैरो सेल फार एवर लेड
द रूड फोरफार्स आफ द हैमलेट स्लीप !

और इसके पहले वाली लाइनें घाद में याद आती हैं :

एण्ड ड्राउसी टिंकलिंग्स लल द डिस्टैंट फोल्ड्स

यह इंग्लैण्ड का वह मन है, सुकुमार बहुत सुकुमार अनुभूतियों से झनझना उठने वाला वह मन जिसमें कविता पनपी है।”

“अब कहाँ चल रहे हैं ?” मैंने पूछा !

“एक ऐसी जगह जहाँ कोई नहीं जाता ! लेकिन आपको वहाँ जाना ही चाहिए।” जोन्स ने कहा, “उदासी से ट्रेजेडी की ओर ! एक ऐतिहासिक ट्रेजेडी ! एक पूरी कवि-पीढ़ी की ट्रेजेडी ! आपने जूलियस ग्रेन्फेल का नाम सुना है ?”

मैंने कभी ग्रेन्फेल का नाम सुना है याद नहीं आता। कभी उसका कुछ पढ़ा तो है ही नहीं। फिर वहाँ जाने से फायदा ? लेकिन जोन्स की इच्छा। हम एक ऐसे रास्ते से गुजर रहे हैं जिसके दोनों ओर चिनारों की कतार है। मालूम हुआ यह चिनार-गली मशहूर है। हर चिनार इंग्लैण्ड के किसी महापुरुष ने लगाया है। ग्लैडस्टन, लायड जार्ज, चर्चिल... और जोन्स बता रहे हैं कि जूलियस ग्रेन्फेल उस पीढ़ी का अन्तिम कवि था जो युद्ध के लिए उत्साहित थी। रूपर्ट ब्रुक का समकालीन। और प्रथम महायुद्ध में वह लड़ने गया। और पहला कवि सिपाही था जो शहीद हुआ। उसकी एक कविता थी ‘इन टु बैटिल’ जो बच्चे-बच्चे की जबान पर थी। उसकी मृत्यु हुई तो उसे टैपलो कोर्ट लाया गया। ये खेत, यहाँ की घाटी, उसकी खास प्रिय थी। उसके पिता ने इस हिस्से को खरीद लिया।

पर अब लोग उसे भूल गये हैं। वह स्मारक कहाँ है हमें पता ही नहीं चल पा रहा था। किसी फैक्टरी ने आगे की जमीन खरीद ली हैं। हम काँटे पार करते, खेतों के बीच कच्ची मेड़ों पर चले जा रहे हैं। इधर-उधर उस पत्थर की छोटी-सी समाधि की खोज करते। खेत में कँटीले तारों के पीछे एक खूबसूरत घोड़ा चर रहा था। उसने हम लोगों की ओर देखा, कान खड़े किये और हिनहिनाया। अजीब-सा लगा। नाटकीय-सा ! दायीं ओर स्मारक था। घास उग आयी थी। झाड़ू पर लतरें झूल आयी थीं। पत्थर पर तीन घोड़ों की रास थामे एक तरुण ग्रीक-देवता। पीछे काले पत्थर पर पूरी कविता खुदी थी।

नीचे दूर तक घाटी और मैदान बेहद हरे, बारिश से धुले-बहुत शान्त ! बादलों की छाँह में एक हरा विस्तृत सन्नाटा। हम पत्थर पर खुदी कविता पढ़ रहे हैं :

एण्ड लाइफ इज कलर एण्ड वार्थ एण्ड
 लाइट एण्ड द स्ट्राइविंग एवर मोर फार दीज
 एण्ड ही इज डेड हू विल नाट फाइट
 एण्ड हू डाइज फाइटिंग हैज इंक्रीज
 द फाइटिंग मैन शैल फ्राम द सन
 टेक वार्थ, एण्ड लाइफ फ्राम द ग्लोइंग अर्थ...
 द ब्लैक बर्ड सिंग्स टु हिम "ब्रदर ब्रदर
 इफ दिस बी द लास्ट सांग यू शैल सिंग
 सिंग वेल, फार यू मे नाट सिंग एनदर,
 ब्रदर सिंग !"

और यह उस आशावादी पीढ़ी का अन्तिम गीत था। इसी के बाद आयी युद्ध से, इंग्लैण्ड के पुराने झूठे अहंकारी मूल्यों से असन्तुष्ट और विक्षुब्ध कवियों की यथार्थदर्शी पीढ़ी सीग्रफीड सैसून वगैरह जिन्होंने लिखा :

टुडे ही इज इन पिक टुमारो ही शैल डाई
 एण्ड स्टिल द वार गोज आन, ही डज
 नाट नो हार्ड ?

और तब शुरू हुई वह धारा जो आधुनिक बोध की काव्यधारा थी। इस कविता के खण्डहरों से आधुनिकता उपजी ! ...

हम लोगों ने कविता पढ़ी, दोहराई और फिर चुप हो गये सन्नाटा ! सहसा नीचे की घाटी में एक रेल गुजरी। पूरा हरा लैण्डस्केप काँपा और रेल नहीं दीखी, पर पेड़ों के ऊपर कतार में धुएँ का बादल उठा।

मेरे दिमाग में रेडियो एक्टिव बादल का बिम्ब घूम गया। टैपलो कोर्ट से लौटे तो पत्थर के स्मारक के घोड़े बदस्तूर सीना निकाले आगे बढ़े आ रहे थे—मगर खेतवाला वह घोड़ा चुपचाप सिर झुकाये घास चर रहा था। इस बार उसने सर उठाकर देखा भी नहीं।

इस शहादत के बाद, इस पीढ़ी के बाद कविता का इंग्लैण्ड, क्लाइव के इंग्लैण्ड से मुक्त हो गया होगा मगर कितनी कीमत चुकाने के बाद ? जोन्स ने सच कहा था, यह जगह उदासी की नहीं इतिहास की ट्रेजेडी की जगह थी :

ब्लैक बर्ड सिंग्स टु हिम "ब्रदर, ब्रदर
 इफ दिस बी द लास्ट सांग यू शैल सिंग
 सिंग वेल, फार यू मे नाट सिंग एनदर !"

मन कुछ ऐसा हो गया था कि फिर सब कार्यक्रम स्थगित कर दिये। आज की शाम खाली रखी, और लो, ये तमाम होकर गुजर गया और अब मैं तुम्हारे पास हूँ। आज थोड़ा थक भी गया हूँ और यह थकान, यह टैपलो कोर्ट की घास की सोंधी-ताजी गंध, यह घाटी का भीगा-हरा सन्नाटा, यह गुजरती रेल से काँपता लैण्डस्केप और इस विचित्र-से स्थल पर खयालों में डूबा मेरा झुका माथा अपनी ममता भरी बाँहों में सहेज लो—इन तमाम अनुभूतियों में तुम सम्मिलित हो जाओ, ताकि ये सार्थक हो जायँ !

पुराने किले : घुमावदार नदी

पता नहीं क्यों यह लगने लगता है कि मानों आप एक बहुत पतले अन्तरीप पर चले आए हैं—सैकड़ों मील; और यहाँ आकर अकस्मात् जमीन खत्म हो गयी है और दाएँ, बाएँ, सामने, हर तरफ अथाह महासागर है। लेकिन विशुद्ध नहीं, गरजता हुआ भी नहीं—बहुत शान्त, बहुत स्थिर, बहुत नीला, बहुत गहराई वाला और इसीलिए शायद थोड़ा खिन्न, थोड़ा उदास ! या शायद यह समुद्र-तट भी उतना ही खुशनुमा, उतना ही लुभावना, उतना ही जगमगाता हुआ था जितना खूबसूरत पहाड़ों, बेशुमार झीलों, हरे धारीदार खेतों, पहाड़ी ढलानों और अत्यन्त मिलनसार लोगों वाला बाकी सारा स्काटलैण्ड। लेकिन यह उदासी सिर्फ मुझे इसलिये लग रही थी कि यह मेरे स्काटलैण्ड-प्रवास का आखिरी दिन था।

यों यहाँ से हमें लेक डिस्ट्रिक्ट जाना था जिसके लिए स्टेशन कोई और था। लेकिन हम लगभग चालीस-पचास मील घूमकर इस समुद्र-तट पर आए हैं, क्योंकि मैकेन्जी ने बहुत प्यार से मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कान के पास धीमे-से कहा था—“सौ मील का चक्कर जरूर पड़ेगा मगर वहाँ एक अद्भुत समुद्र-तट है। समुद्र-तट पर नितान्त निर्जन बियाबान में एक बहुत विशाल, बहुत रौनकअफरोज समुद्री होटल है।” और फिर थोड़ा मुस्कराते हुए उसने कहा, “उस होटल में मेरी एक बहुत प्यारी दोस्त है जिससे मैं साल-सठः महीने में सिर्फ एक बार मिल पाता हूँ। उसे बिना देखे तुम पछताओगे कि तुमने स्काटलैण्ड अधूरा देखा।”

मैंने मुस्कुराकर मैकेन्जी की ओर स्वीकृति सूचक दृष्टि से देखा और लम्बी चमचमाती काली गाड़ी घाटी की ढलवाँ सड़क पर समुद्र की दिशा में मुड़ गयी। दिमाग पर ताजा-ताजा प्रभाव था, उन साफ-सुथरे खूबसूरत स्काटिश कस्बों का जहाँ हम प्रख्यात गीतकार कवि राबर्ट बर्न्स की कुटी और स्मृतिचिह्न देखने गए थे। आयर (AYR) में बर्न्स की खूबसूरत कुटी थी, सफेद चूने से पुती। अन्दर कुछ स्मृति-अवशेष ! उसके पिता की बाइबिल बर्न्स

की कविताओं का सर्वप्रथम संस्करण, बर्न्स के पत्र और कितनी ही पाण्डुलिपियाँ और चित्र। कहते हैं कि यह किसान-परिवार बहुत निर्धन था; और खाते समय उनके सामने एक प्लेट रहती थी और एक किताब। वे लोग पढ़ने के शौकीन थे। किशोर राबर्ट बर्न्स भी जब हल लेकर खेतों में जाता था तो उसकी जेब में एक कोई कविता-पुस्तक होती थी और वह हल चलाते-चलाते गीतों की पंक्तियाँ गुनगुनाता था।

कस्बे से बाहर निकलते ही मैं चारों ओर का दृश्य आँखों से मानो पी रहा था। यहीं कहीं वह छोटा-सा पहाड़ी चश्मा होगा, वे घने पेड़ होंगे, वे हरे-भरे चरागाह होंगे जहाँ बर्न्स ने अपने गीतों की प्रख्यात हाइलैण्ड मेरी के साथ दोपहरें गुजारी होंगी। कौन जाने यह पक्की मोटर की सड़क उस वक्त खेत की मेड़ों के पास से गुजरने वाली कच्ची पगडण्डी रही हो जिस पर बर्न्स महोदय अपने गीतों की पाण्डुलिपियाँ लादकर टट्टू कुदाते हुए प्रकाशक के यहाँ गए हों। सहसा मैकेन्जी ने दिखाया—“वह रही टाम ऑ’ शैन्टर्स की सराय जिसका जिक्र बर्न्स ने किया है।” जहाँ वे पाण्डुलिपियाँ लादकर प्रकाशक की खोज में गए थे, वह कस्बा किलमैनरौक (Kilmanroch) आते समय हम लोगों के रास्ते में पड़ा था। मैकेन्जी ने निराशा से सिर हिलाकर मुझ पर बहुत तरस खाते हुए कहा—“यूँ देखने को यहाँ किलमैनरौक में और भी बहुत अच्छी चीजें हैं, साहित्यिक चीजों के अलावा। लेकिन तुम उनके पात्र कहाँ हो?” मसलन मैंने उत्सुकता से पूछा, उसने घमण्ड से सर ऊँचा कर कहा—“सारे संसार में मशहूर जानीवाकर शराब इसी प्रख्यात कस्बे में बनती है, लेकिन हजारों मील चलकर जो आदमी स्काटलैण्ड आए और मशहूर स्काच व्हिस्की को छोड़कर होटलों में ठंडा पानी तलाशता घूमे ऐसे आदमी पर मैं पता नहीं क्यों इतने दिनों से अपना वक्त बरबाद कर रहा हूँ।” इस बात पर दूसरी ओर बैठी ईनी भी मुस्कुराई और बोली, “कम-से-कम बर्न्स के नाम पर तो एक घूँट चल सकती है।”

यह इन दोनों का बहुत प्रिय मजाक था। किसी तरह स्काटिश साहित्य के साथ-साथ स्काटिश शराब की महत्ता का बखान और उस प्रसंग में मुझे अत्यन्त कुपात्र और स्काटलैण्ड का अपमानकर्ता साबित करना। लेकिन कुछ ही दिनों में वे सभी मुझे, नितान्त परदेशी अपरिचित व्यक्ति को कितनी ममता और स्नेह देने लगे थे यह मैं ही जानता हूँ। इस मामले में स्काटलैण्ड इंग्लैण्ड से थोड़ा अलग है। ‘स्काच’ और कुछ हो, अंग्रेज नहीं है।

आदतन हम लोग ग्रेटब्रिटेन के किसी भी व्यक्ति को ‘इंग्लिशमैन’ कहते हैं। मगर किसी स्काटिश को इंग्लिशमैन कहकर देखिए। वह तुरन्त प्रतिवाद करेगा। आज तक वे यह नहीं भूल पाये हैं कि वे स्वतंत्र थे। उनके अपने सम्राट अंग्रेज-सरदारों और सेनापतियों से कहीं ज्यादा बहादुर, कहीं ज्यादा प्रतापी और वैभवशाली थे। वे आज तक स्टर्लिन कासिल दिखाते हैं जहाँ प्रख्यात स्काटिश विद्रोही वेल्लेस का स्मारक है। वही वेल्लेस जो एक नितान्त साधारण आदमी था। स्काटलैण्ड के उच्चवर्गीय नेताओं और अमीर सामन्तों ने जब अंग्रेजों के आगे घुटने टेक दिये थे, तब वह किसानों और चरवाहों को इकट्ठा कर गाँव की भट्टियों में देहाती लोहारों से बरछे, तलवारें और कुल्हाड़े ढलवाता था और गिरोह बाँधकर अंग्रेज सेनाओं का मुकाबला करता था। लेकिन एक उच्च कुल के स्काटिश सरदार

से गाँव के एक अत्यन्त सामान्य व्यक्ति का यह बढ़ता हुआ यश सहन न हुआ। उसने धोखा देकर वैलेस को अंग्रेजों के हाथ बेच दिया। वैलेस पकड़ा गया और उसे बाँधकर टावर आफ लंडन में ले जाया गया। अन्दर अंग्रेज जल्लाद के एक कुल्हाड़े ने वैलेस का तना हुआ विद्रोही सर हमेशा के लिए धड़ से जुदा कर दिया।

एक महान् स्वतन्त्रता-प्रेमी जाति जो दूसरी जाति की धूर्तता से पराजित हो गयी हो उसके लिए अपने पुराने इतिहास का एक दूसरा ही मूल्य होता है। इसीलिए जब बचपन में चरवाहों से सर वाल्टर स्काट ने स्काटलैण्ड के पुराने गौरव की गाथाएँ सुनीं और फिर पुराने किलों के टूटे कमरों का और बन्द तहखानों में वे स्काटिश साम्राज्ञी का मुकुट ढूँढ़ते घूमे तब वे केवल अपने उपन्यासों की कथा-सामग्री नहीं खोज रहे थे। वे एक महान् जाति का खोया हुआ नैतिक साहस फिर से प्रतिष्ठित कर रहे थे। स्काटलैण्ड में कदम रखते ही एडिनबरा के किले के सामने बाजार के प्रमुख राजपथ पर स्थापित वाल्टर स्काट की प्रतिमा और नीचे खिले हुए फूलों की क्या रियाँ जब पहली बार देखी थीं तब उनका महत्त्व इतना नहीं समझा था। ज्यों-ज्यों स्काटिश लोगों को जाना त्यों-त्यों यह जाना कि सर वाल्टर स्काट सिर्फ एक महान ऐतिहासिक उपन्यासकार नहीं थे; वे प्रतीक थे एक भोली, मेहनती, खुले दिल वाली दिलेरी और स्वतन्त्रताप्रिय जाति के चोट खाए हुए अभिमान के। वह चोट खाया हुआ अभिमान आज भी ज्यों-का-त्यों है। आदतन मैंने उस दिन ईनी से कहा—“आप सब अंग्रेज लड़कियाँ”...वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि उसने तेज स्वर में प्रतिवाद किया—“इसे हम लोग अपमान मानते हैं। हम अंग्रेज नहीं हैं। हमारी जाति अलग है, हमारा इतिहास अलग है, हमारे मिजाज अलग हैं। कुछ आर्थिक और राजनीतिक कारणों से हम अंग्रेजों के साथ मिलकर एक राष्ट्र हो गए हैं। हमें आप ‘बिट्रिश’ कह लीजिए लेकिन ‘इंग्लिश’ कहकर हमें लज्जित मत कीजिए।”

वही ईनी इस समय खुश है। हम समुद्री होटल की ओर जा रहे हैं। मैकेन्जी खुश है क्योंकि वह अपनी दोस्त से मिलने जा रहा है। हम बर्न्स के गाँव से चले हैं और बर्न्स हमारे दिल-दिमाग पर छाया हुआ है। हजारों मील दूर मेरे घर की स्टडी में एक कत्यई स्वेड की जिल्द वाली, सुनहरे अक्षरों और रेशमी फीते वाली बर्न्स की कविताओं की एक किताब है जिसमें की कुछ बहुत प्यारी कविताएँ आज भी मुझे याद आती हैं। सबसे पहले उनकी ओर इसलिए आकर्षित हुआ था क्योंकि उनमें शब्दों के हिज्जे बिलकुल दूसरे थे। लव के हिज्जे L-O-V-E न होकर L-U-V-E ही थे। और उस अत्यन्त किशोर मेरे मन को यह लगता था कि L-U-V-E वाला लव, L-O-V-E

वाले लव से जरूर ज्यादा गाढ़ा, ज्यादा तुर्श होता होगा। और इसीलिए मुझे बर्न्स की वह कविता सबसे प्यारी लगती थी—“माई लव इज लाइक ए रेड रेड रोज...”। पढ़ते समय मैं उसे हमेशा पढ़ता था—“माई ल्यूव इज लाइक ए रेड रेड रोज...” मैंने यह बात मैकेन्जी को बतायी तो वह बहुत हँसा। बोला—“तुम सुनोगे कि स्काटिश लोग इस शब्द को कैसे बोलते हैं ?” फिर मुस्कुराकर कान में बोला, “तुम जैसे अपात्र व्यक्ति इस शब्द का सिर्फ उच्चारण ही तो जान सकेंगे। जो स्काटलैण्ड में आकर पानी तलाश करे उसे स्काटिश लड़कियाँ इस शब्द का उच्चारण ही सुनायेंगी बस।”

ईनी को यह कविता याद थी। ईनी गाड़ी चलाते-चलाते खिड़की से टिक गयी और उसने धीमे स्वरों में गाना शुरू किया—“माई लव इज लाइक ए रेड रेड रोज...” (उसके स्वर में उल्लास तो था ही आभार भी था कि उनके अत्यन्त प्रिय कवि की कविता हजारों मील दूर से आए हुए एक परदेशी को याद थी।) वही बर्न्स के प्रिय चरागाह और वही बर्न्स का मीठा गीत :

माइ लव इज लाइक ए रेड रेड रोज,
 दैट इज न्यूली स्पिंग इन जून,
 माइ लव इज लाइक द मैलोडी,
 दैट इज स्वीटली प्लेड इन ट्यून,

गीत का आरम्भ हुआ तो ईनी का सर खिड़की से टिका हुआ था। गीत के मध्य में ईनी सीधी बैठ गयी थी, पीठ जरा तनी हुई और गर्दन जरा घूमती हुई। और जब गीत अपने चरमोत्कर्ष पर आया तो ईनी का सर बायीं ओर झुका हुआ और दृष्टि सीधी मेरी ओर।

एण्ड फेयर दी वेल माई आन्ती लव
 एण्ड फेयर दी वेल ए व्हाइल
 एण्ड आई विल कम, आगेन माई लव
 दो'टू वेयर टेन थाउजैण्ड माइल !

पर यकीन मानिए कि स्थिति पहले वाली ही अच्छी थी। यह सीधी दृष्टि मुझे खलने लगी क्योंकि ड्राइविंग के लिए ईनी ने जो मोटा फौलादी फ्रेम का बड़ा-सा चश्मा चढ़ा रखा था उससे बर्न्स की कविता के लाल गुलाबों का कोई मीजान नहीं बैठता था। मैकेन्जी अपनी छेड़छाड़ की आदत के मुताबिक कोई छींटकशी करे इसके पहले ही आत्मरक्षा में अकस्मात् ईनी सर झटक कर, मुँह बिचकाकर और मूड बदलकर बोली—“अब हम लोग पचास मील चल रहे हैं सिर्फ मैकेन्जी की ल्यूव को देखने। हय दुर्भाग्य !” मैकेन्जी कुछ नहीं बोला, मुस्कुराकर चुप हो गया।

रास्ते में दून कस्बा पड़ा और उसके बाद फिर सुनसान। फिर एक रेल की क्रासिंग और उसके बाद एक बहुत बड़ा हवाई अड्डा। मालूम हुआ कि अब हम लोग समुद्री

होटल के नजदीक आ गये हैं। होटल सचमुच नितान्त निर्जन में स्थित मगर बहुत खूबसूरत था। बाहर की ठडक से अन्दर जाकर गैस से गर्म लाउंज में बैठकर सुख की साँस ली। बेहद उत्सुकता कि इस चाकू जैसी जबान और पारे जैसे स्वभाव वाले मैकेन्जी की वह दोस्त आखिर कौन होगी जिससे मिलाने वह हम सबों को लाया। मैकेन्जी अन्दर चला गया। मैं चुपचाप बाहर देखता रहा। एक बहुत बड़ा हरा-भरा गोल्फ-कोर्स, उसके बाद ऊँची-नीची बालू की पहाड़ियाँ, बीच-बीच में सरपत और झाऊ के झाड़ दो पहाड़ियों के बीच समुद्र का नीला तिकोना प्रसार ! कितना शान्त, कितना गहरा और जाने क्यों उदास !

और अकस्मात् उमंग भरे मैकेन्जी का प्रवेश ! नाटकीय मुद्रा से द्वार की ओर इशारा करते हुए घोषित करना कि हम सँभल जाएँ, उसकी प्रिय मित्र आने वाली है। हमारा दम साधकर प्रतीक्षा करना। धीरे-धीरे खुलना दरवाजे का और प्रवेश करना बहुत आकर्षक गाउन, बहुत रंग-बिरंगे पंखों वाली टोपी में एक पैंसठ वर्ष की भद्र खुशमिजाज और बहुत वात्सल्यमयी वृद्धा का। (पाठक जरा मेरी हालत का अन्दाजा करें) मैकेन्जी की आँखों में एक अद्भुत शरारत भरी चमक और वृद्धा से मेरा परिचय कराना—यह बताना कि मैं सौ मील चलकर मैकेन्जी की प्रिय मित्र को देखने आया हूँ। वृद्धा का बहुत ममता से मैकेन्जी के कंधे पर हाथ रखकर मुझसे कहना, “यह मेरा सबसे प्रिय दोस्त है। आज बीस वर्षों से मैं अपने पति से भी ज्यादा इसकी बात मानती हूँ।” मैंने अस्फुट स्वरों में क्या कहा यह मुझे याद नहीं लेकिन मेरा वाक्य सुनकर वृद्धा की बाँछें खिल गयीं। मुझसे बोली, “मेहरबानी करके फिर यह बात कहो।” मैं फिर कुछ बोला और तब वह मैकेन्जी से बोली, “तुम्हारे ये दोस्त अच्छे हैं। मैं इनसे अंग्रेजी में बात कर सकती हूँ। पिछली बार तुम्हारे कोई दोस्त आए थे उनसे मैं बात ही नहीं कर पाई। मुझे उनकी भाषा नहीं आती थी, उन्हें मेरी भाषा नहीं आती थी।”

मालूम हुआ कि वह वृद्धा एक बहुत रईस अमरीकन थी। युद्ध के जमाने में यहीं विवाह कर बस गयी। उसे यह समुद्र तट इतना पसन्द था। यहीं यह होटल उसने बनवाया। पास का हवाई अड्डा प्रैस्टिविक स्काटलैण्ड का अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा है। एक उड़ान में अटलाण्टिक पार करने वाले सुपर जेट विमान पहले यहीं से पेट्रोल भरते हैं, चेकिंग करते हैं और तब उड़ान भरते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय यात्रियों का यह एक बहुत बड़ा केन्द्र है। मैकेन्जी बोला, “काश कि तुम कभी नृत्य करते हुए मेरी मित्र को देखो। इस उम्र में भी स्काटिश छोकरीयाँ उसका मुकाबला नहीं कर सकतीं।”

खूब बीती वह दोपहर। मैकेन्जी ने यह तो बताया कि युद्ध के दौरान में बड़ी अजीब

स्थितियों में यहीं प्रैस्टिविक में वह पहली बार इस दम्पति से मिला था। लेकिन कब और किन परिस्थितियों में, यह मैंने पूछा नहीं। युद्ध एक ऐसी स्मृति थी जो मैकेन्जी के समक्ष बार-बार लौटती थी। वह उसके हल्के मनोरंजक पहलुओं पर हँस-हँस कर किस्से सुनाया करता था, मगर फिर उसे पता नहीं क्या हो जाता था कि वह विलकुल चुप हो जाता था। पत्थर के मानिन्द चुप और ठस।

न केवल मैकेन्जी वरन पूरे स्काटलैण्ड के लिए युद्ध एक विचित्र-सा अनुभव रहा है। इस बहुत खूबसूरत प्रदेश के सीधे-सादे सरल जीवन में युद्ध का यथार्थ एक अजीब ढंग से गुँथा हुआ है, इसका एहसास मुझे पहले ही दिन से होने लगा था। युद्ध इन मेहनती पहाड़ी लोगों के लिए एक अभिमान, आत्मप्रदर्शन और नैतिक गौरव की वस्तु रहा है। लोगों का कहना है कि खून स्काटिश टुकड़ियों ने बहाया, फायदा अंग्रेज सेनापतियों ने उठाया। एशिया हो या अफ्रीका, जहाँ भी दुस्तर कठिनाइयों के बीच लड़ाइयाँ लड़ने का मौका आया अंग्रेजों ने या तो स्काटिश टुकड़ियाँ भेजी या स्थानीय देशी सैनिक भर्ती किए। इसीलिए आज भी अंग्रेज जहाँ मुश्किल से भूल पाता है कि वह काले नेटिव लोगों का शासक रहा है वहाँ स्काटिश व्यक्ति बराबर याद रखता है कि नेटिव युद्ध में उसके साथी थे। अगर खिलाफ भी थे तो बहादुर योद्धा दुश्मन थे जिनके साथ दूसरी बहादुर योद्धा जाति सहज ढंग से बराबरी का नाता मानने लगती है। एडिनबरा के किले में ऊपर चढ़ते हुए बड़ी तोपों के पास से गुजरकर पुराने स्काटिश राजाओं और रानियों के मुकुट और गहनों को दिखाने के बाद वे लोग आपको युद्ध-स्मारक-हाल में ले जाएँगे। उसमें प्रथम महायुद्ध के बहुत-से स्काटिश सैनिकों और उनके साथियों के नाम हैं। गाइड ने घमण्ड से बताया कि खुश्चेव को उसने इसी जगह दिखाया था कि एक रूसी भी स्काटिश सेना के साथ मारा गया था। भारतीयों के तो कितने ही नाम बीच-बीच में अंकित थे। बाद में एक स्काटिश अध्यापक ने मुझसे कहा, “मौत के साथी सबसे पहले पक्के साथी होते हैं। हमारे जवान बहुत-सी जातियों के जवानों के साथ मारे जा चुके हैं। हम इसीलिए इस प्रकार के झूठे घमण्ड का बोझ अपने अन्तःकरण पर नहीं रख पाते जैसा अक्सर अंग्रेज लोग रख ले जाते हैं।”

लेकिन यह युद्ध-स्मारक, यह पत्थर पर खुदे नाम, यह सब प्रथम महायुद्ध के अवशेष थे। उस युद्ध तक ब्रिटिश साम्राज्य का सूर्य बीच आकाश में चमक रहा था। ब्रिटिश युवक एक महान गौरव की रक्षा के लिए युद्ध करने जाते थे। जुलियन ग्रेन्फाल का स्मारक साक्षी है। और उसके बाद ही शुरू हुआ था वह युग जिसमें युद्ध का एक दूसरा पक्ष सामने आया। विजय भी खोखली और निःसार दिखने लगी। साम्राज्य में जगह-जगह दरारें पड़ गयीं।

और तभी शुरू हुआ दूसरा महायुद्ध। उसमें लोग किस मनःस्थिति में गए, उन्हें क्या अनुभव हुआ, इसे भी बहुत नजदीक से जानने का मौका मिला मैकेन्जी के ही माध्यम से। बातचीत के दौरान में एक विचित्र से हिन्दी शब्द के द्वारा यह आभास मिला कि मैकेन्जी द्वितीय महायुद्ध में सैनिक बनकर गया था और उसकी टुकड़ी हिन्दुस्तान में रखी गयी थी ताकि सन् 1942 का विद्रोह और बंगाल का अकाल कहीं

सशस्त्र क्रान्ति न उपस्थित कर दे। यह मैकेन्जी ! यह शरारती, हर वक्त खुश रहने वाला, यह अत्यन्त चंचल मैकेन्जी ! मैं उस वक्त तार काटते, रेल की पटरियाँ उखाड़ते घूमता था। अगर उस वक्त मैकेन्जी से भेंट होती तो !

वह एडिनबरा में मेरी पहली ही शाम थी। पता नहीं क्यों मुझे पहुँचते ही एडिनबरा में बड़ा सुकून मिला था। लगा, जैसे भाषा और भूगोल दूसरे हैं, बाहरी वातावरण दूसरा है—मगर अन्दर से यह शहर इलाहाबाद है। बिलकुल वैसा ही; शान्त फिर भी अपने ढंग की एक रौनक। पुराना इतना कि धुएँ से इमारतें काली; फिर भी यूनिवर्सिटी के चन्द तरुण अध्यापकों और छात्रों की नवलेखन में बेहद रुचि और इस बात की मुकम्मिल शिकायत कि लन्दन के लेखकों और चित्रकारों के आगे एडिनबरा के कहीं ज्यादा प्रतिभाशाली लेखकों और चित्रकारों को कोई नहीं पूछता। अपने शहर से एक गहरा प्यार और कहीं भी जाकर बसना मगर एडिनबरा को याद करना; यह सब इलाहाबाद से कितना मिलता है। कैलिडोनिया होटल के ब्रेकफास्ट रूम में बैठकर जो सामने निगाह डाली तो पाया कि अरे यहाँ तो एक पुराना किला भी है। बिलकुल इलाहाबाद की तरह। जब हॉल पोर्टर ने ही मुझे नव-आगन्तुक जानकर यह बताना शुरू किया कि क्लोरोफार्म, ऐंजिन, पेन्सिलीन और टेलीविजन का प्रथम आविष्कार एडिनबरा में ही हुआ लेकिन अब एडिनबरा को कोई पूछता ही नहीं, तब तो मन में सोलह आने विश्वास जम गया कि मैं पश्चिम के इलाहाबाद में बैठा हुआ हूँ। और जब मैकेन्जी महोदय आये और कॉफी के प्याले पर उन्होंने किस्सेबाजी शुरू की तो काफीहाउस की सुबह का मजा आने लगा।

रूँ शायद उस कम्बख्त ने मुझे डराने के इरादे से एक बेहद खौफनाक कहानी सुनानी शुरू की। उसने बताया कि पहले कभी यहाँ दो व्यक्ति रहते थे जिनका फाम यह था कि वे कब्रों में से ताजे गड़े हुए मुर्दे निकालकर मेडिकल कालेज के विद्यार्थियों के हाथ बेच आते थे। जब कब्रगाहों पर कड़ा पहरा लगने लगा तब उन्होंने जीवित व्यक्तियों का गुप्त वध करना प्रारम्भ किया। बहुधा वे उस वध के लिए लोगों को इसी सामने वाले किले की खाई में लाते थे। एक दिन वे किसी एक स्त्री का शरीर मेडिकल विद्यार्थियों के पास ले गए जो ‘रुंडी’ थी और उससे कुछ मेडिकल विद्यार्थी भी परिचित थे। उन्होंने बताया कि पिछली शाम तक तो यह स्त्री जीवित थी। सन्देह बढ़ा और वे दोनों वधिक पकड़े गए।

“रुंडी क्या ?” मैंने अंग्रेजी भाषा के प्रति अपना अज्ञान प्रकट करते हुए उससे पूछा। मैकेन्जी ने आश्चर्य से आँखें फाड़कर मेरी ओर देखा। “रुंडी तो हिन्दी शब्द है, अंग्रेजी में जिसे हम ‘डॉसिंग गर्ल’ कहते हैं।” उसके शब्द-ज्ञान पर अब मेरी आश्चर्य से आँखें फाड़ने की बारी थी। “क्या यह शब्द स्काटलैण्ड में प्रचलित है ?” मैंने पूछा। और तब मालूम हुआ कि मैकेन्जी द्वितीय महायुद्ध में भारत रह चुका था और उसे बहुत से हिन्दी वाक्य पहले आते थे जो अब वह धीरे-धीरे भूल गया है। फौज में एक अजीब जिन्दगी होती है, शायद उतनी करुणाजनक और गहन अनुभूतियों वाली नहीं जैसी हम बाहर से अनुमानित करते हैं। मौत के समक्ष एक बेफिक्री और सब कुछ भुला देने वाली मस्ती जिसमें हर चीज मनोरंजन का उपकरण बनी रहती है। यह तो

मैकेन्जी ने कई दिनों बाद कबूला कि वह बेफ़िक्री सिर्फ एक चेहरा होता है जिसे हर सैनिक लगा लेता है मृत्यु के भय को न देखने के लिए। लेकिन उस वक्त तो मैकेन्जी मियाँ अपनी सैनिक जिन्दगी के दिलचस्प किस्से बयान करने में तल्लीन थे। आसाम से लेकर अमरीका तक उनकी जुबान एक ही स्पीड से चटखारे लेकर दौड़ रही थी। आसाम में उनके किसी बैरे ने उनको एक कविता सुनायी थी जो उन्हें अब भी याद थी। कविता हिन्दी में थी—मैकेन्जी के उच्चारण में :

“ठोरा ठोरा पानी, ठोरा ठोरा चा।

बम्बई का मुलुक बहोत अच्छा।”

इस तुक और छन्द-युक्त सुन्दर गीत-काव्य के प्रति मेरा प्रशंसाभाव जानकर उनका उत्साह बहुत बढ़ा और वाकी किस्से उन्होंने शाम के डिनर के बाद सुनाने का वायदा किया।

शाम की किस्त अमरीका के बारे में थी। रात बहुत सर्द थी लेकिन फिर भी ओवरकोट की जेबों में हाथ डालकर हम किले के सामने स्काट की मूर्ति के नीचे फूलों की रविशों के किनारे-किनारे टहल रहे थे। बिजली की मद्धिम रोशनी में फूलों की क्यारियों का रंग और भी रहस्यमय लग रहा था। टहलते हुए मैकेन्जी ने बात शुरू की कलकत्ते से। युद्ध के जमाने में उसे बहुत दिनों तक कलकत्ते के ग्रेट इस्टर्न होटल में टिके रहना पड़ा था और वहीं पहली बार उसकी टुकड़ी अमरीकनों के सम्पर्क में आयी। वे भी उसी होटल में टिके हुए थे। मैकेन्जी जरा साफ दिल आदमी था। उसने स्पष्ट स्वीकार किया कि उनका गुस्सा अमरीकन सैनिकों के खिलाफ मुख्य रूप से इसलिए था कि उनके पास पैसों की भरमार थी जबकि ब्रिटिश टुकड़ियाँ काफी तकलीफ में थीं और पैसे खत्म हो चले थे। जापानी सेनाएँ विजय पर विजय पाती हुई बढ़ती चली आ रही थीं और इन लोगों को लगता था कि ये लावारिस से छूट गए हैं।

क्रिसमस के दिन नजदीक आ रहे थे। कलकत्ते में क्रिसमस की रौनक ही दूसरी होती है। इन तमाम ब्रिटिश सैनिकों को इस बात की चिन्ता थी कि बिना पैसे-कौड़ी के इस बार क्रिसमस कैसे मनाया जाएगा। दिन-दिन रात-रात इन लोगों की कान्फ्रेंस बैठी, फिर भी कोई उपाय समझ में न आया। अन्त में किसी को एक उपाय सूझा। उनमें से एक व्यक्ति मलाया से लौटते समय निशानी के तौर पर नक्काशी के काम वाला एक जापानी खंजर अपने साथ ले आया था। बस सारी योजना बन गयी। टाइपराइटर पर बैठकर एक नोटिस टाइप की गयी जिसका आशय था : “बिकाऊ है जापानी राजघराने का एक बहुमूल्य नक्काशीदार खंजर जिसके साथ द्वितीय महायुद्ध की एक अत्यन्त रोमांचकारी घटना जुड़ी हुई है। केवल उपयुक्त ग्राहक को ही घटना बतायी जा सकेगी। वह भी पेशगी पाने के बाद।” यह कागज अमरीकन कैंटीन के पास नोटिस-बोर्ड पर टाँग दिया गया। शाम तक तीन अमरीकन आए। तीनों को अलग-अलग बताया गया कि दूसरा व्यक्ति बहुत दाम देने को तैयार है। इस तरह भाव

चढ़ता गया, और अन्त में खासी मोटी रकम उस खंजर के लिए मिल गयी। खरीदने वाले ने जब घटना जाननी चाही, तब उसे गढ़कर एक कहानी सुना दी गयी कि किस तरह एक अकेले सैनिक पर पाँच जापानी टूट पड़े, किस प्रकार उसने अकेले पाँचों को मार गिराया और पाँचवें ने मरते-मरते बहादुरी पर खुश होकर यह खंजर स्मृतिचिह्न के रूप में दिया। सारी कहानी टाइप करके सील-मोहरबन्द लिफाफे में ग्राहक को दी गयी। इस झूठ के गढ़ने में मैकेन्जी महोदय को पसीने आ गए। मगर फिर क्रिसमस का जश्न दिल खोलकर मनाया गया। कलकत्ता कितना खुशनुमा होता है बड़े दिन के मौसम में।

और ऐसे ही छोटे-छोटे कितने ही लटके कितने ही लतीफे जिन्हें सुनकर मालूम हो कि मानो सैनिक जीवन स्वर्ग है ! लेकिन वह कौन दिन था अब मुझे बहुत अच्छी तरह याद नहीं, शायद उस दिन जब हम ट्वीड नदी के आसपास भटक रहे थे तब मैकेन्जी अकस्मात् गम्भीर हो गया। बात उसके परिवार की चल रही थी। उसने कहा, “मैं बहुत चाहता हूँ कि इतना कमाऊँ कि कभी-कभी अपने बच्चे को भारतवर्ष या न्यूजीलैण्ड घुमा सकूँ।” भारत और न्यूजीलैण्ड का जोड़ा मेरी समझ में नहीं आया। पूछने पर वह बोला, “मैंने जो कुछ देखा है, युद्ध के दौरान में जो कुछ भोगा है, अक्सर उसे भूल नहीं पाता। जितने देशों में मशीनें लगीं और कारखाने बने उनके बच्चों को बरबस युद्ध में जाना पड़ा। मेरा वश चले तो संसार के हर देश को खेतिहर देश बना रहने दूँ। किसान स्वभाव से अमन-चैन वाले होते हैं। खाने लायक उगाते हैं और सन्तोष की साँस लेते हैं। भारत हुआ, न्यूजीलैण्ड हुआ, ऐसे देशों में मेरे बच्चे के संस्कार युद्ध के नहीं बन पाएँगे। वह बड़ा होगा तो मैं उसे किसी कृषि-विद्यालय में भेजूँगा। स्कॉटलैण्ड में काफी जमीन है। फार्म बनाने के लिए इफरात मिलती है। मेरा बच्चा कभी हिन्दुस्तान गया तो तुम्हें लिखूँगा।”

उस दिन एक दूसरा मैकेन्जी मेरे साथ था। गम्भीर, अनुभवों से परिपक्व, कड़वी-मीठी स्मृतियों में खोया हुआ। अकस्मात् बोला, “चलो, तुम्हें वाल्टर स्कॉट प्वाइण्ट दिखाऊँ।” एक पहाड़ी पर घुमावदार खूबसूरत छायादार सड़क चढ़ती चली गयी। हम चुप थे। मीलें लम्बी चुप्पी। फिर मैकेन्जी यादगारों में से लौटकर बोला, “हिन्दुस्तान में रात में लम्बी जंगली सड़कों पर गाड़ी चलाने का एक अजब सुख है। जंगल से आती हुई फूलों और झाड़ियों की ताजी महकें। मोटर की लाइट में सामने से आने वाले जानवरों की चमकती आँखें। उनकी चमक भी अलग-अलग होती थी। दो जोड़े लाल आँखें चमक उठें तो समझो सामने बैलगाड़ी आ रही है—दो बैल जुते हैं। दो चौकन्नी हरी आँखें क्षण भर ठिठककर भाग जायें तो समझो लोमड़ी है। हेडलाइट जला दो तो ऊपर पेड़ों की पत्तियों का हरा रंग विचित्र झलक देने लगता है। भारत कितना सुन्दर है !”

हम पहाड़ी के ठीक ऊपर एक ऐसी जगह आ गए थे जिसे ‘वाल्टर स्कॉट प्वाइण्ट’ कहते हैं। वहाँ एक पत्थर लगा हुआ है। नीचे घाटी का वह हिस्सा सामने आता है। जिसमें ट्वीड नदी ने बेहद खूबसूरत घुमाव लिये हैं। कहते हैं कि सर वाल्टर स्कॉट अपने दुर्ग-निवास से रोज अपनी बग्गी पर यहाँ तक आते थे। घण्टों यहाँ बैठे-बैठे चुपचाप नीचे ट्वीड नदी

को देखा करते थे। क्या देखते थे वे ? समय की नदी ? इतिहास के घुमाव ? कहते हैं जब उनकी मृत्यु हुई, तो असंख्य जनसमूह उनके काफिन को श्रद्धासहित मीलों पैदल चलकर पहले यहाँ लाया, कुछ देर तक यहाँ टिककर तब उन्हें समाधि तक ले जाया गया।

हम चुप खड़े थे। नीचे घने श्यामल वनों में ट्वीड नदी न जाने कितने बल खाकर घूम रही थी। पुराने किले, तहखानों में दफन राजमुकुट, अनगिनत लड़ाइयों के शोर, इतिहास के खून रंगे पन्नों में दबी हुई सुकुमार प्रणयगाथाएँ और न जाने कितने अज्ञात विस्मृत सिपाहियों की भूख-प्यास, जख्म और तकलीफें। इतिहास का एक बहुत बड़ा किस्सा-गो यहाँ बैठकर अन्तिम बार क्या सोच कर गया होगा ? और ऐसे में मैकेन्जी को फिर हिन्दुस्तान की याद आयी। बोला, “युद्ध में मैंने एक चीज देखी जिसने जिन्दगी के प्रति मेरा नजरिया ही बदल दिया। वह था—बंगाल का अकाल। ग्रेट ईस्टर्न होटल में हमें उसकी सिर्फ एक झलक मिली थी मगर एक बार हावड़ा के पास जो देखा उसके बाद फिर मैं वह इन्सान न रहा जो उत्साह से युद्ध में लड़ने गया था। हम किसके लिए लड़ रहे थे, किन सिद्धान्तों के लिए ? कौन से हवाई सिद्धान्त बचाए जा रहे थे ? किस मनुष्य के लिए ? वही जो रेलवे लाइन के किनारे फेंके हुए दोने के लिए तीन-तीन कुत्तों से लड़ रहा था।” ट्वीड नदी की बात से याद आती है इसी नदी के किनारे की एक दूसरी दोपहर। धूप खिली, मगर बेहद सर्द। एक तो स्काटलैण्ड यूँ ही बहुत सर्द है, मगर वह तो शायद उस ऋतु का सबसे सर्द दिन था। हम लोगों के पास एक जीप थी और एक साथ कई मित्र थे। एक का नाम था ब्लैकवुड, पेशा नामालूम, दूसरा उत्तरी स्काटलैण्ड के ऐबर्डीन कस्बे से आया हुआ एक वकील, तीसरा एक किसान। एक पहाड़ी के पास जहाँ नदी कुछ चौड़ी और शान्त है, हम रुक गए। नदी के बीचोबीच एक छोटा-सा द्वीपखण्ड था जिसके पास एक बहुत बड़ा, काली आँखों पर पीले वृत्त वाला हंस तैर रहा था। मेरा खून सर्द हो गया यह देखकर कि उस भयंकर सर्दी में कई लोग शिकारी पोशाक पहने घुटनों-घुटनों पानी में घुसे हुए हैं। मालूम हुआ है कि वे मछली मारने और पिकनिक मनाने आए हैं। ट्वीड नदी की मछली स्काटलैण्ड में सबसे मीठी मानी जाती है। वे लोग ब्लैकवुड के परिचित निकले। बात शुरू हुई कि ब्लैकवुड का भाई अब कहाँ है ? मालूम हुआ कि सब पुराने पेन्शनयाप्ता फौजी अफसर और सैनिक शासक थे। अब जिन्दगी के आखिरी दिन अपने वतन में चुपचाप गुजार रहे हैं। ब्लैकवुड के भाई का जिक्र इसलिए आया कि वह भी सेना में था और एक जमाने में उसकी वीरता की कथाएँ चारों तरफ मशहूर थीं। यहाँ एक बहुत बड़ा-सा क्लब है जिसमें पुराने सैनिक मिलते हैं। जब युद्ध खत्म हुआ था तब उसकी रौनक दूसरी थी। मगर अब हर आदमी जैसे युद्ध के दिनों को भूल जाना चाहता है। युद्ध की तात्कालिक आवश्यकता ने तमाम किस्म के लोगों को एक कतार में खड़ा कर दिया था। वे एक पवित्र में चलते थे, एक मेज पर खाते थे, एक तम्बू में सोते थे, मगर उनमें एक भी तत्त्व ऐसा नहीं था जो एक-दूसरे से मेल खाता हो। युद्ध खत्म होने के बाद एक-दूसरे से मिलने में ऊब आने लगी। उन्हें ताज्जुब होने लगा कि वे युद्ध में कैसे हफ्तों, महीनों, बरसों, साथ रहे थे। उनका कहना था कि बड़े-बड़े वक्तव्य, झण्डे,

बैण्ड और तमगे एक ऐसा वातावरण बना देते हैं जिसमें हम अपने को भूल जाते हैं। सब अपने को भूल जाते हैं। सेनाएँ रह जाती हैं। हम नहीं मार्च करते, सेनाएँ मार्च करती हैं। हम नहीं लड़ते सेनाएँ लड़ती हैं। हम नहीं हारते, सेनाएँ हारती हैं। हम नहीं जीतते सेनाएँ जीतती हैं। और जब युद्ध खत्म हो जाता है, सेनाएँ भंग हो जाती हैं, तब हम फिर उभरते हैं। और उनमें से एक बुद्ध ने कहा, “और तब हम रह जाते हैं और हमारे गाँव के पास की यह नदी रह जाती है। और रह जाते हैं बचपन और कैशोर्य के सीधे-सादे सुखों की याद।”

और उसके बाद उस दिन दोपहर भर एक विचित्र-सी, बचपन की ओर लौटा ले जाने वाली ताजगी जैसे सबों में आ गयी। कोई पत्तों की नाव बहाता रहा, कोई जीप दौड़ाता रहा, कोई फार्म के खेतों में रंगबिरंगे जंगली मुर्गे ढूँढ़ता रहा। मुझे अपनी याद है कि मैंने देखा, दूर पर भेड़ के खूबसूरत मेमने थे। तीन छोटे-छोटे बच्चे अपने से बहुत बड़ी साइकिलें लेकर पैडिल मारते हुए उनके चारों ओर चक्कर लगा रहे थे।

मैं उधर बढ़ा तो वे बच्चे व्यंग्य से मुस्कराए और संदेह से चुप हो गए। लेकिन जब मैंने एक मेमने को प्यार किया तो उन्हें बड़ी सान्त्वना मिली। लगा कि यह अपनी ही जाति का कोई परदेशी जीव है। उनमें से एक बच्चे ने तीनों मेमनों से मेरा शिष्टाचारपूर्ण परिचय कराया। उनका नाम था रुम्बा, सुम्बा और वूला। वे बार-बार नाम बताते थे। मैं हर बार भूल जाता था। वे हर बार मेरी भूल पर खिलखिलाकर हँसते थे और फिर नए सिरे से नाम दोहराते थे। यह रुम्बा है, वह सुम्बा है और यह वाला वूला है। मैं फिर भूल गया और वे फिर हँसी से लोट-पोट। इतने में एक बच्चा दूध की बोतल ले आया जिसमें चुसनी लगी हुई थी। उसने कृपापूर्वक मुझे इजाजत दी कि मैं चाहूँ तो मेमनों को पिला सकता हूँ। मैंने पहले ही मेमने की ओर बोतल बढ़ाई तो मेमना महोदय चुसनी खींचकर उछलते-कूदते यह गए—वह गये। अब तो बच्चों में जोर का ठहाका लगा और मेरी अयोग्यता पर उनका शतप्रतिशत विश्वास बैठ गया।

मित्रों का गिरोह भी बड़ी दिलचस्पी से देख रहा था। मैं वापस लौटा तो मैकेन्जी फिर मुस्कराकर बोला, “इन्हें स्कॉच के बजाय ठण्डा पानी अच्छा लगता है, आदमियों के बजाय मेमनों की संगति।” और फिर दूसरा ठहाका लगा। वह दोपहर ट्वीड नदी पर फैली धूप की ही तरह उजली-उजली मेरे मन में बसी है।

...और अब ! चन्द घण्टे और, फिर अलविदा ! दोपहर यहाँ भी हो चली है। इस समुद्री होटल के डाइनिंग रूम में लंच की भीड़ आने लगी है। सामने गोल्फ का हरा मैदान धूप में सुनहला धानी लगने लगा है। बालू पर उमड़कर लौट गये, समुद्र की लहरें चमकने लगी

हैं। मगर सब पर एक हल्की-सी उदासी है। मैकेन्जी बार-बार घड़ी देख रहा है। अभी हमें स्टेशन जाना है, वहाँ से ट्रेन पकड़नी है लेक-डिस्ट्रिक्ट के लिए। विश्वास नहीं होता कि स्काटलैण्ड की यात्रा का आज आखिरी दिन है। हमेशा शरारत से चमकने वाली मैकेन्जी की छोटी-छोटी आँखें असाधारण रूप से गम्भीर हैं। स्काटलैण्ड खुली दोस्ती, खुला प्यार देना जानता है। थोड़ी देर में हम रवाना होंगे। एक चमकती लम्बी काली मोटर घाटी की घुमावदार पक्की सड़क पर घूमेगी, बालू की पहाड़ियाँ, झाऊ के झाड़, नीले समुद्र का तिकोना प्रसार, दायीं ओर से खिड़की के शीशे में से काँपता हुआ पीछे और पीछे हटता जाएगा। अभी प्लेटफार्म पर मैकेन्जी और ईनी के हिलते हुए हाथ विदा देंगे। और मैं कभी—जब घर पहुँचूँगा यानी अपने देश, और अँधेरी जंगली रास्तों में से मोटर पर यात्रा करते हुए हैडलाइट में पेड़ों की पत्तियाँ चमकेंगी या जंगल में खिले हरसिंगार या वनबेला की महक अँधेरे में आएगी तब मुझे स्काटलैण्ड याद आएगा और मैं प्रतीक्षा करूँगा कि मैकेन्जी का लड़का भारत कब आएगा। लेकिन जब वह भारत आयेगा तो क्या भारत को वैसा ही पायेगा जैसा मैकेन्जी के मन में बसा हुआ है ?

गोरी नगरी, काले साये

नाटक खत्म ! शेष रहा है सिर्फ भरतवाक्य की भाँति प्रास्पेरो का अन्तिम वक्तव्य । अब उसके जीवन के सारे दायित्व पूरे हो गये । उसकी सुन्दरी कन्या मिराण्डा का विवाह हो गया । उसने अपने अधीन काम करने वाले दोनों प्रेत-भृत्यों—सुन्दर संगीतमय अपार्थिव 'एरियल' तथा काले, कुरूप, बेडौल कैलीबन—को मुक्त कर दिया और अद्भुत चमत्कार दिखानेवाली अपनी जादू की छड़ी हमेशा के लिए कोने में रख दी । अब जादू के करिश्मे खत्म ! बुढ़ापे के बचे-खुचे दिन एक भद्र पेन्शनयाफ्ता अंग्रेज की तरह साधारण ढंग से चुपचाप बितायेगा—पर्दा गिरता है । अभी आप शेक्सपीयर का मशहूर नाटक टेम्पेस्ट देख रहे थे । इसमें प्रास्पेरोकी भूमिका में थे—

यहाँ सड़क किनारे हाइड पार्क की बेंच पर अकेला अनमना बैठा हूँ और कल रात स्ट्रैटफोर्ड के भव्य थियेटर में देखे हुए शेक्सपीयर के टेम्पेस्ट का आखिरी दृश्य अब भी दिमाग में घूम रहा है । मैं किस्मतवर था कि कल ही मुझे सीट भी मिल गयी और टेम्पेस्ट देखने को मिला । लोग बताते हैं कि प्रास्पेरो के इस वक्तव्य में शेक्सपीयर ने ही सांकेतिक रूप से घोषणा की थी कि यह उसका अन्तिम नाटक है और अब उसने अपनी जादूभरी कलम हमेशा के लिए रख दी और जीवन के बचे-खुचे दिन वह लेखन और रंगमंच से दूर अपने गाँव में चुपचाप बितायेगा । नाटक खत्म होता है और मैं एक मुक्ति की साँस लेकर उठता हूँ ।

जाने क्यों कुछ चीजों को मेरा मन नहीं स्वीकार पाता तो फिर नहीं ही स्वीकार पाता । शायद इसमें कहीं मेरी ही कोई कमी होगी । मुझको शुरू से शेक्सपीयर ने कभी बहुत प्रभावित नहीं किया । जितना जीवन-तत्त्व, उससे दस गुनी अधिक नाटकीयता । बहुत सुकुमार, बहुत नाजुक स्थिति, और नायक है कि उपमा और श्लेषों से भरा एक पूरा डायलॉग बोलने को सीना तानकर तैयार !

थककर लौटा हूँ और सोच रहा हूँ, शेक्सपीयर के जन्मस्थान स्ट्रैटफोर्ड नहीं ही

गया होता तो अच्छा था। शेक्सपीयर के जमाने की पुरानी सराय के काष्ठ-खचित कमरे, एवन नदी में तैरते हुए हंसों के झुण्ड, ऐन हैथवे की कुटी के रंगारंग फूल, विशाल धूपखिले पार्क में शेक्सपीयर और उसके पात्रों की कलात्मक मूर्तियाँ, विशाल शेक्सपीयर-स्मारक-नाट्यगृह में संसार के कोने-कोने से आये करोड़पतियों, सुन्दरी अभिनेत्रियों, प्राध्यापकों, छात्रों, शासकों और राजदूतों की भीड़—यह सब एक ओर और मेरे मन की यह शंका एक ओर कि क्या लेखक को महान सावित करने के लिए यह सब जरूरी है ? क्या इस सारे टीमटाम, मेले-ठेले के पीछे साहित्य कहीं धुँधला तो नहीं पड़ रहा है ? हर तरफ़ यह हिसाब-किताब है कि पिछले साल कितने 'टूरिस्ट' आये, इस साल कितने ? जितना साहित्य उससे सौ गुना अधिक उसके विज्ञापन, प्रदर्शन, प्रचार के द्वारा समस्त संसार से सैरवीनों को जुटाने का संरंजाम। स्ट्रैटफोर्ड में ही शेक्सपीयर एक साहित्यिक का नाम नहीं, एक धन्धा, एक रोजगार, एक बहुत विशाल अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय का ट्रेडमार्क बन चुका है।

लेकिन क्या मन इसीलिए ऊबा ? एक हलकी-सी अपराध भावना, एक गहरी शंका अपने प्रति भी है। विश्व के इतने महान लेखक के जन्मस्थान पर जाकर श्रद्धा का एक कण दिये बिना लौट आया हूँ। अपने मन को बार-बार समझा रहा हूँ कि नहीं, शेक्सपीयर महान है। ऑथेलो और मैकबेथ और किंगलीयर और हैमलेट की पंक्तियाँ याद दिला रहा हूँ और याद दिला रहा हूँ बचपन में कहीं पढ़ी वह घटना कि एक बार इंग्लैण्ड के समस्त विद्यालयों में यह सवाल पूछा गया कि अगर एक ओर वह अंग्रेजी साम्राज्य हो जिसमें कभी सूरज नहीं डूबता और दूसरी ओर शेक्सपीयर नाटकों का संकलन हो और तुमसे कहा जाय कि किसी एक को चुनो तो तुम किसे चुनना पसन्द करोगे ? कहते हैं, ब्रिटेन के सारे विद्यार्थियों ने एक स्वर से घोषित किया—'शेक्सपीयर'।

जिस लेखक पर एक जाति पूरी सत्तनत न्योछावर कर सकती है, उस लेखक को महान न मानने वाली कसौटी में ही खोट होगी। ओ मेरे मन ! जरूर कहीं तेरा कोई दोष है कि तुझमें श्रद्धा नहीं उपजी।

लेकिन मन तो मन ! उचटने और भटकने पर आमादा हो जाये तो भला कौन कैसे रोक पाये उसे ! मसलन अब मेरा मन यह याद कर रहा है कि अंग्रेजी बोलनेवाली ये जातियाँ कैसी-कैसी चीजों को जातीय गौरव मानने की जिद ठान लेती हैं। दूर क्यों जाइए, यही हाइड पार्क का यह कोना, जहाँ इस समय मैं बैठा हुआ हूँ, इनकी एक अद्भुत परम्परा का पुण्यस्थल है। शाम के वक्त यहाँ क्रान्तिद्रष्टाओं, पैगम्बरों, अर्द्धविशिष्टों का हज़ूम जमा होता है। जो चाहे सो बोलिए। खुले आम महारानी की आलोचना कीजिए, पोप और गिरजा, यीशु मसीह और ईसाइयत की आलोचना कीजिए, बगावत का ऐलान कीजिए—नतीजा कुछ नहीं। गोया यह शब्दों का एक विशाल कूड़ाखाना है, दिमाग में जो कुछ अतिरिक्त जमा होता जाय, यहाँ बिना किसी संकोच के फेंक जाइए। किसके सर पर पड़ता है, परवाह न कीजिए। कहते हैं, इस गोरी

सभ्यता की एक खास निशानी है चुप रहना, बहुत सधे-नपे-तुले चन्द शब्द बोलना। लेकिन इस सभ्यता का एक दूसरा सर्वमान्य सुरक्षाप्राप्त स्थल यह है जहाँ पिछवाड़े की खिड़की से निस्संकोच शब्दों का कूड़ा फिंकवा दीजिए। तो क्या एक ओर सधी हुई नपी-तुली आभिजात्य चुप्पी और दूसरी ओर अतिनाटकीयता भरे निरर्थक संवाद...।

मैं फिर अपनी जबान काट लेता हूँ। छिः, मैं तो अपने मन को शेक्सपीयर के पक्ष में समझा रहा था, यह मैं भटककर कहाँ पहुँच गया ! नहीं, मुझे याद करना चाहिए शेक्सपीयर के नाटकों की वह सूक्ष्म, गहरी सांकेतिकता। वह इस विशाल अंग्रेजी साम्राज्य-सल्तनते बर्तानिया के उत्थान-काल का कवि था। बहादुर, जांबाज नाविक जहाजी बेड़े और रानी का परवाना लेकर संसार कोने-कोने में स्पेन, हालैण्ड और फ्रान्स को पछाड़कर अपना दबदबा कायम कर रहे थे। साम्राज्य की नीवें पड़ रही थीं। जादूगर शासक प्रास्पेरो के जीवन का प्रारम्भ था। वह काले, कुरूप, बेडौल, अर्द्ध-सभ्य कैलीबन को गुलाम बनाकर ले आया था। तो क्या कैलीबन उन अश्वेत प्रजाओं का प्रतीक है जो प्रास्पेरो की जादू की छड़ी के वशीभूत होकर गुलाम बन रही थीं ?

आज चार सौ वर्ष बाद मैं शेक्सपीयर के कस्बे से लौटकर उजड़ी सल्तनत की राजधानी की एक सड़क के किनारे बैठा सोच रहा हूँ कि क्या यह भी शेक्सपीयर की भविष्यवाणी थी कि एक दिन जब प्रास्पेरो बूढ़ा होने लगेगा तब उसे अपने आप कैलीबन को आजाद कर देना पड़ेगा ? लेकिन शेक्सपीयर ने यह तो बताया ही नहीं कि बुढ़ापे में प्रास्पेरो के उस द्वीप की क्या हालत हुई और आजाद होने के बाद कैलीबन ने क्या किया ?

मैं उस दिन अपने साउथ केन्सिंगटन पैलेस होटल की लाउन्ज में चुपचाप बैठा शाहीन और वासिफ का इन्तजार कर रहा था कि मैंने अकस्मात् कैलीबन को देखा। वेहद काला, आबनूसी रंग, कुछ स्थूल, कुछ वृद्ध लेकिन बहुत खूबसूरत सूट में छड़ी लेकर खरामा-खरामा वह सीढ़ियों से उतरा, चाबी काउण्टर पर दी और घूमने वाले शीशे के द्वार खोलकर बाहर खड़ा हो गया। उसकी बड़ी-बड़ी लाल आँखें अपलक, एकटक सामने देख रही थीं। पुतलियाँ इस कदर स्थिर कि डर लगने लगा। वह अडिग, अडोल घण्टेभर तक खड़ा रहा—किस रहस्य भरे इन्तजार में था ? तीसरे दिन मैंने हिम्मत करके उससे बात की। मालूम हुआ, वह घाना का शिक्षा-मंत्री है। वह इंग्लैण्ड की सांस्कृतिक 'स्नाबरी' का तुमुल विरोध करने आया है। और फिर मैंने पाया कि कैलीबन लौट रहा है। विश्वविद्यालयों में, अस्पतालों में, फैक्टरियों में, नाइट क्लबों में, बसों में, हवाई अड्डों पर—सब जगह कैलीबन छा रहा है। कहीं वह नाइजीरियन अध्यापक है, कहीं जमैकन बस कण्डक्टर, कहीं भारतीय डाक्टर, कहीं पाकिस्तानी श्रमिक, कहीं सीलोन नर्तक...आज इंग्लैण्ड के युद्ध से ध्वस्त होने के बाद इंग्लैण्ड के टूटे रथ को उबारने में कैलीबन के कन्धे लगे हैं। क्या वह किसी दिन रथ का चालक बन जायेगा ? गोरा आदमी सुस्त और आरामतलब हो चुका है। सरकारी निर्माण विभाग की रिपोर्ट है कि गोरा मजदूर पत्थर कम तोड़ता है, बीयर ज्यादा पीता है। वे

पंजाब के हट्टे-कट्टे जवान भरती कर रहे हैं। रेलों और हवाई अड्डों और बसों में जमैकन युवक भरे हुए हैं। अस्पतालों में माँग है भारतीय डाक्टरों की, क्योंकि उनमें अब भी मरीज को इन्सान समझने और हमदर्दी देने का मादा है। अंग्रेज डाक्टर तो मरीज को सिर्फ एक हाड़-मांस की मशीन समझता है जिसके चन्द पुरजे खराब हो गये हों ! कैलीबन लौट रहा है। लन्दन से न्यूयार्क तक एक उभरती हुई अश्वेत श्रमशक्ति है जो अपने को प्रतिष्ठित कराकर रहेगी।

(‘डेली मिरर ! ‘डेली मिरर ! आज की ताजा खबर—“कैलीबन लौट रहा है !”) डेली मिरर यहाँ का सबसे सनसनीखेज अखबार है। मैं सोचता हूँ कि अगर कल के अखबार में यह सुर्खी हो कि कैलीबन लौट रहा है तो ! दुकानों में सौदा-सुलफ करती हुई रँगी-चुँगी गुड़ियाँ डर के मारे चीख उठेंगी और फिर एक अज्ञात रोमांच की प्रतीक्षा में बेचैन फुटपाथों पर टहलने लगेंगी। दफ्तरों से लौटते हुए गोरे क्लर्क गुस्से से तमतमा उठेंगे—‘कमबख्त की इतनी हिम्मत कि लौट रहा है ! गोरो के द्वीप में ! और फिर छुट्टी की अर्जियाँ लिखने में लग जायेंगे कि अब तो वह आ ही रहा है। काम की क्या फिक्र !

कैलीबन लौट आया है। प्रास्पेरो उसे सह भी नहीं पा रहा, उसके बिना रह भी नहीं पा रहा है। बार-बार कामनवेल्थ कान्फ्रेंस बुलाता है। कैलीबन की सहायता लेने को और फिर इमीग्रेशन विल बनाता है उसे दूर रखने को। मगर यह अश्वेत श्रमशक्ति है कि पैठती चली जा रही है। इस गोरी सभ्यता के अन्तराल में—अबाध, अप्रतिहत, अनिवार्य !

चारों ओर बत्तियाँ जल गयी हैं और सड़कें सूनी हो चली हैं। मुझे जल्दी लौटकर सपर लेना है। गरम सूप शायद स्ट्रैटफोर्ड की थकान और ऊब दूर करने में मदद करे। मैं पैदल ही लौटता हूँ। साउथ केन्सिंगटन के लिए मुड़ने में मार्विल आर्च के जरा पहले या शायद जरा बाद, एक जमीदोज क्रॉसिंग पड़ती है। दीवार पर किसी ने कुछ लिखा है। मैं कुतूहलवश रुककर पढ़ने लगता हूँ। सरकारी इबारत लिखी है—फॉलो साइन्स टु एवॉइड एक्सीडेंट्स। किसी ने कोयले से आगे जोड़ दिया है—ऐण्ड निगर्स। निर्देश चिह्नों का अनुसरण कीजिए तो दुर्घटना (और काले लोगों) से बचे रहेंगे।

मुझे क्रोध नहीं आता। सिर्फ तरस आता है। सचमुच यह सिर्फ इस जमीदोज क्रॉसिंग की दीवार पर लिखा हुआ शरारती वाक्य नहीं है, इस गोरी संकटग्रस्त संस्कृति के अवचेतन मन की एक बहुत बड़ी चिन्ता है। और भी गहरा अनिश्चय इसके सामने यह है कि अगर यह सारे निर्देशचिह्नों, सारे कानूनों-कायदों का अक्षरशः अनुसरण भी करे तो भी क्या भरोसा कि यह दोनों में से किसी से भी सचमुच बच जाय—दुर्घटना से या निगर्स से ! सल्लनत या शेक्सपीयर, दोनों में से चुनने को रहा ही क्या ? सल्लनत तो ताशों का महल साबित हुई और शेक्सपीयर इतिहास की यह परिणति बताना ही भूल गया।

और क्या अचरज कि इस अनिश्चयग्रस्त मोड़ पर एक नयी पीढ़ी ज्यों ही जवान

हो और असलियत पहचानने लगे कि उसके बुजुर्गों ने झूठे ख्वाबों में बहलाया था, झूठे आदर्शों की घुट्टी पिलायी थी और इस तरह से उसे कमजोर और नाकाबिल बनाकर एक ऐसे जमाने का सामना करने को भेज दिया जो क्रूर है, कठिन है और बेहद जटिल है, तो वह पीढ़ी बेहद नाराज विद्रोही और कुछ मायनों में पथभ्रष्ट भी हो उठे। रात होते ही इस नगर में एक दूसरा नगर सजीव हो उठता है। जिसमें नौजवानों का गुस्सा है, लक्ष्यहीन विद्रोह है, अपनी निरथकता को भुलाने की कोशिशें हैं या तरह-तरह के उचित-अनुचित सनसनीखेज संवेदन ईजादकर अपने को यह विश्वास दिलाने की कोशिश है कि वे भी जिन्दगी से कुछ न कुछ सुख तो वसूल कर ही रहे हैं। इस निशा-नगरी में नग्न नृत्य है, तहखानों में गुप्त रेस्तराँ हैं, तरह-तरह के भोड़े और अकल्पनीय इन्द्रियविलास के अड्डे हैं, लम्बे जनाने बालोंवाले नाराज नौजवान हैं और छोटे मर्दाने वालोंवाली बौद्धिक युवतियाँ हैं। एक निर्वन्ध प्रदर्शन है नौजवानों द्वारा इस बात का कि हम किसी बात की परवाह नहीं करते। हमें छलावे में रखा गया और लो, हम भी दिखाकर रहेंगे कि हम बदले में कुछ कर सकते हैं। वह कर सकना चाहे यही हो—अँधेरे तहखाने में मोमबत्तियाँ जलाकर, कॉफी में कोकीन या भाँग मिलाकर पीना और असाधारण यौन-व्यवहार करना। उससे चाहे और कुछ हो या न हो, इतना तो होगा कि जिन बुजुर्गों ने हमें एक मिथ्याचारी परम्परा दी, उनके दिल को एक धक्का लगेगा।

मैं स्वीकार करता हूँ कि कुछ मामलों में मैं बहुत भीरु हूँ। किसी भी यथार्थ को, चाहे वह कितना ही कुरूप और बेडौल क्यों न हो, आँख-से-आँख मिलाकर देख सकने में मुझे कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। लेकिन हफ्ते भर से रोज वासिफ का फोन आता है कि क्या मैं चैल्सी के गुप्त तहखानों वाले वे रेस्तराँ देखने चलूँगा जिनके बारे में इधर अखबारों में इतनी सनसनीखेज खबरें छप रही हैं और मैं हूँ कि रोज कोई-न-कोई बहाना बना जाता हूँ। लेकिन आज मेरे एक लन्दनवासी कवि मित्र सत्येन्द्र ने और वासिफ ने मेरी कमजोर संकल्पशक्ति को उत्साह देने के लिए दो इन्तजाम किये हैं—वासिफ न जाने कहाँ से इस परदेस लन्दन में पान, सुपारी और इलायची का एक पूरा डिब्बा भरकर मेरे लिए लाया है और सत्येन्द्र मुझे खाना खिलाने एक हिन्दुस्तानी रेस्तराँ में लाया है जिसका नाम है, 'इलाहाबाद रेस्तराँ'। (लन्दन में छोटे-बड़े लगभग पचास हिन्दुस्तानी रेस्तराँ हैं—आगरा रेस्तराँ, जामे जमशेद निजाम, स्टार आफ इण्डिया, लखनऊ आदि और सबसे श्रेष्ठ और महँगा 'वेरा स्वामी')। इलाहाबाद रेस्तराँ पिकाडली के पिछवाड़े की उस बदनाम बस्ती में है जिसके चारों ओर नाइट क्लब हैं और सुन्दरियों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप व्यवसाय का कारोबार चलता है। स्टपड परॉंठे, तारका डाल और

करी, यानी भरवाँ पराँटे छाँकी हुई दाल और रसेदार तरकारी और सबसे बढ़कर अपने इलाहाबाद का नाम और उसके बाद पान। इस सबने एक नया बल दिया है इस निशा (चर) नगरी को देखने का।

और दो-तीन शाम घण्टों घूम-घूमकर जो देखा है, क्या वह सचमुच उतना लोमहर्षक, उतना सनसनीखेज, उतना विद्रोहपूर्ण या उतना चौंकानेवाला भी है जितना वह बाहर से अनुमानित किया जाता है ? तमाम लक्ष्यहीन, चौंकानेवाली बहुविज्ञापित चीजों में कितनी जल्दी एकरसता आ जाती है ! कितनी फोकी, कितनी बेस्वाद !

मसलन एक वेसमेंट काफ़े, जहाँ वासिफ अपने अंग्रेज मित्र स्टुअर्ट के साथ मुझे ले गया। स्टुअर्ट का जाना जरूरी था क्योंकि उस काफ़े में पहला परिचय किसी अंग्रेज ग्राहक द्वारा दिया जाना चाहिए। एक बार परिचय हो जाने के बाद फिर आप अकेले भी जा सकते हैं। खूबसूरत, जगमग, रईस बाजार के बीचोबीच तहखाने के लिए नीचे उतरती सीढ़ियाँ। दरवाजे के पास रेस्तराँ का बोर्ड लगा है—‘ब्रश एण्ड पैलेट’। बोर्ड के बिल्कुल पास एक नोटिस बोर्ड लगा है जिसमें छोटे-छोटे खूबसूरत कार्डों पर हाथ से लिखे हुए कुछ विज्ञापन हैं, “मैं पच्चीस वर्षीया युवती हूँ और नृत्य की शिक्षा दे सकती हूँ, मेरा फोन नं. ... है।” “क्या आपको फ्रेंच सीखनी है ? तो मेरे फ्लैट नं. ... पर शाम को पधारिए, मैं कुछ ही महीनों के लिए पेरिस से आयी हूँ।” “एक अठारह वर्षीय युवती को शनिवार और रविवार के दिन किसी ऐसे संरक्षक साथी की जरूरत है जो उसे चित्रकला की शिक्षा दे सके।” स्टुअर्ट बताता है कि इस नोटिस बोर्ड पर लगे सारे विज्ञापन जाती हैं। ये सभी अप्रत्यक्ष निमन्त्रण हैं। यदि आप चित्रकला के शिक्षक न भी हों, फ्रेंच न भी सीखना चाहें, तो भी ये युवतियाँ आपका स्वागत करेंगी वशर्ते आपकी जेब में पैसे हों। यूँ इस बात पर भी आँख मूँदकर विश्वास न कीजिए कि इनकी आयु पच्चीस या अठ्ठाईस वर्ष की होगी। लन्दन में यह आम रिवाज है। सड़क पर स्थित दुकानें आगे एक नोटिस बोर्ड लगा देती हैं और इन विज्ञापनों के लिए विज्ञापन देनेवालों से माकूल दर पर पैसे वसूल करती हैं।

हम सीढ़ियों के सहारे नीचे तहखाने में उतरते हैं। एक छोटा-सा रेस्तराँ—बहुत शान्त, खास भीड़-भाड़ नहीं। एक कोने में दो अघेड़ अंग्रेज बैठकर वीयर पी रहे हैं। शक्ल से न वे नाराज हैं, न नौजवान। बैंक के खजांची या दफ्तर के किरानी मालूम होते हैं। सामने की टेबल पर खौफनाक शक्लवाला नीग्रो बैठा कॉफी पी रहा है। काउण्टर के पास दो महिलाएँ हैं—एक अघेड़-सी अंग्रेज महिला, दूसरी जरा नाटी, दुबली, पर कटे बालों वाली कोई यूरेशियन लड़की। शायद सिंगापुर की। स्टुअर्ट काउण्टर पर जाकर हम लोगों का औपचारिक परिचय रजिस्टर में लिखता है ताकि सनद रहे और वक्त जरूरत काम आये। वह अघेड़ अंग्रेज औरत एक ट्रे में तीन कॉफी और कुछ सैण्डविच लाकर हमारी मेज पर रख देती है और स्वागत में मुस्कराती है। मुझे नहीं मालूम कि मुझे जवाब में मुस्कराना चाहिए या नहीं। मैं असमंजस में पड़कर वासिफ की ओर देखता हूँ। वह जुवान निकालकर, मुँह बिचकाकर शुद्ध हैदराबादी उर्दू में कह

रहा है, “मुस्कराने के लिए यही रहीं क्या ! क्या-क्या शक्तें खुदा ने बनायी हैं ?” इतने में अँधेरे में जाने कहाँ से एक काला, खुरदुरा, बलिष्ठ हाथ हमारी मेज पर आ जाता है। मैं चौंक उठता हूँ, यह क्या करिश्मा ! मुड़कर देखता हूँ। यह उसी नीग्रो युवक का हाथ है। मुझे डरा हुआ देखकर वह मुसकराता है, फिर परिचय देता है, “मैं नाइजीरियन विद्यार्थी हूँ। आप शायद हिन्दुस्तानी हैं ? जरा दियासलाई हो तो दीजिएगा।” मेरी जान-में-जान आती है। थोड़ी देर में हम लोग घुल-मिल जाते हैं। वह खासा मिलनसार, हँसमुख और दोस्त आदमी है। बताता है कि यह ऊपरी तौर पर तो चित्रकारों का रेस्तराँ कहा जाता है, अपनी तरफ से ये लोग एक मॉडल सामने स्टेज पर बिठा देते हैं ताकि खाने-पीने के साथ-साथ कलाकार कला-साधना भी करते चलें, लेकिन यह सब ऊपरी दिखावा है। इस साधना में साधा कुछ और ही जाता है। इन चित्रकारों के रेस्तराँ में शायद ही कोई चित्रकार आता हो। “आप चित्रकार तो नहीं हैं ?”—उसने मुझसे पूछा। मैंने कहा —“नहीं।” वह बहुत प्रसन्न हुआ। मेरे कन्धे पर हाथ मारते हुए बोला, “मैं जानता था ! मैं जानता था ! चित्रकार होते तो क्या यहीं आते ?” उसके ठठाकर हँसने से काउण्टर पर खड़ी दोनों औरतें चौंकी और नाटी-सी यूरोशियन लड़की तुरन्त अन्दर चली गयी। थोड़ी देर में सामने स्टेज के पर्दे में हरकत हुई और दो पर्दों के बीच की सन्ध में से उसी यूरोशियन लड़की का मुँह, गरदन और उघड़े कन्धे दिखायी पड़े। उसने पुकारा, “मेरी ! मेरी !” और वह अघेड़ अंग्रेज औरत दौड़कर स्टेज के पास गयी। थोड़ी देर बाद मेरी ने पर्दा खींच लिया। स्टूल पर थोड़ा तिरछे होकर पूर्णतः वस्त्रविहीन वही यूरोशियन मॉडल बैठी थी।

जिस पर बहुधा रोमांचकारी कौतूहल का परदा पड़ा रहता है, वह यथार्थ में कितना सनसनीविहीन, कितना साधारण बल्कि भोंडा और कभी-कभी कितना दयनीय लगता है ! बहुत कमजोर लड़की, कन्धे, हँसली, रीढ़ और पसली की एक-एक हड्डी उठी हुई, चेहरा माशा अल्लाह ! मोटे ओंठ, चपटा चेहरा, छोटी आँखें। आखिर इसमें है क्या ? सुना था, इस रेस्तराँ में काफी लोग जुटते हैं। दोनों अघेड़ अंग्रेजों की बातें रुक गयी थीं और वे हक्का-बक्का उधर देख रहे थे। मैंने स्टुअर्ट से पूछा कि इसमें तो देहयष्टि का सुगठित सौन्दर्य भी नहीं तो स्टुअर्ट ने कहा, “बट लुक ऐट द कलर ऑफ द स्किन, इज इट नॉट गोल्ड ? नाट ए सिंगिल मॉडल फ्रॉम पेरिस कुड बोस्ट ऑफ दिस कलर ?” (लेकिन जरा जिस्म का रंग तो देखिए ! सुनहरा साँवरा ! पेरिस तक की कोई मॉडल दावा कर सकती है इस रंग का ?) नियति का कैसा व्यंग्य है जिस रंग के कारण लन्दन में फ्लैट मिलने में मुश्किल होती है, जिस रंग के प्रति इस द्वीप में हर जगह एक दबा हुआ विद्वेष और अलगाव है, वही रंग यहाँ प्रशंसनीय है, क्योंकि पेरिस तक की मॉडलों के उस गोरे रंग से यह संस्कृति ऊब चुकी है।

नाइजीरियन विद्यार्थी चुप बैठा सिगरेट फूँक रहा था। मेरी भागी-भागी आयी, उससे कुछ कान में बोली और उसने तुरन्त पास की कुर्सी पर रखे हुए कागज उठाये और तल्लीन होकर उस मॉडल का रेखाचित्र बनाने लगा। तीन-चार रेखाचित्र बना

चुकने के बाद उसने हाथ से कुछ इशारा किया और फिर मॉडल ने आवाज दी, “मेरी ! मेरी !” मेरी फिर दौड़कर आयी। परदा खींच दिया गया। मैंने वासिफ से कहा कि अब विल चुकायें और चलें। नाइजीरियन ने सहसा मेरे कन्धे पर हाथ रखा और मुस्कराकर बोला, “अभी क्यों जा रहे हो ? अब तो मैंने उसे और ज्यादा अच्छा पोज देने को कहा है—अपने नये दोस्त के खातिर !” उसने फिर सिगरेट सुलगा ली थी और बता रहा था कि पोज बदलते वक्त परदा खींचना जरूरी होता है। इसका कारण उसने बताया कि इंग्लैण्ड का एक कानून है कि सार्वजनिक स्थानों में नग्न नृत्य नहीं हो सकते। हाँ, चित्रकला के लिए मॉडल अवश्य बैठ सकते हैं। फिर बड़े-बड़े कानूनदां लोगों ने एक बारीक शर्त खोजी। उन्होंने यह कहा कि अनेकानेक चित्रकारों के सामने मॉडल बैठ सकती है लेकिन उसे एक ही मुद्रा में स्थिर बैठना होगा। अगर वह जरा भी हिली या उसने मुद्राएँ बदलीं तो उसे नग्न नृत्य माना जा सकता है। और इस पर पुलिस उचित कार्रवाई कर सकती है। इसीलिए पोज बदलते वक्त परदा खींच दिया जाता है, क्योंकि बिना हिले पोज नहीं बदला जा सकता।

अब तक मुद्रा बदल चुकी थी। परदा खुल चुका था। उसने फिर कागज उठाये, स्केच करने लगा और मुझे बात करता गया। बताने लगा कि वह भी यहाँ बैठकर स्केच करने का पारिश्रमिक पाता है। वरना अगर अभी पुलिस छापा मारे तो कम-से-कम एक चित्रकार यहाँ चित्र बनाते हुए मिलना ही चाहिए। हफ्ते में तीन दिन वह आता है, तीन दिन उसका एक दोस्त। एवज में उसे दोनों वक्त का खाना, पेंटिंग का सारा सामान और कुछ रुपये भी मिलते हैं। “रुपये और भी मिल सकते हैं—” उसने स्केच बनाना रोककर, मेरी ओर देखकर भेद भरी मुसकान के साथ कहा, “रुपये और भी मिल सकते हैं और रहने की जगह भी अगर मैं रात को भी यहाँ रुक जाया करूँ। लेकिन मुझे एक अंग्रेज मित्र ने चेतावनी दी कि ये अघेड़ गोरी औरतें अक्सर जरा-सी बात पर असन्तुष्ट होने पर काले युवकों को सीधे पुलिस के हवाले कर देती हैं। इसलिए कम रुपया, कम खतरा ! और अपने राम मस्त हैं।”

इतने में सहसा सीटी की तेज आवाज सुनायी पड़ी। मैं चौंका। क्या पुलिस का छापा ? मैंने चारों ओर देखा। काउण्टर पर मेरी भी एकटक सीढ़ियों की ओर देख रही थी। सीढ़ी पर एक भारी पैरों की आवाज और सीटी का तेज होता हुआ स्वर। वासिफ के चेहरे पर भी चिन्ता थी। स्टुअर्ट भी सुनहरे साँवले जिस्म से, ‘गोल्ड ऑफ द बाडी’ से नजर हटाकर दरवाजे की ओर देख रहा था। सीटी और सीढ़ियों पर पाँवों की थपथप पास और पास। पहले दायाँ पैर नीचे, फिर और लो, वह तो खुली बुशशर्ट, मोटे बूट और बिखरे बालों वाला कोई अमरीकन रसिया था। सीटी बजाता हुआ मौज में आ रहा था। जान-मैं-जान आयी। मेरी ने तपाक से उसका स्वागत किया। दौड़कर स्टेज पर का परदा बन्द किया और फिर बातें चलने लगीं। पलक मारते में वह यूरेशियन मॉडल कपड़े पहनकर अमरीकन की बाँह-मैं-बाँह डाले काउण्टर पर खड़ी सौदा पटा

रही थी। स्टुअर्ट बड़बड़ाते हुए उठ खड़ा हुआ, “बदजात, बदतमीज, यांकी ! इसे तमीज नहीं कि इंग्लिश रेस्तराँ में कैसे प्रवेश करना चाहिए। सिवाय डॉलर के इसके पास और है क्या ? न सभ्यता, न शिष्टाचार !”

एक अंग्रेज काउण्टर पर उस अमरीकन से डॉलर गिनवाकर दराज में बन्द कर रही थी और दूसरा अंग्रेज बाहर उसे गाली दे रहा था ! अमरीकन बेचारा भी इस संकटग्रस्त संस्कृति का एक अद्भुत अभागा प्राणी है !

लेकिन कितना शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व है संसार की सबसे समर्थ ब्रिटिश पुलिस के कानून-कायदों और संसार के सबसे रंगीन निशानगर के नाइट क्लबों का ! इस कायदे-कानून की खूबसूरत पाबन्दी का एक और अनुभव मुझे हुआ। उस दिन मैं अकेला था। अपने होटल के अंग्रेजी निरामिष मीनू से जी ऊब चुका था। उबली तरकारियाँ, फलों का रस ! सोचा, फिर इलाहाबाद रेस्तराँ ढूँढ़ूँ। बस के अड़े से उतरकर काफी दूर तक तो ठीक-ठीक रास्ते पर चला मगर फिर किसी मोड़ पर रास्ता भूल गया। भटकते हुए एक ऐसी जगह पहुँचा जहाँ गलियों के बीच कुछ खुली हुई जगह थी और शायद दिन में वहाँ फलों का बाजार लगता था। लोग दुकान समेट रहे थे। खूबसूरत कागजों में लपेटे हुए ताजे सन्तरे, सरदे, माल्टा और बेरी। दृश्य कुछ इतना सहज था, बाकी सारे टीमटाम से इतना अलग था कि मैं चुपचाप तमाशबीन की तरह देखने लगा। जिस तरह के शिकवे-शिकायतें चीख-चिल्लाहट दुकान समेटते वक्त हो रही थीं, उससे लगा कि विलायती कुँजड़े भी देशी कुँजड़ों से बहुत अलग नहीं होते। कौन विश्वास करेगा कि लन्दन के उस अज्ञात फल और तरकारी बाजार की गली में खड़े होकर मुझे अपने मुहल्ले का लोकनाथ याद आ रहा था। लोकनाथ के नुक्कड़ पर एक छोटा-सा मंदिर है और उस पर एक नोटिस बोर्ड टँगा रहता है। मीटिंगों की नोटिसें, कांग्रेस के पर्चे से लेकर लोगों के खत, निवेदन और हाथ से लिखी अपीलें तक उसमें चिपकी रहती हैं। और फिर मेरे अचरज का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि यहाँ भी एक बड़ा-सा नोटिस बोर्ड टँगा है। पास जाकर पढ़ने का लोभ संवरण न कर पाया। देखा, उस पर कई क्लबों की नोटिसें टँगी हैं। मेम्बरशिप फ्र चन्दा भी लिखा है। क्लबों का उद्देश्य है मनोरंजन, स्वास्थ्यवर्द्धन, कला प्रदर्शन ! नये नोटिस बोर्ड के पास मुश्किल से एक मिनट खड़ा रहा होऊँगा कि किसी ने पीछे से आकर कंधे पर हाथ रखा। मैंने मुड़कर देखा, एक नाटा-सा अंग्रेज हाथ में एक अलबम लिये मुझसे कह रहा था, “हमारे क्लब में आइए। आपको महँगा नहीं पड़ेगा।” मेरे जवाब देने के पहले ही उसने अलबम खोला और चित्र दिखाए। उन चित्रों में कुछ में स्वास्थ्य था, कुछ में सौन्दर्य भी। प्रदर्शन सभी में था, कला किसी में नहीं। मुझे असमंजस में पड़ा देखकर उसने समझाना शुरू किया कि देखिए, इसमें से इतने शिलिंग तो प्रदर्शन के हैं, इतने शिलिंग कॉफी के। लेकिन ये इतने बहुत से शिलिंग क्लब के सदस्य बनने के हैं। फिर वह दो कदम पीछे हटा। अदालत में वकील जिस मुद्रा में दलील देते हैं, उसी मुद्रा में उँगली उठाकर बोला, “आप विदेशी हैं, इसलिए आप जानना चाहेंगे कि क्लब की

सदस्यता की इतनी बड़ी फीस हम क्यों लेते हैं ? बात यह है कि हम कोई ऐरे-गैरे गन्दे व्यवसायवाले लोग नहीं हैं। हमारा यह क्लब पुलिस के कानून-कायदों से पूर्णतया सम्मत, इज्जतदार लोगों का क्लब है। यहाँ पुलिस का कानून है कि सार्वजनिक स्थान पर नग्न नृत्य नहीं हो सकता। उसके लिए एक उद्देश्यपूर्ण नियम विधानयुक्त प्राइवेट क्लब होना चाहिए जिसके चन्दे का एक हिस्सा टैक्स के रूप में सरकार को जाना चाहिए। कुछ लोग कानून-कायदों की अवहेलना करके भोले परदेशियों को फँसाते हैं। हमारी एक शानदार इंग्लिश परम्परा है। हम पहले आपको क्लब का मेम्बर बनायेंगे, रजिस्टर पर आपके दस्तखत लेंगे, फिर आप पूरी शाम बिना बाधा के हमारे प्रदर्शन का सुख ले सकेंगे।”

अगर सत्येन्द्र या वासिफ साथ होते तो शायद मैं एक बार इस अत्यन्त कानून-सम्मत इंग्लिश परम्परा की मर्यादा के अनुकूल प्रदर्शन को भी देखने का दुःसाहस करता लेकिन अजनबी आदमी का अकेले जाना मुझे जँचा नहीं। मुझे उस वक्त और कोई बात नहीं सूझी सिवाय इसके कि उससे यह कह दूँ कि पैसे ही नहीं हैं। यह बात सुनकर उसके मुँह पर विचित्र भाव आया। उसने निराशा से हाथ हिलाये, मुड़ा, फिर लौटा और बोला, “आप पाकिस्तानी लगते हैं। आप चाहें तो हम आपके लिए कुछ रियायत कर देंगे। पाकिस्तानी हमारे बहुत अच्छे ग्राहक हैं। माफ कीजिएगा, आपका नाम क्या है ?” मैंने नाम बताया तो खुश होकर बोला, “बाराटी...डॉ. बाराटी, द्राट ए ब्यूटीफुल पाकिस्तानी नेम ! पाकिस्तानीज हैव मोस्ट पोपुलर नेम्स। दे आर आवर फ्रेण्ड्स। सारी, यू हैव नो मनी।”

परम्परा और कानून-सम्मत प्रदर्शन का सबसे प्रख्यात स्थान है पिकाडली के पास ‘विण्डमिल’ नामक प्रदर्शनगृह। वह प्रदर्शनगृह एक बहुत बड़े ऑपेरा हाल के मानिन्द है जिसमें स्टेज पर चौबीस घण्टों में लगभग सोलह घण्टे निरन्तर नृत्य-प्रदर्शन होता रहता है। वे नृत्य छोटी-छोटी गीति-नाटिकाओं के रूप में होते हैं जिनमें दर्जनों नर्तकियाँ भाग लेती हैं। सभी के शरीर पर नाममात्र के वस्त्र होते हैं। उस नृत्य-प्रदर्शन में नृत्य, नाटक, गायन, उछल-कूद, सरकस, जिमनास्टिक और अश्लील नौटंकी—सभी के तत्त्व घुले-मिले रहते हैं। टिकट लीजिए और जब तक आप बैठ सकें, बैठकर देखते रहिए। सब कुछ कायदे से। यही नहीं, बल्कि विण्डमिल थियेटर की परिचय-पुस्तिका खरीदिए तो उसमें इसका गौरवपूर्ण उल्लेख मिलेगा कि सौन्दर्य और कला के इस स्वस्थ प्रदर्शन की गौरवपूर्ण परम्परा का निर्वाह उन्होंने लगभग एक शताब्दी से किया है। इमारत की चोटी पर आकाश में बिजली के बल्बों से बनी हवाचक्की के चार बड़े-बड़े डैने निरन्तर घूम रहे हैं। ये डैने सौ साल से घूम रहे हैं। इनकी छाया में संसार के बड़े लोगों का स्वागत करने का सौभाग्य विण्डमिल थियेटर को मिला है।

मुझे ऊपर बालकनी का टिकट मिला था। मैंने देखा, दर्शकों में कुछ युवक थे। बाकी सब अघेड़ और बूढ़े। बाहर युवकों का व्यवहार अत्यन्त उच्छृंखल था। दीवारों

पर टैंगी तस्वीरों को देखकर वे सीटियाँ बजाते थे, उछलते थे। बूढ़े और अधेड़ अत्यन्त संयत थे। सधे कदमों से, बिना क्यू तोड़े, शान्त वे हाल में आये, अपने-अपने ओवरकोट उतारकर उन्होंने काउण्टर पर बैठी लड़की को दिये। युवकों की धक्का-मुक्की और उच्छृंखलता के बीच वे अत्यन्त शिष्टाचारपूर्वक रास्ता माँगते हुए अपनी-अपनी सीटों पर चुपचाप बैठ गये। लेकिन अँधेरा होना था, परदे का खुलना, था, अर्द्धनग्न नर्तकियों का स्टेज पर आना था कि आलम बिल्कुल बदल गया। अब युवक-युवतियाँ चुप बैठे थे। कुछ सहमे हुए, कुछ ऐसे थे कि मानो स्त्री का शरीर, उसका सौन्दर्य कहीं-न-कहीं सम्भ्रमपूर्ण आदर की वस्तु है। बेजान तस्वीरों पर सीटियाँ मार लें लेकिन यहाँ नहीं। बूढ़े चपल थे। बार-बार बोल रहे थे। और स्टेज पर कोई भी नर्तकी जरा भी मुक्त प्रदर्शन करती तो वे उत्साह से सीट पर उछल जाते। फटे गले की एक विचित्र बूढ़ी खिलखिलाहट गूँज उठती। थोड़ी देर बाद अन्तराल हुआ। परदा गिरा, लाइटें जलीं और जैसे जादू की तरह सारा दृश्य बदल गया। युवकों ने सिगरेटें सुलगायीं, हँसी-मजाक शुरू हुए, बूढ़ों ने युवकों की ओर तिरस्कार और अप्रसन्नता की दृष्टि से देखा। संयत ढंग से उठे, शिष्टाचार से रास्ता माँगते हुए बाहर आ गये। अपने ओवरकोट लिये और नीचे उतरते हुए एक-दूसरे से बोले, “पता नहीं, आज के नौजवानों में सभ्यता और शिष्टाचार की कमी क्यों होती जा रही है ?” फिर मेरी ओर देखकर एक बोले, “यह भी नहीं सोचते कि विदेशी लोग हमारे नौजवानों के बारे में कितनी बुरी धारणा बनाते होंगे ?”

और जैसे सहसा उन पर इस बात की जिम्मेदारी आ गयी कि विदेशियों के मन में जो धारणा नौजवानों ने बिगाड़ दी है, उसे वे प्राणपण से सुधारें। वे मैनेजर के काउण्टर के सामने रुके, उसे बड़े अदब-कायदे से प्रदर्शन के कलात्मक स्तर के लिए बधाई दी। (मुझे सुनाने के लिए शायद) जोर से इस बात की प्रशंसा की कि विण्डमिल जैसे इंग्लिश थियेटर कम्पनियाँ उच्च स्तर के मनोरंजन की इंग्लिश परम्परा का निर्वाह कर रही हैं और पेरिस, हैम्बर्ग जैसे नगरों की उच्छृंखल अश्लीलता का तिरस्कार करती हैं। साथ ही बहुत धन्यवाद देते हुए उन्होंने रंगीन परिचय-पुस्तिकाएँ और एलबम लौटाये, हाथ मिलाया और बाहर चलने लगा। दरवाजे से निकलकर दो-चार कदम चले होंगे कि एक कर्मचारी दौड़ा-दौड़ा आया। उतने ही अदब-कायदे से उसने उस बूढ़े को रोककर क्षमा माँगते हुए कहा, “आप मुझे क्षमा करेंगे यदि आपको मैं याद दिलाऊँ कि शायद एक दूरबीन, जो जाते समय आप काउण्टर से थोड़ी देर के लिए माँग ले गये थे, आपकी जेब में रह गयी है। हो सकता है, यह सिर्फ मेरा ख्याल हो लेकिन अगर आप अपनी जेब में देख लें तो यह हम पर बड़ी कृपा होगी।” बूढ़ा अचकचाकर रुका और उससे कुछ कहते न बना, जेब से दूरबीन निकाली और उसे दे दी। फिर चारों तरफ देखा कि किसी ने देखा तो नहीं। दुर्भाग्य से मैं पास ही था। और बरबस मुँह पर आयी मुसकान को रोक भी नहीं पा रहा था। मुझे देखते ही उसे जैसे करेण्ट छू गयी हो। बुड़बुड़ाया, “कमबख्त काले लोग

जाने कहाँ से घुस आये हैं ! हमारे नौजवान भी इन्हीं के गन्दे तौर-तरीके सीख रहे हैं।" और गुस्से से पाँव पटकता हुआ भीड़ में खो गया।

यह तो नहीं मालूम कि सचमुच अंग्रेज नौजवान पीढ़ी रंगभेद की ग्रन्थियों से ऊपर उठ पायी है या नहीं लेकिन इतना जरूर है कि बूढ़ों के मुकाबले में वे ज्यादा आसानी से दूसरों से घुल-मिल जाते हैं। जिन कहवाघरों में या नृत्य-क्लबों में अंग्रेज नौजवानों का अड्डा है, वहाँ जमैकन, नाइजीरियन और एशिया के विविध देशों के युवक-युवतियाँ स्वछन्दता से आते-जाते हैं। उनमें आपस में काफी आत्मीयता और बेतकल्लुफी भी है। अब तो ट्विस्ट नृत्य दो-तीन साल पुराना पड़ गया लेकिन उस प्रमय वह ताजा-ताजा पश्चिम में उभरा था, नौजवानों में उसका काफी जोर था और पुराने विचारों के लोग उसकी भरपूर निन्दा कर रहे थे। तब तक मैंने ट्विस्ट नृत्य नहीं देखा था। बम्बई में उस समय तक राक-एन-रोल और चा-चा-चा ही पहुँच पाया था। सत्येन्द्र क्लब ले गये। बताया गया कि वह इस वक्त नौजवान पीढ़ी का सबसे लोकप्रिय अड्डा है। द्वार से ही एक नये किस्म का खुलाव, बेतकल्लुफी दिखायी पड़ी। वह लुकी-छिपी दलाली, कानून-कायदों की आड़ में रूप का व्यवसाय, झूठे अदब-कायदों और शिष्टाचार की नकाब में अतृप्त लोभ और लालसा, वह सब यहाँ नहीं दीखा। एक बहुत बड़ा हॉल था। एक कोने में बैण्ड, दूसरे कोने में कॉफी और चाय का इन्तजाम और उसी के पास एक-दूसरे के ऊपर तरतीबवार रखी हुई छोटी-छोटी कुरसियों का ढेर। बाकी सारे हॉल में कोई फर्नीचर नहीं, दीवारें बिल्कुल खाली, गोया अनगढ़ चट्टानों की एक बहुत बड़ी गुफा हो। बैण्ड जिस तेज धुन पर बज रहा था, वह कम-से-कम मुझे तो जीवनशक्ति से पूर्ण ओजस्वी धुन लगी। विण्डमिल थियेटर की लिबलिबी रगिनियाँ, बारीक मिनमिन आवाज में कामुकता जगाने वाले संवाद, दीवारों पर रँगी-चुंगी तस्वीरें, मखमली गलीचे—वे सब यहाँ नहीं थे। एक शक्तिभरा संगीत था और उसकी धुन पर अदम्य वेगवाला नृत्य। कम-से-कम सौ-सवा सौ जोड़े फर्श पर नृत्य कर रहे थे। कसे बदनवाले, गठीले अफ्रीकन युवकों की भरमार थी। लगता था जैसे आदिम वन-जीवन का उन्मुक्त आवेग अपने सहज रूप में यहाँ फिर से जाग उठा है। बैण्ड रुका और नृत्य में घनघोर श्रम के कारण माथे से पसीना पोंछते हुए युवक-युवतियाँ कॉफी वाले कोने की ओर बढ़े। जो लड़कियाँ बहुत थक गयी थीं, उन्होंने अपने-आप कुरसियाँ खींची और बैठकर सुस्ताने लगीं। कसरत की थकान के बाद की ताजगी उन सबके चेहरे पर थी। मुझे ट्विस्ट के बारे में जो कुछ बाहर कहा जाता रहा, वह सब कल्पित अधिक लगा। सत्येन्द्र जी मेरी इस निष्पत्ति को जानकर खुश हुए। और तब जाकर उन्होंने स्वीकारा कि उन्हें ट्विस्ट आता है, वह यहाँ के सदस्य हैं क्योंकि ट्विस्ट में वही शक्ति और ताजगी उन्हें लगी जो कुछ वर्षों पहले हिन्दी नयी कविता के प्रथम उन्मेष में लगी थी। इतने उत्साहित थे वह कि उन्होंने खुद ट्विस्ट करके दिखाना शुरू किया। और तब एक प्रशंसा और आत्मीयता की खिलखिलाहट चारों ओर सुन पड़ी। गोरे-काले

युवक-युवतियाँ मेरे मित्र के द्विस्ट पर प्रसन्न हो रहे थे। कितनी अलग थी वह उन्मुक्त खिलखिलाहट उस दबी खिलखिलाहट से जो विण्डमिल थियेटर के अँधेरे में बीच-बीच में सुन पड़ती थी।

लेकिन मेरी शंकाएँ अभी बाकी थीं। मान लिया कि यहाँ नयी पीढ़ी का सहज उल्लासभरा नव-उन्मेष है। लेकिन उन नशे के अड्डों और बीटनिक कहवाखानों में भी क्या यही सहज उन्मेष है ? मान लिया कि उन नये लोगों के जीवन में कुण्ठा, भ्रम और निराशा है, यह भी मान लिया कि इसका जिम्मा उस पुरानी पीढ़ी पर है जिसने उन्हें छलावे में रखा, लेकिन यह तहखानों का अँधेरा, भाँग और कोकीन का नशा, लम्बे बालों का रूखा उलझाव और हर चीज को धिक्कारने की उग्रता क्या सचमुच उन्हें कहीं ले जा रही है ? इसका जवाब मुझे दिया एक पत्रकार ने जिससे मेरी भेंट दिलचस्प ढंग से हुई। इंग्लिश स्पीकिंग यूनियन ने एक स्वागत-समारोह किया था। उसमें औपचारिक समारोह के बाद लोग जलपान (यानी मद्यपान और मुझ जैसे छह-सात लोगों का टमाटर और सन्तारा-रसपान) करते हुए एक-दूसरे से मिल-जुल रहे थे। इतने में वह मेरे पास आया और बोला, “आपने अपने भाषण में कहा कि आपको यहाँ स्काटलैण्ड बहुत पसन्द आया लेकिन आपने यह नहीं बताया कि आपको यहाँ क्या पसन्द नहीं आया।” मैंने कहा, “कई चीजें। मसलन यहाँ की ‘डेली मिरर’-मार्का पत्रकारिता। वैसे भी दो-चार प्रतिष्ठित अखबारों को छोड़ दीजिए तो सामान्यतया आपके बाकी अखबार काफी संकीर्ण स्थानीय दृष्टि और सनसनीखेज खबरों को ज्यादा तरजीह देते हैं। नतीजा यह है कि एक सामान्य अंग्रेज अखबारों का पाठक भारतीय अखबारों के पाठक से कम ज्ञान रखता है। हाँ, उससे यह जरूर पूछ लीजिए कि किस डचेज ने इयूक को तलाक दिया ? किस शिक्षा-संस्था में भ्रष्टाचार है ? लेकिन उससे पूछिए कि हिन्दुस्तान या ईजिप्ट में क्या हो रहा है तो”...“यानी आप डेली मिरर से बहुत नाराज हैं—” उसने पूछा। मैंने कहा, “हाँ, एक तरह से” उसने झुककर अपना गिलास मेरे गिलास से मिलाया और हँसकर बोला, “मैं अभागा डेली मिरर का सांस्कृतिक संवाददाता हूँ।” मेरा चेहरा फक। फिर मेरी ओर देखकर हँसा और बोला, “लेकिन आप चिन्ता न करें। आप स्काटलैण्ड को प्यार करने लगे हैं और मैं स्काटिश हूँ। आपके सौ खून मुआफ !” फिर हम दोनों अलग सोफे पर बैठ गये और बातें चलने लगीं। उसने बताया कि इन गुप्त कहवाखानों और बीटनिक अड्डों के बारे में बाहर जितना खौफनाक, सनसनीखेज बिम्ब बना हुआ है, वास्तव में वैसा है नहीं। उनमें दोनों प्रवृत्तियाँ हैं। एक वह विक्षोभ भी जिसे अभिव्यक्ति का सही रास्ता नहीं मिलता तो इस तरह से रास्तों से फूटता है। और दूसरी एक अपरिपक्व अधीरता इस बात की भी कि अपने दर्द और अपनी पीड़ा को कुछ बढ़ा-चढ़ाकर दिखायें। लेकिन इसके साथ-साथ एक तड़पभरी तलाश भी है इस बात की कि जो उपनिवेशवादी झूठे मुखौटे उनके पुरखों ने लगा रखे थे, वे कम-से-कम उन मुखौटों को तो नहीं ही स्वीकार करेंगे। लेकिन सभी में सच्ची तड़प को एक सच्चा आकार देने की क्षमता नहीं होती और ऐसे अधकचरे लोग पुराने

मुखौटे त्यागकर घबराहट में कुछ दूसरे मुखौटे लगाने लगे हैं जो उन्हें सोहते नहीं। मसलन उसने बताया कि चेल्सी में पुलिस ने जब छापा मारा और बहुत से लोगों को पकड़ा तो उनमें से अधिकांश न लेखक निकले, न चित्रकार; अधिकतर वे नौजवान थे जिन्होंने वचन में बड़े-बड़े सपने देखे थे। बड़े होकर जिन्हें साधारण दफ्तरों में क्लर्क, डाकखाने की मुंशीगीरी, रेलवे के गोदाम घरों की मुनीमी से सन्तोष करना पड़ा। नीरस, अत्यन्त सूखा काम, यान्त्रिक दिनचर्या, जीवन में गहराई का कोई आयाम नहीं। कुछ भी न बन सके, इसकी कचोट। इसलिए दिन भर बहीखातों की खानापूरी करने के बाद शाम को इन अँधेरे तहखानों वाले कहवाघरों में जाकर बीटनिक बनना, एक गुह्य अर्थोवाली शब्दावली में बात करना, यह सब उन्हें एक नये प्रकार का 'रोमांच' देता है जो उनके रोजमर्रा की नीरसता से कुछ अलग है। मगर चन्द ही दिनों में यह सब भी उतना ही यान्त्रिक और नीरस लगने लगता है। इनमें से कुछ तो ऐसे थे जिनके लम्बे बाल भी नकली थे। दिन को दफ्तर में अपने साधारण बाल और रात को गुप्त कहवाघरों के लिए लम्बे, रूखे, उलझे बाल। फिर वह हँसा और बोला, "बेचारी लड़कियों की दूसरी दिक्कत है, उन्हें रात को कहवाघरों के लिए छोटे मर्दाने बाल और दिन को जहाँ काम करती हैं वहाँ के लिए खूबसूरत, लहरदार, झबरे बालों का इन्तजाम करना पड़ता है। यह सब कोई ऐसी चीज नहीं जिस पर पुराने आभिजात्य लोग इतने परेशान हों। उनको परेशानी दूसरी चीज से है। वह यह कि इनमें से जो सचमुच सोचते-विचारते हैं, वे पुराने मुखौटों की जिस तरह धज्जियाँ उड़ाते हैं, उसका जवाब किसी के पास नहीं। रहीं वे रोमांचक खबरें जो इनके बारे में छपती हैं तो इसका कारण यह भी है कि अगर वे थोड़ी सनसनीखेज न हों तो वे लोग और भी निराश हों। ड्यूकों और डचेजों में गुप्त प्रणय और तलाकों के सनसनीखेज किस्से, अघेड़ विधवाओं के अपराधयुक्त प्रेम आदि-आदि से पाठक इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि अगर नयी पीढ़ी के बारे में उतनी सनसनीखेज खबरें उन्हें पढ़ने को न मिलें तो वे और भी निराश होंगे।"

उसकी बात में शायद सचाई भी है। क्या मजेदार संकट है ! नयी पीढ़ी की अतिरंजित तस्वीर पेश करो तो भी निराशा कि हाय, इन्हें क्या होता जा रहा है ! और उनकी सही तस्वीर पेश करो तो यह निराशा कि अरे, इनका भ्रष्टाचार तो उतना भी रोमांचक नहीं जितना पुरानी पीढ़ी के आभिजात्य लोगों का था ! क्या कुछ ऐसी ही स्थिति थी 19वीं शताब्दी की, जिसकी मनोवृत्ति के बारे में आस्कर वाइल्ड ने कहा था—साहित्य में यथार्थ चेहरा दिखाओ तो भी लोग नाराज होते हैं, कल्पित रूमानी चेहरा दिखाओ तो भी नाराज होते हैं। ठीक उस कैलीबन की तरह जो दर्पण में अपना बेडौल चेहरा देखता है तो भी नाराज होता है कि यह कितना बदतमीज दर्पण है ! और अगर उसमें अपना असली चेहरा नहीं देखता तो भी नाराज होता है कि यह कितना निकम्मा दर्पण है !

"आपने 'बियाण्ड द फ्रिंज' देखा ? जरूर देखिए। उसमें चार बिलकुल नये छोकरे

हैं लेकिन क्या तूफान बरपा कर रक्खा है उन्होंने !” पत्रकार मित्र ने विदा लेते-लेते कहा।

मैं ‘बियाण्ड द फ्रिंज’ देखने गया। पच्चीस से तीस की उम्र के चार दोस्त मिले और आपस की गपशप में उन्होंने इस कार्यक्रम की योजना बनायी। एक-आध गोष्ठी में पहले वे छोटे-छोटे प्रहसन दिखाये गये। इन प्रहसनों में वे ही चारों बार-बार नये रूप धारण कर स्टेज पर उतरते और हर प्रहसन में राजनीतिक या सामाजिक जीवन के किसी ढोंग की बखिया उधेड़ते। शेक्सपीयर से लेकर तत्कालीन प्राइम मिनिस्टर मैकमिलन तक उनका लक्ष्य-वेध था।

दो ही एक प्रदर्शन के बाद वे इस कदर मशहूर हुए कि उनके प्रदर्शनों में तिल रखने को जगह नहीं। उनका पहला प्रदर्शन 10 मई, 1961 को हुआ था और अब मई सन् ’62 आ गयी और पूरे वर्ष हर रोज हाल पूरा भरा। कारण यह था कि बहुत कुछ जो अंग्रेज नवयुवक के मन में उबल रहा था, उसे इन नौजवानों ने अनायास वाणी दे दी थी और वह भी बड़े मजे में हँसते-हँसते। रंगमंच का सम्बन्ध इंग्लैण्ड में इधर नयी विद्रोही चेतना से जुड़ता रहा है। (जान आस्वार्न के नाटक ‘लुक बैक इन एंगर’ से ही एंग्री यंगमैन की चर्चा चली।)

इनका यह ‘रिव्यू’ विभिन्न विषयों पर छोटे-छोटे प्रहसनों की शृंखला था। न कोई खास रंगमंच-विधान, न कोई खास सजावट। और प्रभाव इस कदर गहरा कि जिस प्रहसन में ये तत्कालीन प्रधानमन्त्री मैकमिलन की नकल उतारते थे, उसे देखने के लिए एक दिन बिना किसी पूर्वघोषणा के मैकमिलन आ गये। इण्टरवल हुआ, बत्तियाँ जलीं तो लोगों ने पाया कि बीच में चुपचाप प्रधानमन्त्री बैठा हुआ है।

अन्त में शायद श्रद्धांजलि-रूप में इन्होंने एक सीन पेश किया बतर्ज शेक्सपीयर। चारों अपनी पैण्टों को चूड़ीदार पाजामा बनाकर गले में गोल स्कार्फ बाँध तलवार लेकर स्टेज पर उतर आये। दो-एक संवाद प्रकृति वर्णन के बोलकर फिर कुछ जादू-टोना और अय्यारी होने लगी और स्टेज पर पटाखा फुटाकर ‘प्रभाव’ के लिए कुछ धुआँ भी पैदा कर दिया गया। और फिर सीढ़ियों पर तलवार की लड़ाई छिड़ गयी। तलवार के हर वार के पहले एक काव्यात्मक डायलॉग बोला जाता, तलवार म्यान में खोंसते समय फिर एक काव्यात्मक डायलॉग बोला जाता, पुनः तलवार निकालते वक्त एक डायलॉग चूँकि ट्रेजेडी होनी जरूरी थी अतः एक अभिनेता चिल्लाया, “याद नहीं तुम्हें कि नाटक दुखान्त है। अतः अगर तलवार भारी है तो भी उठाओ और मुझे मारो।” बहरहाल तलवार चली और एक लम्बी आह के साथ नायक गिर पड़ा। गिरते समय फिर एक डायलॉग। तड़पते हुए एक डायलॉग। प्राण छोड़ते समय फिर एक लम्बा डायलॉग। और फिर हिचकी और सब शान्त। शेष तीनों ग्लानि से सिर झुकाये आगे बढ़े-उसे उठाने को-कि मुरदा नायक तड़पकर उठ खड़ा हुआ, “ठहरो ! अभी मौत के बाद का एक डायलॉग मुझे बोलना बाकी है !”

व्यंग्य तीखा था और शायद कुछ कठोर भी। लेकिन वे कटिबद्ध थे कि जो-जो

उनकी सांस्कृतिक परम्परा में झूठी गरिमा से मण्डित हैं, उसको बखोंगे नहीं। यह सचमुच केवल लक्ष्यहीन विद्रोह नहीं था, केवल फैशन नहीं था, इतिहास के सन्दर्भ में अपनी स्थिति को ठीक-ठीक सामने और समझाने की कोशिश थी—हर तरह के रंगीन भुलावों और छलावों से दूर। अपने अतीत को जाँचकर उसकी गलत बेमानी जंजीरों से मुक्त होने की छटपटाहट। और वह जरूरी है यदि नयी पीढ़ी को अनिश्चय से मुक्त होना है। नये अंग्रेज कवि जॉर्ज बार्कर की एक कविता है 'रेजोल्यूशन ऑफ डिपेन्डेन्स'। उसमें वह वर्ड्सवर्थ से एक भेंट कल्पित करता है और जब वर्ड्सवर्थ उसे फटकारता हुआ कहता है कि तुम एक निश्चय के विन्दु पर पहुँचो अन्यथा आत्महत्या अनिवार्य है तो नया कवि कहता है, "हम निश्चय तक पहुँच सकते हैं, संकल्पित हो सकते हैं लेकिन पहले हमें हमारे उस अतीत से मुक्त करो जो ढोंगयुक्त है, निरर्थक है, अन्धा है।"

उनका यह भी ख्याल है कि आज, उनकी वर्तमान परिस्थिति में भी जो असंगतियाँ लौट-लौट आती हैं, वे वस्तुतः उनके उपनिवेशवादी पूर्वजों के अतीत के ही प्रेत हैं। यह भावना और भी उभरकर आयी है नये रिव्यू में जिसका नाम है 'इंग्लैण्ड ! ओह इंग्लैण्ड !' इन चारों में से डडले मूर इस नये रिव्यू प्रदर्शन में शामिल हैं। इस नये कार्यक्रम के विषय अधिक सामाजिक महत्त्व के हैं। एक प्रहसन है कुछ प्रेतविद्या के बारे में : प्रेत-खोज विद्या का दफ्तर। प्रेतविशेषज्ञ बैठे हैं। घण्टी बजती है। एक बूढ़ा और एक बुढ़िया प्रवेश करते हैं। उन्होंने पहले से समय माँग रखा है। बूढ़े की पोशाक पुराने सिविल सर्विस के अफसरों वाली है और उसकी जेब के पास तमगे भी लटक रहे हैं। वह बड़ा अफसर रहा है। गवर्नर तक रह चुका है। बर्मा, मलाया, लंका, भारत, रोडेशिया, सूडान—हर जगह उसने सत्तनते बतानिया की खिदमत की। जब वह लौटकर आया तो यहाँ उसने गाँव में एक पुरानी कोठी खरीदी और उसकी दीवारों पर शिकार में मारे हुए शेर और घड़ियाल की खालें टाँगीं। मगर बूढ़ी की शिकायत है कि हर जगह उसके पास बीस-बीस नौकर रहे; यहाँ अपने देश में उसको झाड़ू भी हाथ से लगानी पड़ती है। बूढ़े की शिकायत है कि गाँववाले उसे सलाम तक नहीं करते।

प्रेतविशेषज्ञ ऊबकर खड़ा हो जाता है। कहता है, "इन बातों का इलाज प्रेत-विद्या के पास नहीं है। आप मेरा वक्त बरबाद न करें !" बूढ़ा-बूढ़ी दोनों उसे हाथ जोड़कर बिठाते हैं और कहते हैं, "आप पूरी बात तो सुनें ! हमने सारी जिन्दगी की गाढ़ी-कमायी इस जायदाद को खरीदने में लगा दी और अब हमने पाया कि यह तो भुतही है !"

"भुतही है ?"

"जी, एक भूत है जो रोज रात को ठीक बारह बजे आता है और पिछवाड़े के कमरे की साँकल खड़काता है।"

"सच ? बधाई ! बधाई !" प्रेत-विद्या विशेषज्ञ खुशी से उछलने लगता है। दोनों बूढ़े-बूढ़ी चकित उसकी ओर देखते हैं तो वह अपनी खुशी का कारण समझाता है कि

वे भाग्यशाली हैं कि उन्हें इस भौतिकतावादी युग में भी एक भूत मिला। वरना अब भूत कहाँ मिलते हैं ? एक जमाना था जब इसी इंग्लैण्ड में क्या-क्या आन-वान-शान वाले भूत हुआ करते थे जिन्हें शेक्सपीयर तक अपने नाटकों में चित्रित करते थे। अब तो सभी भूत बेचारे पता नहीं कहाँ चले गये ! आप धन्य हैं ! आपकी किस्मत तेज है कि आपको भूत मिला !”

लेकिन सोचिए तो ! बूढ़ी करुण स्वर में बोली, “वह बारह बजे रात को आकर हमारी नींद खराब करता है !”

“तो क्या हुआ ? सोचिए कि कितना शरीफ भूत है आपका ! सिर्फ जगाता ही तो है ! वरना भूत क्या-क्या नहीं करते !”—प्रेतविशेषज्ञ कहता है।

“मगर हमने जायदाद खरीदी थी; भूत तो नहीं !”—बूढ़ा बोला।

“ठीक है, उसका इन्तजाम तो हम कर सकते हैं। हम एक विधिवत् शोध शुरू कर देंगे। फिर आपके भूत के बारे में अपनी सोसायटी की रिपोर्ट अमेरिकन अखबारों में छपायेंगे। फिर आप देखिए कि अमेरिकन दूरिस्तों की भीड़ आपकी जायदाद देखने साल भर आती रहेगी। शायद एक बस सर्विस और एक होटल खोलना पड़े। उसमें हमारी सोसायटी आप से आधा साझा कर लेगी। यह तो खासा देशसेवक भूत है। काफी फॉरेन एक्सचेंज लायेगा।”

“आप हमारी समस्या को समझते नहीं।” बूढ़े-बूढ़ी उठते हुए कहते हैं, “यह ढीठ भूत रोज रात को बारह बजे पिछवाड़े के कमरे की साँकल खटकाता है। उस कमरे में हमारी जवान क्वाँरी लड़की सोती है और इस भूत का चेहरा बिलकुल जमैकन नीग्रो युवक का-सा है !”

इस प्रहसन का नाम बहुत सांकेतिक है। ए घोस्ट ऑफ वन्स ओन—‘आपका अपना भूत’ या यों कहिए कि यह भूत तो महाराज आपने ही जगाया है ! यानी कैलोबन लौटा है और इस कदर ढीठ होकर कि उन दरवाजों की साँकलें खटका रहा है जहाँ...

यह पूरी संस्कृति इस संकट के समक्ष खड़ी हुई है और स्वयं इस संस्कृति के अन्दर प्राचीन और वर्तमान एक-दूसरे के समक्ष असहमति और विरोध में खड़े हो गये हैं। पुराने लोग अब भी उन उपनिवेशवादी धारणाओं से छूट नहीं पा रहे। जब भी उसका कोई अंश वर्तमान सन्दर्भ में झूठा पड़ने लगता है तभी तुरन्त वे उसे एक नया बाना पहनाकर नये ढंग से प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करने लगते हैं और नये हैं कि बार-बार इस बात की चेतावनी देते हैं कि गलित और जर्जर धारणाएँ चाहे जितनी कलई चढ़ाकर नये रूप में पेश की जायें, अब वे चलने की नहीं। यह बात बहुत साफ हो गयी इस मण्डली के अन्तिम गीति प्रहसन में। उसका शीर्षक था ‘गीत देश भक्ति का’। जॉनबुल से आप परिचित ही होंगे। ऊँचा चिलिमचीनुमा हैट, कसा फ्राककोट, वास्कट, ब्रीचेजनुमा पैण्ट, बूट, भारी गवाडू चेहरा, लाल-लाल बड़ी-बड़ी आँखें, गेलिस कसे पैण्ट में से बाहर भागने को आतुर उदर और हैट पर कहीं पिन से नत्थी किया हुआ यूनियन जैक—यह जॉनबुल की एक सर्वमान्य प्रतिमा है जो उपनिवेशवादी

शोपणकर्ता गोरे शासक का प्रतीक रही है। स्टेज पर वही अपने चिरपरिचित जॉनबुल महाशय अवतरित होते हैं—अपना कोड़ा चारों ओर घुमाते हुए। मुश्किल यह है कि कोड़े में मूँठ तो है लेकिन और सब गायब हो चुका है। अचरज से वह पाते हैं कि न कोई उनका कहा मान रहा है, न उनसे कोई खौफ खाता है। कई दुःखद और हास्यास्पद अनुभवों के बाद अब उनको महसूस होता है कि जमाना बदल गया है। इस बार वह स्टेज पर आते हैं तो हाथ में कोड़े की जगह उनके छोटे सपूत का हाथ है जो सूट, पैण्ट, टाई, तरतीब से कढ़े वाल और कोट के बटन में एक फूल लगाये हुए हैं। ज्ञात होता है कि वह जॉनबुल के लायक सपूत हैं जो अब उनका कार्यभार सँभालेंगे। जॉनबुल के आश्रित, सहयोगी और सरकारी—सभी के निराश चेहरे प्रसन्न हो उठते हैं। यह जूनियर जॉनबुल अब सबकी जर्जर और बोझी पाथर भार नैया जरूर पार लगा देंगे। ज्ञात होता है कि इन सुन्दर, सुशिक्षित, विनम्र, मिष्टभाषी, अपने पिता की प्रतिमा से बिलकुल विपरीत किन्तु उसी अभिप्राय के वाहक सपूत का नाम है 'कामनवेल्थ'। वे सब मिलकर कोरस में प्रसन्न होकर गाते हैं (वी नीड नॉट वरी एनी मोर, नाउ जॉनबुल हैज ए सन)—“अब हमें चिन्ता की कोई जरूरत नहीं क्योंकि जॉनबुल के एक सपूत पैदा हो गये हैं।” वे सब बारी-बारी से कुमार कामनवेल्थ को दुलारते हैं। बस, कठिनाई सिर्फ इतनी है कि वे शीन-काफ, सूरत-पोशाक से बिलकुल दुरुस्त हैं, बिल्कुल बबुआनुमा मगर उनके पैर बिलकुल निर्जीव हैं—भड़या जी खड़े नहीं हो पाते ! ज्यों ही किसी की उँगली छूटी कि बबुआ घड़ाम से मुँह के बल गिर पड़ता है। लेकिन लोगों की आशा क्षीण नहीं होती। वे फिर उसे उँगली पकड़कर, कन्धे पकड़कर, कमर पकड़कर खड़ा कर देते हैं और दुगुने उत्साह से गाते हैं—“अब चिन्ता की कोई बात नहीं, नाउ जॉनबुल हैज ए सन।” और ज्यों ही गाते-गाते वे उत्साह में दोनों हाथ उठाते हैं उँगली छूटती है और सपूत स्टेज पर औंधे मुँह गिरे नजर आते हैं।

सिर्फ स्टेज पर ही नहीं, बाहर वास्तविक जीवन में भी आप जरा-सा खरोंच दीजिए कि कामनवेल्थ, ब्रिटिश उदारता, एशिया और अफ्रीका से प्रेम की बात करने वाले पुराने गोरे दिमागों के अन्दर बसा हुआ साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी तेहा तुरन्त जाहिर हो जाता है। वैसे बेहतर यही है कि इसे खरोंचा न जाये क्योंकि वे लाचार हैं। अब इस जीवन में उससे मुक्ति नहीं पा सकते।

लेकिन मुझसे एक बार ऐसी भूल हो ही गयी। उस दिन शाम को रॉयल कॉमनवेल्थ सोसायटी में स्वागत-भोज था। हम दो-तीन भारतीय अतिथि थे, कुछ कॉमनवेल्थ देशों के प्रतिनिधि थे और एक कोई मेम साहब थीं जो कॉमनवेल्थ देशों में पारस्परिक सद्भाव और सहयोग बढ़ाने के मिशन में अपना जीवन अर्पित कर चुकी थीं। क्षमाप्रार्थी हूँ कि उनका नाम भूल गया हूँ। भोज की प्रमुख मेजबान वही थीं और उन्होंने जिन लोगों को मुलाकात के लिए बुलाया था, उनमें से एक आस्ट्रेलिया के सज्जन थे, दक्षिण रोडेशिया के हाई कमिश्नर थे तथा कुछ काउन्सिलर थे। बताया गया कि इस रॉयल कॉमनवेल्थ सोसायटी की स्थापना ही इसीलिए हुई थी कि कॉमनवेल्थ देशों में और

शासक और शासित का सम्बन्ध प्रमुख न बने बल्कि समकक्ष राष्ट्रों का भाईचारा और आपसी सहयोग विकसित हो। युद्ध में यह इमारत खण्डित हो गयी थी तो बाद में कॉमनवेल्थ के कई देशों ने धनराशि दी जिससे इसके कई हाल बने। हर देश के हाल में उसी की कला और संस्कृति के अनुरूप सज्जा की गयी। आस्ट्रेलियन सज्जन, हाई कमिश्नर साहब तथा कई प्रतिष्ठित काउन्सिलर काफी सधी हुई बातें कर रहे थे। मेम साहब हवा के घोड़े पर सवार थीं। उन्होंने गिनाना शुरू किया कि कॉमनवेल्थ के अन्य देशों की कला और संस्कृति के लिए हमने यह किया, हमने वह किया। और साथ-ही-साथ इस बात का भी अप्रत्यक्ष संकेत कि आज इन देशों में कला और संस्कृति का जो भी विकास है, यह हमारी उदार शासन-नीति का फल है।

शायद और कोई दिन होता तो मैं चुप रह जाता लेकिन उसके एक दिन पहले कई ऐसी यादें इकट्ठी हो गयी थीं जिन्होंने मुझे चोट पहुँचा रखी थी। अंग्रेजों का एक खास गौरव इस बात में सन्तुष्ट होता है कि वे बाहरवालों को उन पुराने लॉर्डों और इयूकों की विशाल कोठियाँ दिखलायें जो अपने जमाने में काले देशों में गवर्नर या वायसराय रह चुके थे और जिन्होंने संसार के कोने-कोने से अमूल्य कलाकृतियाँ बटोरकर एकत्र की थीं। उन्होंने अपनी सौ-सौ कमरोंवाली विशाल कोठियों में पूर्व का समस्त कला-ऐश्वर्य लाकर एकत्र किया था। खास तौर से उनका एक विशेष चर्चित संग्रहालय है, लॉर्ड कॉर्नवालिस की कोठी। उस विशाल कोठी में क्या नहीं था ! चन्दन, हाथी दाँत और चाँदी के पलंग, तरह-तरह के रत्नजटित आभूषण, बहुमूल्य मूर्तियाँ, सोने-चाँदी के जड़ाऊ बरतन, बनारस का किमखाब और मैसूर का हाथीदाँत। बाहर मीलों के घेरे में एक विशाल उपवन था जिसमें केम नदी की एक धारा काटकर लायी गयी थी। एक हिन्दुस्तानी पनचक्की बनायी गयी थी। उपवन में जगह-जगह भारतीय पेड़-पौधे लगाये गये थे और लॉर्ड कॉर्नवालिस के स्मारक के पास बनारस के एक साधु की मूर्ति स्थापित की गयी थी। यह सारी चीजें दुनिया के कोने-कोने से आनेवाले यात्रियों को दिखायी जाती हैं। इस बात के प्रमाणस्वरूप कि अंग्रेजी शासन शोषण नहीं करता था, कला का संरक्षण करता था।

अभागा मैं कि वहाँ घूमते समय कैम्ब्रिज या ऑक्सफोर्ड की भाषा और दिमाग लेकर चलने वाले अपने देश के कुछ महान द्रष्टाओं की भाँति अंग्रेजों की इस सांस्कृतिक महानता से प्रभावित न होकर कुछ और ही सोचता रहा। गुलाबकुंज के पास की उस पनचक्की को देखकर मुझे याद आया कि यह वही कॉर्नवालिस था जिसकी आज्ञा से टीपू सुल्तान की शान्त निरीह प्रजा पर अंग्रेजी सेना ने अमानुषिक अत्याचार किये थे। यह वृक्षों और पौधों का शौकीन लॉर्ड कॉर्नवालिस वही था जिसने बदले की भावना से हिन्दुस्तानियों को अपमानित करने के लिए हैदरअली के मकबरे के चारों ओर लगे हुए खूबसूरत लम्बे छायादार वृक्ष कटवाकर टुकड़े-टुकड़े कर खेतों में फिंकवा दिये थे क्योंकि बागों और फूलों का शौकीन हैदरअली धूर्त अंग्रेज कूटनीतिज्ञों को अपने अँगूठे के नीचे दाबकर रखता था। वे चन्दन, हाथी दाँत और चाँदी के पलंग मुझे याद दिलाते

रहे कि यह वही कॉर्नवालिस है जिसने पहली बार दिल्ली सम्राट को खिराज देना बन्द किया था और जिसने अवध—मेरी जन्मभूमि अवध—में पहली बार विशाल अंग्रेजी सेना की छावनी जबरदस्ती डलवायी थी और उसका सारा खर्च अवध से वसूल किया जाता था। और जब मैंने स्मारक के पास उसकी मानसिक उदारता का प्रमाण काशी के साधु की मूर्ति देखी तो मुझे याद आया कि यह वही कॉर्नवालिस था जिसने पहली बार यह नियम बनाया था कि कम्पनी के महत्वपूर्ण पदों पर भूलकर भी किसी हिन्दुस्तानी की नियुक्ति न की जाय और किसी पद पर अगर कोई काला आदमी काम करे तो उसी पद पर काम करने वाले गोरे से आधी तनख्वाह दी जाय। उन गुलाब के कुंजों में बहती नदी से मुझे याद आया कि उसने कावेरी और गंगा, दोनों के तटों पर खड़े होकर चुनौती दी थी कि अगर सल्तनते-बर्तानिया को किसी सरकार ने चुनौती दी तो इन नदियों में पानी नहीं, बागियों का लहू बहता नजर आयेगा। और जब कुछ अमरीकन यात्रियों को कोई गाइड समझा रहा था कि ये ब्रिटिश प्रशासक समर्थ, नीतिवान और उदार होते थे तो मुझे याद आया कि यह वही कॉर्नवालिस था जिसे स्वातन्त्र्य योद्धा अमरीकन जनरल वाशिंगटन ने मारकर भगा दिया था और उस ग्लानि को मिटाने के लिए लॉर्ड कॉर्नवालिस ने हिन्दुस्तान को नेस्तनाबूद कर ब्रिटिश जनता की निगाह में अपना रुतबा फिर से कायम किया था।

मेम साहब ठीक कह रही थीं कि कला और संस्कृति के संरक्षण और विकास के लिए सभी उपनिवेश गोरे शासकों के कृतज्ञ रहेंगे। इस कॉर्नवालिस-कोठरी की ताजा चोट के बावजूद मैं क्या जवाब दे सकता था ! पिछले चौदह-पन्द्रह साल से हिन्दुस्तान के कई बड़े-बड़े लोग यह सारा इतिहास भूलकर अपनी जनता को समझाने की कोशिश करते रहे हैं कि अंग्रेज और अंग्रेजी हमारे उद्धारक रहे हैं। क्या मैंने कभी उनकी बात काटने का दुःसाहस किया जो मेम साहब की बात काटूँ ? लेकिन मेम साहब इस बात पर तुली हुई थीं कि जब तक मैं उनके समर्थन में चार वाक्य न कह दूँ तब तक कामनवेल्थ में कैसे सद्भाव बढ़ेगा। हारकर मैं बोला, “आप सही कहती हैं कि सांस्कृतिक सहयोग बढ़ना चाहिए। मैं अब तक बीसियों आधुनिक कला संग्रहालय देख चुका हूँ। उनमें कनाडा, आस्ट्रेलिया या न्यूजीलैण्ड की एक-आध आधुनिक कृतियाँ कहीं दीख भी गयीं लेकिन अचरज है कि हिन्दुस्तान के किसी आधुनिक कलाकार की कोई कृति मुझे कहीं नहीं दिखी। क्या आपके खयाल में इंग्लैण्ड को यह नहीं करना चाहिए कि जहाँ आप अंग्रेजी कला और साहित्य को कॉमनवेल्थ देशों में पहुँचाने की कोशिश करते हैं, वहीं उन देशों के कला और साहित्य को भी अपने देश में समुचित सम्मान और प्रचार देने की व्यवस्था करें ?” मेम साहब मुस्करायी और बड़े स्नेहसिक्त स्वर में बोलीं, “आपकी आलोचना ठीक है लेकिन उसमें एक खामी है। हमारे यहाँ अधिकांश आधुनिक कला-गैलरियाँ व्यावसायिक गैलरियाँ हैं। जिन चीजों की माँग होती है, उन्हें वे एकत्र करती और बेचती हैं।”

“तो आप इस कॉमनवेल्थ सोसायटी की ओर से यह गैर व्यावसायिक लेकिन

अत्यन्त आवश्यक आयोजन क्यों नहीं करतीं ?”

“हम करते हैं। आप तो खुद ही बता रहे थे कि आप मिसेज आर्चर से भी मिले थे और अपने विक्टोरिया-एलबर्ट म्यूजियम और ब्रिटिश म्यूजियम में भारतीय कलाकृतियों का महत्त्वपूर्ण संकलन देखा। हम उसका अधिकाधिक प्रचार करने की कोशिश कर रहे हैं।”

“माफ कीजिएगा, मैं नीयत पर शक नहीं करता लेकिन मुझे लगता है कि उन कलाकृतियों का प्रचार करने में आपको तकलीफ नहीं होती क्योंकि वे हिन्दुस्तान पर आपकी विजय के चिह्न हैं। वे अधिकतर हमारे महलों, पुस्तकालयों और मठों से लूटकर लायी हुई चीजें हैं। आप उस कला का प्रचार क्यों नहीं करतीं जो आपके निरंकुश शासन के विरोध में शुरू हुई, पनपी और जिसकी जगायी हुई चेतना ने हिन्दुस्तान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया ?”

मेज पर सन्नाटा था। रोडेशिया के हाई कमिश्नर की मुद्रा ऐसी मानो वह ये बातें सुन ही नहीं रहा। आस्ट्रेलियन के मुख पर एक हलकी-सी मुस्कान क्योंकि एक शताब्दी तक आस्ट्रेलियाई साहित्य को भी खरे अंग्रेज ने तिरस्कृत कर रखा था। मेम साहब का चेहरा तमतमाया हुआ। स्पष्ट था कि वह कुछ कहना चाह रही हैं और उसे अन्दर-ही-अन्दर घोट रही हैं। जैसे-तैसे अपने को सँभालकर बोलीं, “मेरी समझ में नहीं आता कि कॉमनवेल्थ के देशों से कोई भी जब झगड़ आता है तो तुरन्त उपदेश देना शुरू करता है, ब्रिटेन को यह करना चाहिए, वह करना चाहिए। मैं कहती हूँ कि हमने आपको आजादी दी, अब आप खुदा के वास्ते हमें आजाद कीजिए कि हम खुद अपने-आप सोच सकें कि हमें क्या करना चाहिए...”।”

मैंने देखा, बात सीमा के बाहर जा चुकी है। मैंने इरादा नहीं किया था लेकिन खरोँच लग चुकी थी। ऊपर की पर्त हट गयी थी और जॉनबुल की प्रतिमा निकल आयी थी। मैं भी कुछ बहुत शान्त नहीं था, कॉर्नवालिस की कोठी का घाव टीसने लगा था। मैं सारी इच्छाशक्ति से प्रयत्न कर रहा था कि मेरे मुँह से अब कोई वाक्य न निकले। इतने में शान्त, अविचल साउथ रोडेशियन हाई कमिश्नर उठा और बोला, “अफ्रीका में एक अरबी कहावत प्रचलित है कि बहस और झगड़ा दोस्ती की सबसे पुख्ता बुनियाद है। आइए, अब हम सब इस आशा और शुभकामना के साथ विदा लें कि दोस्ती की यह बुनियाद पुख्ता होती चलेगी।”

लेकिन क्या इस तरह के तात्कालिक कूटनीतिक, सतही, समन्वयों से दोस्ती की नींव पुख्ता होती है ? क्योंकि सवाल सिर्फ दोस्ती का नहीं है। सवाल है उस पूरी संस्कृति का जिसकी नींवें उपनिवेशवादी मूल्यों पर स्थापित हुई थीं। और चूँकि वे मूल्य झूठे पड़ गये इसलिए उस संस्कृति की नींवें ही धसक चुकी हैं। जब तक उसे आमूल न बदला जाय, वहाँ अब कोई चीज पुख्ता कैसे रहे ? यही बात वहाँ का नया विक्षुब्ध चिन्तन बार-बार उठकर पूछता है कि कविताओं के माध्यम से, रंगमंच के माध्यम से। वस्तुतः यह हमारा सवाल है जो वहाँ की नयी पीढ़ी अपने मुहावरे में अपनी उपनिवेशवादी

परम्परा से पूछ रही है।

और यहीं सचमुच दोस्ती के पुख्ता होने की एक नयी बुनियाद हमें मिलती है। एक धारणा थी जिसने संस्कृति के निर्माण को एक गलत ढंग से आयोजित किया था। उसने रंगों के आधार पर निर्माण करनेवाले हाथों को बाँट दिया था। काले हाथ संचय करेंगे, निर्माण करेंगे। गोरे हाथ लूटेंगे, खायेंगे। इस खण्डित, विभाजित दृष्टि का परिणाम था कि मनुष्य और मनुष्य के बीच का सम्बन्ध गलत ढंग से परखा गया। प्रास्पेरो के हाथ में जादू के शासन की छड़ी कैलीबन के काले खुरदरे हाथों में मेहनत और मशक्कत के काम। उनका सम्बन्ध मनुष्य और मनुष्य का नहीं, मालिक और गुलाम का बन गया। मानवीय सम्बन्धों की इस मिथ्या धारणा पर जो संस्कृति पनपी, वह आज आमूल मिथ्या सिद्ध होने लगे तो क्या अचरज ? वहाँ का नया इन झूठे पड़ते हुए साधों के बीच एक प्रामाणिक, ठोस बुनियाद की तलाश कर रहा है। हो सकता है, उस बेचैनी में, उस तलाश में भटकन हो, अँधेरा भी हो। कुछ-कुछ अतिरिक्त और उच्छृंखल भी हो। लेकिन नये निर्माण का वही एक रास्ता है। प्रास्पेरोवाली मनोवृत्ति तो अब बड़ी और अशक्त हो चली है। वह लाख कोशिश करे, न दुर्घटना से बच सकता है न निगर्स से।

लेकिन नया अपनी खोज में भटक तो नहीं जायेगा ? चौंकाने की रोमांचकारी एकरसता ? या असफल विद्रोह के बाद की जड़ता ? या एक विशेष बिन्दु पर पहुँचकर विकास न कर पाने की असमर्थता और उससे उत्पन्न एक आन्तरिक विघटन ? और फिर उस खीझ को अपने बाद आनेवालों पर उतारने का अधैर्य ! आडेन, स्पेण्डर, हक्सले, केस्लर की परिणति सामने है। क्रुद्ध पीढ़ीवाले जॉन आस्बार्न के साथी जॉन वेन के उपनिवेशवादी लहजे का समुचित प्रतिरोध एक भारतीय लेखक डॉ. रघुवंश ने 'कल्पना' में किया था। क्या वह लहजा फिर, फिर लौटेगा ?

ब्रिटेन एक द्वीप है। द्वीप चाहे वह नदी का हो चाहे महासागर का, यदि सावधान न रहा तो कभी-कभी एक गलत सीख ग्रहण कर लेता है। लहराते ज्वार की तरह दस कदम आगे बढ़ना और फिर बीस कदम पीछे चले जाना।

1. The first part of the book is a historical survey of the development of the Indian economy from the pre-colonial period to the present. It covers the period from the 15th century to the 19th century, and then from the 19th century to the present. The author discusses the impact of British colonial rule on the Indian economy, and the role of the Indian economy in the development of the Indian nation.

2. The second part of the book is a critical analysis of the Indian economy in the post-independence period. It discusses the role of the Indian government in the development of the Indian economy, and the impact of the Indian economy on the Indian nation. The author also discusses the role of the Indian economy in the development of the Indian nation.

3. The third part of the book is a critical analysis of the Indian economy in the post-independence period. It discusses the role of the Indian government in the development of the Indian economy, and the impact of the Indian economy on the Indian nation. The author also discusses the role of the Indian economy in the development of the Indian nation.

जर्मनी :
पश्चिमी बर्लिन-पूर्वी बर्लिन

□ अप्रैल 1964

हिन्दु
महाभारत

महाभारत

नकाबों के पीछे : दीवारों के पार

अभी-अभी पिघली हुई बरफ से धुलकर ताजा, नम, खुशनुमा घास, पेड़ों की ऊँची डालियों में उलझी हुई सुबह की पीली धूप, अजनबी, अनजान चिड़ियों का चहचहाना और नाजुक जालीदार परदे खसकाते ही दीवार पर चोरी से चढ़कर कमरे में झाँकने की कोशिश करती हुई एक पीले फूलों वाली लतर का झिझककर पीछे हट जाना—मुझे यह क्यों लग रहा है कि बर्लिन की यह पहली-पहली सुबह वास्तव में पहली-पहली नहीं है, मैं और कभी इसे जी चुका हूँ। कहीं और नहीं, यहीं बर्लिन में।

लेकिन बर्लिन तो मैं कभी आया नहीं। अभी भी बर्लिन में हूँ न ? एक अलसायी करवट ली। नीचे सूनी छायादार सड़क थी। एक अघेड़ जर्मन मजदूर टेलीफोन के खम्भे पर रंग कर रहा था। दूर-दूर तक झुरमुट और छोटे-छोटे बागीचे। एक बँगले का फाटक खुला। एक छोटी बादामी रंग की गाड़ी अदा से तैरती हुई निकल गयी। एक खिड़की खुली और पियानो की एक गत हवा पर लहराती आने लगी।

अरे, यह गत भी मैंने सुनी है क्या ? लेकिन पियानो तो कभी मेरा प्रिय वाद्य नहीं रहा। लेकिन मुझे क्यों लग रहा है कि इस खिड़की के अन्दर चमड़े से मढ़ी पुरानी गद्देदार आराम कुर्सी होगी, फर्श पर मोटा, लाल, गलीचा होगा, पियानो से टिककर एक दुबला-सा व्यक्ति भाव-झूबा खड़ा होगा और पियानो पर जिसकी उँगलियाँ खेल रही हैं, वह दूर कहीं से पुकार पर बैधी चली आयी होंगी। उसके पास केवल एक सन्देश आया होगा, “कल रिल्के !”

ओह, याद आया। यही सुबह, ऐसी ही धूप, ऐसी ही छायादार सड़क और यही पियानो की गत—रिल्के से पहली बार मिलने जब बेनवेनुटा आयी थी।

रिल्के की बेनवेनुटा द्वारा लिखित वह जीवनी मुझे बिसारिया ने उपहार में दी थी और तब मैंने रिल्के की कविताएँ पढ़ी ही नहीं थीं। पर बरसों बाद जब मैंने पाया कि पूरे आधुनिक विश्व-काव्य में रिल्के ने सबसे ज्यादा मुझे मोह लिया है। तब मैंने फिर

वह किताब उठायी और उसका अक्षर-अक्षर पी गया। यही बर्लिन, ऐसी ही सुबह लेकिन 48 वर्ष पहले ! तो क्या समय यहाँ बँध गया है ?

मैं उठा। मेरी खामखयाली है। कौन जाने, बर्लिन का वह मुहल्ला और वह सड़क युद्ध में बमबाजों ने नष्ट कर दी हो। थोड़ी देर बाद नीचे आया। बेहद सर्दी मगर बहुत खुशनुमा। खम्भे पर रंग करते हुए मिलिशिया वर्दी वाले जर्मन कामगार ने हँसकर अभिवादन किया। जर्मन में कुछ कहा, मैंने अंग्रेजी में जवाब दिया। महान अन्तर्राष्ट्रीय अंग्रेजी भाषा वहाँ बेकार थी। उसने सिर हिलाकर जर्मन में फिर कुछ कहा और रंग की बालटी में ब्रुश चलाने लगा। मैं भी पास खड़ा होकर खूबसूरत, लम्बी छायादार सड़कों को देखने लगा और ज्योंही अपने ही होटल के साइनबोर्ड पर निगाह पड़ी तो जगह का नाम पढ़ा—गुएन वाल्ड।

तो यह गुएन वाल्ड है ! सच ! गुएन वाल्ड में ही तो डेलब्रक का वह घर था जहाँ वेनवेनुटा ठहरी थी। नहीं, मुझे विश्वास नहीं हो पा रहा कि मैं उसी गुएन वाल्ड में हूँ। कौन-सा रहा होगा वह बँगला ? क्या इन्हीं फुटपाथों पर टहलते-टहलते रिल्के ने वे कविताएँ रची होंगी ? क्या वही धूप, उसी क्षण में अभी-अभी खिली वायलेट की महक लदी सुबह की ठिठुरी हवा, क्या वही काँपते हुए ओठों-सी अधीर और लजायी हुई पियानो की गत, क्या गुएन वाल्ड की वही सुबह ज्यों की त्यों समय के ताने-बाने में बुन दी गयी है कि मैं 48 साल बाद रिल्के की कविताओं के जादू में बँधा हुआ आऊँ और—

खट् खट् खट् खट् !

सपना टूटता है। सामने से फ्राउ क्लावेनबख मोटे ऊनी कपड़ों में लिपटी चली जा रही है। काफी मेकअप के बावजूद बुढ़ापा, अभाव, कठोर मेहनत और उदासी साफ झलक जाती है। “क्या मुझे आने में देर हो गई ?”—वह शिष्टता से पूछती है। “नहीं !” मुझे सुबह टहलना अच्छा लगता है, खासतौर से जब सुबह इतनी खुशनुमा हो। लन्दन में तो कोहरे की वजह से पता ही नहीं चलता था कि सुबह कब हुई—! मैं रिल्के पर बात करना चाह रहा था।

“फ्राउ ! यह गुएन वाल्ड है। यहाँ रिल्के रह चुका है। यहाँ उसने अपने कुछ सबसे प्यारे दिन बिताये हैं। कुछ सबसे प्यारी कविताएँ लिखी हैं।” फ्राउ सम्भवतः रिल्के को नहीं जानती। उनके चेहरे पर कोई भाव नहीं है।

“आप कविताएँ नहीं पढ़ती ?”

“माँ को धार्मिक कविताएँ कभी-कभी पढ़कर सुनाती थी। हाँ, बस। हाँ, लेकिन कितने बरस बीत गए, अब तो दीवार के उस ओर है माँ, अकेली। कविताएँ तो दूर वहाँ अखबार भी नहीं मिलता। हाँ, साल भर में 12 पैकेट हम भेज सकते हैं। एक पैकेट में लिपटा पुराना अखबार वह अब तक पड़ोसियों से पढ़वाकर सुनती है। हाँ, समझती है, उसमें मैंने उसे जरूर कोई सन्देश भेजा होगा। हाँ !”

फ्राउ हर वाक्य के बाद खुद हाँ कहती है और हर हाँ के बाद और उदास हो

जाती है। और उसकी हर हाँ के साथ 50 साल पहले का रिल्केवाला बर्लिन, धूप और संगीत, कविता और कल्पना, चिन्तन और सुकुमार अनुभूतियों वाला बर्लिन धुँधला पड़ता जाता है, और उभरता आता है संसार के सबसे भयानक नरसंहार और महायुद्धों की योजना का वह बर्लिन। युद्धोत्तर पुनर्निर्माण का बर्लिन। दीवार से बैठा हुआ अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का विस्फोट बिन्दु बर्लिन।

बर्लिन की चौड़ी, साफ रौनक अफरोज सड़कों पर घूमती हुई गाड़ी हमें दीवार के पास ले जा रही है। मैंने ऐतिहासिक इमारतों, खण्डहरों, पुराने किलों और गुप्त तहखाने को देखते हुए अक्सर एक रोमांच का अनुभव किया है। इतिहास में पढ़ी दिल दहला देनेवाली घटनाओं की साक्षी एक इमारत, एक बुर्ज, एक दूटी सीढ़ी या कभी-कभी एक ईंट भी हुआ तो लगता है एक पूरे युग को छू रहे हों। उस युग के संघर्ष, रक्तपात, आकांक्षाएँ, लालसाएँ, उत्तराधिकार सब अतृप्त प्रेतों की भाँति उस पुरानी ईंट के चारों ओर अभी भी चक्कर काट रहे हैं। तुमने ईंट छुई कि जमीन में कब का जब लहू फिर से ताजा होकर रिसने लगा, तुमने ईंट छुई कि अपने कत्ल किये जाते हुए प्रेमी को झरोखे में आकर देखती हुई लाचार राजकुमारी की आत्मा फिर दहशत में बाल नोंचने और फिर चीखने लगती है।

मगर यह अनुभव सबसे अलग था और सबसे ज्यादा मार्मिक। गहरे में सबसे ज्यादा तोड़ जानेवाला। अरे यही तो दीवार है...सड़क के किनारे-किनारे जाती हुई...और लो यह अकस्मात् सड़क को काट गयी और सड़क बन्द, मकानों के किनारे से घूमकर जा रही है और यह लो, मकान का आधा हिस्सा इधर और दीवारों को फोड़कर दीवार निकल गयी और दीवार के ऊपर काँटेदार तार और काँटेदार तारों में दौड़ती जहरीली बिजली, और दीवार के उस ओर दूर तक जमीन पर बिछा हुआ खतरनाक जाल, और जाल के नीचे जगह-जगह बिछी हुई सुरंगें और बम, और बीच-बीच में काई लगी पुरानी लकड़ी की बेडौल मीनारें जिसमें से पूर्वी बर्लिन के पहरदारों की सतर्क आँखें और चमकते इस्पात की स्टेनगें चौबीसों घण्टे जागती रहती हैं...और यह क्या है ? अभी दीवार को बने मुश्किल से साल-दो साल हुए होंगे मगर कैसा काला, बेडौल, खौफनाक बुढ़ापा इस पर उतर आया है।

और आपको बताऊँ कि जब गाड़ी उस दीवार के किनारे मुड़ती घूमती जा रही थी तो मुझे क्या महसूस हो रहा था। लग रहा था कि यह दीवार आज की नहीं है। चंगेज और हलाकू, नादिर और नीरो जिन किलों में लोगों को जिन्दा गड़वा देते थे, खालें खिंचवाते

जर्मनी : 79

थे, भूखे शेरों के आगे निहत्थों को फिंकवा देते थे, उन खूँखार किलों की कोई सबसे जघन्य दीवार एक बड़े अजदहे की तरह अतीत के बियाबान में से रेंगती हुई आज के बर्लिन में चली आयी है, एक प्रागैतिहासिक अजेय नभक्षी दैत्य की तरह शहर को तोड़ती-फोड़ती, इमारतों को काटती, बच्चों को गोद में लिये माँओं के हाथों को काटती, जवानों को कुचलती, रौंदती, बूढ़ों को अपनी एक जहरीली फूत्कार से...

और यह क्या है ? हर दस गज पर दीवार पर टँगे हुए अजब किसम के हरे फूलों की एक मोटी माला ! मालूम होता है कि यह उन लोगों की यादगार है जो यहीं समय-समय पर गोलियों से भून दिये गये हैं। समाधि के लिए जगह नहीं ! बस उनके रिश्तेदार और दोस्तों ने जगह पहचान ली। दीवार में एक निशान बना दिया और अब कभी-कभी एक माला लटका जाते हैं। कोई नंगे पाँव जमीदोज बमों, सुरंगों, खुफिया जालों को पार करता हुआ आया था और तारों में अटककर झुलस गया था, कोई पहरे की मीनार के ठीक नीचे जान हथेली पर रखकर दीवार पार कर रहा था कि स्टेनगन घूमी और उसे गोली से भून दिया गया। दीवार के इस ओर खन्दक के पार खड़ी उसकी बूढ़ी माँ चीख मारकर दौड़ी और दीवार के इधर आधी लटकी हुई लाश से चिपक गयी। और यहाँ वह छोटी लड़की जो अपने स्कूल जाते समय अपनी बूढ़ी दादी को टाटा करने आती थी और दादी दीवार के उस पार मकान की चौमंजिली खिड़की पर खड़ी एकटक राह देखती रहती थी और एक दिन बेचैन होकर खिड़की से कूद गयी !

“मेरी माँ एक बार उस मकान में आनेवाली थी। उन्होंने एक चिट्ठी में लिखकर चुपचाप सन्देश भेजा था। मुझे बता दिया था कि मैं अमुक समय तक इसी जगह खड़ी होकर उस मकान की इस खिड़की की ओर देखूँ। मैं वहाँ पर उस नुक्कड़ पर चाय घर में बैठी दो घण्टे रोती रही, मगर यहाँ तक आने की हिम्मत नहीं हुई। मेरी सहेली ने बताया कि उसने खिड़की में से झाँकता हुआ माँ का चेहरा देखा है। माँ घण्टों एकटक इन्तजार कर लौट गयी।”

“फ्राउ क्लावेनबख ! यह तो बड़ी निष्ठुरता थी आपकी !”—मैंने कहा। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या कहूँ।

“निष्ठुरता, हाँ। मेरी सहेली ने जिन्दा माँ का चेहरा देखा था। मैं सामने पड़ जाती और माँ अपने को न रोक पाती। हाँ ? निष्ठुरता क्या है ? साहस क्या है ? नाता-रिश्ता क्या है ? सबका मतलब या तो बदल गया है या उनका कोई मतलब नहीं रहा, हाँ।”

अब इस शहर के एक छोर पर हैं जहाँ दीवार तो है पर उतनी ऊँची नहीं। दीवार के उस पार एक गहरा नाला-सा है, जिसके बाद फिर टीला और फिर पूर्वी बर्लिन। पहली बार काठ के बाड़े के उस पार, दीवार के उस ओर का हिस्सा दीख रहा है।

फ्राउ मुझे खींच लेती है। और सहसा मेरा ध्यान उधर जाता है। हलकी-नीली वर्दी में, लोहे की टोपी लगाये एक लाल चेहरे, तीखी आँखोंवाला फौजी स्टेनगन पीठ पर लादे विलकुल मेरे सामने आकर खड़ा हो गया है।

दूर-दूर तक कोई नहीं है। दीवार के इस ओर फ्राउ और मैं दूसरी ओर वह सैनिक। उसका हाथ रिवॉल्वर पर है। वह हर तरह से सावधान है। लेकिन मेरी ओर नहीं देख रहा है। वह पीछे मुड़कर देख रहा है। फ्राउ समझती है कि उसे शक है कि यहाँ हम लोग इसलिए तो नहीं खड़े हैं कि पूर्वी बर्लिन से कोई चुपचाप भागनेवाला हो और हम मदद करना चाहते हों !

वह मुड़ा है और मेरी ओर घूम रहा है। मेरी इच्छा होती है कि वह मेरी ओर देखे। अगर वह मेरी ओर एक पल देखे तो...तो क्या वह फिर अपनी स्टेनगन मुझ पर चला सकता है ? बिना किसी भयानक उत्तेजना के कोई किसी की हत्या कैसे कर सकता होगा ? अगर मैं कूदकर उधर चला ही जाऊँ ? वह मेरी ओर देखता है। मैं अदबदाकर उसकी दृष्टि-से-दृष्टि मिलाकर उसे देखता खड़ा रहता हूँ। अन्दर-ही-अन्दर कहीं मुझमें अतिशय कुतूहल है और अतिशय आशंका।

उसका चेहरा लाल है, हड्डियाँ उभरी हुई, आँखें स्थिर और छोटी।

“ये प्रशिया से बुलवाये गये हैं। ये लोग बर्लिनवालों से बहुत घृणा करते हैं। बर्लिन के सैनिकों ने बर्लिनवालों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया।” फ्राउ कान के पास फुसफुसाकर कहती है।

फुसफुसाहट से शायद उसका सन्देह बढ़ता है। वह सीटी बजाता है और दूर पर किसी को संकेत करता है। और अब मैं देखता हूँ, दूर एक बहुत बड़ा पार्क है, सड़कें हैं, पेड़ों के पीछे कुछ मकान हैं।

और अब मुझे अहसास होता है कि मैं पहली बार उस महान भूभाग के एक छोर को देख रहा हूँ जहाँ जनता का राज कायम हो चुका है। मैं सब भूल जाता हूँ। एक संस्कारगत श्रद्धा उपजती है। मुझे याद आता है कि बहुत बचपन में मैंने चाँद का फौसी-अंक पढ़ा था जिसमें फ्रान्स की राज्य क्रान्ति का विशद विवरण था जब मैंने पहली बार क्रान्ति के माने जाने थे। पहली बार समानता, भ्रातृत्व, स्वातन्त्र्य का नारा सुना था। फिर मैंने भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद के सिलसिले में पहली बार सशस्त्र क्रान्ति और साम्यवाद का नाम सुना था और फिर मेरे मुहल्ले के एक क्रान्तिकारी ने मुझे बादामी कागज पर छपे कुछ पर्वे दिये थे जिनमें लेनिन और रूस और कार्ल मार्क्स का नाम था और फिर मैं जहाँ से जो कुछ रूस और साम्यवाद के बारे में मिलता था, उसे धरोहर की तरह सहेजता जाता था। गांधी जी की अहिंसा उस उम्र में फूटी आँख नहीं सुहाती थी और सशस्त्र इन्कलाब की बात मन में पैठ गयी थी। हड़तालें

होती थीं, जुलूस निकलते थे और उन जुलूसों में मैं घरवालों की डॉट-फटकार के बावजूद शामिल रहता था। बात सिर्फ इतनी थी कि 'महात्मा गांधी जी की जय' धीरे-से बोलता था मगर 'इन्कलाब जिन्दाबाद' पूरे फेफड़े की ताकत लगा कर। जिस मुल्क में इन्कलाब आ चुका है, उस रूस के बारे में जो मिलता था, उसे रात-रात जागकर पढ़ता था। कलकत्ते में छपी कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो की वह अंग्रेजी प्रति शायद अब भी कहीं पड़ी होगी जिसमें पहली बार जाना था कि 'तुम्हें कुछ नहीं खोना है सिवा अपनी जंजीरों के ! और मेरा रोम-रोम सिहर उठा था—उमंग से, आशा से, विद्रोह से, निष्ठा से।

उसके बाद जो हुआ, उसे भूल गया हूँ। भूल गया हूँ कि हिटलर को बरसों गाली देने के बाद स्टालिन ने कैसे हिटलर के विदेशमन्त्री रिबेनट्राप से समझौता कर लिया और नाजी सेनाएँ देश के बाद देश हड़पने लगीं। भूल गया हूँ कि सन् '42 में जब सारा देश क्रान्ति का आह्वान कर रहा था तब अकेली कम्युनिस्ट पार्टी क्रान्ति को प्राणपण से रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार के खेमे में चली गयी—सब भूल गया हूँ।

इस समय यहाँ खड़े सिर्फ यह सोच रहा हूँ कि उस किशोर मन की सम्पूर्ण पवित्रता से देखे गये इन्कलाब के सपनों से इस भू-भाग का कितना अन्तरंग सम्बन्ध है। इन काँटेदार तारों के पीछे दीवार के उस पार नाले के बाद ऊबड़-खाबड़ जमीन, फिर एक हरा दूह, फिर हरियाली ढलान के बाद पार्क और भीगी घास। लम्बी सड़क और पेड़ों का झुरमुट—कितना शान्त, कितना खुशनुमा—

और मैं लौट गया हूँ बरसों पहले की दुनिया में जब मैंने पहली बार गोर्की के उपन्यास पढ़े थे। उसकी आत्मकथा पढ़ी थी। सोचता हूँ अगर मैं किसी तरह इन काँटेदार तारों को पार कर उस दूर दीखनेवाली सड़क तक पहुँच जाऊँ और उस पर चलता जाऊँ, चलता जाऊँ तो जर्मनी की सीमा पार कर रूस पहुँच जाऊँगा। वहाँ मुझे वह नदी मिलेगी जिसके किनारे नावों का रस्सा खींचते हुए लहलुहान पाँवोंवाले गुलाम मल्लाह थककर गिर जाते थे। वहीं वह पेड़ भी होगा जिसके नीचे वह खुफिया क्रान्तिकारी वैज्ञानिक बैठा करता था जो बम बनाया करता था और किशोर गोर्की को इन्कलाब की बातें बताता था। वहीं—

सहसा सीटी मेरा ध्यान तोड़ जाती है। मैं फिर देखता हूँ। पार्क में फौजियों की आवा-जाही शुरू हो गयी है। दूर-दूर तक कोई नहीं है। सिर्फ पार्क में झाड़ियाँ तराशकर हमवार करता हुआ एक बुढ़ा और खाली गाड़ी और घोड़ा, सड़क पर। बाकी लोग कहाँ हैं ? केवल एक फौजी यहाँ। एक वहाँ। एक वहाँ। एक वहाँ। किसी ने बताया था इन्हें 'जनता की पुलिस' कहते हैं। पुलिस हर जगह है—जनता कहाँ है ? गोर्की ? गोर्की क्या तुमने अपने बचपन में यही सपना देखा था ?

सीटी तेज होने लगी है और बन्दूक ताने दो सन्तरी जरा दूर पर आकर खड़े हो गये हैं। उनका ध्यान एकटक मेरी ओर है। पीछे के गोदाम से एक भद्र सज्जन आते हैं और फ्राउ से जर्मन में कुछ कहते हैं। फ्राउ मुझे लौटाकर गाड़ी की ओर ले जाती

है। मालूम हुआ कि पिछले हफ्ते एक इटालियन मजदूर पर इन्होंने गोली चला दी थी।
“दुनिया के मजदूरों एक हो...”

दुनिया के मजदूर आन्दोलन में शायद वह पहली घटना थी जब निहत्थे मजदूरों पर लाठियाँ या घोड़े नहीं बल्कि सशस्त्र टैंक चढ़ा दिये गये थे। 16 जून, सन् '53 का दिन था। मजदूर थे पूर्वी बर्लिन के क्षुब्ध कामगार जो अपनी जंजीरें तोड़ना चाहते थे और उन पर आग बरसाते हुए चढ़कर आनेवाले टैंक थे रूसी फौजों के। और बूढ़े जर्मन ड्राइवर ने मुझे बताया था कि भीड़ में उसका बेटा भी था और उन्हें जब कुछ नहीं सूझा तो क्रोध से वे टैंक के पहियों पर चढ़ गये और घूँसों से टैंकों को मारने की कोशिश करने लगे...

और अब हम वहीं जा रहे थे आंखुग युद्ध-स्मारक पर जहाँ मजदूरों का यह अनोखा इन्कलाब शुरू होकर नाकामयाब हो गया था। वहीं से बर्लिन की विभाजन-रेखाएँ शुरू होती हैं। वहीं पर सबसे तुमुल युद्ध हुआ था और वही द्वितीय महायुद्ध का आखिरी निबटारा।

उफ़, कितनी चौड़ी सड़क ! भरे भादों में आपने दारागंज की गंगा का पाट होता है, उतना ! ब्रिटिश क्षेत्र में स्थित यह युद्ध-स्मारक। यहीं 'पोट्सडम प्लेस' के बोर्ड के पास एक काठ की सीढ़ी रखी है जिस पर चढ़कर आप पूर्वी बर्लिन का केन्द्र मार्ग देख सकते हैं। एक ओर वह राइखस्टाग की विशाल इमारत है (युद्ध-स्मारक के पीछे) जहाँ हिटलर के अन्तिम दिन बीते थे और जिसके अहाते में जर्मन और सोवियत सेनाओं की आखिरी मुठभेड़ हुई थी। अब वह सारी इमारत टूटी-फूटी ज्यों-की-त्यों बन्द पड़ी है। न आदमी, न आदमजाद ! उधर दूर पर एक हरा-सा टीला है। कहते हैं कि वही हिटलर की कब्र है। पर हिटलर मारा गया था उसने आत्महत्या की या वास्तव में वह वहीं दफन है या नहीं, इसका कुछ पता आज तक नहीं।

सिवा चन्द यात्रियों के और सब सुनसान था। निचाट बियाबान। हवां बेहद सर्द थी। एक स्वेटर, एक कोट, एक ओवरकोट के बावजूद दाँत-से-दाँत बज रहे थे। मैंने फ्राउ से कहा, “यहाँ बर्लिन में पेड़ बहुत हैं शायद सर्दी इसलिए भी ज्यादा है।”

फ्राउ बोली, “युद्ध के बाद तमाम पेड़ काटकर हम लोग घर में आग जलाने को ले जाते थे। न गैस थी, न बिजली, न कोयला। गीली लकड़ी जलती भी नहीं थी। बर्लिन तब और भी ठण्डा था।”

“लकड़ी काटने आप आती थीं ?”

“और कौन आता ? सभी सिपाहियों के डर से सभी औरतें झुण्ड बाँधकर आती थीं। मर्द तो बर्लिन में जिन्दा बचे ही नहीं थे। और सभी सैनिक ! भगवान बचायें। वह स्मारक देख रहे हैं पेड़ों की छाया में ? वह रूसी सैनिक युद्ध-स्मारक है। आज भी सन्धि के अनुसार उस ओर से एक रूसी सैनिक रोज इस पर पहरा देने आता है। वह देख रहे हैं सन्तरी ? वह रूसी सैनिक है।”

मैंने पहली बार लाल सेना का एक सिपाही देखा।

इस स्मारक के नीचे शिला पर अंकित है—अज्ञात रूसी सैनिकों के लिए ! और सहसा फ्राउ की आवाज बेहद कठोर हो आयी, लेकिन हम जर्मन लोग कहते हैं—अज्ञात रूसी लुटेरों के लिए !

मैंने कुछ नहीं कहा। मैं चुपचाप फ्राउ के चेहरे की ओर देखता रहा। 35 पार कर चुकी होंगी, मेकअप के नीचे की झुर्रियाँ बता रही थीं। यह चेहरा कभी पतला, नाजुक और आकर्षक रहा होगा। और जब बर्लिन में पहले रूसी, फिर अमरीकी, फ्रांसीसी सेनाओं के विजयी, मदोन्मत्त जत्थों ने प्रवेश किया होगा तब तो फ्राउ कैशोर्य पार कर अपने पूरे तबस्सुम पर होंगी। उसके बाद... नहीं, नहीं पूछना चाहता कि विजयी रूसी सेना के क्या अनुभव होंगे जिन्होंने उन्हें इतना कटु और असमय वृद्ध, नीरस और कठोर बना दिया है। मैं नहीं पूछूँगा, क्योंकि मैं सुन चुका हूँ कि जब जर्मन सेनाएँ विजयी होकर चेकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड और सोवियत रूस को पदाक्रान्त करती हुई मास्को की ओर बढ़ रही थीं तब उन्होंने क्या किया था। विजयी सेना की मनोवृत्ति वही होती है चाहे वह नेपोलियन की फ्रांसीसी सेना हो, चाहे हिटलर की नाजी सेना हो, चाहे स्टालिन की लाल सेना हो, चाहे... और ठीक इसी तरह पराजित जाति की प्रतिक्रिया और यातना एक ही होती है चाहे वह दीवार के इस ओर हो या उस ओर।

गाड़ी लौटने लगी तो मैं अकस्मात् रूसी युद्ध स्मारक के द्वार के पास उतर गया। अकेले, चुपचाप अन्दर गया। घास ओस से नम थी और सीढ़ियों के पत्थर बेहद सर्द। पहरा देता हुआ रूसी गार्ड एक क्षण ठिठका, फिर चाभी भरे हुए सिपाही की तरह लेफ्ट-राइट करता हुआ पहरा देता रहा।

मैं कुछ क्षण बिलकुल खामोश खड़ा रहा। कहूँ कि मन-ही-मन प्रार्थना करते हुए। शायद। मगर प्रार्थना किसके लिए ! किसी अज्ञात विजयी रूसी सैनिक के लिए जिसे पराजित लोग ‘लुटेरा’ कहते हैं ? या किसी अज्ञात जर्मन सैनिक के लिए जिसे... नहीं, मैं प्रार्थना करता रहा उस अज्ञात किसान, अध्यापक, मजदूर, क्लर्क के लिए जो किसी धूर्त तानाशाह के बहकावे में आकर फौजी वर्दी पहन लेता है और कन्धे पर बन्दूक रखकर खुशी-खुशी दिग्विजय के रास्ते अपने मरणस्थल की ओर चल पड़ता है। दीवार के उस ओर से चलता है तो उसे रूसी सैनिक कहते हैं, इस ओर आकर वह रूसी लुटेरा बन जाता है। दीवार के इस ओर से चलता है तो उसे जर्मन सैनिक कहते हैं, उस ओर आकर वह जर्मन लुटेरा बन जाता है। युद्ध के नक्कारे खामोश हो जायें, हिटलर और स्टालिन और सालाजार और माओ की धूर्तता पर बन्दिश लगा दी जाय,

इनकी वर्दियाँ मन्सूख कर दी जायें और कन्धे से बन्दूक और पैरों में फौजी बूट उतार लिये जायें तो ये न रूसी सैनिक रहेंगे, न रूसी लुटेरे, न जर्मन सैनिक, न जर्मन लुटेरे, ये सिर्फ किसान, क्लर्क, मजदूर, अध्यापक रह जायेंगे जो सुबह तरोताजा अपने काम पर जाना चाहते हैं, शाम को अपने परिवार की आत्मीयता में डूबना चाहते हैं।

“फ्राउ, कुतूहल क्षमा हो, आपका परिवार...?”

“परिवार ? हाँ, मेरा मंगेतर था, वह लड़ाई में मारा गया। मेरा छोटा भाई भी। हाँ। विवाह किया था मगर टूट गया। हाँ। युद्ध के बाद बहुत लड़कियाँ बच गयी थीं। बहुत पुरुष मारे गये थे। हाँ। किसी विवाह का कोई भरोसा नहीं रहा था। वैसे मैं कोई असुन्दर नहीं थी। हाँ। बस, माँ थी और मैं समझती थी मेरा सब कुछ है। अब वह चन्द मीलों के फासले पर है और अकेली किसी दिन मर जायेगी। मैं उसे दूर से देख भी नहीं सकती, हाँ ! परिवार। तुमने अच्छा सवाल पूछा। हाँ।”

मैं कुछ हतप्रभ-सा फ्राउ की ओर देखता हूँ। उस कठोर, भारी बुढ़ाते हुए व्यक्तित्व में कहीं कितनी गहरी कटुता भरी है, संचित, ठोस, जमी हुई जो शायद कितने ही सवालों पर घृणा से नहीं कहना चाहती है लेकिन शिष्टता से वाक्य के बीच में अकारण हाँ जोड़ती जाती है !

युद्धोत्तर काल की एक विचित्र विडम्बना ! हर चीज जो एक थी, गढ़ी हुई थी, पूँजीभूत थी उसके बीचोबीच एक दुर्लभ्य दीवार खिंच गयी है। हर चीज जो हाँ और नहीं की तरह परस्पर विरोधी थी, उसके बीच की दीवार टूट चुकी है। नहीं माने हाँ, अँधेरा माने उजाला, युद्ध माने शान्ति, गुलामी माने आजादी...

अभी वे लोग जो पश्चिम बर्लिन के नागरिक नहीं हैं, घूमने के लिए पूर्वी बर्लिन में जा सकते हैं। हमारे आतिथेयों ने चेतावनी दी थी कि पूर्वी बर्लिन के अन्दर हमारी सुरक्षा का कोई जिम्मा वे नहीं ले सकते। वैसे तो कोई खतरा नहीं, लेकिन सारा रुपया, कागजात, किताबें, किसी किस्म का नक्शा, कैमरे, पैम्फलेट, ट्राजिस्टर सब इधर ही कहीं सहेजकर रख जाइए तो अच्छा है।

चेक प्वाइण्ट चार्ली उस जगह का नाम है जहाँ से अमरीकन वृत्त पार कर रूसी वृत्त में प्रवेश करना पड़ता है। एक बहुत चौड़ी सड़क। दीवार का सिलसिला वहाँ पर कट गया है। सड़क के दूसरे बाजू से दीवार फिर शुरू हो जाती है। दीवार के पास तक मकानों की घनी कतार है।

लगभग मील भर पहले एक डच रेस्तराँ था जिसमें हमने खाना खाया। वहीं

पर एक छोटी-सी वोक्सवागेन गाड़ी लेकर एक अरब विद्यार्थी हमें ढूँढ़ता हुआ आया। तय हुआ था कि उसी के साथ उसी की गाड़ी में हम बर्लिन के उस हिस्से में घूमने जायेंगे। रुपये-पैसे, किताबें, कीमती घड़ी, पेन, नोटबुक और डायरियाँ, सभी रेस्तराँ के मैनेजर के पास रख दिये। केवल आधे घण्टे का परिचय—लेकिन कोई खतरा नहीं।

चेक प्वाइण्ट पर विचित्र दृश्य, इधर पश्चिमी बर्लिन की ओर दो गज के फासले तक खूब चहल-पहल, रौनक, दुकानें, सजे-सजाये फ्लैट, स्कूली बच्चे, रेस्तराँ, फुटपाथ की भीड़ और दीवार के उस ओर मकानों की 4-5 कतारें बिलकुल खाली बियाबान। मीलों-मीलों तक। काई खाये मकानों की खाली खिड़कियाँ, खुले अधखुले, टूटे-उखड़े दरवाजे। अजीब वैषम्य था। दो-एक मकानों की खिड़कियों में बहुत गौर से देखने पर स्टेनगन की नलियाँ दीख सकती थीं जो दीवार के इस ओर उन मकानों की खिड़कियों की ओर सधी थीं जिनमें लोग रहते हैं। मगर इधर के मकानों में रहनेवालों के चेहरे पर चिन्ता का कोई चिह्न नहीं था। खूबसूरत झालरदार परदे हवा में लहरा रहे थे, रेडियो बज रहे थे। एक छज्जे पर एक बूढ़ा आरामकुर्सी पर अधलेटा कुछ पढ़ रहा था। एक खिड़की पर एक स्त्री हवा में गीला एप्रन सुखा रही थी और उसके तुरन्त बाद खाली खौफनाक भुतहे मकानों की कतार-पर-कतार—दूर पूर्वी बर्लिन के अन्दर तक !

अमेरिकन सेक्टर से जाते समय तो कोई खास परेशानी नहीं हुई, केवल गुमटी पर हमारे साथी को बताना पड़ा कि वह अरब विद्यार्थी है और मैं भारतीय यात्री लेकिन रूसी क्षेत्र में जाते समय काफी कड़ी जाँच हुई। चुंगी की चौकियों पर जैसे आड़े बाँस सड़क के आर-पार लगे रहते हैं वैसी ही काफी मोटी फौलाद की शहतीर सड़क के आरपार लगी थी। सैनिक अफसर ने हमारी गाड़ी रोकी। हमारे पासपोर्ट देखे। तस्वीरों से चेहरों से चेहरा मिलाया फिर धूमकर गाड़ी के चारों ओर देख। हमें गाड़ी से नीचे उतारकर गाड़ी के अन्दर खूब बारीकी से देखभाल की, उसके बाद उसने इशारा दिया। किसी ने बटन दबाया और वह शहतीर ऊपर उठा, रास्ता खुला। गाड़ी अन्दर गयी। मैंने राहत की साँस ली—लेकिन यह क्या ! सड़क के बीचोबीच एक फौजी सन्तरी ने फिर हाथ देकर गाड़ी रोक दी। अब क्या हुआ ?

मालूम हुआ कि यह चेक प्वाइण्ट आ गया। अब यहाँ पूरी तरह जाँच-पड़ताल होगी। पहले कार-पार्क पर गाड़ी मोड़कर खड़ी की गयी। वहाँ फिर गाड़ी की चाभी हमसे लेकर उसकी पूरी तलाशी हुई, पीछे की डिकी खोलकर। आगे का बोनट खोलकर, गदियाँ उलटकर और फिर हमारे पासपोर्ट देखे गये। यह तो प्रारम्भिक जाँच थी। इसके बाद हमें इजाजत मिली कि हम जाँच दफ्तर के अन्दर जायें।

लकड़ी, दफ्ती और एस्बेस्टास से बना वह जाँच दफ्तर भी अद्भुत था। पतली गैलरी में कुछ बैठे, कुछ खड़े, खामोश और सहमे हुए दुनिया भर के यात्री। कम्युनिस्ट अधिकारियों के चेहरे पर विचित्र सख्ती। पहले वे पासपोर्ट लेकर रसीद देते हैं कि

पासपोर्ट जाँच के लिए लिया। फिर दूसरे काउण्टर पर एक लड़की जो अक्सर जाँच के लिए पासपोर्ट भेजती है, और आपसे कई फॉर्म भरवाकर उन पर दस्तखत लेती है। जवान लड़की, मुश्किल से 25-26 वर्ष की मगर चेहरे पर कैसा पथरीला, खूँखार भाव। हरेक को इतनी कड़ी निगाह से देख रही थी मानो हमने कौन-सा भयानक षड्यन्त्र कर रखा हो।

मैंने अपने अरब साथी की ओर देखा। वह जार्डन का विद्यार्थी अद्भुत उच्चारण की अंग्रेजी बोलता था। मेरे कान में धीरे से बोला, “इसके होंठ के बायें कोने पर देखिए।” वहाँ कुछ छोटा-सा जखम था। फिर वह मुस्कराया, “निश्चय यह दन्तक्षत है ! मगर इस पत्थर की पुतली को किसने प्यार किया होगा, इससे अच्छा तो यह हो, स्टेनगन को आप प्यार कर लें ! वह इतनी खूँखार नहीं लगती।”

एक विचित्र असंगति मन पर बोझ की तरह बैठती जा रही थी। सामने एक बोर्ड पर लिखा था, ‘बर्लिन : पूर्वी जर्मनी की राजधानी में आपका स्वागत है।’ स्वागत के इस विशाल बोर्ड के नीचे एक भी चेहरा ऐसा नहीं था जिस पर स्वागत तो दूर, केवल शिथिल उपेक्षा का ही भाव होता। हर तरफ थी सन्देह, धमकी, अविश्वास और आतंकभरी हुई सख्ती। बीच में स्वागत की रस्म पूरी करने के लिए टामीगन हाथ में ताने हुए एक सन्तरी उस 5 फुट चौड़े भीड़ भरे गलियारे में तेजी से घूम गया। आया, गया, फिर आया। बिलकुल युद्ध का वातावरण, मानो अभी हमला होनेवाला हो।

काउण्टर के पास दीवार पर बड़े-बड़े फ्रेम जड़े चित्र, चिर-परिचित विषय। फूल लिये गुदकारे बच्चे, टेनिस खेलती सुगठित सुन्दरियाँ, हँसते हुए युवक। एक साउण्ड बॉक्स में से संगीत। सब कुछ केवल प्रतिध्वनियों या ध्वनियों में। आनन्द, प्रगति, उल्लासपूर्णता। चौखटों में जड़ी या रेकार्ड में भरी हुई। वास्तविक जगत में बाहर सड़कें सुनसान, इमारतें खाली, खिड़कियाँ लावारिस, बिजली के तारों के काँटेदार बाड़े, सैनिक चौकियाँ, खतरे के भोपू, सशस्त्र जीपें, टैंक, रिवाँल्वर, दूरबीनें।

नहीं के माने हाँ, हाँ के माने नहीं ! आतंक के माने आजादी, आजादी के माने आतंक। रिवाँल्वर के माने फूल लिये बच्चे...खून सने काँटेदार तारों के माने टेनिस खेलती सुगठित युवतियाँ।

‘खामोश ! खबरदार’ वाले इस भारी वातावरण में बैठे-बैठे घण्टा भर बीत गया। लोमहर्षक खौफ की भी एक एकरसता होती है। आपसे ईमान से कहता हूँ कि मैं यहाँ सोच रहा था कि कुछ बुरा ही चाहे घटित हो, यह एकरसता तो टूटे। कहीं किसी के पास खुफिया नक्शे निकल आयें। कोई हमला हो जाये। बन्दूकें चल जायें। कुछ भी तो हो यह निरर्थक आतंक का टेंगा हुआ कुहरा ! यह तो असह्य होता जा रहा है !

और लो, कुछ तो घटित हुआ ही आखिर ! द्वार से किंचित प्रौढ़ा लेकिन बेहद बनी-ठनी और अत्यन्त उत्तेजक वेशभूषा वाली एक दक्षिण अमरीकी नर्तकी ने प्रवेश

किया। पीछे उसका दब्बू-सा, मोटा-सा पति और दो छोटे, सुन्दर बच्चे। हर बात पर खास अन्दाज से एक कामुक मुस्कान और नीली, रंग रँगी नकली लम्बी बरौनियों वाली पलकों का चंचल कटाक्ष। जर्मन कम्युनिस्ट वीरांगना ने बड़ी व्यंग्य भरी, नफरत भरी मुस्कान से मुँह बिचकाया और पूरे परिवार के पासपोर्ट तेहे से बगल के काउण्टर पर फेंक दिये। वह नर्तकी बिना हतप्रभ हुए उसी तरह कामुक मुस्कान चारों ओर बिखेरते हुए दूसरे काउण्टर पर चली गयी। वहाँ का छोकरा उस मुस्कान के जाल में फँस ही गया। उसने जल्दी से पासपोर्ट चेक कराये और फार्मों की खानापूरी खुद ही कर दी।

इतने में पता नहीं अन्दर किसने रिकार्ड बदला और साउण्ड बॉक्स में चाँचाँचाँचा का नृत्य-संगीत आने लगा। और लो ! वह नर्तकी, उसका पति, उसके दोनों बच्चे—सब भूलकर ताल दे-देकर लगे उसी गैलरी में थिरकने। सारा आतंक और तनाव जैसे मकड़ी के जाले की तरह टूट गया। यात्री, अधिकारी सभी ठहाका मारकर हँस पड़े और बैठे, खड़े सभी के पाँव उसी धुन पर लगे थिरकने।

अटेन्शन ! तुरत टामीगन वाला सन्तरी पाँव पटककर अन्दर आया, दूसरे सन्तरी का हाथ रिवॉल्वर पर गया, लड़की ने घृणा से मुँह बिचकाकर कुछ जोर से कहा और एक अधिकारी ने तुरन्त अन्दर जाकर रिकार्ड बदल दिया। वे फिर चुप खड़े हो गये। एक क्षण को बाँध जैसे टूट गया था। दूसरे क्षण फिर उसकी मरम्मत हो गयी। अब फिर वही बैधा जल और गुजरे झकोरे का खुमार !

शायद इन अवाञ्छित लोगों को जल्दी हटाना जरूरी था अतः उनके कागजात तुरत वापस आ गये। लाल सेना के किसी विशाल परेड का रिकार्ड अब बज रहा था। नर्तकी कुछ खिन्न-सी खड़ी थी। अकस्मात् बच्चे को जैसे कुछ सूझा। उसने आगे बढ़कर कागजात लिये और रिकार्ड की धुन पर लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट करते हुए दरवाजे की ओर बढ़ा और सहसा माँ और बाप भी खिल उठे। उसी तरह कतार बाँधकर बच्चे के पीछे लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट करते निकल गये। यात्रियों ने ठहाका लगाया। अधिकारियों की भीड़ें तन गयीं।

उनकी मोटर गयी। दूर तक उनकी हँसी की गूँजें सुनायी पड़ती रहीं।

कितना उदास, कितना वीरान, कितना खामोश है यह दूसरा बर्लिन। जवान, हँसते हुए लोग तो कहीं दीखे ही नहीं। चारों तरफ टूटी हुई, बेमरम्मत, ध्वस्त, इमारतें। और वे भी कितनी बड़ी-बड़ी ! पुरानी बर्लिन की सभी बड़ी इमारतें इसी क्षेत्र में हैं

मगर लोगों के नाम पर सिर्फ खण्डहरों के पास खेलते बच्चे। दरवाजों के पास बैठी बुढ़िया या खिड़कियों में शून्य दृष्टि से बाहर झाँकते हुए बूढ़े। कौन हैं इनमें से फ्राउ क्लोवेनबख की बूढ़ी माँ ?

दुकानें खाली थीं। खासतौर से कपड़ों और किताबों की दुकानें।

और मेरे अरब साथी ने ऊपर इशारा किया। सारी सड़क विशाल लाल झण्डों से सजी थी। हर खिड़की पर झण्डा, लाल बन्दनवारें, लाल सितारे, लाल खम्भे...

अजीब प्रभाव पैदा कर रही थी यह सजावट। नीचे सुनसान, जनविहीन सड़क। ऊपर फहराते सैकड़ों विजय-ध्वज। मालूम हुआ, आज 26 अप्रैल है। चार दिन बाद मई-दिवस है।

आधे दिन सड़क, गली, बाजार, घूमने के बाद सिर्फ एक, गिनकर सिर्फ एक दृश्य ऐसा देखने को मिला जो मानवीय था, जिसमें खुलावट थी। एक व्यक्ति अपने कपड़े धुलाकर बड़े-से पैकेट में लाण्डी से ला रहा था और उसकी दो छोटी-छोटी लड़कियाँ रिबन झुलाते हुए हँसती हुई पीछे चली जा रही थीं। घण्टों के आतंक के बाद मैं मुग्ध भाव से वह दृश्य देखता रहा। राहत मिली।

वैसे देखने को वह भी देखा जो वहाँ यात्रियों को दिखाया जाता है—वह नया चौक—स्टालिन मार्ग जो, अब पुनर्निर्मित (रिबिल्ट) मार्ग कहा जाता है लेकिन वह रंगीन मोजे, वे लाल झण्डे, उन चेहरों की उदासी, उन खण्डहरों के आतंक, उन जनविहीन सड़कों को भुला नहीं पाये।

उदासी भरा सन्नाह।

अब हम लौट रहे हैं। यह रहा वह राइशप्टाग जिसे दूर से उस दिन देखा था। क्या इसी के किसी तहखाने में हिटलर ने आत्महत्या कर ली थी ? यह रहा वह मिट्टी का टीला जो शायद हिटलर की कब्र है। यह रही वह सड़क जहाँ से पहरा तोड़कर पूर्वी जर्मन मजदूर उस ओर बढ़े थे...

लेकिन जहाँ हम लौट रहे हैं, वहाँ क्या सभी कुछ ठीक है। उस दिन किसी ने बताया था कि वर्षों तक प्रतिदिन निष्क्रमणार्थियों का जो विशाल जनप्रवाह पूर्वी जर्मनी से इधर आया था, उसमें से कितने ही लोग निराश होकर लौट गये।

मगर कहाँ लौट गये ? जहाँ से भागकर आये थे, वह भी उनका वतन था। जहाँ भागकर आये, वह भी उनका वतन है। जहाँ फिर वापस गये, वह भी उनका वतन है। फिर यह दीवार क्यों ?

अब मैं लौट रहा हूँ। अँधेरा बढ़ आया है। सूनी सड़कें और सूनी हो गयी हैं। खण्डहरों में खेलते बच्चे घर लौट गये हैं। लगता है, दूर-दूर तक सन्नाटा है, सिर्फ आगे-आगे उस नर्तकी के बच्चे की, लाल सेना की पोंड के रिकार्ड पर लेफ्ट-राइट करती हुई खिलखिलाहट है, पीछे-पीछे मेरी थकान और उदासी और किसी सूनी अँधेरी खिड़की से दोनों को देखती हुई फ्राउ क्लावेनबख की माँ की बूढ़ी दृष्टि...

गोर्की ! इस सड़क पर चलकर हम तुम्हारे सपनों तक जाना चाह रहे थे। मगर यह सड़क इन युद्ध-ध्वस्त खण्डहरों में कैसे ले आयी !

रात ढलते मैं रिल्के के मुहल्ले में लौटा हूँ लेकिन अब यह रिल्के का मुहल्ला तो रह ही नहीं गया !

इण्डोनेशिया : तीन स्मृतियाँ

□ 1966

आकाशदीप रत्नम्

इण्डोनेशिया का स्वतन्त्रता दिवस 16 अगस्त को पड़ता है—हमारे स्वतन्त्रता दिवस के एक दिन बाद। बहुचर्चित स्व. राष्ट्रपति सुकार्नो (सुकर्णो) उसके पहले दिन रात को एक विशिष्ट उत्सव आयोजित करते थे, जिसमें जावा और बाली से संगीत मण्डलियाँ बुलायी जाती थीं जो इण्डोनेशियाई बहासा (भाषा) में रामायण गाती थीं और श्रेष्ठ मण्डली को वे अपने हाथ से राष्ट्रीय पुरस्कार देते थे।

जावा की राजधानी 'जकार्ता' का भारतीय दूतावास, ऊँचे-ऊँचे फूलों लदे वृक्षों और हरे-भरे लॉनोंवाला एक डच शैली में बना हुआ बँगला। उन्हीं ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के बीच एक असाधारण ऊँचे कदवाला साँवला, सौम्य व्यक्तित्व भारतीय राजदूत का। वे हाथ में एक स्वर्णकित लिफाफा लिये टहल रहे हैं। मैं बाहर आता हूँ तो मुझे अपने पास बुलाकर लिफाफा दिखाते हैं, मुस्कराते हुए कहते हैं, "आज शाम को तैयार रहना। सुकार्नो ने भारतीय राजदूत और परिवार को विशेष आमन्त्रण भेजा है, संगीत गोष्ठी के लिए। चलेंगे। तुम्हें सुकार्नो से मिलायेंगे।"

सुकार्नो उस समय सारे संसार के अखबारों की सुर्खियों में थे। वे भारत से कुछ असन्तुष्ट थे और चीन से मेल-जोल बढ़ा रहे थे। लेकिन कुछ ही महीनों पहले उनकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर इण्डोनेशियाई कम्युनिस्ट पार्टी की सहायता से चीन ने साजिश कर एक कम्युनिस्ट सैनिक विद्रोह करा दिया था। जनरल सुहार्तो ने दृढ़ता से उस षड्यन्त्र को विफल बनाया था और सत्ता उनके हाथ में आ गयी थी। लेकिन सुकार्नो को उन्होंने अपदस्थ नहीं किया था। वे प्रेसीडेण्ट के पद पर थे लेकिन उनके अधिकार सीमित कर दिये गये थे। उनकी गतिविधियाँ उनके निवास मर्डेका पैलेस तक सीमित कर दी गयी थीं। देश भर से देशभक्त छात्रों के गिरोह बसों में भर-भर कर जकार्ता में एकत्र हो गये थे और सुकार्नो के विरुद्ध व्यापक प्रदर्शन की योजना थी। सारे जकार्ता का वातावरण बेहद गर्म था। भूमिगत हुए कम्युनिस्ट नेता कामरेड अदिति और उनके गुरिल्ला मध्य जावा के जंगलों में छिप गये थे और रह-रह कर हमला कर

रहे थे। मर्डेका महल और उसके आसपास टैंक और मशीनगन लिये सैनिक तैनात थे।

इस संकट काल में भारतीय राजदूत ने असाधारण धैर्य और नीति कुशलता का प्रदर्शन किया था। इस सारे तनाव के बीच हमारे राजदूत न केवल शान्त थे वरन हँसते-हँसाते सारे सम्बन्ध-सूत्रों को नया आयाम दे रहे थे। दूतावास में सुबह ही हम लोगों ने तिरंगा फहरा कर, 'जन-गन-मन' गा कर अपना स्वतन्त्रता दिवस मनाया था। जनरल सुहार्तो ने भी शुभकामना सन्देश भेजा था और शाम को राष्ट्रपति सुकार्नो का विशेष आमन्त्रण था भारतीय राजदूत और उनके परिवार और इष्टमित्रों को। ऐसा अद्भुत अजातशत्रु, सर्वप्रिय व्यक्तित्व था हमारे राजदूत का।

वे असाधारण राजदूत थे—हिज एक्सीलेंसी श्री पेराला रत्नम्। उन्होंने मुझे इण्डोनेशिया आमन्त्रित किया था ताकि इस महान देश की गहरी सांस्कृतिक परम्पराओं, भारतीय संस्कृति से उसके जुड़ाव और इस टैंक, मशीनगन, क्रान्ति-प्रतिक्रान्ति, रक्तपात और व्यापक राजनीतिक उथल-पुथल का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकूँ।

शाम को हम लोग तैयार हुए। वे, उनकी विदुषी पत्नी श्रीमती कमला रत्नम्, उनका बेटा अशोक, बेटी माधवी और मैं। गहरे हरे रंग के छायादार वृक्षों के बीच सफेद, शानदार मर्डेका महल—टैंकों और मशीनगनों के पहरों में। सामने जमीन खोदकर बनाये गये सैनिक बंकर और एक एण्टी एयरक्रॉफ्ट तोप भी। कुछ भी उत्पात, किसी भी समय हो जाय, क्या ठिकाना !

कड़ी सैनिक जाँच के बाद सैनिकों के पहरों में हम महल में दाखिल हुए। अन्दर विशाल सभाकक्ष का वातावरण भी अद्भुत था। चारों तरफ अपने-अपने बाद्य यन्त्र लिये बैठी हुई संगीत मण्डलियाँ। कहाँ हैं राष्ट्रपति सुकार्नो ? किसी ऊँची मखमली कुर्सी पर आसीन ? नहीं, वे तो स्वयं अपने सामने एक विशेष प्रकार का बड़ा-सा काष्ठ तरंग रखे, दो छोटी छड़ियाँ हाथ में लिये फर्श पर बैठे थे उन्हीं संगीतज्ञों के बीच। कैसा अद्भुत आदमी है यह भी ? हम लोगों को आते देखकर मुस्कराये, हाथ उठाकर अभिवादन किया। हम लोग कुर्सी पर बैठ गये तो सहसा माइक अपने सामने खींचा और बोले, "हमारे भारतीय दोस्त आ गये हैं। अब बाकी सब खामोश रहेंगे। इनके लिए अब स्वयं बापक (बापू) सुकार्नो काष्ठ तरंग बजाकर रामायण गायेंगे ?"

उन्होंने एक गत काष्ठ तरंग पर बजायी—मधुर और प्रिय। हॉल में तालियाँ गूँजीं, वे उत्साहित हो खड़े हो गये। माइक ऊँचा किया गया। उनके खड़े होते ही हॉल में हलचल हुई, और हमने अचरज से देखा कि हर गद्देदार सोफे के पीछे एक सैनिक मशीनगन लिये छुपा था। वे उनके खड़े होते ही अटेंशन मुद्रा में खड़े हो गये। स्टेनगनों

चारों ओर तन गयीं। सबके चेहरे पर तनाव आ गया। लेकिन बापक राष्ट्रपति सुकार्नों शान्त थे। माइक पर बोल रहे थे—“भारत मेरा प्रिय देश है, लेकिन मेरे प्रिय मित्र आचार्य रघुवीर का समुचित सम्मान नहीं किया।” (रत्नम् जी ने इशारे से कहा था हॉल में एक ही फोटो टँगा था, डॉ. रघुवीर का जिनसे सुकार्नों ने संस्कृत सीखी थी दक्षिण-पूर्व एशिया पर भारतीय संस्कृति के विषय का विशद ज्ञान प्राप्त किया था)। सुकार्नों ने मुद्रा-सी बदली और हाथ उठाते हुए कहा—“हिज एक्सीलेंसी पेराला रत्नम् को मैं बता चुका हूँ आज आप सबको बताता हूँ कि मैं महाभारतकालीन भीम और हिडिम्बा के वीरपुत्र घटोत्कच का अवतार हूँ। मैं संकटों से घबराता नहीं, मैं योद्धा हूँ। यह रामायण गायन की गोष्ठी है, लेकिन एक गीत मैं घटोत्कच की प्रशंसा में गाऊँगा। सुनिए रत्नम् जी !”

यह रत्नम् जी का अनूठा व्यक्तित्व था कि जिस देश में राजदूत होकर रहे, वहाँ की सांस्कृतिक परम्पराओं में गहरे घुल-मिल गये और भारत के लिए उन्होंने एक गहरा प्यार उस देश के जन-मन-में जगाया। दक्षिण-पूर्व एशिया उनका विशेष प्रिय क्षेत्र था। इण्डोनेशिया के बाद वे लाओस में रहे। थाईलैण्ड, वियतनाम, लाओस, कम्पूचिया और उस सारे क्षेत्र में चलते गहरे राजनीतिक तनावों का उन्हें गहरा ज्ञान था और इस सारे क्षेत्र में चीन किस तरह भारतीय प्रभाव को समाप्त करना चाह रहा है, उन षड्यन्त्रों के प्रति वे पूरी तरह सावधान थे।

उनका एक स्वर था कि सारा दक्षिण एशिया एक बड़ी सांस्कृतिक और आर्थिक सहयोग-शृंखला में बँध जाये तो हर प्रकार के उपनिवेशवादियों के मनसूबे विफल हो जायें। वे उपनिवेशवादी शक्तियाँ पूँजीवादी हों या साम्यवादी—भारत इस तमाम क्षेत्र को उपनिवेशवादी षड्यन्त्रों से मुक्त रख सकता है।

इसके लिए उन्होंने एक अभूतपूर्व कल्पना की थी। उनका कहना था कि श्रीलंका, पाकिस्तान, नेपाल, बर्मा, लाओस, थाईलैण्ड, कम्पूचिया, वियतनाम, इण्डोनेशिया—ये सभी देश ऐसे हैं जहाँ रामकथा विविध रूपों में प्रचलित है। इन सभी जगहों में उसका स्वरूप केवल धार्मिक न होकर सांस्कृतिक है। इन देशों के जन मानस पर रामायण के सांस्कृतिक मूल्यों का गहरा प्रभाव है। भारत को चाहिए कि पश्चिम की ओर देखना छोड़कर इस सारे क्षेत्र को अपनी वैदेशिक नीति में प्रमुखता से महत्व दे और एक सांस्कृतिक-आर्थिक सहयोग योजना बनाये—इसे रामायण कॉमनवेल्थ की संज्ञा दे और इन्हें संगठित कर उपनिवेशवादी शक्तियों के प्रभाव से मुक्त कर आत्मनिर्भर बनाये और इनके विकास में आगे बढ़कर दिशा निर्देश दे। लेकिन उनका यह महान स्वप्न

अंग्रेजी और अंग्रेजियत से प्रभावित सरकार और अफसरशाही की भूलभुलैया में भटककर रह गया। जब वे मैक्सिको गये तब वहाँ भी उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति के अवशेषों को पुनर्जागृत करने का अभियान चलाया। आक्टेवियो पाज से लेकर कितने ही अन्य दक्षिण अमरीकी लेखकों, विद्वानों, भारत विशेषज्ञों से उन्होंने सम्पर्क बढ़ाये और उन्हें भारत की ओर उन्मुख किया। दक्षिण अमरीका में चिली के विश्वविख्यात राष्ट्रपति आयदे (जिनकी बाद में हत्या कर दी गयी) से उनका निजी पत्र-व्यवहार हुआ था, चे गुवेरा के कुछ वरिष्ठ अनुयायी भी उनसे मिले थे और क्यूबा के राष्ट्रपति फीडेल कास्त्रो से उन्होंने मैत्री स्थापित कर ली थी। उन दिनों मैं धुआँधार सिगार पीता था। मेरी इस आदत से वे प्रसन्न नहीं थे। कई बार टोक चुके थे लेकिन एक बार जब वे मैक्सिको से लौटे तो मुझे बुलाया। हवाना सिगारों का एक बड़ा डिब्बा दिया और फिर अपनी अटैची खोलकर एक विशेष सिगार निकाला। भेंट करते हुए बोले, “देखो, यह फीडेल कास्त्रो के डिब्बे से तुम्हारे लिए लाया हूँ।” उस सिगार के प्लास्टिक कवर पर सुनहरे अक्षरों में राष्ट्रपति कास्त्रो का नाम लिखा हुआ था। दक्षिणपूर्व एशिया के प्रति उनमें जो गहरा लगाव था वही दक्षिण अमरीका के लातीनी देशों के प्रति भी था। उनकी विदुषी पत्नी संस्कृत की प्रकाण्ड आचार्या श्रीमती कमला रत्नम् उनके इन सांस्कृतिक अभियानों की प्राण-प्रेरणा रही हैं। उन्होंने मैक्सिको के प्रवास काल में हिन्दी कविताओं का स्पेनी भाषा में अनुवाद कर एक संकलन वहीं प्रकाशित करवाया था और जब मैं बाली द्वीप की राजधानी देनपसार के उदयन विश्वविद्यालय में गया तो यहाँ के प्राचार्य और प्राध्यापक तो श्री रत्नम् और कमला रत्नम् की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। लेकिन गम्भीर आत्मसंयमी और भारतीय संस्कृति के प्रति अदम्य निष्ठावान पेराला रत्नम् ने कभी भी आत्मविज्ञापन नहीं किया, अपनी स्थितियों का कोई राजनीतिक लाभ नहीं उठाया—और हमारे राजनीतिज्ञों और सांस्कृतिक नेताओं ने कभी उनका समुचित महत्त्व नहीं पहचाना। कैसे चुपचाप चले गये रत्नम् जी !

अब वे नहीं हैं तो याद आ रही है वह जकार्ता की सुबह। दूतावास के द्वार पर एक विशाल चम्पा का वृक्ष था। वहाँ चम्पा का वृक्ष कितना विशाल होता है इसका अनुमान यहाँ से करना कठिन है। श्वेत चम्पा के फूलों से डालियाँ लदी थीं। बेंत की एक कुर्सी डालकर वे बैठे थे। चम्पे की महक हवा में गुँथी हुई थी। एक-दो फूल हमारी कुर्सियों पर चू पड़े थे।

वे बोले, “डॉक्टर भारती, तुम्हें मालूम है, चम्पा इस क्षेत्र का विशेष पवित्र वृक्ष है। सच तो यह है कि कम्पूचिया-वियतनाम क्षेत्र का प्राचीन नाम चम्पा द्वीप है। प्राचीन भारतीय साहित्य में भी यही नाम मिलता है। चम्पा द्वीप।”

मैंने चम्पा का एक फूल उठाते हुए कहा, “और रत्नम् जी, क्या आपने कभी सुना है कि यह चम्पा द्वीप नाम एक भारतीय लड़की के नाम पर रखा गया था।”

“कैसे ?” वे अचरज से बोले।

मैंने उन्हें प्रसाद जी की ‘आकाशदीप’ कहानी सुनायी, कैसे दस्यु बुद्धगुप्त ने

जिसे मारा उसी की रूपवती कन्या चम्पा से वह प्रेम करता था। कैसे चम्पा अपने प्रेम और अपने पिता की हत्या के दुख के अन्तर्द्वन्द्व में उलझकर टूटती गयी। कैसे उसने ये द्वीप बसाये और कैसे एक दिन छोड़कर भारत लौट गयी। बुद्धगुप्त ने उसकी स्मृति में अपने द्वीप राज्यों का नाम 'चम्पा' रखा और कैसे चम्पा के लौटने की प्रतीक्षा में एक आकाशदीप जलता रहा—निरर्थक, चम्पा कभी नहीं लौटी।

रत्नम् जी कहानी सुनकर आश्चर्यचकित थे। कल्पना है पर कितनी सजीव, कितनी सार्थक। इतने वर्षों पहले लिखी गयी यह कहानी। “काश, इसका अनुवाद होता,” वे बोले, “तो कितनी चर्चा होती इसकी इस प्रदेश में, लेकिन कौन करता ? हिन्दीवाले अपने संकीर्ण स्वार्थों में उलझे हैं और अंग्रेजीवालों की तो निरन्तर साजिश है कि भारतीय भाषाओं के असली महत्त्व को कभी दुनिया के सामने आने ही न दें।”

उस पूरे प्रदेश में सचमुच आकाशदीप गाँव-गाँव में जलते हैं। गगनचुम्बी बाँसों के सिरे पर लटके छोटे-छोटे दीपक—जाने किस भटके यात्री को रास्ता दिखाने के लिए।

सोचता हूँ कि अपने रत्नम् जी का व्यक्तित्व भी एक अचर्चित आकाशदीप रहा है। काश कि हमारी अंग्रेजीपरस्त भटकती हुई अभिजात्य मानसिकता कभी इस आकाशदीप के द्वारा निर्देशित मार्ग को पहचान पाती। भारतीयता से विमुख अंग्रेजीपरस्ती के छिछले, अहंकारग्रस्त जड़ अन्धकार में आलोक्ति इस आकाशदीप जैसे व्यक्तित्व को एक शोकग्रस्त प्रणाम के अतिरिक्त और देने को हमारे पास है ही क्या ?

भारत माता

कठिन समय में आया हूँ इण्डोनेशिया। सुकर्ण चीन में थे, तभी यहाँ उनके खिलाफ कामरेड अदिति के नेतृत्व में एक कम्युनिस्ट विद्रोह हुआ। सुकर्ण को बचाया जनरल सुहार्तो ने, एक कम्युनिस्ट विरोधी जन मोर्चा खोलकर सत्ता अपने हाथों में ले ली। पर सुकर्ण को नाम मात्र के लिए राष्ट्रपति बने रहने दिया। हर तरफ खून-खराबा, गुरिल्लों और फौजों की टकराहट, गलियों में बम और गोली चलने के धमाके, सन्नाटा।

मुझे जोग जकार्ता जाना है, मध्य जावा में जहाँ हालत और खराब है। राजदूत रत्नम् ने एक पत्र दिया है किसी सिन्धी व्यवसायी के नाम। ट्रेन जकार्ता से शाम को चार बजे छूटी है, रात को 12 बजे पहुँचेगी। एक पूरा कम्पार्टमेण्ट सशस्त्र सैनिकों का है कि कहीं जंगल में गुरिल्ले ट्रेन पर हमला न कर दें। जंगलों में गोलियाँ चलती हैं। ट्रेन रुकते-रुकते बजाय 12 बजे के दो बजे रात को जोग जकार्ता पहुँचती है। घुप्प अँधेरा, सुनसान सड़कें। रिकशावाला कागज पर लिखा पता पढ़कर ले चलता है। तीन जगह बन्दूक ताने फौजियों की जाँच-पड़ताल के बाद वहाँ पहुँचता हूँ। वह एक कपड़े की बड़ी दुकान है। एक अधसोया हुआ सिन्धी युवक आता है। नीचे दुकान है ऊपर रहने के कमरे। मेरे कमरे में थाली से ढँका खाना रखा है। 'माई जी ने शाम को ही आपका खाना रखा दिया था। खाने के पहले कुछ पियेगा तुम ? सिन्धी युवक एक डच शराब की बोतल ले आता है। मैं पीता नहीं हूँ, खाने की इच्छा नहीं। सो जाता हूँ।

सुबह पहले पुलिस चौकी पर हाजिरी देनी है, फिर जहाँ पत्थरों पर पूरी रामकथा उत्कीर्ण है, उसपरम्बनन का मन्दिर देखने जाना है। जाने के पहले सोचा माई से मिल लूँ। मालूम हुआ माई किसी से नहीं मिलती। सनकी है बुढ़िया, अकेली है। यह दुकान, पीछे का मकान, जायदाद सब उसकी है। ये तीन-चार सिन्धी युवक उसके कर्मचारी हैं, रोजगार सँभालते हैं। माई पूजा करती रहती है, खाना पकाती है, बाहरवालों से मिलती नहीं। 'क्यों, ऐसी रहस्यमयी क्यों है बुढ़िया ? मैं सोचता हूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

जोग जकार्ता में सुहार्तो की पत्नी का एक वूटीक है। वहाँ से रामायण और महाभारत की चर्म पुत्तलिकाएँ खरीदने जा रहा हूँ कि वही सिन्धी युवक घबराया-सा आता है। 'भारती साहब, माई जी बोहोत गुस्सा है आपको बुला रही है, सँभलकर बात करना। दिमाग ठीक नहीं है उसका।'

कुछ कुतूहल, कुछ आशंका भरे मन से मैं नीचे उतरकर जाता हूँ। अगरवत्तियों की सुगन्ध, घण्टियों की आवाज, पूजाघर में है माई। 'आओ साई, कुड़सी लाओ, वाहड़ बैठ जाओ।' माई 'र' को 'ड़' बोलती है। भगवान पर फूल चढ़ाकर सर ढँककर प्रणाम करती है और मेरी ओर तश्तरी में एक केला और मीठे चावल बढ़ा देती है, 'ले खा, तू सच्चा साई है। मांस नहीं खाता, सड़ाव नहीं पीता, तबी मैं तेरे को बुलाया। बैठ।' थोड़ी देर आँख बन्द कर जाने क्या बुदबुदायी है फिर आँख खोलकर पूछती है—'तेरे माँ है, नहीं है। गुजर गयी। भागमान थी। बेटे के जीते जी चली गयी। मेरे को देख, जवान बेटा गुजर गया। मेरे को भगवान बुलाता ही नहीं। देख, वह मेरे बेटे का फोटो।' पूजाघर में ही एक जवान लड़के का फोटो लगा था।

'माई जी, आपका एक ही बेटा था।' मैं डरते-डरते पूछता हूँ।

'नहीं, दूसरा भी था, वह देख ! देखा कि पूजाघर में एक और तसवीर टँगी है। किसी अखबार से काटकर लगायी गयी फोटो सुभाष बोस की। मैं चौंकता हूँ सुभाष बोस ? इस बुढ़िया माई का बेटा। सचमुच इसका दिमाग चल गया है क्या ?

मैं चुप बैठा हूँ। माई जी फिर आँख मूँदकर हाथ जोड़े बैठी हैं। फिर जैसे अपने अतीत में लौट गयी हो, डूबे-डूबे स्वर में सिन्धी मिश्रित टूटी-फूटी हिन्दी में जो कथा बताती है, वह सुनकर मैं स्तब्ध हूँ।

सुभाष उस समय आजाद हिन्द फौज का गठन कर रहे थे। रंगून में, बैंकाक में, सिंगापुर में। प्रवासी भारतीय अपनी सारी कमाई, धन-दौलत अर्पित कर रहे थे आजादी की लड़ाई के लिए। जादू था उनकी आवाज में। जादू था उनके व्यक्तित्व में। माई जी ने एक दिन अपने सारे गहने, अपनी सास के दिये हुए सारे गहने, दुकान से कमाये नोटों की गड़ियाँ, सब एक पोटली में बाँधकर अपने लड़के के हाथ भेजी। मगर सुभाष ने देखा और लौटा दी पोटली, ज्यों-की-त्यों। माई जी रात भर सोचती रही, 'क्या कसूर हो गया मुझसे ?'

दूसरे दिन रहमान भाई आये बोले—नेता जी ने आपको बुलाया है। माई बेटे को साथ ले करके गयी। बहुत सलोनो मीठे-मीठे लगे सुभाष। बोले, 'माई जी यह छोटी दौलत मैं क्या करूँगा ? तेरे पास बड़ी दौलत है माँ। वह दे न ?' माई जी बोलीं—'दुकान जायदाद सब ले ले मेरा।' 'नहीं, माँ मुझे सिपाहियों की जरूरत है। अपना बेटा देगी। वोल।' माई जी चुप हो गयीं। विधवा माई का अकेला बेटा। नेता जी बोले, देख माई राम के साथ लक्ष्मण नहीं होते, तो क्या राम लड़ सकते थे। हँसकर बेटे को भेज माँ, रोक न नहीं। मेरे बेटे को लछमन बोला नेता जी, मैं कैसे मना करती। मैंने भेज दिया। वो रोने को मना किया था। मैं उसके सामने नहीं रोयी, पर घर आकर बहुत रोयी।

बहुत रोयी। फिर छह महीने बाद नेता जी मेरे को बुलाया। जीप पर बैठा कहीं जाता था। मेरा बेटा सिपाही बना दूसरा जीप में था। मेरे को देखकर उतरा, जमीन पर ठक से बूट ठोककर दोनों पैर मिलाकर सलाम किया। नेता जी हँसा। ऐसा हँसता था जैसे मिसरी का सरबत। जीप से उतरा, मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बोला—‘माई, हम किसका वास्ते लड़ रहा है बोलो’। मैं बे पढ़ी-लिखी। मैं क्या बोलती—तो वो ही बोला, ‘माई, हम लोग भारत माता के लिए लड़ता। गोरालोग उसका बेइज्जती किया। हम अपना माँ का इज्जत के वास्ते लड़ता। मैं क्या बोलती। वो ही फिर बोला, ‘माई, ला तेरा चरण धूल लेऊँगा’ फिर मेरा पाँव छूकर बोला, ‘माई तू भी भारत माता है। जितना माई लोग है, सब मेरा भारत माता है। आशीष दे ओ माई कि तेरा बेटा तेरा दोनों बेटा जीतकर लौटें।’ मेरे को रोना आ गया। मैं नेता जी का एक नहीं सुना, एक नहीं सुना। दोनों को लपटाकर बहुत रोया। बहुत रोया। फिर सब जीप चल पड़ा। हाँ, जब सब जयहिन्द बोला तो हम भी रोते-रोते जयहिन्द बोला, पर कोई सुना ही नहीं।

चुप हो गयी माई, चुप बैठा हूँ मैं भी। बस, पूजाघर में घी के दीये की टिमटिमाती लौ और बत्ती चिटकने की आवाज।

थोड़ी देर बाद रूँधे गले से फिर घुटी-घुटी आवाज निकलती है माई की, ‘अपने कौल का पक्का था नेता जी। बोला था न कि तेरे बेटे को लेकर आऊँगा। इम्फाल कोई जगह है, वहाँ मेरा बेटा को गोली लग गया। फिर कितने दिन बाद सुना कि बड़ा बेटा का हवाई जहाज टूट गया, जल गया जहाज। इसी पूजाघर में रात-रात भर पूजा किया कि भगवान, छोटा गया, तो गया, मेरा बड़ा बेटा को जिन्दा लौटा दे लेकिन कोई नहीं लौटा। कोई नहीं।’ और माई आँसू पोंछकर सूनी-सूनी निगाह से आँगन की ओर देखती रहती है।

रात बहुत बेचैनी की बीती है। 12 बजे से सड़क पर टैंक और फौजी ट्रक जाते रहे हैं शोर करते हुए। सुबह 8 बजे अलसाया हुआ उठता हूँ, तो देखता हूँ दुकान में काफी गहमागहमी है। फर्श धोया जा रहा है। अलमारियों की धूल झाड़ी जा रही है। शीशे पोंछे जा रहे हैं। कपड़े के थान करीने से रखे जा रहे हैं। ‘क्या बात है ? कोई आर्मी ऑफिसर आ रहा है क्या ? पूछता हूँ तो सहमे स्वर में जवाब मिलता है—‘नहीं, आज माई आ रही है। दुकान देखने। दस-बारह साल हो गये, ऊपर नहीं आयी। आज जाने क्यों आ रही है ?’

माई जी ऊपर आयीं, तो सन्नाटा छा गया। एक बार उन्होंने नजर घुमाकर देखा, पूछा, ‘मेहमान को कहाँ ठहराया ?’ फिर मेरे कमरे में आयीं और हाँफती हुई कुरसी पर बैठ गयीं, ‘तुम्हारा बिस्तर-बिछौना ठीक है न, कोई चीज चाहिए ?’

‘नहीं चाहिए ?’ फिर कुछ देर चुपचाप बैठी रहीं। सुस्थिर होकर बोलीं—‘दुकान देखने आयीं। बरसों बाद पहली बार आयी। क्यों आती देखने ? दुकान क्या है, पाप का घड़ा है, बूँद-बूँद भर रहा है। भरने दो। जब बेटा ही नहीं रहा, तो क्या दुकान, क्या मकान ? मैं तो एक पैसा नहीं छूती दुकान का। सब चोड़ी चमाड़ी (चोरी-चमारी)

करते हैं यहाँ ! हांगकांग से कपड़ा लाते हैं, वाम्बे-दिल्ली में चोड़ी से बेचते हैं। रात को सड़ाब पीते हैं। मांस-मछड़ी खाते हैं। एक पैसा नहीं छूती। दुकान से कमाओ, दुकान में लगाओ। मेरी भतीजी और दामाद हैं हांगकांग में। वही साल में एक बार आकर देखते हैं, उन्हीं को दे दूँगी।' 'तब माई जी अपना खर्चा ? मैंने पूछा।

बोली—“वह सारा गहना सोना नेता जी ने लौटा दिया था न, वही है। अरे मेरा खर्चा क्या एक बखत का खाना, और साल में चार धोती-कपड़ा, पूजाघर में बस थी जलाती हूँ। हाँ, एक बार सब लोगों को दावत दिया था, क्या बोलते हैं उसे, पाल्टी, पाल्टी दिया था। वो, भौत साल हुआ, तो ये लोग रेडियो सुनकर बताया कि भारत माता आजाद हो गया। जवाहरलाल को राजा बनाया है। ये मेरे को लगा कि मेरा बेटा होता, तो जरूर पाल्टी देता, लेकिन...” और माई जी चुप हो गयी। ‘लेकिन क्या माई जी...लेकिन क्या’ मैंने पूछा।

‘लेकिन क्या बेटा, सब लेकिन ही लेकिन है। मैं कितनी खुश थी कि मेरे दोनों बेटों का सपना पूरा हुआ। गोरे चले गये। मैंने कहा, मैं अपने गाँव एक बार जाऊँगी, हैदराबाद सक्कर के पास मेरा गाँव है। तो सब लोग बोले—वहाँ तो मारकाट मची है। वह तो अब पाकिस्तान में है। मेरा तो जी धक से हो गया। ऐसी कैसी आजादी आयी कि देस परदेस हो गया। मैं मैके के गाँव भी नहीं जा सकती। मैं तो पैदा हुई वहीं। पन्द्रह बरस तक बचपन में वहीं रही मुझे अच्छी तरह मालूम है कि वह भारत है फिर ये लोग मुझे औरत समझकर बहका रहे हैं। पाकिस्तान में कैसे हुआ मेरा गाँव ? मैं समझ गयी, मेरा बेटा है नहीं, ये लोग डरते हैं कि मायके जाकर मैं अपने मायके वालों को सब जमीन-जायदाद दे आऊँगी।’

फिर मेरे भानजे की बहू आयी। पढ़ी-लिखी थी। पूछा तो बोली, ‘सच है माँ जी, अब सिन्धु भारत का नहीं रहा। हम लोग भागकर जयपुर में बस गये हैं।’ मैंने बहुत गुस्सा होकर पूछा, ‘तो काहे के लिए मरा था मेरा बेटा ? मेरा मायका भी परदेस हो जाये इसलिए। वह कुछ नहीं समझी ? उसे क्या मालूम ?’ माई जी बोलती जा रही थीं, ‘मैं भी दरजा चार तक पढ़ी हूँ। सिन्धी, उड़दू (उर्दू), हिसाब। तब एक बार मैं पिकेटिंग में गयी थी।’

गांधी जी ने कहा था, सुदेशी कपड़ा पहनो। कई साल बाद बाम्बे शहर से कई मेहमान आये। यहाँ से मेरी दुकान से कितना-कितना जापानी माल, कपड़ा सब ले गये, वहाँ बेचकर साढ़े तीन हजार रुपया मुझे भेजा। सब बिलेक में बेचा। उस दिन मैं फिर रोयी। हे भगवान भारत माता को आजादी हो गयी। तब यह कैसे हो रहा है ? फिर यहाँ इस देश में सोने की बहुत कमी हो गयी तो कई लोग आये भारत से सोना छिपा कर लाये। चौगुने पचगुने दाम पर बेचा। मैं तो देखती रह गयी। गुलाम थे तो गोरे भारत का सोना ले जा रहे थे लूटकर, पर ये तो गोरे नहीं हैं। ये भारत का सोना क्यों ला रहे हैं ? अरे क्या भारत माता इनकी माता नहीं है। कोई माँ का सोना गहना बिलेक में बेचता है क्या ? मुझे बहुत गुस्सा आया। उस दिन मैं बड़े बेटे से खूब लड़ी।

वह उसका फोटू लगा है न पूजाघर में सुभाष का। मैं जाकर खूब रोयी, तुम क्यों ले गये मेरे बेटे को ? कौन-सी आजादी दिला दी तुमने ? तुम तो कहते थे कि गांधी महात्मा तुम्हारा काका है। जवाहरलाल तुम्हारा बड़ा भाई है। तो जवाहरलाल के राज में क्या करवा रहे हो ? कुछ जवाब नहीं दिया उन्होंने। मैंने कहा, ठीक अब सत्यानाश तो सवा सत्यानाश। मैंने दुकानवालों से कह दिया। आज से जो चाहो काला-पीला करो। मैं दुकान में पैर नहीं धरूँगी। न एक पैसा छुऊँगी पाप का। ये लड़के आये, एक बम्बई से है, एक काठियावाड़ से, एक जयपुर से। सब आजादी के बाद के हैं छोकड़े। खूब सड़ाब पीते हैं, गोरों की तरह गिटपिट बोलते हैं, गोरों की भाषा में। फिर एक बार कोई दिल्ली शहर से आया। इसी कमरे में टिका। खहर पहने था। लेकिन बातचीत, खान-पान सब गोरों का। उस दिन मैंने छोटे बेटे से जाकर कहा पूजाघर में, बेटा, अब तुम सचमुच मर गये। पर तुम्हें सोचना तो चाहिए था कि विधवा माँ को अकेला छोड़कर तुम किसके लिए मरने चले गये थे। इन लोगों के लिए ? फिर मैं चुप हो गयी। क्या फायदा बेटे का दिल दुखाने से ? मैंने बहुत दिलासा दिया उसे, घबराओ मत बेटा, सब ठीक हो जायेगा। पर कहाँ ठीक हो रहा है। तुम तो सच्चे साईं हो, सच-सच बताना, क्या ठीक हो रहा है ? कहाँ ठीक हो रहा है ?

मैं चुप बैठा रहा क्या बोलता ?

दूसरे दिन मुझे सुराबाया जाना था, वहाँ से समुद्र पार कर बाली द्वीप। गाड़ी आ गयी थी, सामान रखा जा चुका था। मैं नीचे गया। जिन पाँवों को सुभाष ने छुआ था, उनकी धूल एक बार माथे पर लगाना चाहता था, जाने के पहले। लेकिन माँ जी पूजाघर में थीं। एक भजन की किताब खोले कुछ बुदबुदा रही थीं—चेहरा बेहद बुझा हुआ गमगीन।

पूजाघर में जाना वर्जित था। मैंने मन-ही-मन प्रणाम किया। बाहर जाकर मोटर में बैठ गया। धान के हरे खेत, नारियल के कुंजों में से होती हुई गाड़ी आगे बढ़ रही थी और मेरा मन लौट रहा था पीछे, पीछे और पीछे। अपने कैशोर्य में हम लोग जुलूसों में लाठियाँ खाते हुए एक गीत गाते थे। किसी जनकवि का लिखा बेहद साधारण गीत :

ऐ मादरे हिन्द न हो गमगीन
दिन अच्छे आने वाले हैं
आजादी का पैगाम तुम्हें
हम जल्द सुनाने वाले हैं।

आजादी का पैगाम आया, पर बीच में कहाँ खो गया, लोगों तक पहुँचा क्यों नहीं ? उस मादरे हिन्द तक भी नहीं, जिसका पाँव छूकर किसी ने कहा था—‘तुम भी भारत माता हो, सब माता लोग हमारे लिए भारत माता हैं।’

गांधी-स्मृति : आधी रात का बाजार

गांधी जयन्ती पर जाने क्यों मुझे भारत से हजारों मील दूर एक छोटे से सुन्दर द्वीप की एक घनघोर अँधेरी रात याद आती है, घनघोर अँधेरी इसलिए कि उस द्वीप में सिर्फ एक- दो स्थानों पर बिजली आ सकी थी। बाकी अब भी वह सुन्दर द्वीप दीयों, टिबरियों, मशालों, मोमबत्तियों या बहुत हुआ तो गैस के पेट्रोमेक्स तक के युग में ही प्रवेश कर पाया था। दिन में फूलों, अनिन्य सुन्दरियों, धान के खेतों, नीले समुद्र, पुराने मन्दिरों और पोखरों का यह द्वीप रात होते ही कितना सुनसान और डरावना लगने लगता है। घने अन्धकार में जंगल और काँटेदार घास के बीच से गुजरती हुई पतली खतरनाक पगडण्डियाँ, इतनी पतली कि अगर भूरा या सफेद मोटा साँप लेटा हो तो चलने वाले को भ्रम हो कि यह पगडण्डी है ! किम्बदन्तियों के अनुसार यह शिव जी का प्रवास द्वीप है न, तो उनके साँप हर जगह वेखौफ घूमते रहते हैं। कोई उन्हें छेड़ता नहीं।

मैं जिक्र कर रहा हूँ इण्डोनेशिया द्वीप समूह के सबसे दक्षिणी सिरे पर स्थित प्रख्यात वाली द्वीप का, संसार के सुन्दरतम स्थलों में एक अनूठा रम्य स्थल।

उस द्वीप की प्रान्तीय राजधानी का नाम है—‘देनपसार’। एक-दो नये बने फाइव स्टार होटल, इर्दगिर्द कस्बेनुमा गाँव, नारियल के पत्तों से छाये हुए चाय घर, छोटी-छोटी धूलभरी दुकानें, सिर्फ एक चौड़ा पक्का रास्ता और उसके बाद वस्तियों और जंगलों में गुजरती हुई वही पतली पगडण्डियाँ, शिव जी के साँपोंवाली।

देनपसार का एक खास आकर्षण है आधी रात का बाजार। आगे चलकर बायीं ओर समुद्री रेत मिली मिट्टी के एक छोटे से मैदान में लगता है यह अनोखा बाजार। रात के 11 बजे से आसपास के गाँवों से स्त्रियाँ आती हैं, बेचने वाला माल लादकर। चावल, पपीते, जम्बूफल, फूलों के हार, चाँदी और गिलट के गहने, बाटिक की छपाई के सारंग यानी लुगियाँ, तरह-तरह के काष्ठ शिल्प, मूर्तियाँ, काठ के बेलन, प्याले, चमचे

और खिलौने। पूरे बाजार में दुकानदार स्त्रियाँ होती हैं और ग्राहकों में भी सत्तर प्रतिशत स्त्रियाँ। बिजली तो होती नहीं थी। दुकानों पर बड़े तेल पिघे काठ के दीपक होते थे, या टीन की बनी मिट्टी के तेल की टिबरियाँ, किसी-किसी दुकान पर मशाल भी जलती थी। वह बड़ी और मालदार दुकान मानी जाती थी। बाजार 11 बजे रात से शुरू होकर सुबह 4 बजे तक चलता था।

बहुत उत्सुक थे मेरे मेजबान, मुझे यह रात का बाजार दिखाने के लिए। अपने दुभाषिया गाइड के इडाबागुस ओका साथ ठीक आधी रात में पहुँचा। घुप्प अँधेरे में डूबे हुए कस्बे और जंगल और समुद्र तट के बीच एक जगमगाती हुई लम्बी-सी गली; विचित्र रहस्यमय लग रही थी। लावण्यमयी दुकानदारिनें, आसपास से आयी मिली-जुली भीड़ और सबकी छाया काँपती हुई, क्योंकि दीया, टिबरी और मशालों की लौ समुद्री हवाओं में काँप-काँप उठती थीं। मैंने पूछा कि यह बाजार देनपसार में क्यों लगता है और आधी रात को ही क्यों ? पता चला कि यह बाजार देनपसार से भी पुराना है, पहले यहाँ यहीं रात का बाजार लगता था। बाद में डचशासकों के प्रभाव से दिन का बाजार खुला, उसी 'दिन-बाजार' का इण्डोनेशियाई उच्चारण है देनपसार।

काँपती छायाओं वाली उस नीम अँधेरी गली में भटक रहा हूँ। किसी मोमबत्ती की रोशनी में चमक जाती कोई सुन्दर देहयष्टि, उत्सुकता से देखता हुआ किसी महिला दुकानदार का सुन्दर चेहरा, सजधजकर आयी हुई ग्राहिकाओं के जूड़े में लगे फूलों की नशीली महक, इतनी महिला ग्राहिकाओं और दुकानदारिनों के मोलभाव, बातचीत का मिलाजुला अज्ञात भाषा का मीठा शोर।

मैं दुकान-दुकान भटक रहा हूँ, अन्त में एक मुड़ती हुई लाइन है—काष्ठ-शिल्पों की। जाने कौन-सी बेहद हल्की लकड़ी है वहाँ की कि आदमकद पुतला भी दो हाथों में आसानी से आप उठा लें। और लकड़ी मुलायम इतनी कि जैसे चाहो तराश लो, वारीक-से-वारीक—लम्बी-पतली प्रतिमाएँ हैं। वाली की नवयौवना रूपसियों की। पतली कटावदार लम्बी कमर, मोंगरे की लड़ियों जैसी लहराती बाँहें, तीखे नैन नक्श, सचमुच सुराहीदार गर्दन—और उनकी कितनी भाव-भंगिमाएँ, कितनी मुद्राएँ, पुरुष प्रतिमाएँ कम हैं, लगभग नहीं के बराबर—वैसे गरुड़ हैं, कल्पवृक्ष है, बैसाकी का मन्दिर है, एक मस्तक पर चन्द्रमा और गले में सर्प डाले हुए महादेव हैं, एक लम्बे कुण्डल कर्णों वाले बुद्ध भी हैं, पर कोई उतना कलात्मक नहीं। पर यह क्या है ? अँधेरे कोने में लगभग खोई हुई सी एक प्रतिमा, रोशनी में सिर्फ उसके दुबले-पतले पंजर जैसे बदन की पसलियाँ चमक रही थीं। मैं उसे उठाता हूँ। गौर से देखता हूँ, शक्ल कुछ पहचानी-सी, हाथ में छोटी-सी लठिया अरे, यह तो अपने गांधी जी हैं। ये यहाँ कैसे ? हजारों मील दूर, इस बियावान में, अपरिचित देश, अनजान लोगों और द्वीप के ग्राम कलाकारों के बीच गांधी जी पहुँचे कैसे ? गांधी जी तो कभी आये नहीं यहाँ, दक्षिण अफ्रीका, मारिशस, इंग्लैण्ड, श्रीलंका में लोग उन्हें जानते हों, पर यहाँ जावा-वाली-सुमात्रा द्वीप में ?

और तब मुझे पता चला कि इण्डोनेशिया के राष्ट्रीय संग्राम के सबसे प्रतिष्ठित नायक और विख्यात पर विवादास्पद शासक राष्ट्रपति सुकर्ण (सुकार्नो) गांधी जी के अनन्य प्रशंसक थे। उस समय सुकर्ण डच उपनिवेशवादियों के शासन से इण्डोनेशिया को आजाद करने की लड़ाई लड़ रहे थे। उनके साधन अलग थे। वे अहिंसा का महत्त्व समझते थे पर अपनी रणनीति में छापामार युद्ध और सशस्त्र मुठभेड़ से भी परहेज नहीं करते थे। पर अन्य कई मुद्दों पर वे गांधी जी से न केवल प्रभावित थे बल्कि उनका अनुसरण करने की कोशिश करते थे। स्वतन्त्रता के पहले ही उन्होंने अपने को बापक सुकर्ण कहलाना शुरू कर दिया था। बजाय राष्ट्रपति, या किसी अन्य सम्बोधन के उन्हें 'बापक' शब्द पसन्द था, उसके अर्थ होते थे—पिता यानी बापू। जब सारा भारत गांधी जी को बापू कहता है तो इण्डोनेशिया सुकर्ण को 'बापक' क्यों न कहें। पर केवल नाम से ही नहीं, वे स्वीकार करते हैं कि उन पर जिन विचारकों का प्रभाव रहा है उनमें गांधी जी भी हैं। सुकर्ण के शब्दों में गांधी जी से उन्होंने कम्पेशन (करुणा) ग्रहण की थी। सुकर्ण ने आजादी के बाद दस्तकारों की भी दशा सुधारने की कोशिश की थी। और उन्हीं के आदेश थे कि राजनीतिक महापुरुषों में से केवल गांधी जी की प्रतिमाएँ बनायी जाएँ। इस तरह उस अर्द्धरात्रि के बाजार में मुझे अकस्मात् मिली थी गांधी जी की प्रतिमा, मैंने उसे खरीदा नहीं तो महिला ने मेरी ओर देखते हुए मेरे दुभाषिये इडाबागुस ओका से कुछ कहा, जरा दुखी स्वर में, उन्होंने मुझे बताया कि यह कह रही है कि "इसकी माँ के समय में 20 साल पहले इण्डिया के बापक की प्रतिमाएँ बहुत विकती थीं। सुरावाया, जोग जकार्ता, जकार्ता जहाँ भी भारतीय रहते थे वे इनकी मूर्ति ले जाते थे। पर अब तो बाहर से आनेवाले भारतीय भी उन्हें नहीं ले जाते। क्या इण्डिया अपने बापक को भूल गया है ?"

मैं प्रश्न सुनकर मर्माहत हो उठा। मेरे पास एक गहरी ठण्डी साँस के अलावा कोई जवाब नहीं था।

किस तरह आजादी के बाद नेहरू जी से सुकर्णों के सम्बन्ध बड़े, कैसे नव-स्वाधीन देशों के शिखर सम्मेलन में बांडुंग में सुकर्णों ने नेहरू जी को आमन्त्रित किया, उन्हें राजाओं वाली पालकी में बिठाकर ले गये और पालकी को खुद अपने कन्धे देकर उन्हें असीम सम्मान दिया, किस प्रकार उस सम्मेलन में सह-अस्तित्व 'पंचशील' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया—यह सब इतिहास आप जानते ही होंगे। फिर क्यों वे नेहरू से अप्रसन्न हो गये यह भी आपने पढ़ा होगा। लेकिन अपनी आत्म-कथा के अन्तिम अध्याय में सुकर्णों ने जिस तरह गांधी जी का जिक्र किया है वह कम लोगों को मालूम होगा।

उनकी आत्म-कथा का अन्तिम परिच्छेद उनके जीवन भर के कार्यों का, उनके अहसासों का एक लेखा-जोखा है उन्हीं के शब्दों में।

"आजकल मेरे भाषणों में अक्सर उल्लेख होता है मेरे अन्तिम समय का, जब मैं इस संसार में नहीं रहूँगा। मेरे मित्र अक्सर इसकी शिकायत करते हैं, पर मैं शायद जाने या अनजाने में उन्हें और अपने प्यारे देश इण्डोनेशिया को मानसिक रूप से तैयार

कर रहा हूँ उस दिन के लिए जब मैं इण्डोनेशिया के निर्माण के लिए नहीं रहूँगा। मैं नहीं जानता भविष्य में क्या है ? मैं यही चाहता हूँ कि मरण आये तो तत्क्षण मुझे ले जाये। मैंने अपनी सास की मृत्यु देखी है। पाँच दिन तक बेहोश रही वे। यह मैं नहीं चाहता। हमारी इण्डोनेशियन पुराण-कथाओं में जिक्र आता है एक जादुई पेड़ का। उसका नाम 'कल्पतरु' है। कहा जाता है कि उसके नीचे खड़े होकर जो इच्छा करो, वह पूरी होती है। अगर इस क्षण कोई देवदूत मुझे कल्पतरु के नीचे खड़ा कर दे और कहे कि राष्ट्रपति सुकार्नो तुम जो चाहते हो, वह माँग लो—तो मैं कहूँगा कि मुझे चुपचाप अपने पलंग पर लेट कर आँख मूँद लेने दो और फिर मुझे ले जाओ। शान्ति से—चुपचाप।”

“हाँ, मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि मुझे उस तरह समाधिस्थ न किया जाये जैसे गांधी जी को किया गया है। मेरे मित्र अत्यन्त प्रिय मित्र नेहरू ने उनकी समाधि को अनेक प्रकार के शिल्प और स्थापत्य से सजाया है। अगर मैं होता तो गांधी जी के लिए ऐसा स्थल चुनता जहाँ सिर्फ पेड़ होते, फूलों की डालियाँ होतीं और वनपाखी होते, वापस सादगी की ओर, वापस प्रकृति की ओर (जो उनका आदर्श था)। सच है कि वे विश्व स्तर के महान नेता हैं, उनकी समाधि को जितना भी सजाया जाये कम है। पर मैं क्या करूँ, मेरे मन में तो यही आता है कि वे ज्यादा पसन्द करते सादगी, प्रकृति की गोद और मनुष्य की मूलभूत मानवीय गुणों की पहचान। वे शान शौकत पसन्द नहीं करते, उनके स्वभाव से उसका मेल नहीं बैठता था।”

कैसा अजीब है कि गांधी के सन्दर्भ में उनके अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रशंसकों का जिक्र हुआ है। पर सुकार्नो का कभी जिक्र ही नहीं होता और न जिक्र होता है देनपसार के उस आधी रात के बाजार का, जहाँ मुझे हजारों मील दूर उस अँधेरे से बाजार में गांधी जी की काष्ठ प्रतिमा अकस्मात् मिल गयी थी।

प्रगाढ़ मैत्रियों का द्वीप

□ जून 1974

मॉरिशस : इन्द्रधनुष, काँपती प्रत्यंचा

सुदूर विदेशों की भटकती यात्राओं की अनेक स्मृतियाँ हैं, मन की परतों में दबी हुई, जैसे बच्चों की किताबों के पन्नों में जंगली फूलों की पंखुरियाँ और तितलियों के टूटे पंख दबे-छिपे रहते हैं, उबुद (बाली द्वीप) का हरा-भरा सन्नाटा और सरोवर में उतरती सीढ़ियाँ और दूर किसी गाँव में बजता जलतरंग, बावेरिया के आल्प्स की वीरान बर्फानी घाटियों में वह खामोश मठ और उसके गिरजे में स्तालिनग्राय से लौटे सिपाहियों की मनौतियाँ, स्कॉटलैण्ड के सुदूर उत्तर की कड़कड़ाती ठण्ड में वह स्वच्छ नीली झील और उसमें तैरते हुए दो राजहंसों की लाल वृत्त में चमकती भोली काली-काली आँखें, और भूमध्यसागर के एक छोटे निर्जन द्वीप में उगता हुआ काँपता सूरज और...लेकिन एक अनुभव जो मॉरिशस में हुआ, वह कभी कहीं नहीं हुआ।

स्वागत, अभिनन्दन, भाषण, सेमिनार, पार्टियाँ, गोष्ठियाँ, वक्तव्य, टेलिविजन, अखबारी भेंटवार्ताएँ—इन सबसे ठूसमठूस भरा हुआ पखवारा अब लगभग बीत चुका है और वापस लौटने के दिन नजदीक आ रहे हैं, और किसी तरह यह शाम बचा पायी है कि मॉरिशस के सुदूर दक्षिणी बिन्दु आन्सलारे का सूर्यास्त देखेंगे, बोबासां और रोजहिल में बारिश हो रही है पर मॉरिशस का मौसम अद्भुत है, यहाँ पर ठण्ड, दो मील बाद गर्मी, यहाँ बारिश, चार मील बाद धूप, मोहन महर्षि हमारे साथ हैं, गाड़ी खूबसूरत सजे-सजाये गाँवों और गन्ने के खेतों के बीच लहरीली सड़कों पर तैरती हुई अब एक पहाड़ी घाटी में दौड़ रही है, ढलानों पर जंगल और यह क्या, मोटर के दायाँ ओर सड़क के पार घास के फुटपाथों पर एक ताजा, टटका सतरंगा इन्द्रधनुष मेहराब की तरह उठ आया है। इतने नजदीक—यूँ उतरकर पकड़ लो, हम आश्चर्यचकित होकर गाड़ी धीमी करते हैं, हाँ, बस यह इन्द्रधनुष हमारा है, केवल हमारा। सड़क के दायाँ ओर से उठकर गाड़ी पर आकाश में घेरा बनाता हुआ फिर बायीं ओर घास पर टिक गया है, सच, आप विश्वास नहीं करेंगे बिलकुल जैसे हमारे स्वागत के लिए ! गाड़ी

फिर चलती है और इन्द्रधनुष साथ-साथ चलने लगता है, ठीक हमारे ऊपर-ऊपर और इतने पास कि लगता है, बाहर उतरकर दोनों हाथ फैलाओ तो उसके दायें-बायें बाजू को छू लोगे, हम चुप हो गये हैं, वादलों, पहाड़ों, फुहार धुले तरुओं की उस घाटी में इस इन्द्रधनुष के चमत्कार पर ठगे-से —मील-दो मील साथ-साथ दौड़ने के बाद सहसा अब इन्द्रधनुष पूरा-का-पूरा हमारे दायीं ओर अर्द्धवृत्त में तना हुआ चल रहा है ! आप कभी इस तरह इन्द्रधनुष के छत्र तले महाराजाओं की तरह चले हैं ? नहीं न ? यह सिर्फ मॉरिशस में सम्भव है !

और केवल उसी शाम नहीं, मॉरिशस में पहुँचने के क्षण से लेकर विदा के क्षण तक हम वहाँ एक और इन्द्रधनुष की छाया में चलते रहे, वह था वहाँ के इतने सारे जाने-अनजाने मित्रों के प्रेम का रंगारंग इन्द्रधनुष ! वे सारे प्यारभरे चेहरे यहाँ भारत में भी हर समय याद आते रहते हैं, पहुँचते ही हवाई अड्डे पर न जाने कौन से खुशनुमा नीले फूलों की विशाल माला लेकर पहुँचनेवाले मेवासिंह, पहली ही शाम की दावत में साहित्यकार और प्रतिबद्धता को लेकर बहस में उलझ पड़नेवाले और विदा के समय आँखों में आँसू भर लानेवाले सदानन्द हवलदार, परम स्नेही डॉ. हजारे सिंह, जयनारायण राय, मुनीन्द्रनाथ वर्मा, विष्णुदयाल जी, गौतम तिलक, मन्त्रीगण वसन्तराय, सत्यकाम बुलेल, मोदन भैया, जयपाल जी—त्रिवेणी के सदस्य जयनाथ सिंह, प्रेम बर्टन तथा अनेक जिनकी शक्तें याद हैं, नाम भूल रहा हूँ,—पुराने लेखक मित्र सोमदत्त बखोरी, अभिमन्यु अनंत शबनम, मधुकर भगत और नये उत्साही पत्रकार मित्र राजेंद्र अरुण, ट्रेनिंग कॉलेज के डॉक्टर रामप्रकाश तथा उनके सभी छात्र, सभी सभाओं में उत्साह से भाग लेने वाले देव-वंश रामनाथ, डॉ. ओरी, गंगा, तोरल, विदेसी तथा अनेक युवा बन्धु, नालन्दा प्रकाशन के रामलला, हिन्दीभवन के श्री एस. एम. भगत, टेलिविजन के डॉ. गोपाल शर्मा, रामलखन, धर्मवीर घूरा और पहले ही टेलिविजन इण्टरव्यू में टकराकर फिर मित्र बन जानेवाले नुबिन अकाइ, शिक्षामंत्री डॉ. शोपे, हीरामन और अन्धायुग के सभी युवा मॉरिशसी अभिनेता और सबसे बढ़कर मिलते ही, “कैसा है ? हम बम्बई गया, तुम यहाँ आ गया। अभी महीना एक और ठहरो।” कहकर प्यार से भेंटनेवाले चाचा (प्रधानमन्त्री सर रामगुलाम)—मैंने कहा न कि प्यार का एक सतरंगी इन्द्रधनुष था, जो शुरू से आखीर तक हम पर छाया रहा, और हमारे मेजबान आर्थिक आयोजना और विकास मन्त्री खेर जगत सिंह और भाभी राधिका जगत सिंह ! हम अनजान अतिथि की तरह उनके उस सुन्दर कलात्मक घर में गये थे और जब विदा के दिन उस घर से हवाई अड्डे जाने लगे तो लगा जैसे बरसों से जहाँ रहे हों वह अपना घर छूट रहा हो। इलाहाबाद छोड़कर बम्बई आये थे, तब भी मन इतना उदास नहीं था।

यहाँ भारत से इस बात का अन्दाज भी नहीं हो सकता था कि वह द्वीप इतना सुन्दर है, इतना प्यार भरा है। दक्षिणी तट का शान्त, कहीं अंगूरी, कहीं धानी, कहीं फीरोजी, कहीं मन्दिर के पुराने पवित्र काई जमे पोखरों जैसे रंगवाला सुहावना समन्दर; द्वीप को चक्र की तरह घेरे हुए लहरें उछालती प्रवाल रेखा, और उत्तरी तट का गहरा

नीला और चट्टानों से टकराकर फेन उगलता विक्षुब्ध महासागर—गाढ़ी काली रात में ज्वालामुखी के शून्य वृत्ताकार क्रेटर पर खड़े होकर सचमुच आकाश छूने और तारे तोड़ लाने का अहसास, नीले धुन्ध में ढके पहाड़, मीलों फैले गन्ने के खेत, चीड़ के जंगल, पानी की लहराती झीलें, सारे द्वीप में हर सड़क पक्की, छोटे-छोटे कलात्मक कॉटेज, शामारेल की वह रहस्यमयी रंगविरंगी धरती और पापिलेमूस के थालीदार पत्तोंवाले शतदल कमल और सैकत तटों के जादू रेखाओं वाले शंख और चीड़ वनों के बारहसिंगे—अचरज होता है कि इस छोटे-से द्वीप को विधाता ने कैसे प्रेरित क्षणों में गढ़ा होगा ! कौन-सा देश है दुनिया में जहाँ प्रकृति ने इतना सौन्दर्य बाहर बिखेरा हो और इतना भावभीना प्यार लोगों के हृदयों में ! ये दो आयाम हैं, इस इन्द्रधनुषी द्वीप के आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य के—

लेकिन एक तीसरा आयाम और है, जिसके बिना इस द्वीप की कहानी अधूरी रहती है। वह आयाम प्रत्यक्ष नहीं है, अन्तर्निहित है—पर एक बार जान लेने के बाद वह भी इस इन्द्रधनुष की अदृश्य प्रत्यंचा की तरह हर क्षण इस यात्री के मन में टंकारता रहा—वह आयाम है, उस अभागे इतिहास का, जो इस सुन्दर द्वीप के इन प्यार भरे लोगों के पूर्वजों की दुखद नियति से जुड़ा रहा। आज से सौ, डेढ़ सौ साल पहले चन्द फ्राँसीसी और अंग्रेज उपनिवेशवादी मालिकों द्वारा इन भारतीयों के पूर्वज धोखाधड़ी से शर्तबद्ध-कुतियों के रूप में पकड़कर इस द्वीप में लाये गये थे। तब यहाँ ये खुशनुमा खेत नहीं थे, ये सड़कें नहीं थीं, जंगल विपैली झाड़ियों, नुकीली चट्टानों, घातक नागफिनियों, और रोगाणु फैलानेवाले मच्छरों, डाँसों और बिच्छुओं से भरे पड़े थे। आरामतलब फ्राँसीसी और अंग्रेज उनमें पाँव रखते डरते थे और गुलाम बनाकर पहले लाये गये अफ्रीकी क्रियोल अनुशासनबद्ध नहीं थे। इस विश्वव्यापी उपनिवेशवादी पैशाचिकता के विरुद्ध सबसे बड़ा विद्रोह किया था भारत में हिन्दी प्रदेश के बहादुर निवासियों ने, क्योंकि उनकी मातृभाषा हिन्दी लल्लो-चप्पो और खुशामद की नहीं, वरन् अक्खड़ आत्माभिमान की भाषा रही थी, वह विद्रोह सबसे ज्यादा चला था वीर कुँवरसिंह के नेतृत्व में भोजपुर प्रदेश में—और विद्रोह असफल हो जाने के बाद अंग्रेज सबसे कठोर दण्ड उसी हिन्दी प्रदेश को देने पर तुले थे, वहाँ के गृह उद्योग बरबाद कर दिये गये, खेत रौंद डाले गये, गाँव-के-गाँव उजाड़ दिये गये और जब वहाँ का निवासी आश्रय हीन होकर भटकने लगा, तब उन्हें फुसला कर, धमकाकर, धोखा देकर, लालच दिखाकर, कभी-कभी जबरदस्ती उड़ाकर जहाजों में ढूस दिया गया और कलकत्ता से इन बेबस गुलामों के झुण्ड पोर्ट लुई पर लाकर उतारे गये और जानवरों की तरह उन्हें काम में झोंक दिया गया। आज भी वे पत्थर की सीढ़ियाँ, वह नहाने का हौदा, वे कोठरियाँ सुरक्षित हैं, जहाँ उन्हें सैकड़ों-हजारों की संख्या में घासपात की तरह ढूस दिया जाता था।

हमने वह स्थान बाद में देखा, पर यह पहले से पढ़ा हुआ इतिहास द्वीप पर उतरने के साथ ही, एक अदृश्य प्रत्यंचा की तरह मन में झनझनाने लगा था। यह मीलें

लम्बा गत्रे का सुहावना खेत—इसमें कितने भारतीय कुलियों को कोड़ों से मार-मार कर गढ़े खोद कर गाड़ा गया होगा ? यह सुहावना नीले फूलोंवाला विशाल वृक्ष इसमें कितने कुलीन भारतीय म्लेच्छ फिरंगी के हाथों अपमानित होकर फाँसी लगाकर मर गये होंगे ? पुराने लोगों ने बताया था कि शाम होते ही कोई घर से नहीं निकलता था, क्योंकि फाँसी लगाकर मरे हुए कुलियों की प्रेत-आत्माएँ ‘फँसियारा’ बन कर, झील में डूबे कुलियों की प्रेतात्माएँ ‘पण्डुब्बे’ बन कर शाम होते ही ताण्डव करने लगती थीं, आज भी उनके जीवन पर उस इतिहास की एक खौफनाक छाया अनजाने ही बैठी हुई है। इतने सुहावने मॉरिशस द्वीप की बहारदार शामें किस कदर उदास और सूनी होती हैं—वहाँ अब भी शाम होते ही द्वीप की सारी चहलपहल अकस्मात मर जाती है। उस पूरे द्वीप में गत्रे के हजारों खेतों के बावजूद किसी को गत्रे के रस की एक बूँद पीते नहीं देखा—क्योंकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी जिस गत्रे को वे अपना खून-पसीना एक कर उगाते थे, उसका एक टुकड़ा चूसने पर उसके हाथों और जबड़ों को दो शहतीरों के बीच कसकर तोड़ दिया जाता था। आज वे भूल चुके हैं कि गत्रे का रस मीठा होता है, ताजगी देता है—गला सूखने पर पिया जा सकता है। उनकी प्यास इतिहास की यन्त्रणाओं ने सुखा दी है !

और इतिहास की यह कड़वी झनझनाहट कभी-कभी बड़े बेमौके मेरे मन को झकझोरने लगती थी। आज वहाँ के भारतीय परिवार समृद्ध हैं, सुशिक्षित हैं, देश-विदेश के अनुभव लेकर आये हैं, फ्रेंच, क्रियोल, अंग्रेजी में निष्णात हैं। किसी सेमिनार में कोई अभी-अभी फ्रान्स में शिक्षा पाकर या अमरीका में अध्ययन करके लौटा हुआ भारतीय मॉरिशस बोल रहा है—और मेरा मन है कि सौ साल पहले लौट गया है—इसके पूर्वज आरा, शाहाबाद, आजमगढ़ किस जिले के किस गाँव के कुलीन किसान रहे होंगे ? किस मेले-त्यौहार में दलालों ने मिलकर उन्हें समझाया होगा कि मूरिश द्वीप में सोना-ही-सोना भरा है ? जाओ और थेली में भर लाओ, कैसे कलकत्ते गये होंगे ? किन सपनों के साथ ? और जहाज पर चढ़ते ही उनकी मुश्कें बाँध दी गयी होंगी, उन्हें अँधेरे तेल भरे तहखाने में ढकेल दिया गया होगा, द्वीप पर उतार कर उन्हें कोठरी में डाल दिया गया होगा, किस फ्रांसीसी मालिक ने उन्हें खरीदा होगा, एक बोरी पहनने, एक बिछाने को दी गयी होगी—कोड़ों, ठोकरों, गालियों के साथ वे अपने गाँव को कैसे याद करते होंगे—क्या अर्थ रहा होगा उनके लिए इन झरनों, झीलों, पहाड़ों, सौन्दर्य भरे समुद्र तटों का ! जब उन्हें कोड़े पड़ रहे होंगे तो क्या वैसा इन्द्रधनुष इनके खेत पर भी उगा होगा जैसा मेरी राह पर उग आया था !

और उस समय मुझे सब कुछ भूलकर कैसी मर्मन्तक ऐंठन मन में होने लगती थी, यह मैंने कभी जाहिर नहीं होने दिया। एक दिन की अनुभूति मुझे बराबर याद आती रहती है। हम दोनों को भाभी (श्रीमती जगत सिंह) शामारेल दिखाते ले गयी थीं, शामारेल सचमुच एक अद्भुत चमत्कार है। कभी लाखों वर्ष पहले मॉरिशस किसी भयानक ज्वालामुखी विस्फोट से बना था। उसका क्रेटर क्यूपिप के पास अब भी है,

जिसका जिक्र मैं पहले कर चुका हूँ। एक निर्जन वीहड़ स्थल पर कई फलांग तक उसी विस्फोट में भूगर्भ से जली-अधजली कितने रंग की मिट्टी निकलकर जम गयी है, जो लाखों वर्षों से उसी तरह उन्हीं रंगों के साथ आज भी जमी हुई है—लाल, नीली, काली, फालसही, गेरुआ, सफेद, गुलाबी, भूरी, काही, मिट्टी के कितने अजीब रंग—मानों इन्द्रधनुष जम कर धरती बन गया हो। शामारेल देखकर लौटते हुए एक पठारी जगह पर रुके। वहाँ एक नदी पहाड़ काटती है, सैकड़ों फीट नीचे गिरती है और दुर्गम उपत्यका के वीहड़ घने जंगलों में होती हुई समुद्र की ओर चली जाती है। अजीब खौफनाक लेकिन जादू में बाँध लेने वाला मंजर है।

पठार खूब हरा-भरा है और वहाँ एक फल के झाड़ छाये हुए थे, जिन्हें चीनी अमरूद कहा जाता है। (लेकिन वस्तुतः वह दक्षिण अमरीका का कोई पौधा है) छोटे-छोटे पके-अधपके लाल-हरे अमरूदों के झाड़ लदे हुए थे, कई स्कूलों की लारियाँ आयी खड़ी थीं और सैकड़ों बच्चे अपने अध्यापक, अध्यापिकाओं के साथ छोटे-छोटे अमरूद तोड़-तोड़ कर जेबों और रूमालों और थैलियों और टोकरियों में भर रहे थे। पुष्पा भी भाभी के साथ उतरकर अमरूद तोड़ रही थीं !

मेरी नजर वहाँ लगे साइनबोर्ड पर पड़ी—“ब्लैक रिवर गार्ज !” ब्लैक रिवर क्यों ? पानी तो दूध की तरह उज्ज्वल श्वेत है। मालूम हुआ कुली प्रथा के दिनों में अत्याचार से पीड़ित सैकड़ों भारतीय कुली अपमान सहने के बजाय इसी स्थान से इसी भयानक घाटी में कूद कर आत्महत्या कर लेते थे। गोरों ने इस नदी का नाम ही ब्लैक रिवर रख दिया था। वाद में शिकारी कुत्ते छोड़े जाते थे कि उनकी लाशों को नोचें और कोई अधमरा हाथ-पाँव टूटा गुलाम जिन्दा बच गया हो, तो उसे खींच कर लायें।

भाभी लाल-मीठे अमरूद चुन-चुन कर ‘भाई जी’ के लिए लायी थीं, पर उन्हें क्या मालूम कि उनके भाई के मुँह में उस वक्त उन अमरूदों का एक ही स्वाद था—कसैला—उन खौफनाक मौतों का कसैला स्वाद ! उस शामारेल की रंग-विरंगी मिट्टी में कहीं खून से लिथड़ी चटख लाल मिट्टी भी मिल गयी होगी ! निर्दोष हिन्दी भाषियों का रक्त। इस पठार के ये रसीले अमरूद क्या इसीलिए इतने लाल होते हैं ?

लेकिन अगर हिन्दीभाषियों का यह इतिहास केवल इस अत्याचार के समक्ष आत्मघात का इतिहास होता, तो आज मॉरिशस मॉरिशस न होता और मुझमें उसकी कथा सुनाने की यह उमंग न होती, इन दानवी अत्याचारों के समक्ष गुलामी के इस सबसे शर्मनाक दौर में इन भारतीयों ने अनथक श्रम और निष्ठा का परिचय दिया, जिस प्रकार चट्टानों, नागफनियों, जहरीली झाड़ियों, डाँसों, बिच्छुओं, फ्राँसीसी और अंग्रेज उपनिवेशवादी राक्षसों से भरे द्वीप को आज संसार का सबसे सुहावना द्वीप बना दिया, वह तो अपनी जगह एक करिश्मा है ही, पर उन्होंने जिस तरह गुलामी की कड़ियों में पोर-पोर जकड़े हुए होने पर भी अपनी आत्मा को मरने नहीं दिया, अपनी संज्ञा को विस्मृत नहीं होने दिया, अपनी भारतीयता को मरने नहीं दिया, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी परम्परा को जितनी विचित्र स्थितियों में जैसे मानवोपरि प्रयासों से

जिन्दा रखा, वह कथा किसी भी जाति के लिए गर्व से सर ऊँचा करने वाली उपलब्धियाँ हैं। उनकी कोई जाति-पाँति नहीं रहने दी गयी थी। उनको नम्र बोल कर किसी व्यक्ति को किसी भी औरत के साथ रहने के लिए विवश किया गया था, एक स्त्री को बारह-बारह व्यक्तियों के साथ रखा गया था, उनको एक टाट का टुकड़ा छोड़ कर कोई कपड़ा पहनने की मनाही थी, उन्हें घर के बाहर बीड़ी पीने की इजाजत नहीं थी, वे पूजा नहीं कर सकते थे, जरा से कसूर पर उनके घुटने और कलाई की हड्डियाँ तोड़ दी जाती थीं, दण्ड विधान इतना कड़ा था—हर व्यक्ति के दो नाम होते थे एक खेत पर, एक घर पर ताकि पुलिस से बच सके—(मुसलमान निवासियों के साथ कुछ रियायत थी, क्योंकि वे 'लश्कर' थे यानी सैनिक के रूप में अंग्रेजों के सहयोगी पहरदार सिपाही—वही पुरानी बाँटो और शासन करो वाली नीति—तथा क्रियोलों को रियायत थी, क्योंकि उन्होंने अपनी पैतृक संस्कृति त्याग कर ईसाई धर्म और संस्कृति अपना ली थी और पादरी उनकी रक्षा करते थे—लेकिन शेष भारतीय कुली पशुवत् जीवन बिताने को बाध्य थे) फिर भी वे हारे नहीं, अपनी संस्कृति बचा ले गये !

संस्कृति को बचाये रखने की इस रोमांचक गाथा के अनेक बिन्दुओं को मैंने जाना जब पोर्ट लुई का वह मैदान देखा, जहाँ 1910 में उधर से जाते हुए गांधी जी पोर्ट लुई में रुके थे और उस मैदान में उनका भाषण हुआ था और वे हिन्दी मिश्रित गुजराती में बोले थे, कहा जाता है कि सविनय अवज्ञा का, सत्याग्रह का विचार उन्हें मॉरिशस के ही एक कार्यकर्ता ने सुझाया था, जो ग्री ग्री के पास सूरीनाम ग्राम के निवासी थे; जब भारतीय उच्चायोग के सांस्कृतिक केन्द्र में हुई लेखक मंच की गोष्ठी के बाद राजेन्द्र अरुण और अभिमन्यु के साथ वयोवृद्ध वासुदेव विष्णुदयाल जी से मिलने गये और अखबारों फाइलों और पुस्तकों से भरी वह छोटी-सी कोठरी देखी, जिसमें सिर्फ उनकी आरामकुर्सी के लिए जगह थी और जहाँ से इस साधक ने अनेक वर्षों तक हिन्दी भाषा और भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण और उपनिवेशवाद का घनघोर विरोध करने का महान अभियान चलाया था। लेकिन इसका सबसे जीवन्त आभास हुआ जब मोताई लांग के हिन्दी भवन की अभिनन्दन गोष्ठी में बैठा था। आयोजक थे रामलला जी, और मुख्य वक्ता थे वयोवृद्ध हिंदी सेवी श्री भगत। भगत जी लम्बी बीमारी से उठे थे और अभी भी पूर्णतया स्वस्थ नहीं हुए थे। कुर्सी पर मेज के आगे बैठे थे। पीठ मेरी ओर, मुँह श्रोताओं की ओर और धीरे-धीरे बोल रहे थे पर भाषण मुझे सम्बोधित था—“मान्यवर भारती जी, आज जहाँ हिन्दी भवन की यह सुन्दर इमारत है, जहाँ हम आपका स्वागत करके हर्ष से फूल नहीं समा रहे हैं। वहाँ कभी गन्ने के खेत थे। इन्हीं खेतों के बीच पत्थर की एक ढेरी थी, जो खेत जोतते समय निकले थे। शाम को दिन भर खेतों में काम करने के बाद जब अँधेरा हो जाता था, फ्राँसीसी साहब अपनी कोठियों में लौट जाते थे। पहरदार चले जाते थे, तब झोंपड़ियों में से कुली छोटी-छोटी लालटेन ले कर इन्हीं गन्ने के खेतों में छिपते-छिपते इस पत्थर की ढेरी पर आ कर 'बैठक' करते थे। उसी बैठक में उन्हें स्लेट पर 'अ आ इ ई'

लिखना सिखाया जाता था, लालटेन धीमी रहती थी कि पहरेदार देख न लें, वहीं जिसे रामायण, गीता, महाभारत की कथा जितनी जैसी याद होती थी, सुनाते थे ताकि वे नष्ट न हो जायें। कभी-कभी 'लश्कर' को पता लग जाता था और वे बन्दूक लेकर आते थे और तब वे हिन्दी सीखनेवाले लालटेन और स्लेटें छोड़-छाड़ कर खेतों में छिप-छिप कर भागते थे। अँधेरे में भागते हुए गन्ने की पतियों से उनके हाथ-पाँव-मुँह लहलुहान हो जाते थे, पर दूसरे दिन फिर मरहम पट्टी कर के रात को वे इसी पत्थर के ढेर पर इकट्ठे हो जाते थे। श्रीमान भारती जी, आज उसी स्थान पर हमने मोताई लांग का यह हिन्दी भवन बनाया है, छोटे-छोटे गाँवों में हिन्दी की पाठशालाएँ हैं, जहाँ विद्यार्थी भारत से हजारों मील दूर यहाँ आपकी, दिनकर जी की, पंत और महादेवी जी की कविताएँ पढ़ते हैं, हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में बैठते हैं हम आपसे कुछ नहीं चाहते, केवल यही चाहते हैं कि भारत लौटकर हमें भूलिगेगा मत।"

ईश्वर जानता है कि उस समय मेरा गला रुँध आया था और आँख में छलछलाये आँसू बहाने से पोंछते हुए मैंने दीवार से टिके बोर्ड पर देखा था, तो पाया कि हिन्दी प्रचारिणी सभा की नींव पड़ी थी सन् 1925 में—जब भारती का जन्म हुआ था उसके एक वर्ष पहले, भगत जी की वह काँपती बूढ़ी आवाज मुझे अब भी झकझोरती रहती है।

मॉरिशस की बात क्षण भर के लिए स्थगित कर अगर अपनी एक बात यहाँ कहूँ तो आप अन्यथा तो न लेंगे ? मॉरिशस में भी मैंने कहा था और यहाँ फिर यह दोहराना चाहूँगा कि मॉरिशस जाकर इस इतिहास से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर मैंने वह पाया है, जो यहाँ भारत के सरकारी-नैर सरकारी भ्रष्टाचार भरे, असांस्कृतिक वातावरण में धीरे-धीरे लगता था, मैं खोता जा रहा हूँ। यानी यह अहसास कि भाषा की लड़ाई सिर्फ एक राजनीतिक हथकण्डा, एक अध्यापकीय प्रस्ताव, एक प्रशासकीय योजना मात्र नहीं होती। भाषा की लड़ाई किसी भी राष्ट्र, किसी भी जाति, किसी भी संस्कृति की इयत्ता की लड़ाई होती है। अगर अपनी एक भाषा नहीं है या है तो उस भाषा को अगर हम उपनिवेशवादी मालिकों की भाषा के समक्ष हीन और दास बना कर छोड़ देते हैं, तो चाहे हम कुवेर का खजाना हासिल कर लें, मगर हम गुनाम जानवरों से बेहतर नहीं हो पाते, इस भारत देश में जहाँ क्लर्क की नौकरी पाने के लिए कोई तबका अंग्रेजी की गुलामी में लज्जा नहीं महसूस करता, मगर राष्ट्रभाषा हिन्दी का विरोध करता है, जहाँ ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज या देशी कॉन्वेंटों में तोते की तरह अंग्रेजी रट कर आने वाले लेखक, पत्रकार, अफसर और व्यापारी अंग्रेजी के पाँव की धूल माथे पर लगा कर हिन्दी की अवहेलना वेशर्मी से करते नजर आते हैं। वहाँ इतनी उम्र बिताने के बाद कभी-कभी इस बात पर शर्म महसूस होती थी कि मैं उसी विशाल हिन्दी भाषी समुदाय का एक सदस्य हूँ, जो चुपचाप इतने वर्षों से यह अन्याय सह रहा है। शायद उसी शर्म की कचोट थी कि जब बाँग्ला देश में नौजवान, बुद्धिजीवी, छात्र, सैनिक, किसान अपनी राष्ट्रभाषा बाँगला के लिए पाकिस्तान के खिलाफ उठ खड़ा हुआ तो मुझे लगा कि नहीं अभी कहीं इतिहास जिन्दा है और मैं कीचड़ भरे जंगलों में उस

बहादुर युवा मुक्तिवाहिनी के कन्धे-से-कन्धा मिला कर जा खड़ा हुआ। वे मेरे क्रान्तिबन्धु थे। जब सिन्ध में अपनी भाषा को लेकर 'जीये सिन्ध' आन्दोलन चला, तो मैंने अपने को उससे संलग्न पाया, मुझे लगा कि शेख अय्याज या रशीद भट्टी जिन्हें मैंने कभी नहीं देखा, मेरे क्रान्तिबन्धु हैं।

लेकिन मेरी अपनी मातृभाषा ? मेरी अपनी हिन्दी ? क्या उसमें इस युद्ध की, इस क्रान्ति की क्षमता है ही नहीं ? कहीं कोई विश्वास जैसे खो-सा रहा था। मॉरिशस जा कर हिन्दी की लड़ाई के इस मर्मस्पर्शी इतिहास के जीवित सम्पर्क में आ कर जैसे मुझे फिर एक विश्वास मिला, मेरी भाषा ने भी यह लड़ाई लड़ी है, भारत से हजारों मील दूर, अनजाने समुद्रों के पार, अजनबी आकाश के नीचे, गोरों के कोड़ों की मार के बावजूद, फ्रांस की तमाम चिकनी-चुपड़ी दोमुँही संस्कृति और जहाँ सूर्य नहीं अस्त होता, उस विशाल ब्रिटिश साम्राज्य की अतुल शक्ति के आतंक के बावजूद इन गन्ने के खेतों में, पत्थरों की ढेरी पर निहत्थी हिन्दी ने यह आजादी की लड़ाई लड़ी और जीती है ! भारत में भी अंग्रेजी का तीक उतार फेंकने की यह लड़ाई शायद कभी लड़ी जाये ? यह विश्वास जैसे लौटता है, मेरे मन में ! जब आदमी विश्वास खोता है तब भी आँखें गीली हो आती हैं। और खोया हुआ विश्वास पाता है तब भी ! इसीलिए और शायद उस दिन हिन्दी भवन में आँखें भर आयी थीं।

खैर, आइए मॉरिशस की बात पर लौटें। गुलामी के इस भयानक शिकंजे में उनकी सांस्कृतिक इयत्ता जीवित रहे, इसके लिए कैसे विचित्र प्रयास उन्होंने किये थे। भारतीय संस्कृति अपने उन मिथकों के सहारे जीवित रही है, जो हर युग में नया अर्थ पाते रहे हैं, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के उन अभागों से उनकी गंगा छीन ली गयी थी। लेकिन उस अन्धका में भी उन्होंने अपने लिए एक गंगा आविष्कृत कर ली, किसी भारतीय कुली को स्वप्न आया और वह सुदूर दक्षिण से पागलों की तरह चल पड़ा कि उत्तर के पहाड़ों में गंगा अवतरित हुई है, यह श्रद्धा है, जो जल को गंगाजल बना देती है और वह गंगा आखिर मॉरिशस में गंगा-तालाब के रूप में प्रतिष्ठित हुई। हिन्दी भवन के पीछे ही खिड़की के पार आज भी गन्ने के खेत हैं और उन खेतों के पार लम्बी पर्वतमाला में एक अँगूठा पहाड़ है, पहाड़ के शिखर पर अँगूठे की तरह एक खड़ी चट्टान। और वहाँ कोई बताता है कि विष्णुदयाल जी ने घोषित किया कि यह कैलास शिवलिंग है और उसकी छाया में पहली बार गोरों के आतंक की अवहेलना कर विराट यज्ञ हुआ था, आज से 40-50 वर्ष पहले। और फिर संस्कृति किस तरह जीवित हुई, और है, इसका प्रमाण मिला था उस दिन त्रियोले की विशाल सभा में। जहाँ वेशभूषा में, भाषा में, खानपान में, अतिथि सम्मान में संस्कृति सजीव थी।

लेकिन उपनिवेशवाद उस दैत्य की तरह है, जिसका सर कटता है तब भी मरता नहीं। उसका दूसरा सर उगने लगता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद एशिया और अफ्रीका में अनेक देशों से उपनिवेशवाद को बोरिया-बिस्तर समेटना पड़ा (और यह श्रेय गांधी और सुभाष को जाता है कि सबसे पहले भारत से उपनिवेशवाद को भागना पड़ा और

शेष सभी एफ्रोएशियायी देशों की आजादी उसी के कारण और उसी के बाद आयी), लेकिन राजनीतिक स्तर पर उपनिवेशवाद हार गया, तो उसने सांस्कृतिक स्तर पर अपना जाल फैलाना शुरू किया। पहले देश की भाषा और संस्कृति से उस देश को विमुख कर अपनी भाषा और संस्कृति का जाल फैलाओ, फिर जब वहाँ के राजनेता, अर्थशास्त्री, प्रशासक और बुद्धिजीवी अपनी जनता से कट जायें, तब उन्हें अपनी ओर उन्मुख कर उनके माध्यम से नये ढंग से उनका आर्थिक शोषण शुरू करो। भारत में इसका परिणाम हम देख चुके हैं। मॉरिशस की स्वतन्त्रता अभी ताजी है और वहाँ भी फ्रांसीसी और अंग्रेज उपनिवेशवाद का यह सांस्कृतिक जाल बड़ी चुस्ती और बड़ी बारीकी से फेंका जा रहा है, वहाँ आजादी जनमत संग्रह के आधार पर आयी और 60 प्रतिशत (जिनमें अधिकांश भारतीय थे) आजादी के पक्ष में थे, लेकिन 40 प्रतिशत उपनिवेशवादियों का साथ देने वाले समूह थे, जो आजादी पाने के खिलाफ थे।

अचरज है कि आज मॉरिशस में उन्हीं 40 प्रतिशत की बोली और संस्कृति का आधिपत्य जोर पकड़ता दीख रहा है। वे बड़ी चतुराई से हिन्दी को उखाड़ने और क्रियोली तथा फ्रांसीसी भाषा-संस्कृति को सारे देश पर लादने की कोशिश में लगे हुए हैं, कभी-कभी यह देखकर दुख होता है कि उनके छद्म तर्कों, चमकीले प्रलोभनों और चतुर हथकण्डों के जाल में कुछ हिन्दी भाषी भी उलझकर उन्हीं जैसी बातें करने लगते हैं। आज वहाँ विदेशी शक्तियों से अनुप्रेरित यह नारा लगाना शुरू हुआ है कि यह बहुजातीय, बहुभाषीय द्वीप है और इसकी राष्ट्रीयता तब बन सकती है, जब 60 प्रतिशत लोग अपनी भाषा और संस्कृति छोड़कर 40 प्रतिशत की संस्कृति अपना लें, यानी जिन्होंने खून, पसीना, कोड़े और आत्महत्याओं में से गुजर कर इस वीरान द्वीप को स्वर्ग बनाया, और फिर आजादी के लिए लड़े—वे अब अपनी भाषा, संस्कृति, इयत्ता और राजनीतिक सत्ता सोने के थाल में सजा कर उन्हें सौंप दें, जो फ्रांसीसी और अंग्रेजी उपनिवेशवाद के षड्यन्त्रकारी साथी थे। और इसके लिए वजीफे और गोरी यूनिवर्सिटियों में शिक्षा दे कर एक ऐसा सांस्कृतिक गुलाम दलालों का वर्ग बनाया गया है, जो मॉरिशस राष्ट्रीयता के नाम पर मॉरिशस राष्ट्रीयता को अन्दर से ध्वस्त करने की दुरभिसन्धि में लीन है, ऐसे कुछ लोग अब यह भी कहने लगे हैं कि भारतीयों को चाहिए कि वे अब पिछला इतिहास भूल जायें।

यह एक गहरी साजिश है। इतिहास जो इस द्वितीय सौन्दर्यमय द्वीप के इन्द्रधनुष की प्रत्यंचा है, उसे अगर मॉरिशस भूल गया तो वह उपनिवेशवाद के खिलाफ यह लड़ाई जीत कर भी हार जायेगा, यही ये लोग और इनके आका उपनिवेशवादी चाहते भी हैं। इसीलिए त्रियोले की उस सभा में मैंने कहा था कि—“इतिहास पिता होता है, वह व्यक्ति का ही नहीं पूरे समाज का निर्माण करता है, जो लोग यह कहते हैं कि इतिहास को भूल कर चला जाये, वे या तो अत्यन्त भोले हैं या आत्मघाती। इतिहास को सही दृष्टि से समझकर ही कोई जाति अपने सही उत्तरदायित्व का निर्णय कर सकती है।”

त्रियोले की उस सभा में योजना विकास मन्त्री श्री जगत सिंह जिनकी सारी शिक्षा फ्राँसीसी और अंग्रेजी में ही हुई—प्रेरित हो कर हिन्दी में ही बोले और उनका भाषण संक्षिप्त था, लेकिन मर्मपूर्ण—उन्होंने कहा—“मॉरिशस बनने के लिए यह कतई आवश्यक नहीं कि अपनी पहचान, अपनी विशेषता अपनी सांस्कृतिक विरासत को हम भूल जायें, यद्यपि कुछ लोग ऐसा करने के लिए हमें बार-बार प्रलोभन और आकर्षण दिखा रहे हैं। यदि आज इस संक्रमण काल में हमने अपनी भाषा एवं संस्कृति को अपने हाथों से छूट जाने दिया तो न हम सही अर्थों में मॉरिशस हो पायेंगे और न अपने उन प्रतापी पुरखों के साथ ही न्याय कर सकेंगे, जिन्होंने घोर यातना के बीच रह कर अपनी भाषा एवं संस्कृति को सुरक्षित रखा था।”

‘त्रिवेणी’ के विशाल जवाहरलाल नेहरू भवन की नींव प्रधानमन्त्री सर रामगुलाम द्वारा रखी जानी थी और शिलापट्ट के लिए वे लोग कोई वेद मन्त्र चाहते थे। मैंने ‘या मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते’ वाला मन्त्र प्रस्तावित किया, क्योंकि पितरों द्वारा उपासित मेधा मॉरिशस के वर्तमान संक्रमणकाल में विशेष स्मरणीय है। वह मन्त्र अब शिलांकित है। उसका संकेत वहाँ के सन्दर्भ में स्पष्ट है।

लेकिन सवाल यह है कि संक्रमणकाल में उनका सांस्कृतिक नेतृत्व करेगा कौन ? तीसरे और चौथे दशक में नेतृत्व करनेवाली पीढ़ी अब या तो चुप है या विभाजित। केवल समाज-सुधार, संस्कृति या हिन्दी प्रचार का कार्य तब तक सार्थक नहीं होगा, जब तक उसे उन समस्याओं के सन्दर्भ में न उठाया जाये, जो आज मॉरिशस की युवा पीढ़ी के समक्ष प्रश्नचिह्न बन रही है, इसीलिए ‘त्रिवेणी’ के वे जागरूक राजनेता और बुद्धिजीवी जो इस सांस्कृतिक लड़ाई के पूरे वर्तमान सन्दर्भ को समझते हैं, उनको या ‘त्रिवेणी’ के बाहर भी उन जैसे लोगों को यह दायित्व लेना ही पड़ेगा, इन गोष्ठियों में जब ये बात उठायी गयीं, तो मैंने पाया कि युवा श्रोताओं की आँखें चमक उठीं। उन्हें जैसे समस्या की असलियत समझ में आयी और उसका निराकरण करने का संकल्प उनके मन में जागा। इस नाते दक्षिण मॉरिशस के रोजाबेल उपनगर में महादेव राममनोहर और रामजियावन द्वारा संयोजित वह युवा छात्र-छात्राओं की गोष्ठी मुझे बहुत प्रिय लगी, जिसमें उन्होंने अपने इस संकल्प की घोषणा की कि भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीयता की यह लड़ाई वे जम कर लड़ेंगे और पूर्वजों के इतिहास को धूमिल नहीं होने देंगे। वह सभा मेरे मॉरिशस प्रवास की अन्तिम विदा गोष्ठी थी और अनगिनत उपहारों और फूलमालाओं के साथ जो भाषण युवा क्रीड़ा मन्त्री वसन्तराय जी ने दिया था, वह मानो मेरे लिए सबसे सन्तोषजनक उपहार था। वे बोले—“भारती जी के आगमन पर सबसे पहली गोष्ठी जो इण्डिया हाउस में हुई थी, उसमें मैं अध्यक्ष था, उनके प्रवास की यह अन्तिम गोष्ठी है, संयोग से इसका भी मैं अध्यक्ष हूँ, उनकी बातें हम सबने बहुत ध्यान से सुनीं और गुनीं।” और उसके बाद वे ओजस्वी स्वर में बोले, “हमारे युवक अब जाग गये हैं, अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति अपने दायित्व को पहचान

गये हैं और मैं उनसे कहूँगा कि जो आपका अधिकार है, यह आपका है, उसे माँगें मत, आप उसे आगे बढ़ कर ले लें।” उस समय युवकों के चेहरों की चमक देखने लायक थी।

इस संघर्ष और संक्रमण के क्षणों में वे भारत से विशेष सहयोग की आशा करें यह स्वाभाविक है। भारत राजनीतिक या भौगोलिक स्तर पर विदेश हो, पर सांस्कृतिक और भावनात्मक स्तर पर वह उनका आध्यात्मिक तीर्थ है। हम यहाँ रह कर यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि वे गंगा को, हिमालय को, प्रयाग को, पटना को, दिल्ली को, गांधी जी को, नेहरू जी को किस भावाकुलता से याद करते हैं। इंदिरा जी की ओर कितनी आशा और कितने गर्व से देखते हैं !

इंदिरा जी और सर रामगुलाम एक-दूसरे को स्नेह और आदर देते हैं। सरकारी स्तर पर पिछले दिनों भारत की ओर से बहुत कुछ अच्छी शुरुआतें हुई हैं और आशा है, आगे और भी बहुत कुछ होगा। जिन दिनों हम वहाँ थे, उन दिनों उस पहरा देनेवाली सशस्त्र नौका की बहुत चर्चा थी, जो भारतीय नौसेना ने मॉरिशस को दी थी। लेकिन एक बहुत स्थायी महत्त्व की योजना है विशाल गांधी इंस्टीट्यूट, जो भारत के सहयोग से मॉरिशस के प्रतिष्ठित विद्वान शान्तिनिकेतन के पुराने छात्र, सारबान से उपाधि प्राप्त, हिन्दी प्रेमी, डॉ. हजारे सिंह के निर्देशन में स्थापित हो रहा है। विविध भारतीय, एशियायी, अफ्रीकी भाषाओं और साहित्यों के साथ-साथ संस्कृति, इतिहास, दर्शन, चित्रकला, भारतीय संगीत, भारतीय नृत्यकला के शिक्षण का आधुनिक प्रबन्ध होगा, और सारे दक्षिणी गोलार्द्ध में भारतीय संस्कृति का एक विश्वविख्यात केन्द्र वह बनेगा, एक प्रशस्त खुले आकाश के नीचे, पहाड़ों की छाया में एक सुन्दर पहाड़ी नदी के किनारे वह स्थान सचमुच ही ऐसी कल्पना के उपयुक्त है।

बड़ी प्रसन्नता हुई भारत के उच्चायुक्त श्री कृष्णदयाल शर्मा और उनकी पत्नी श्रीमती वीणा शर्मा के सादे, आत्मीय, कर्मठ और कर्तव्यनिष्ठ व्यवहार को देखकर। वे दोनों इस तरह मॉरिशस के सारे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में घुले-मिले हैं कि अपने लिए उन्होंने एक विशिष्ट स्थान लोगों के हृदयों में बना लिया है। अनेक गोष्ठियों में उन्हें और वीणा जी को बोलते सुना और उनके सुलझे विचार परिष्कृत हिन्दी में सुनकर बेहद सन्तोष मिला।

यह बहुत आवश्यक है कि मॉरिशस के लिए भारत सरकार आगे भी उच्चायुक्त या अन्य विशेषज्ञ चुनते समय और अपनी नीतियाँ निर्धारित करते समय इन तमाम परिस्थितियों का विशेष ध्यान रखे। कुछ भारतीय विशेषज्ञों ने वहाँ सचमुच बहुत अच्छा काम किया है। वहाँ वन रक्षा और वृक्षारोपण के विशेषज्ञ श्री गांगुली के कार्य की काफी प्रशंसा है और रंगमंच विशेषज्ञ मोहन महर्षि के कार्य के प्रति तो लोगों में न केवल प्रशंसा भाव है, वरन् मोहन और अंजला के लिए सुदूर गाँवों तक में, युवा छात्रों में, अध्यापकों में, लेखकों में, पत्रकारों में मैंने विशेष स्नेहभाव और आत्मीयता पायी। डॉ. विपिन अग्रवाल के नाटक ‘तीन अपाहिज’ से लेकर ‘अन्धायुग’ तक उन्होंने स्थानीय

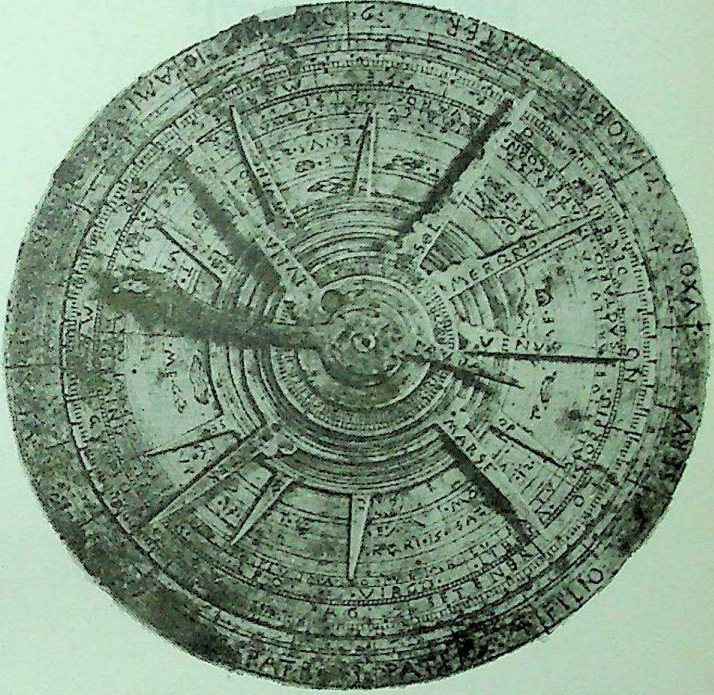
मॉरिशसीय युवा अभिनेताओं के साथ जितनी सफलता से मंचित किये, वह सचमुच चमत्कार है। उन्होंने सारे मॉरिशस में हिन्दी रंगमंच को एक नये प्राण, नयी दिशा दी है।

उपनिवेशवाद के खिलाफ इस सांस्कृतिक लड़ाई में भारत के बाद सबसे महत्वपूर्ण सहयोगी मॉरिशस के लिए अफ्रीकी देश हो सकते हैं। सर रामगुलाम इस दृष्टि से बड़े दूरदर्शी नेता हैं। ये पुरानी पीढ़ी में 'डागदर' (डॉक्टर) और मझली पीढ़ी में 'चाचा' पुकारे जाते हैं। शिवरात्रि में पैदल गंगा तालाब की यात्रा करनेवाले, और होली में जुलूस के साथ रंग-गुलाल खेलते हुए मीलों चलनेवाले इस परम स्नेही व्यक्ति को देख कर कौन कहेगा कि वे 70 पार कर चुके हैं ? 'त्रिवेणी' की इमारत के शिलान्यास समारोह में जब उन्होंने कहा कि वे स्वाहिली का शिक्षण भी मॉरिशस में आरम्भ करने जा रहे हैं, तो अनेक विदेशी राजदूत और पत्रकार चौंक उठे थे। लेकिन दक्षिण अफ्रीकी, फ्रांसीसी, और अन्य गोरे उपनिवेशवादी प्रभाव को कम करने के लिए अफ्रीका के विकासशील देशों से घनिष्ठ रूप से जुड़ना आवश्यक है और इसके लिए हिन्दी भाषा और स्वाहिली भाषा की मैत्री का निस्सन्देह स्वागत किया जाना चाहिए। रामगुलाम जी विश्व हिन्दी सम्मेलन के मनोनीत अध्यक्ष हैं। विश्व स्तर पर हिन्दी की मैत्री सभी प्रधान एशियायी और अफ्रीकी भाषाओं से हो सके—यदि वे यह योजना बना सके तो संसार भर के हिन्दी भाषियों के लिए वे यह एक बहुत बड़ा काम करेंगे।

पर उनकी, मॉरिशस की प्रमुख शक्ति है वहाँ का युवावर्ग और उसकी नवजाग्रत इतिहास चेतना। यही इतिहास चेतना इस इन्द्रधनुष द्वीप की काँपती प्रत्यंचा है। युवावर्ग के सामने भी अनेक समस्याएँ हैं पर यदि उनका संकल्प दृढ़ हो तो इस प्रत्यंचा को तान कर शरसन्धान करना उनके लिए कठिन नहीं। उन सबके प्यार का, सत्कार का मैं क्या उत्तर दूँ, सिवा मैथिलीशरण गुप्त की उस प्रख्यात पंक्ति के कि आपके पितरों का इतिहास आपमें जीवित है, प्रत्यंचा अब भी काँप रही है :

“हे पार्थ, प्रण पूरा करो, देखो अभी दिन शेष है।”

और मॉरिशस के सभी मित्रों को कैसे बताऊँ, यहाँ हजारों मील दूर अब भी वही बादलवाली शाम है, वही दिन शेष है, मैं आन्सलारे की ओर जा रहा हूँ और उनके प्यार का एक सहस्ररंगी इन्द्रधनुष मुझ पर मेहराब की तरह छाया हुआ है !



युद्ध यात्राएँ

मुक्तक्षेत्रे युद्धक्षेत्रे - युद्ध यात्रा - युद्धोपरान्त

□ 1971-1972



मुक्तक्षेत्रे : युद्धक्षेत्रे

विष्णु : विष्णु

ऊँघते कस्बे

कभी मैंने लिखा था :

“क्या यही सब साथ मेरे जाएँगे ऊँघते कस्बे पुराने पुल।
पाँव में लिपटी हुई यह धनुष-सी दोहरी नदी।
बीँघ देगी क्या मुझे बिल्कुल ?”

जब यह लिखा था, तब भी इसी तरह हरियाली-छाई सड़क पर जीप दौड़ रही थी, इसी तरह दिन ढलने लगा था। हम इलाहाबाद-रीवा रोड पर सुहागी की पहाड़ियों से लौट रहे थे, कितने-कितने-कितने बरस पहले। जिसको जीवन में बहुत प्यार किया और जो अब मेरी संगिनी है, उसकी हथेलियाँ मेरे हाथों में पहली बार थीं।

लेकिन सुदूर उत्तरांचल की इस बँगला देश को जाती हुई सड़क पर इस याद का क्या अर्थ ? या शायद अर्थ ही यही है। प्यार की गहनतम अनुभूति ने ही कहीं मुझे हमेशा न्याय और अन्याय की लड़ाई में बेलाग, निडर होकर सचाई के लिए खड़े होने की ताकत दी है। हैवानियत के खिलाफ हर लड़ाई कहीं गहन मानवीय प्यार की लड़ाई है और ऐसी हर लड़ाई में घँसते समय, चाहे मैं कितनी दूर होऊँ, वे हथेलियाँ मेरे हाथों में रहती हैं। पदमा के विशाल पाट पर तैरते बजरे पर जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ‘आमार सोनार बांगला आमी तोमाके भालोवाशी’ लिखा होगा, तब क्या यह ‘भालोवाशी’ यही प्यार अपने एक दूसरे आयाम में मुखर नहीं हो रहा था ? और एशिया के उस महानतम नेता शेख मुजीब ने जब इसी गीत को राष्ट्रगीत चुना, तो क्या घृणा के खिलाफ प्यार, कुरूपता के खिलाफ सौन्दर्य, शोषण के खिलाफ समता के उद्घोष को वे मान्यता नहीं दे रहे थे ? और आज जो मुक्ति योद्धा हाथ में राइफलें, स्टेनगन और मशीनगन लेकर यहिया शाही की पैशाचिक अमानवीयता के खिलाफ लड़ रहे हैं, वे क्या ‘भालोवाशी’ की लड़ाई नहीं लड़ रहे हैं ?

सड़क के दोनों ओर शाल के पेड़, कुमुद छाए पोखर, शरणार्थियों की भीड़भाड़

युद्ध यात्राएँ : 125

पीछे छूट रही है। यह भारत की अन्तिम सीमा चौकी है, अब 'नो मेंस लैण्ड' और वह जो सड़क पर बाँस का आड़ा 'बैरियर' दीखता है, वह है बाँगला देश की पहली सीमा चौकी। मैं सँभलकर बैठ जाता हूँ। एक बार पीछे मुड़कर देखता हूँ। हम बंगाल के सुदूर उत्तर में हैं और क्षितिज के पास हिमालय की अस्पष्ट रेखाएँ दीख रही हैं। किसी ने बताया था—धूप खिली होती, तो कंचनजंघा दीखती (याद आता है कि बाँगला देश विशेषांक में हमने शौकत अली की 'तृतीय रात्रि' कहानी पढ़ी थी, जिसमें बाँगला देश के उस भूभाग का चित्रण था, जहाँ से कंचनजंघा की चोटी दीखती है। निश्चय, निश्चय ही यही क्षेत्र रहा होगा वह। कैसा अजीब योग है कि मुक्त क्षेत्र को भीतर जाकर देखने के लिए हमें यहीं आना था। कहाँ है कथा-लेखक शौकत अली ? क्या उन्हें मालूम है कि उनका यह क्षेत्र अब आजाद है ? क्या यह खबर पाने के लिए वे जीवित बचे हैं ?)

बाँस का आड़ा बैरियर उठा दिया गया है। लुंगी बनियाइन पहने चौकी के पहरूए युवा मुक्ति योद्धा हमारे चारों ओर घिर आए हैं। चौकी का नायक एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा हमारे साथी विष्णुकांत शास्त्री से बातें कर रहा है। बालकृष्ण चौकी पर बाँगला देश के चिह्न और ध्वज का चित्र लेने के लिए कैमरा सँभाल रहे हैं और मैं अपने सामने, अगल-बगल दूर तक फैले हुए आजाद बाँगला देश के इस पवित्र क्षेत्र को कुछ-कुछ सूनी आँखों से देख रहा हूँ, और वे आँखें अब ध्वज की आधार-पीठिका पर टिक गई हैं, जहाँ हरे रंग पर गोल घेरे में बाँगला देश का नक्शा बना है। सुंदर बाँगलाक्षरों में लिखा है, 'स्वाधीन गण प्रजातन्त्री बाँगला देश'।

बहुत-बहुत-बहुत सुख मिलने के क्षण में कभी-कभी एक अनजाना विषाद कहाँ से उतर आता है ? क्यों ? मार्च 71 में शेख मुजीब का आंदोलन चलने के बाद से लगातार दिन-रात इसी सपने में जिया हूँ कि आजाद बाँगला देश अपनी आँखों से देखूँगा। न केवल मुझे, मेरी पूरी पीढ़ी को एक के बाद एक चोट मिली है। अहिंसा और सत्याग्रह के अस्त-व्यस्त आन्दोलन के बीच एक सच्ची युवाक्रान्ति की लहर आई थी सन् 42 में। वह कुचल दी गई। दूसरा महान दौर था आजाद हिन्द फौज का। उसके साथ विश्वासघात किया गया। रायल इण्डियन नेवी की अद्भुत क्रान्ति को हमारी समझौतापरस्ती खा गई। अब जीवन के ढलते पहर में यह क्रान्ति, यह बाँगला देश की क्रान्ति सफल हो।

और मैं सफलता के विजयचिह्न के समक्ष खड़ा हूँ, ध्वज के नीचे चारों ओर मीलों तक फैला शान्त सोनार बाँगला। गाढ़ी, काही, पनिचल, धानी, हरियाली की परतों पर परतें, पोखरों में सौंझ के नारंगी बादल, पेड़ तले सूखते जूट के गट्टर, मुक्त विचरती कबरी गाएँ, कितनी शान्ति ! कितनी शान्ति ! लेकिन मन पर क्यों उभर आए हैं—ढाका के जगन्नाथ हाल की सीढ़ियों पर गाढ़े खून के धब्बे, रुकैया हाल से आती किशोरियों की भयार्त चीखें, और जलते गाँव, हत्या, बलात्कार, लाशें, लाशें, लाशें; सड़ी गन्धवाली बूढ़ी गंगा का मटमैला पाट।

आजादी बड़ी कीमत माँगती है। आजादी प्रणम्य है। और मैं मन ही मन प्रणाम

करता हूँ। ये आसपास खड़े सभी युवा योद्धा अपना परिवार, अपने माँ-बाप को खो चुके हैं। किसी दिन अपने प्राण भी खो सकते हैं, लेकिन सब खो कर आजादी जीत रहे हैं। समझौतापरस्ती के धुँधलके में गुमराह होकर हम जो नहीं कर सके, वह ये कर रहे हैं। रवीन्द्र ठाकुर ने लिखा था कि जो नदियाँ मरुस्थल में आधी राह में खो जाती हैं, वे भी खोती नहीं। कहीं समुद्र में, तुम्हारी पूजा में वे भी शामिल रहती हैं। मरुस्थल में आधी राह में खोई हुई हमारी क्रान्तिच्युत जिन्दगियाँ, हमारी टूटी-अधूरी जिन्दगियाँ इस हरे समुद्र सोनार में, इस पूजा में, इस 'भालोवाशी' में शामिल होकर सार्थक हो सकेगी न ? मन में एक नया सुकून, एक नया प्यार उमड़ता है। मेरी आँखें अब सूनी नहीं रहीं, वे नम हो आई हैं और उस नमी के पर्दे में मैं फिर बाँगला देश के फहराते ध्वज को गौरव से सर उठाकर देखता हूँ। आकाश में फहराता वह हरा ध्वज जमीन पर लहराते हरे धान के नम खेतों में घुलमिल जाता है। प्रणाम, मेरा समूचा व्यक्तित्व एक उल्लसित प्रणाम बन जाता है।

और अब मैं उनसे बातें कर रहा हूँ। वे जिद कर रहे हैं कि चाय बिना पिए आगे नहीं जाने देंगे। रागे बड़ी मुख्य सीमा चौकी है, जहाँ हमें हवलदार अब्दुलबारी से मिलना है। वे ही इस क्षेत्र के बाँगला देश सरकार के प्रतिनिधि प्रशासक से अनुमति लेकर हमें आगे जाने देंगे। हमें जल्दी है, चाय के लिए विनम्रता से मना कर हम चलते हैं। चलने के पहले बूढ़े सफेद दाढ़ीवाले नायक की फोटो लेना चाहते हैं, ध्वज के पास खड़े कर। वह हँसता है : 'बूढ़े का छवि क्या लेना साहब ? एक युवा मुक्तियोद्धा समझाता है हमें कि वह बूढ़ा मौलवी है। उसका धरम नहीं कहता उसकी छवि लेने को। कैमरा रोक लिया जाता है। जीप चलती है, वे उल्लास से कहते हैं—'जय बाँगला ! 'जय बाँगला' हम दूने उल्लास से प्रत्युत्तर देते हैं।

आधे मील बाद दूसरी चौकी। नीचे स्तम्भ था 'इस्लाम रिपब्लिक ऑफ पाकिस्तान।' उसे फावड़े मार-मारकर तोड़ दिया गया है। तीन तरफ बंकर बने हैं, जिन पर घास उग आई है। बंकरों में गोली चलाने के लिए झरोखे बने हैं। अन्दर दालान में तख्त पर कोई शाम की नमाज पढ़ रहा है। हमारे पहुँचते ही कटहल के पेड़ के नीचे काठ की बड़ी मेज डाल दी जाती है, बारिश में भीगी टीन की कुर्सियाँ पोंछकर सजा दी जाती है। 'बोशोन ! (बैठिए) हवलदार तहमद बाँधते हुए आते हैं। आँगन में रंगीन क्रोटन के बड़े-बड़े पौधे हैं, बंकर की घास के बीच-बीच में वनफूल खिल आए हैं। चाय ? यहाँ तो पीनी ही होगी।

हवलदार को हम बताते हैं, हम कौन हैं, क्यों आए हैं। "आप पूरा एरिया देखेंगे साहब ? तो हमें तेंतुलिया में अपने एम. पी. ए. साहब को खबर करनी होगी। अब तो रात हो गई है। तेंतुलिया यहाँ से 12 मील है, अन्दर 50 मील तक जा सकते हैं। लेकिन कल सुबह आइए, तब तक हम आदमी भेजकर एम. पी. ए. साहब से परमीशन मँगा लें। लड़ाई, हाँ यहाँ से 51-52 मील अन्दर हो रही है, लेकिन अभी पाकिस्तानवाला सब खामोश बैठ गया है, हमारा छोकरा लोग उनको बहुत मार लगाया है साहब।"

आसपास बैठे लोगों के चेहरे खिल उठते हैं। पास एक साधारण-सा मलगजे कमीज पाजामेवाला किसान युवक ध्यान से बाँगला देश विशेषांक की प्रति देख रहा है, सहसा हमें चकित करता हुआ अंग्रेजी में पूछता है, “कैन आई हैव ए कॉपी ?” मालूम हुआ, वह कामर्स का ग्रेजुएट है, ढाका के जगन्नाथ कॉलेज का, अब्दुल कुदूस। चुनाव के बाद दिसम्बर से ही बाहर था, लेकिन अब लड़ाई में हिस्सा लेने यहाँ आ गया है। अभी ट्रेनिंग कैम्प में जगह नहीं, इसलिए गाँव में है। बुलावा आते ही चला जाएगा। फिर बाँगला देश विशेषांक को हसरत से देखकर कहता है, “वी आर वेरी ग्रेटफुल टू यू सर ! वी आर वेरी ग्रेटफुल टू इण्डिया।”

हवलदार अब्दुल बारी, पकते बाल, उम्र पचास साल के लगभग ई. पी. आर. का अनुभवी सैनिक ! विद्रोही टुकड़ी के साथ यहाँ आ गया। परिवार कुमिल्ला में था, खान सिपाही (पाकिस्तानी फौजी) ने कलेआम किया, तब से उसके परिवार का कोई पता नहीं। नूरुल साहब ने आदमी भी भेजा देखने को। उस आदमी का भी पता नहीं। यह सुनकर कि इस मुक्त क्षेत्र का नागरिक प्रशासन देखने के बाद हम कुमिल्ला के युद्धक्षेत्र में जाएँगे, वह अकस्मात् प्रसन्न हो उठता है और फिर बहुत उदास, चुप !

अकस्मात् एक दिन के अन्दर पूरे परिवार को खो देने का आघात, अनिश्चय की यन्त्रणा, वह उदास चुप्पी शाम को लौटकर भी डेरे पर खाना खाते समय, बातें करते समय भी, हमारे मन पर बहुत भारी होकर वह चुप्पी छाई रहती है। हम जिस छोटे से भारतीय कस्बे में टिके हैं उसके उत्तर पच्छिम की ओर कंचनजंघा है। रात को सोने के पहले बारजे पर खड़ा होकर मैं बहुत देर तक उधर देखता रहता हूँ। घना अँधेरा, मेघाच्छन्न काल-रात्रि, ऊँघता कस्बा धीरे-धीरे सो जाता है। सिर्फ माल लदी ट्रकों की अनवरत खड़खड़ और बाँगला में कुछ चीख-चीखकर बोलती हुई एक पगली औरत।

वह जवान पगली नंगी औरत, कस्बे की गलियों में, बाजारों में भागती रहती है। किसी ने बताया, दिनाजपुर से आई शरणार्थी है। फौज की पूरी टुकड़ी ने उसके साथ बलात्कार किया। तीन दिन कराहती पड़ी रही। फिर भागी। जान तो बच गई, पर होश और कपड़े, जो उस दिन गए, तो फिर लौट कर नहीं मिले।

हवलदार अब्दुल बारी की एक जवान लड़की थी, वह कहाँ होगी ?

धनुष-सी नदी

नदी का नाम है महानन्दा। कस्बे के जरा पहले भारत में भी मिली थी हमें। हिमालय से निकलकर भारत में होती हुई बाँगला देश में चली आती है। कुछ दूर तक वही भारत-बाँगला देश की सीमा बनती है। फिर अन्दर चली आती है। इस समय भी धनुष-सी है पर पतली नहीं। शत्रु सामने होने पर बाण साधकर प्रत्यंचा खींची जाने पर धनुष जैसा चौड़ा हो जाता है वैसी ही हो गई है, इस समय। केवल मनुष्य नहीं, यहाँ की प्रकृति ने भी शत्रु के सामने प्रत्यंचाएँ तान ली हैं।

सुबह धूप तो नहीं खिली, पर बादल हल्के हो आए हैं। ऊबड़-खाबड़ सड़क पर जीप चल रही है। कभी महानन्दा दीखती है, कभी खेतों और बाँस के झुरमुटों में ओझल हो जाती है। चौकी से खाना होते समय हमने देखा कि बगल के खेत में जो किसान थोड़ी देर पहले नंगे बदन हल चला रहा था वही अब एक कन्धे पर बिस्तर और दूसरे पर स्टेनगन लादे, कमीज, लुंगी पहने चला आ रहा है। मालूम हुआ, वह मुक्तियोद्धा है। हफ्ते में दो दिन गाँव आता है खेत जोतने, निराने और बाकी पाँच दिन लड़ाई के मोर्चे पर। वह भजनपुर जाना चाह रहा था। यह जानकर कि हम अभी तेंतुलिया जा रहे हैं, वह वहीं चौकी पर किसी दूसरी सवारी का इन्तजार करने लगा।

इस वक्त हेडक्वार्टर जाते हुए हवलदार तहमद में नहीं, पैण्ट बुशर्श में हैं। बालों में तेल, तरतीब से कढ़े हुए। कुतहूल से धर्मयुग के अंक उलट-पलट रहे हैं। हर चित्र को गौर से देखते हुए। कल शाम उनमें कुछ झिझक थी जैसे पूरी तरह हमारा भरोसा न हो। इस समय उनका मन खुल आया है। बातें कर रहे हैं। “आपका कागज में मुजीब साहब का छवि वेशी अच्छा है। देवता आदमी है। अल्लाह सब देखता है कौन राक्षस है, कौन देवता ! ये खान सिपाही, ये इन्सान है साब ? हमारा गाँव में आगी बारता है। गोरू, मुरगी, छागल, पखेरू सब ले जाता है। आठ-आठ बरस का बच्ची के साथ बुरा काम करके संगीन भोंककर परान ले लेता है। ऐसा-ऐसा काम किया भारती

साहब कि अपने को बोलने में सरम आता है। इन्सान का काम नहीं, साहब जानवर है ओ तो। अच्छा एकागज में आप मुजीब साहब का नाम बँगला लेखा में दिया है। हम बूझते हैं। हिन्दी लेखा तो विलकुल बँगला लेखा का समान है। उर्दू लेखा नहीं बूझते। वो जैसा खान सिपाही है वैसा उसका लेखा। हमारा स्टूडेंट लोग से बोला, ये लेखा नहीं पढ़ेगा तो हम शूट कर देगा। ढाका में हत्या कर दिया उसका, सब जवान-जवान खोका लोग।" शास्त्री जी बीच-बीच में नोट ले रहे हैं, हवलदार जैसे मन खोलकर रख देने को उत्सुक हैं, "बाँगला देश में कोई झगड़ा नहीं था। पहले हिन्दू मुसलमान सब प्रेम से रहता था। येई लोग लाहौर से आकर बोला, पाकिस्तान बनाएगा, पाकिस्तान बनाएगा। पहले हमको खोद-खोद के अपना भाई लोग से विमुख कर दिया। ओर इण्डिया में चला गया। हमारा भाई लोग को हमसे छोराय दिया और जब देखा, अब हम अकेला है तो अब हमसे हमारा घरबार, जमीन सब छोराय लिया।" फिर वे बताते हैं—कैसे अपने गाँव के एक हिन्दू परिवार से मिलने वे छुट्टी लेकर कलकत्ते गए थे। मैं बंबई में क्यों हूँ, उन्हें यह पसन्द नहीं आता। शास्त्री जी कलकत्ता रहते हैं। यह बात समझ में आती है। "अब हम लोग खान सिपाही को हंकाय देगा। अरे हम पहले ही बताय देता, लेकिन उसका पास टैंक, आर्टिलरी, चाइनीस लोग का मशीनगन है और हम बंगाली लोग को पुराना 303 का राइफल दिया था, ओ भी मान्धाता के समय का।" मान्धाता कौन थे ? मैं शास्त्री जी से पूछता हूँ। मालूम होता है रामचन्द्र जी के पूर्वज का नाम मान्धाता था। "आप समझा नहीं ?" वे पूछते हैं।

"समझ गया" मैं बोला, "मतलब बाबा आदम के जमाने की !

"नहीं-नहीं" अब्दुल बारी प्रतिवाद करते हैं। "बाबा आदम तो पंजाबी लोग का है न ! हमारा बंगाली लोग का पूर्वज मान्धाता है। बहुत पुराना काल का पूर्वज है। ओ दांडाओ, दांडाओ, जीप रोको !" वे बात काटकर जीप रुकवाते हैं। सड़क किनारे पेड़ के नीचे एक दुबला-पतला किसान हाथ में पोटली लिये खड़ा है। "ये हमारा फ्रीडम फाइटर (मुक्ति सैनिक) है। कैम्प जाएगा। वह सैल्यूट करके हँसता हुआ जीप में आ जाता है। पोटली खोलता है, उसमें एक लुंगी है। चिवड़ा है। दो खीरे हैं और नीचे एक स्टेनगन है। मालूम हुआ, पाँच पाकिस्तानी सिपाहियों को मार चुका है। अपना खाना भी अपने घर से ले जाता है।

जीप धचके खाते दौड़ रही है। मील के पत्थरों पर ढाका की दूरी कम से कमतर होती जा रही है। 15 मील अँदर आ चुके होंगे। मुक्त क्षेत्र में जीवन प्रवाह मुक्त है। तालाबों में मछली फँसाते कुलेल करते, कोकाबेली के फूल तोड़ते बच्चे, कैरियर पर सूखे जूट के गट्ठर लादे साइकिलें, कमर पर घड़े लिये पोखर की ओर जाती औरतें, बाँस की काँवर पर काँस के ढेर-ढेर सफेद फूल लादे साँवले ग्रामीण, बरसाती पानी को रस्से बाँधकर टोकरी से खेतों में उलीचते हुए किसान। कितनी शांति है, मुक्त क्षेत्र में। कोई अपराध नहीं। तीन रजाकार एक दिन आए थे। हिन्दू लोग के धान में आग लगाने, उन्हें पुलिस ने पकड़ लिया।

“हाँ, पुलिस थाना भी है तेंतुलिया में। रोज गस्त लगाता है। डाकखाना भी। मुजीब साहब का छापा का नया टिकट विकता है। इण्डिया को भी चिट्ठी भेज सकता है आप। आज तो हाट का दिन है। हाट में सब जिनिस विकने आता है। हमारा एम. पी. ए. साहब है। सिराजुल इस्लाम। ओ बड़ा अफसर है। पहले आपको उसका डेरा पर जाने को होगा। फिर ओ जहाँ-जहाँ परमीशन देगा, वहाँ चलेगा।”

और फिर मुख्य सड़क से जीप एक छायादार कच्चे देहाती रस्ते पर मुड़ी। झुरमुटों के पार कई दुमजिले पक्के मकान थे। तेंतुलिया आ गया। बँगला शब्द तेंतुल के माने इमली। कभी यहाँ इमली के जंगल रहे होंगे। रास्ते में फिर वैसा ही बाँस का आड़ा बैरियर। बैरियर के पार सिराजुल साहब का मकान है। नागरिक प्रशासन का सदर दफ्तर।

देहाती कस्बे की बादल ढँकी अलसाई दोपहर। पेड़ों के नीचे एक और स्टेशन बैगन खड़ी है। मकान के पास एक पुरानी रूसी जीप, जिस पर धुँधला-सा ढाका का नंबर पड़ा है। यह जीप क्रान्ति के समय वहाँ से छीनकर ले आई गई है और नागरिक प्रशासन के कब्जे में है। कस्बे के बाजार से कहीं पनचक्की की निरन्तर ‘पुक ! पुक !’ की आवाज दोपहर की निस्तब्धता भंग करती है। मकान के आगे सहन, और सहन के सामने चारदीवारी से घिरी थोड़ी-सी जमीन जिसमें गुलाबाँस और मोगरा लगा है। दीवार पर इश्कपेंचा की नाजुक लतार और दो-चार लाल फूल। घर के सामने दो-तीन नवयुवक खड़े थे, कमीज लुगियाँ पहने। परिचय हुआ—ये हैं असित, ये हैं कालीपद, ये हैं मोईन। तीनों मुक्ति सैनिक हैं, इसी कस्बे के। सुबह आये हैं। रात को फिर हमले पर जाएँगे। उनकी टुकड़ी का नायक कैम्प से आनेवाला है, उसी के इन्तजार में (असित और कालीपद ! किसी विद्वान अंग्रेजी पत्रकार ने कहीं लिखा था, हिन्दू युवक मुक्तिसेना में नहीं जा रहे हैं या मुक्तिसेना उन्हें ले नहीं रही है। वही अंग्रेज आकाओं का हिन्दू-मुस्लिम रोग, जिसे ये इन्डो-एंग्लियन अभी तक दाँत से पकड़े हुए हैं। मालूम हुआ कि मुक्ति फौज में कहीं भी यह भेदभाव नहीं है। एक सेक्टर कमाण्डर ले. कर्नल दत्ता भी हिन्दू हैं और अभी जिस टुकड़ी-नायक का इन्तजार ये कर रहे हैं वह भी हिन्दू हैं। काश, सोफों में घँसी ‘स्नाबरी’ में रमी, वास्तविकता से उखड़ी पत्रकारिता इन तथ्यों को यहाँ आकर जाँच पाती। इस मुक्त क्षेत्र में हिन्दू परिवार भी हैं। कस्बे में एक पुराना मन्दिर भी है जो अब जाग्रत नहीं, लेकिन कुछ मील दूर महानन्दा के तट पर बड़ा जाग्रत मन्दिर है, जहाँ रोज पूजा के लिए लोग जाते हैं। लेकिन युवक अब हिन्दू या मुसलमान की परिभाषाओं में सोचते नहीं और हमें इन परिभाषाओं में प्रश्न पूछते संकोच होने लगता था।)

युद्ध यात्राएँ : 131

सिराजुल साहब अन्दर कुछ फाइलों और टेलीफोनों में व्यस्त थे। इस बीच में पानी और चाय आ गयी थी। थोड़ी देर में टुकड़ी का नायक भी आया। लम्बा हँसमुख युवक। इस मोर्चे पर अभी आमने-सामने लड़ाई हो नहीं रही। रात को छिपकर टुकड़ियाँ दुश्मन की छावनी के पीछे जाती हैं और उसकी यातायात लाइनों काट आती हैं, या सामान लूट लाती हैं। पाकिस्तानी सैनिक छावनी में घिरे हुए हैं, उनका गोलाबारूद और रसद खत्म हो रही है। आमने-सामने मुकाबला करने की जगह उन्हें छका-छकाकर मारने की योजना है मुक्ति सेना की।

रात को क्या हम उनके साथ हमले पर जा सकेंगे ? “नहीं क्योंकि रात को कैमरे का फ्लैश चमका कि पाकिस्तानी मशीनगनों पूरी टुकड़ी को भूनकर रख देंगी।”

“अच्छा बिना कैमरे के ?”

“उसकी इजाजत कैप्टन काजिमुद्दीन से लेनी होगी, आप शिविर में आइए।”

सहन की सीढ़ियों के एक ओर सीमेंट का सपाट ढाल बना है, जिसमें काट नहीं है। कमरे में से एक गदबदा 2 साल का बच्चा निकलकर आता है, लाल झबला, जूते, मोजे। वह डगमग चलता चलता आता है और सीमेंट के सपाट ढाल पर चाभी भरे खिलौने की तरह हिलता-डुलता उतर जाता है। उतरकर किलकारी मारता है। यह उसका प्रिय खेल है शायद। सब उसे प्यार करते हैं...

गुलाबाँस के फूल खिले हैं, एक गहरा भूरा बादल शक्ल बदलता धीरे-धीरे तैर रहा है, अन्दर छोटा बच्चा माँ से मचल रहा है, बाहर यह गदबदा बच्चा हँस रहा है, मानो बेंद्रे का कोई बहुत सुकुमार सोफियाने रंगोंवाला ग्राम-चित्र हो ! और सब शान्त है, स्थिर; मानों युद्ध नहीं है, अत्याचार नहीं है, खून के धब्बे नहीं हैं। लाशों की गन्ध नहीं है।

और अकस्मात् मुक्ति फौज की टुकड़ी का नायक बोलता है, “बीस गंजियाँ और बीस लुंगियाँ निकाल दें; नये ट्रेनीज के लिए चाहिए। रात को जो टुकड़ी जा रही है, उसके लिए तीन डब्बे...” और स्वप्न-चित्र टूट जाता है।

“हलो ! नोमोस्कार, क्वमा कोरोन ! क्षमा कीजिए। मुझे देर हो गई।” कुर्ता, लुंगी, घुँघराले बाल, ये थे इस क्षेत्र के प्रशासक सिराजुल इस्लाम। इस क्षेत्र से अवामी लीग के एम. पी. ए. चुने गए थे। (प्रान्तीय असेम्बली के सदस्य) और बाँगला देश सरकार द्वारा नियुक्त प्रतिरक्षा समिति के चेयरमैन, उम्र 28 वर्ष। हम अपना परिचय देते हैं और बाँगला देश कूटनीतिक मिशन द्वारा दिया गया पत्र उन्हें दिखाते हैं। पत्र देखकर वे हवलदार अब्दुल बारी की ओर एक अर्थभरी निगाह से देखकर बोलते हैं, “आप हमारे मित्र हैं। बाँगला देश वैदेशिक विभाग ने आपके बारे में लिखा है। इस मुक्त क्षेत्र में आपका हृदय से स्वागत है। आप जो भी देखना चाहें, हमारा पूरा सहयोग है। अभी तक आपने जो देखा, उसके बारे में आपका क्या खयाल है ?”

“हम तो चकित हैं, इतनी शान्ति, सुव्यवस्था, बाहर तो मुक्त क्षेत्रों के बारे में किसी को यह अनुमान ही नहीं है। और इतना बड़ा क्षेत्र ! लोग तो सोचते हैं, कुछ

चार-पाँच मील के टुकड़े होंगे कहीं-कहीं।”

“और यह तो ऐसा केवल एक क्षेत्र है। आप तीसरे पहर बाजार और कस्बा घूमकर देखिएगा। हमारे दफ्तर, हमारा टेलीफोन एक्सचेंज, हमारी कचहरी, हमारा डाकखाना, पुलिस थाना, हमारे बाजार, यहाँ तक कि हमारे प्राइमरी स्कूल भी खुल गए हैं। अगर आप कुछ और वक्त लेकर आएँ, तो अपने किसी गाँव में हम दो-चार दिन आपको ठहराएँ। हमारे लोग गरीब हैं, लेकिन उनके हृदय में प्यार की कमी नहीं। और सच बात तो यह है कि इस संकटकाल में जैसे खुद उनमें एक नई जिम्मेदारी, एक नये अनुशासन की भावना आ गई है। अकस्मात् एक मानसिक प्रौढ़ता।”

बाँगला देश सरकार की नागरिक प्रशासन की पूरी पद्धति और उसके प्रतिष्ठानों के बारे में शास्त्री जी उनसे इतने सारे सवाल पूछते हैं और वे हरेक का जवाब देते हैं। कुछ आँकड़ों के लिए उन्हें उठकर फाइलें उलटनी पड़ती हैं या फोन पर सम्बद्ध अधिकारी से पूछना पड़ता है।

कुछ ही वर्ष पहले सिराजुल टाका विश्वविद्यालय में विद्यार्थी थे। विद्यार्थी काल में बाँगला भाषा आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था और जेल भुगती थी। धर्मयुग के अंक बड़े चाव से उलटते हैं।

“क्या हिन्दी आती है आपको ?”

“नहीं, लेकिन मैं संस्कृत सीखने का बहुत इच्छुक था,” लेकिन इन ‘पाकिस्तानी बास्टर्ड्स’ ने संस्कृत की पढ़ाई बन्द करवा दी और हम पर उर्दू थोप दी।”

बातें देर तक चलती हैं और तय होता है कि कस्बा शाम को देखें। अभी हम भजनपुर जाकर मुक्ति फौज की छावनी देख लें और उनकी द्वितीय रक्षा पंक्ति। कैप्टन शहरयार और कैप्टन काजिमुद्दीन शाम को यहीं आनेवाले हैं, तभी उनसे भेंट हो जाएगी। चाय आती है और साथ में रसगुल्ले। हम मना करते हैं, तो बहुत आग्रह से वे कहते हैं, “स्वाधीन बाँगला देश में आए हैं, तो मुँह तो मीठा करना ही पड़ेगा। भाई, हम लोग बुनियादी तौर पर बहुत मीठे लोग हैं, पर इन ‘बास्टर्ड्स’ (दोगलों) को बता देना चाहते हैं कि उनके ऐसों के लिए कड़ुवे भी हैं। असह्य रूप से कड़ुवे। हम इन्हें कैसे माफ कर सकते हैं ? मैं खुद कैसे माफ कर सकता हूँ ?

इन्होंने मेरे गुरु देवतास्वरूप डॉ. गोविन्दचन्द्र दे को किस बेरहमी से मारा है। दर्शन मेरा विषय था। उनका विद्यार्थी था मैं। एक क्षण को उनका गला रूँध आया। फिर बात बदलकर बोले, “अच्छा, कैम्प हो आइए, फिर लौटकर यहाँ खाना खाइए।”

जब हम लोगों ने फिर संकोच दिखाया, तो बोले, “आप हमारी सरकार के मेहमान हैं, इसे क्यों भूलते हैं।” और वे हवलदार को अलग बुलाकर आगे के लिए आवश्यक निर्देश देते हैं और खुद मुक्ति फौज-शिविर को फोन करके हमारे आने की सूचना देते हैं। इतने में एक गाड़ी आती है और उसमें से भरे बदन गोल चेहरे के जो बंगाली सज्जन सफेद कमीज-पैन्ट में उतरते हैं वे डॉक्टर हैं और तेंतुलिया खास तथा पूरे मुक्त क्षेत्र के अस्पतालों के प्रमुख चिकित्सक हैं।

“हमारे अस्पतालों में युद्ध से आए हुए कई बहादुर घायल सैनिक हैं। शाम को उनसे जरूर मिलिएगा।” वे ताकीद करते हैं। उन्हें अभी दवाओं का इन्तजाम करने जाना है। दवाओं की बेहद कमी है यहाँ।

और जीप फिर चल पड़ती है। इस बार रास्ता लम्बा है। अब हवलदार अब्दुल बारी को हमारी प्रामाणिकता के बारे में पूरा इत्मीनान है। उनसे वहाँ का सामरिक खुलासा भी मिलता है। यह सड़क यहाँ से तीस-पैंतीस मील आगे महानन्दा को पार करती है। वहाँ एक बड़ा पुल है। अप्रैल में ही मुक्तिवाहिनी ने उस पुल को उड़ा दिया था। इसीलिए पाकिस्तानी फौज की बख्तरबन्द गाड़ियाँ या जीपें इस क्षेत्र तक पहुँच ही नहीं पायीं। कुछ नावों पर चढ़कर इस पार आए थे। उन्हें मुक्ति-सैनिकों ने मारकर भगा दिया था। पुल पर बहुत जोर की लड़ाई हुई। पहले मुक्ति सैनिक मरे। बहुत गोले बरसाए पाकिस्तानवालों ने, लेकिन मुक्ति सैनिकों ने आखिर में मैदान जीत लिया। अब उन्हें पुल से 15 मील आगे तक खदेड़ ले गए हैं। वहाँ अब मोर्चा जमा है, लेकिन पिछले छह महीने से लड़ते-लड़ते पाकिस्तानी पस्त हो गया है। गोलाबारूद भी खत्म है।

हवलदार अब्दुल बारी इस युद्ध में शरीक थे। उन दिनों वे ई. पी. आर. दिनाजपुर में थे। सर्विस के 23 साल पूरे हो गए थे। सपना था कि रिटायर होकर गाँव में परिवार के साथ सुख के दिन कटेंगे। तभी विस्फोट हुआ। 26 मार्च को सूबेदार हब्बीश साहब खबर लाए कि पाकिस्तानी फौजों ने ढाका में कत्लेआम किया और दूसरे शहरों में भी खूँरेजी शुरू कर दी है। ई. पी. आर. के जवान मौत के घाट उतारे जा रहे हैं। सूबेदार मेजर काजिमुद्दीन के नेतृत्व में (जो अब कैप्टन है) पूरी बटालियन ने तय किया कि हम आजादी के लिए लड़ेंगे। पहली लड़ाई बटालियन के पंजाबी अफसरों और जवानों से हुई। उन्हें ठिकाने लगाकर वे दिनाजपुर शहर की ओर बढ़े। 27 मार्च को दिनाजपुर आजाद हो गया। 13 अप्रैल तक आजाद रहा। बाद में टैंक आगे कर नापाक फौजें आई, तो उन्हें पीछे हटना पड़ा। अब्दुल बारी को गर्व है कि उसने कई दुश्मनों को ठिकाने लगाया। लौटते समय ही यह महानन्दा का पुल तोड़ दिया गया था।

अब शिविर के अफसर कैप्टन काजिमुद्दीन ही हैं। उनकी वीरता का हर व्यक्ति कायल है। उनके बाद यहाँ का हरदिल अजीज व्यक्तित्व है कैप्टन शहरयार। देखने में एक साधारण बंगाली युवक, मझोला कद, सीधा सादा। लेकिन गहरी काली आँखें उस आग का आभास देती हैं, जो अन्दर सुलग रही है, दिन में सब शान्त, लेकिन रात में पाक सेना की छावनी के अन्दर-बाहर सारे क्षेत्र पर कैप्टन शहरयार की छाया का दबदबा रहता है। जादू की तरह कब कहाँ वे अपनी मुट्ठी भर सैनिकों के साथ प्रकट हो जाएँगे, इसका ठिकाना नहीं, वह भी ठीक पाकिस्तानी बंकरों या खाइयों के बीच। फिर मशीनगन की र...ट...ट...ट और जमीन पर तड़पते पाक सैनिक।

शहरयार अभी कुछ महीनों पहले जुलाई तक पाकिस्तान सेना की बलूच रेजीमेंट में थे। उसी रेजीमेंट में, जिसमें पहले यहिया खाँ थे। उन्हें पश्चिमी पाकिस्तान में ही

रखा गया था। जुलाई में किसी तरह वे भागकर कश्मीर सीमा पर पहुँचे और वहाँ से प्रत्यर्पण कर बाँगला देश आए। सेनाध्यक्ष कर्नल उस्मानी ने उन्हें इस क्षेत्र में भेजा और यहाँ वे छा गए हैं। देखें शाम को तेंतुलिया लौटकर उनसे मुलाकात होती है या नहीं।

“जीप से हम लोग महानन्दा के पुल तक जा सकेंगे। पुल टूटा है न ? वहाँ से पाकिस्तानी फौज तो 12 मील आगे है। हमारी मुक्ति-सेना के कब्जे में है सब एरिया। वहाँ से शाम को सब गाँववाले तेंतुलिया की हाट में आएँगे। पहले कैम्प चलिए साहब, थोड़ा हाथ-मुँह धोइए 50 मील अन्दर आ गए हैं और ऐसी खराब सड़क।”

हवलदार की आवाज में अब भरोसे के साथ-साथ सत्कार और प्यार भरा अधिकार जुड़ गया है। द्वितीय रक्षा पंक्ति का कैम्प महानन्दा के टूटे हुए पुल के एक मील इसी ओर है। उसके आगे जाने की मनाही है बिना कैप्टन काजिमुद्दीन की अनुमति के। वे इस समय हैं नहीं। लेकिन हम पुल तक जरूर जाएँगे। उस घनघोर युद्ध के अविस्मरणीय रणस्थल की मिट्टी छूकर ही लौटेंगे।

धनुष जैसी नदी महानन्दा ने यहीं पर बाँगला देश के शत्रुओं को परास्त किया है। माँ हैं ये नदियाँ। दुर्गारूपिणी माँ हैं। पद्मा, मेघना, जमना और माँ है महानन्दा। आगे भी इनकी रक्षा करना माँ ये जीवन-मरण के संग्राम में लगे हैं। ‘या देवी सर्वभूतेषु क्रान्ति रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै...’ मेरा नास्तिक मन चुपचाप दोहराता है।

पुराने पुल

यहाँ पर नदी में पानी ठहरता नहीं। रेत का बड़ा-सा प्रसार जिसमें कहीं-कहीं पानी के टापू और पतली दो-तीन धाराएँ। कैम्प बहुत दूर पीछे छूट गया है। और जीप वहीं छोड़कर पैदल हमारे साथ केवल कैप्टन आए हैं। अब्दुल बारी भी कैम्प में रह गए हैं। क्यों ? क्या दिनाजपुर से हटते समय इस पुल पर के रक्तरंजित युद्ध की स्मृतियाँ दोहराना नहीं चाहते, या फौजी अदब के कारण कैप्टन के होते हुए साथ लगना उन्हें उचित नहीं लगा !

नदी के इस ओर का हरा-भरा किनारा काफी ऊँचा है। उस ओर सपाट खेत है। बीच में टूटा हुआ पुल। इन खेतों का सिलसिला आगे 12 मील चला गया है जहाँ इस वक्त मोर्चा जमा हुआ है। कभी यह रेत, यह पानी युद्ध के बाद रक्त से लाल रहा होगा। अब वह सब नदी बहाकर ले जा चुकी है, लेकिन एक लाल छपा अब भी शेष रह गया है। उस लड़के की फटी बनियान पर लाल स्याही से छपा है जय बाँगला ! और ऊपर नाव बनी है। अवामी लीग का चुनाव चिह्न ! इसे कोई नहीं मिटा सकता। हमें कैप्टन ने दिखाया था—‘वह देखिए,’ लुंगी पहने एक बूढ़ा और नेकर-बनियान पहने एक बच्चा बहंगी और सिर पर जूट का गट्ठर लादे तेंतुलिया की हाट से आ रहे थे। फोटो खींचने पर वे अचकचाए, हँसे और फिर अपनी राह चल दिए।

यह सड़क कभी ढाका होते हुए सीधे कलकत्ता जाती थी। तब इसकी रौनक ही और थी। अब विभाजन के बाद 25 साल से बेमरम्मत पड़ी है। पाकिस्तानी फौजों के इस्तेमाल के लिए पुल बचा था। अब वह भी टूट गया। यह पुल बन भी जाए पर बहुत कुछ जो टूट गया अब हमेशा के लिए टूट गया। उस टूटने की कथा यहाँ आने के पहले कैप्टन ने बताई थी। कैम्प में, पोखर किनारे, पेड़ तले बैठे हम बातें कर रहे थे।

असल में सड़क के पास से लगता ही नहीं था कि यहाँ कोई इतना बड़ा कैम्प होगा। सड़के के किनारे एक ट्रक खड़ा था, एक लाल ट्रेक्टर, बाँस, कदली गाछ और शाल के झुरमुटों में सिर्फ दो-तीन बाँस की नई, कलात्मक झोंपड़ियाँ। उसके बाद

आँगन, पगडण्डी और पगडण्डी के बगल में एक सुन्दर-सा पोखर। कुर्सियाँ निकालकर पेड़ के नीचे डाल दी गई। काजिमुद्दीन और शहरयार मोर्चे पर गए थे। हमारा स्वागत जिन्होंने किया वे युवा कैप्टन हँसकर बोले, “चित्र ले लें ! लेकिन यादगार के लिए बस। छापें मत। नहीं, नाम भी नहीं प्लीज।” यहाँ आने के पहले वे पाकिस्तान सेना में थे। अमरीका और चीन में विशेष रूप से प्रशिक्षित। केवल लन्दन के कुछ मित्रों को उनका अता-पता मालूम था। वे टाइम्स तथा अन्य विदेशी पत्रों की कटिंग उनको भेजते रहते हैं, जिनमें बाँगला देश के पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्रों का हालचाल छपता है। लेकिन ‘धर्मयुग’ का बाँगला देश विशेषांक वे पहली बार देख रहे हैं। इतनी सामग्री तो किसी ने नहीं दी। चित्रावली, खासतौर से ढाका के चित्रों पर खासतौर से रुक जाते हैं। एक-एक चित्र को पहचानते हैं। हाँ, सब टूट गया, हमेशा कि लिए। शुरुआत हो गई थी 24 मार्च को जब यहिया खाँ और शेख मुजीब की वार्ता टूटी थी।

उस दिन, यानी 24 मार्च को वे ढाका हवाई अड्डे पर ही थे। अकस्मात् सिगनल हुए और चुपचाप बिना किसी शोर-शराबे के यहिया खाँ आए और चल दिए। उनका चेहरा स्याह था, होंठ भिंचे हुए, आँखें लाल। सैल्यूट का जवाब तक नहीं।

उसी समय से सनसनी फैल गई थी। कुछ होकर रहेगा। लेकिन जो हुआ उसका आभास किसी को स्वप्न में भी नहीं था। 25 मार्च की आधी रात को अकस्मात् ढाकावासी जागे। कहर तारी हो चुका था। धरती, आसमान सब ओर भयानक गरज और आग। सड़कों पर टैंक आग उगल रहे थे। गलियों में मशीनगनों चल रही थीं, भारी तोपें शहर पर गोले बरसा रही थीं। निहत्थे सोए हुए शहर पर ऐसा भयानक हमला कर दिया गया था, जैसे कोई बहुत ताकतवर हथियारबन्द दुश्मन की सेना सामने हो। तोपों की गरज के बीच-बीच ढहते मकानों की आवाजें, घायलों की चीखें, भागते लोगों का शोर, आग चारों ओर आग। कैप्टन अपने मकान की छत पर गए। आकाश लाल था। पूरा ढाका जल रहा था। उनकी छत के आर-पार आग के गोले आ-जा रहे थे। चिनगारियाँ छत पर बरस रही थीं। सन 65 के भारत पाक युद्ध में कैप्टन पंजाब के मोर्चे पर थे। सरगोधा के हवाई अड्डे पर 7 सितम्बर, 65 को भारतीय बममार जहाजों के हमले के समय सैकड़ों तोपें गरज उठी थीं, बीसियों फाइटर प्लेन आसमान में लड़ रहे थे, लेकिन कैप्टन का कहना था कि वह दृश्य जो भारत-पाक युद्ध का सबसे रोमांचक दृश्य था, ढाका की इस रात की भयावहता के मुकाबले कुछ भी नहीं था और फिर दिन उगते-उगते उन्होंने बाजारों पर हमला बोला। 14 बाजार जलाकर خاک कर दिए गए। वे घोषित कर रहे थे कि उन्होंने ढाका के आधे लोगों को भून डाला है, जो बाकी बचे हैं उन्हें भूख से तड़पा-तड़पा कर मारेंगे। इस दगाबाज बंगाली कौम को इस बार नेस्तनाबूद कर देना है। बाहर या छत पर निकलना खतरे से खाली नहीं था। पूरा परिवार, और कुछ पास-पड़ोस के दोस्त सहम कर एक कमरे में बैठे हुए बिना खाए-पिए रेडियो सुन रहे थे। बस, सूई घूम रही थी। कभी कलकत्ता, कभी लन्दन, कभी “इतने में अकस्मात् सूई ढाका में ऐसे बिन्दु पर लग गई, जहाँ से कुछ फौजी बातचीत सुनाई

पड़ रही थी। एक दोस्त ने झट से टेप रेकार्डर चला दिया। वे विद्यार्थियों का कल्लेआम कर और बाजारों को जलाकर रिपोर्ट दे रहे थे। बाद में वह टेप किसी तरह चोरी से बाहर लाया गया। फिर तो वह पूरी बातचीत भारत के और बाकी संसार के अनेक अखबारों में छपी, हाँ शायद टेप लानेवाला भी बूढ़ी गंगा के किनारे-किनारे उसी रास्ते से भागा था, जिससे आपका यह फोटोग्राफर जिसके चित्र आपने बाँगला-देश-विशेषांक में छापे हैं। यह सारी लाशें, हफ्तों बाद तक बूढ़ी गंगा इनसे पटी पड़ी थीं उन्होंने टैंक और तोपें अब दूसरे शहरों की ओर मोड़ दी थीं और ढाका में नरसंहार का दूसरा तरीका शुरू हो गया था। फौजी ट्रकें कतार बाँधकर निकलतीं। गलियों में पहुँचकर उन्हें घेर लिया जाता और जितने लोग मिलते उन्हें गिरफ्तार कर ट्रकों पर लाद देते। मशीनगनों उनकी ओर तनी रहतीं और रस्सियाँ दे कर उनसे कहा जाता कि एक-दूसरे के हाथ-पाँव कसकर बाँध दें। फिर मुँह में कपड़ा ठूस दिया जाता और चलती ट्रकों पर ही संगीनों भोंककर उन्हें मार डालते, ट्रकों आकर बूढ़ी गंगा के किनारे खड़ी हो जातीं और उनमें से लाशों को पानी में लुढ़का दिया जाता।

सुनते-सुनते मेरा गला सूख गया था। आँखें जलने लगी थीं, मुट्ठियाँ तन गयी थीं। इस भयानक अमानुषिकता को भी जातीयता के नाम पर, कूटनीति के नाम पर, शक्ति सन्तुलन के नाम पर जो नजरअन्दाज कर रहे हैं, क्या उन्हें भी माफ किया जाना चाहिए ! मेरे हाथ में राइफल नहीं, पर तनी हुई मुट्ठियों में कसी हुई कलम इन दरिन्दों और इनको शह देनेवालों के मुखौटे उधेड़ने में अगर जरा भी कोताही करे तो मेरे सारे लिखने-पढ़ने को लानत है।

लेकिन कैप्टन शान्त थे। बहुत संयत। जैसे सारी पीड़ा भोगने के बाद इस पैशाचिकता से मरते दम तक लड़ने का दृढ़ निश्चय कर लेने के बाद का धिराव ! मैं एक क्षण उस बहुत कम उम्र नौजवान कैप्टन की आँखों में देखता हूँ और फिर कुछ-कुछ रूँधे गले से कहता हूँ—

“मुझे आप अपना एक साथी योद्धा मानिए। आप हमें बताइए कि अपने इस युद्ध के बारे में आप क्या चाहेंगे कि बाहर की जनता तक सम्प्रेषित किया जाए ? आप उन तक क्या पहुँचाना चाहेंगे ?”

कैप्टन उसी शान्त भाव से मेरी ओर बहुत विश्वास से देखकर कहते हैं, “फैक्ट्स, नथिंग बट फैक्ट्स (तथ्य केवल तथ्य)। तथ्य के अलावा कुछ भी नहीं। आप जो कुछ देख रहे हैं केवल वही लोगों तक पहुँचाइए। वे तथ्य ही हमारी बात कह देंगे। हम कोई रियायत नहीं चाहते, कोई अतिरिक्त ग्लोरिफिकेशन (प्रभामंडल) नहीं।”

मैं बेहद भर आया हूँ। चुप हूँ। पता नहीं नाजियों के लिए भी अकल्पनीय ऐसी पैशाचिकता करनेवाले हिंसकों के प्रति अदम्य घृणा से, पता नहीं इस ग्लानि से कि जब ये इस कीचड़-पानी में नितान्त साधनहीन, इन्सानियत की यह लड़ाई लड़ रहे हैं तब हम अपने एयरकंडीशन कमरों में बैठे कुर्सी से चिपके इस क्रान्ति से अलग छिटके हैं। पता नहीं इस उबलते क्रोध से कि जिसे हम न्याय कहते हैं, अन्तरात्मा कहते हैं,

मानव मूल्य कहते हैं, ईश्वर कहते हैं, वह कहाँ है ? नहीं है, शायद नहीं।

फिर सिर झुकाये हुए बोलता हूँ, आँखें मिलाकर कैप्टन की ओर देखने का साहस नहीं है, “कुछ भी न हो, पर इतना जरूर है कि हमको आजादी सस्ती मिल गयी थी, जिसका नतीजा है आज पुरानी पीढ़ी का कायर भ्रष्टाचार और नयी पीढ़ी की पीड़ाजनक भटकन, आपको जो आजादी मिलेगी वह अग्न में तपे सोने की तरह होगी।” पता नहीं यह कहकर मैं अपने को समझा रहा हूँ या उन्हें !

कैप्टन कुछ जवाब नहीं देते सिर्फ मुस्करा देते हैं। पेड़ से छनकर धूप उनकी कुर्सी पर पड़ रही है। वे कुर्सी खिसकाकर बैठ जाते हैं और सिगरेट पीने लगते हैं।

और इस चरम तनाव भरे क्षण में कविता हमारे बचाव के लिए आती है। शास्त्री जी को कितनी कविताएँ कंठस्थ हैं हिन्दी की, बँगला की, उर्दू की, यह देखकर यात्रा के आरम्भ से हम आश्चर्यचकित हैं। कहाँ से वे सन्दर्भ ढूँढ़ निकालेंगे और कविताएँ फूट पड़ेंगी इसका कोई निश्चय नहीं। वे रवीन्द्र की कविताएँ सुना रहे हैं और शम्सुर्रहमान की। और कविताओं में से बात निकल पड़ती है ईश्वर की। शास्त्री जी घनघोर आस्तिक हैं। यहाँ भी सुबह मानस-पारायण और दुर्गापीठ में व्यतिक्रम नहीं पड़ा, किसी भी सुबह। वे कैप्टन से कह रहे हैं—“भारती जी कहते हैं कि ज्यों-ज्यों ये जीवन जीते गये ईश्वर पर से इनका विश्वास हटता गया। किसी ने इन्हें नास्तिक वैष्णव कहा था। लेकिन कभी-कभी इन्हीं की बातों से ईश्वर के होने का प्रमाण मिलता है। अभी कह रहे थे कि आप जिस अग्नि परीक्षा में होकर गुजर रहे हैं वह आपकी आजादी को खरा सोना बनायेगी। ईश्वर ऐसी ही परीक्षा लेता है लेकिन ये मानेंगे नहीं। कल रात दो बजे तक इनसे बहस होती रही।”

बगल के पोखरे में एक मुक्ति सैनिक किसान नहाने के लिए उतरता है। नरकुल और जलघास में घँसता हुआ निकल आता है। पानी काँपता है, धीरे-धीरे शान्त हो जाता है। पोखर में नहाकर एक चिड़िया फुनगी पर बैठकर पंख सुखा रही है। मैं देखता हूँ—बुलबुल। एक टोकरी में ग्रेनेड भरकर कोई ले जा रहा है। यहाँ इस फौजी शिविर में बुलबुल कहाँ से आई ! पानी शान्त हो गया है। सफेद बादलों का एक गुच्छा पानी में तैर आया है। क्या इन तमाम सवाल का, जो मेरे क्रोध से उबलते मन ने पूछे हैं उनका उत्तर है यह ? कौन दे रहा है यह उत्तर ? ईश्वर ? वह निष्क्रिय ईश्वर, जो 25 मार्च की रात को चुप बैठा रहा ?

मेरा संकेत समझकर बालकृष्ण चुपचाप उठते हैं और उस पोखर का वह चरम सौन्दर्य का क्षण कैमरे में स्थायी हो जाता है। जब भी देखूँगा इसे, याद हो आएगा कि इसके किनारे एक विस्फोटक प्रश्नाकुल फौजी कैम्प की युद्ध-दोपहर बिताई थी। इसी के किनारे था वह मुक्तिवाहिनी शिविर और वह उसका कैप्टन, चित्र उतारने की मनाही थी। लेकिन सवाल का जवाब तो नहीं मिला, ईश्वर है किस ओर ? यहिया खाँ के नरपिशाचों की ओर ? इन साधनहीन जांबाज मुक्ति सैनिकों की ओर ? या सिर्फ इस सबसे निरपेक्ष पंख सुखाती बुलबुल और जल में तैरते रुपहले बादलों की

ओर ? या उसने अपने और अपनी अक्षौहिणी सेनाओं को बराबर-बराबर सब में बाँट दिया है, न्याय की ओर भी, अन्याय की ओर भी ?

कैप्टन ईश्वर पर इस बहस को बड़े ध्यान से सुन रहे हैं। नहीं, ऊब नहीं रहे क्योंकि एक तो ये बुनियादी सवाल हैं, जो किसी भी देश में, किसी भी धर्म के माननेवालों के चिन्तनशील दिमाग में उठते ही रहते हैं। दूसरे, वे भी दर्शन के छात्र रहे हैं। विश्वविख्यात स्व. डॉ. गोविन्दचन्द्र के शिष्य। उनकी एक रिश्तेदार भी दर्शन की छात्रा है। जिस दिन पाकिस्तानी धर्मान्ध सैनिकों ने डॉ. गोविन्दचन्द्र को सोते से जगाकर उनकी अमानुषिक हत्या की, उस दिन उसके आँसू नहीं थम रहे थे। उसने हफ्ते भर तक ठीक से खाना नहीं खाया, न केवल उनकी वरन् उसके सैकड़ों सहपाठी, सहपाठनियाँ दो-तीन दिन के अन्दर ढाका में कल्ल कर दिये थे। पूरी योजना बनाकर यह नरवध किया गया था। यह पाकिस्तानियों का सरासर झूठ है कि जगन्नाथ हाल से हैंड ग्रेनेड फेंके गये। रुकैया हाल में जो हुआ वह तो अवर्णनीय है। वे इस कदर राक्षस हो सकते हैं कि उसकी कोई हद नहीं। बुद्धिजीवियों को नेस्तनाबूद करने में उन्होंने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। जहाँ तक उन्हें मालूम है शम्सुर्रहमान और सूफिया कमाल किसी तरह बच गये हैं। सूफिया कमाल की दो लड़कियाँ ढाका से भागकर मुक्तिवाहिनी में आ गयी हैं। कुमिल्ला सेक्टर में ही हैं, किसी युद्ध अस्पताल में घायलों की देख-रेख करती हैं। हम लोग कुमिल्ला सेक्टर जा रहे हैं, उनसे जरूर मिलें।

“खाना तैयार है !” एक लड़का आकर बताता है। हम लोगों को देर हो गयी है, अतः सिराजुल इस्लाम साहब का फोन आया है कि लंच हमें वहीं करा दिया जाए। बाँस की साफ-सुथरी झोंपड़ी में, एक लम्बी बाँस और चटाई की मेज पर ही खाना लग जाता है। झोंपड़ी में सिर्फ दो बाँस की तख्तनुमा चारपाइयाँ हैं। साफ चादर और चादर के ऊपर पैताने रखी दो वर्दियाँ, कंधा-शीशा, कुछ फाइलें और पेंसिलें। ये कैप्टन काजिमुद्दीन और कैप्टन शहरयार की चारपाइयाँ हैं। लेकिन इस पर सिवा दो एक घण्टे कमर सीधी करने के, सोने का मौका नहीं मिलता। रात को मोर्चा, दिन को संगठन।

मुक्तिसैनिकों में से तीन-चार ने राइफलें दीवार से टिकाकर रख दी हैं और खाना बनाकर परोस रहे हैं बड़े प्यार से दो किस्म के गोश्त, प्रख्यात हिल्सा मछली और एक सब्जी बनाई है और साफ उजला चावल। अब कैसे बताया जाय कि हम और शास्त्री जी निरामिष हैं। हम चुपचाप सब्जी और चावल खाते हैं और कभी केवल चावल और नमक। उस रुपहले पोखर के किनारे अन्याय के खिलाफ राइफल उठाने वाले हाथों का यह नमक और चावल जितना स्वादिष्ट लगता है वैसा स्वादिष्ट खाना मैंने अपने जीवन में कभी और खाया हो यह याद नहीं आता। यह सच है कि इस युद्ध का बुनियादी आधार शान्ति है, प्यार है, ‘भालो वाशा’ है। साक्षी हैं यह धान के खेत, जादू-दर्पण जैसे पोखर, बाँस सुपारी और कदलीगाछ पर चुपचाप ढलती दोपहर, साक्षी है वह प्यार जो कैप्टन और इन चाव से परोसनेवाले युवा योद्धाओं की आँखों में है हमारे लिए !

“नहीं, हम युद्ध नहीं चाहते थे। पर जब अब हमारा पूरा जीवन बाजी पर लग गया है, तो हम लड़ेंगे, तब तक लड़ेंगे जब तक हम इन पाकिस्तानी उपनिवेशवादियों की पाशविक हुकूमत का आखिरी चिह्न तक निःशेष नहीं कर देते।” कैप्टन खाते-खाते बातें कर रहे हैं, “आपका कहना सच है कि एशिया के किसी देश को इन जाते हुए गोरे उपनिवेशवादियों ने बख्शा नहीं। उन्हें बाँटा और लड़वाया हिन्दोस्तान हो या चीन कोरिया हो या वियतनाम, यहाँ तक कि अफ्रीका में काँगो। हाँ, अगर 20-25 साल शान्ति के हमें मिल गये होते तो हम एशियाई राष्ट्र कहीं के कहीं पहुँचते, लेकिन वह ये देख नहीं सकते थे। अभी हमारा बाँगला देश बहुत गरीब है। काश कि हमें 20 साल शान्ति के मिल जाँएँ तो हम एक वैभवशाली राष्ट्र बन सकते हैं, लेकिन बस वही बात है कि 20 साल शान्ति के मिलें ? आजादी ? उसे तो अब कोई रोक नहीं सकता।”

“तो, आजादी के दिन ढाका में जरूर मिलेंगे।” हम विदा लेते हुए कहते हैं। कैप्टन इस समय बहुत प्रसन्न हैं। पहली बार उनकी वाणी में उद्वेग है लेकिन उद्वेग आशा और प्रसन्नता का है। पोखर में तैरते बादल में रंग झलकने लगे हैं, तीसरे पहर के। बाँस और सुपारी के कुंज और गाढ़े हरे हो आए हैं।

तेंतुलिया से फिर किसी का फोन आया है। हमारा इन्तजार हो रहा है। जीप चलती है। कैप्टन और सैनिक निःशब्द लेकिन आँखों में स्नेह लिये खड़े हैं। चलते-चलते हम देखते हैं कि सड़क किनारे बंकर बनाये जा रहे हैं। बंकर की दीवारों पर बगल के कुंजों से घास उगी मिट्टी के थक्के के थक्के घास सहित उठाकर छोपे जा रहे हैं, ताकि हमलावर को लगे कि साधारण पुराने दूह हैं, जिन पर बरसों से घास उग आई है।

यह उनकी सहज, दृढ़, अपराजेय निष्ठा है। यह अपनी मिट्टी में जड़ें फेंकनेवाली दूब-टैक इसे कुचल दे, हवाई जहाज इस पर बम बरसाये, यह नन्ही दूब फिर मिट्टी से उगकर गौरव से अपना सर उठा देगी। कभी वेद की एक ऋचा पढ़ी हुई थी ‘कांडात्कांड प्ररोहन्ती,’ कांडी-कांडी करके इंच-इंच बढ़ती हुई, यह दूब सारी धरती को छा लेती है। इसी जीवनधर्मी अपराजेयता के कारण दूब के द्वारा ही देवों की पूजा की जाती है।

लेकिन अगर ईश्वर है तो इस बंकर पर जमाई गई दूब उसकी पूजा का उपकरण क्यों नहीं ? क्या इससे पवित्र और कोई दूर्वा हो सकती है ?

वे ही बनते दीप

छोटे कस्बे में खबर फैलते देर नहीं लगती। सिराजुल साहब ने अवामी लीग के दो कार्यकर्ता हमारे साथ कर दिये थे, जो हमें तेंतुलिया में घुमा रहे थे। कच्चे-पक्के इकहरे और दुर्मजिले मकानों का अच्छा खासा कस्बा। घुमावदार गलियाँ। ये है अवामी लीग का दफ्तर। अभी भी चुनाव के पोस्टर और मुजीब के चित्र दीवारों पर चिपके हुए। अन्दर एक बड़ी-सी पुराने ढंग की अंडाकार मेज, और बाहर स्वाधीन बाँगला देश का ध्वज लहराता हुआ। यह है कचहरी। यह टीन की दीवारों वाला टेलीफोन एक्सचेंज, जिसके बरामदे में दर्जनों लोग जूट के गड्ढर लिये बैठे हैं। हाट मानो बाजार में ही नहीं लगी है, पूरे मुक्त क्षेत्र से लोग अपनी-अपनी चीजें लेकर बेचने आये हैं। पाकिस्तानी मुद्रा और भारतीय मुद्रा दोनों चल रही हैं और इसके अलावा तीसरा, बिलकुल प्राचीन तरीका, 'वार्टर' का। लोग जूट देकर माचिस के डिब्बे खरीद रहे हैं। चावल देकर कपड़े खरीद रहे हैं। कम-से-कम 5-6 किस्म के चावल। और लीजिए हम एक ही दो तस्वीर उतार पाए हैं कि खबर फैल गई और जाने कहाँ से भागते हुए दर्जनों बच्चे और सैकड़ों तमाशबीन घिर आये हैं, हमारे छायाकार बालकृष्ण का बाकायदा घेराव हो गया है, उन्होंने कैमरा साधा एक बूढ़े बिसाती की तस्वीर लेने के लिए, लेकिन लेंस के सामने खड़े हैं दर्जनों बच्चे, जवान, अधेड़, बूढ़े तमाशबीन और अब झल्ला-झल्लाकर बालकृष्ण बाजार में कभी यहाँ, कभी वहाँ कैमरा साधते हैं लेकिन भीड़ उनसे ज्यादा तेज है। जब व्यूअर में से झाँकते हैं उन्हीं बच्चों और तमाशबीनों को लेंस के सामने बेतकल्लुफी से हँसते, मुस्काते, बतियाते, धकियाते पाते हैं। उनमें और भीड़ में लुकाछिपी चल रही है और हम मजा ले रहे हैं। शास्त्री जी फरटिदार बँगला में लोगों से बातें करते घूम रहे हैं, खास तौर से डॉ. फरीद अहमद से। सिराजुल इस्लाम नागरिक प्रशासन या प्रतिरक्षा समिति के चेयरमैन हैं, डॉ. फरीद उसके मन्त्री हैं। और अब शास्त्री जी एक रूमाल में ढेर-सी लाई (मूड़ी) खरीद लाए हैं, खुद भी खा रहे हैं, मुट्ठी भर-भर बाँट भी रहे हैं। बाँगला देश के धान की लाई, बरसात के बावजूद कुरुमुरी। मैं जीवन में पहली

बार इस क्षेत्र में आया हूँ, मगर इसका स्वाद पहचाना-सा क्यों लगता है ? याद आया ! कैशोर्य में कितनी बार शरत के उपन्यासों के पात्रों के साथ शामें और रातें सिर्फ मूड़ी और गुड़ खाकर बिताई हैं। उस सम्बेदनशील यायावर कथाशिल्पी शरत ने इन्हीं देहाती कस्बों की गलियों में कितने दिन इसी मूड़ी और गुड़ के सहारे काटे होंगे।

मूड़ी के साथ-साथ शास्त्री जी की लच्छेदार बातें और कविताएँ बँटनी शुरू हो गई हैं। अब वे बच्चों के हीरो बन गये हैं। कमीज पाजामे बनियान-नेकर, कुछ नंगे बदन भी, कितने बच्चे उनके चारों ओर इकट्ठे हो गये हैं। कुछ आगे बढ़कर सवाल-जवाब कर रहे हैं। कुछ मुग्ध भाव से सुन रहे हैं, कुछ लजाए हुए अलग खड़े हैं, कुछ केवल मुँह बाएँ हम तीनों आगन्तुकों को बारी-बारी से देख रहे हैं। बाजार में पक्की दुकानें भी हैं, कपड़ों की, किरानी की, दर्जियों की, पान-बीड़ी सिगरेट की। सौदा-सुलुफ, मोल-भाव, आवा-जाही, भीड़-भाड़ कौन कहेगा कि यहाँ से 30-35 मील अन्दर युद्ध चल रहा है। एक आजादी, नई पाई हुई आजादी का सन्तोष, कोई खान सिपाही संगीन ताने उनकी गलियों में नहीं है, कोई गद्दार मुस्लिम लीगी या रजाकार उनके घुले-मिले जीवन में घृणा का जहर घोलने को नहीं है, उनके अपने लोग, अवामी लीग के सिराजुल साहब, फरीद अहमद साहब हुकूमत चला रहे हैं। मुजीब साहब के लोग हैं ये दोनों। चाँद तारेवाला हरा झण्डा उतर गया है, बाँगला देश का झण्डा हर दफ्तर पर लगा है। वे आश्वस्त हैं !

ये तथ्य हैं, आजाद बाँगला देश की नितान्त सच्ची, वास्तविकता कि एक स्वाधीन बाँगला देश है, बिलकुल है। अभी टुकड़ों में है, कल बीच-बीच में से पाकिस्तानी फौजी छावनियाँ मिट जाएँगी, तो मिलकर पूर्ण हो जाएगा। एक स्वाधीन देश में जो होना चाहिए, उनमें से क्या नहीं है यहाँ !

लेकिन नहीं; मैं कैसी नासमझी की बातें सोच रहा हूँ। तथ्य को अगर हम तथ्य मान लें तो समझदारी कहाँ रही ? मुझे समझदार होना चाहिए, मसलन मैं देख रहा हूँ कि यहाँ पूर्ण नागरिक प्रशासन है। उन्हीं के क्षेत्र के चुने नुमाइन्दे उनका शासन चला रहे हैं। उन्हीं की मुक्तिवाहिनी उनकी रक्षा कर रही है, लेकिन मुझे कहना यही चाहिए कि मैं किसी दवाब में यह क्यों मान लूँ कि यह नागरिक प्रशासन है, मेरी इसके साथ पूरी सहानुभूति है, लेकिन जब उचित समय आयेगा तभी मैं मानूँगा कि यह नागरिक प्रशासन है। या फिर मुझे तमाम दुनिया के कूटनीतिज्ञों की कान्फ्रेंस में डिक्शनरियाँ देख कर तथ्य के अर्थ ढूँढ़ने चाहिए, उसकी व्युत्पत्ति, उसकी सीमैटेक्स और अभी स्वाधीन बाँगला देश की आँखों देखी वास्तविकता का राग नहीं अलापना चाहिए। फिर मुझे शान्ति के मसीहा ऊ थांट से भी तो सबक लेना चाहिए। मसलन अगर हमने मूड़ी यहाँ खरीदी है तो ठीक, लेकिन उसका दाम मुझे उस ओर जाकर पंजाबी पाकिस्तानी हमलावरों को चुकाना चाहिए, क्योंकि हमारे जो कागजात हैं उनमें तो उन्हीं का नाम दर्ज है। हम इसे तथ्य क्यों मानें कि यह एक स्वाधीन बाँगला देश है। हम उन तथ्यों को तथ्य मानेंगे, जो हमारे कागजात में दर्ज हैं या जो हमारी नौकरशाही फाइलों में

दर्ज कर हमारी मेज पर रख देगी। सत्य कैसी मनोरंजक विडम्बनाओं में उलझा दिया गया है, आज की समझदार दुनिया में !

“भारती साहब ! सिगार !” अब्दुल बारी जीप में से डिब्बा उठा लाए हैं। और पेश करते हैं। कैसी छोटी-छोटी नामालूम बातों से कभी-कभी मन का स्नेह अपनी बात कह जाता है। ज्यों-ज्यों दिन खत्म हो रहा है, लौटने का समय आ रहा है, अब्दुल बारी अपने सहज मौन, लेकिन बड़े प्रगाढ़ स्नेह-सत्कार से हमें बाँध लेने की कोशिश कर रहे हैं। हमारी एक-एक जरूरत का ध्यान, हमको कहीं कोई तकलीफ न होने पाए इसकी बेहद सतर्कता, और जब हम भीड़-भाड़ में बातचीत में उलझे हों, तो अलग चुपचाप खड़े होकर बड़ी ममता और आभार भरी निगाहों से देखना। जो एक-दो दिन के साथियों के प्रति इतनी ममता से भर आया है, उससे जब एक आघात में उसका पूरा परिवार छिन गया होगा तो कैसे अपने को सँभाल पाया होगा वह ? वह ई. पी.आर. का एक साधारण हवलदार, उसे कवियों की भाषा नहीं मिली, अपने मन की बात कहने को, लेकिन अपनी जिन्दगी की आन्तरिक टूटन और अपने प्रति हुए अमानुषिक अन्याय की बात अगर मित्रों के प्रति आँखों की ममता और अन्यायियों के प्रति राइफल की गोली से कहता है, तो क्या हम इतने बहरे हो गये हैं कि जब तक उचित समय नहीं आएगा, हम सुनेंगे नहीं ?

डॉक्टर का आग्रह था कि अस्पताल जरूर देखें। हम बाजार से उधर के लिए मुड़ते हैं। गलियाँ, दोनों और फुलवारियाँ और मकान, बीच-बीच में खेत, पोखर, बत्तखों की कतारें और बत्तखों से ज्यादा शोर मचाते हुए प्रसन्न बच्चे जो शास्त्री जी को घेरे हुए चल रहे हैं। शास्त्री जी उनको कविताएँ सुना रहे हैं। उनसे कविताएँ सुन रहे हैं, उनको पहेलियाँ बुझा रहे हैं, उन्हें कभी-कभी बीच में बाजीगरी का करिश्मा भी दिखा देते हैं। बच्चे स्वतन्त्र बाँगला देश की कुछ कविताएँ भी सुनाते हैं। सबसे चुस्त और उत्साही एक बच्चा है, बरसाती हैट लगाए हुए। वह डॉ. फरीद अहमद का बेटा है। उसे संग्रामी कविताएँ खूब याद हैं।

पोस्ट ऑफिस और डिस्पेन्सरी होते हुए अब हम अस्पताल के पास पहुँच गये हैं। टीन की छतोंवाले दो हाल, एक लम्बा जिसमें साधारण मरीज हैं, एक छोटा जिसमें कुछ खास मरीज रखे गये हैं। इस समय अस्पताल मुक्तवाहिनी के युद्ध-घायलों से भरा पड़ा है, छोटे हाल के सहन में तीन मरीज हमें देखकर खड़े हो जाते हैं। उनमें से है नायक फज्ले अली जो घायल होकर गिर पड़ा था और पाकिस्तानी सिपाहियों ने उसी हालत में उसकी पसलियों में संगीनों भोंकी थीं। जख्म के टाँके भर गये थे, लेकिन अभी गहरा निशान बाकी था। टाँके अभी भी कभी-कभी दरद कर उठते हैं। दूसरा था अघेड़, खुशमिजाज हवलदार सैयद मियाँ। उसका केस नाजुक था। उसकी पसलियों के पास तीन गोलियाँ लगी थीं। उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। लेकिन अल्ला का शुक्र एक-दूसरे बड़े अस्पताल में ले जाकर ऑपरेशन किया गया और अब वह धीरे-धीरे अच्छा हो रहा है। उसने बताया कि एक झाड़ी में छिपकर वे और उसके

साथी पाकिस्तानियों का मुकाबला कर रहे थे। अकस्मात अगल-बगल से भी पाकिस्तानी आ गये। फिर भी वे सफलता से छिपे रहे। लेकिन एक मायरा (बिहारी मुसलमान) रजाकार ने इन्हें देख लिया। इनको पानी देने के बहाने वह झाड़ी के पास आया और वहीं पानी देते-देते उसने पाकिस्तानियों को इशारा किया। वे दौड़ पड़े और उर्दू में बोले, आज इन बंगाली गीदड़ लोग को मजा चखाएगा।

“हम भी मुजीब साहब का नाम लेकर निकल पड़ा। बहुत जोर का संग्राम हुआ। हमको तीन गोली लगा। खुदा का किरपा था, नहीं तो आधा इंच ऊपर गोली लगता तो फिर आज हवलदार सैयद मियाँ को आप जैसा मेहरबान लोग से मिलने का जोग नहीं बैठता।” उसका ऑपरेशन तो सफल हुआ था, लेकिन पता नहीं किस नलिका में क्या छेद हो गया है कि पानी भी पीता तो जाकर अन्दर से चोट मारता है और बेहद दर्द होता है। डॉक्टर का कहना है कि ‘डायट’ पर रहो, कम-से-कम तीन महीने बिल्कुल आराम करो, तब यह अपने आप ठीक होगा, हवलदार सैयद मियाँ का कहना है—“डायट पर कैसे रहें साहब, हमसे आराम भी नहीं होता, नींद नहीं आती, खाना भी नहीं खाया जाता, हमें तो बस फिर रांडफल मिल जाए तो उसको जाकर बताएँ कि बंगाली को गीदड़ कहनेवाले को हम कबर का मुँह कैसे दिखाता है।”

और तीसरे युद्ध-घायल से मुलाकात हुई, जब पुलिस थाने ले जाए गये। (पाठक चिन्तित न हों, हम थाने जरूर ले जाए गये। लेकिन प्रेमपूर्वक चाय पिलाने के लिए) बाकायदा दो-तीन मेजें मिलाकर रखी गई थीं, कुर्सियाँ, टी-सेट में चाय। तभी लोगों ने पूछा, हम अब्दुल मन्नान से मिले या नहीं। अब्दुल मन्नान को बुलाया गया, “एई ! अब्दुल मन्नान के एकटु डाको !” एक बहुत उदास आदमी दोनों हाथ नीचे लटकाये धीरे-धीरे चलता हुआ आया और आकर शून्य भाव से खड़ा हो गया। “तोमार काहिनी, शोनाओ।” थाने के एक सिपाही ने कहा। उसने बहुत धीरे-धीरे बहुत मरे-मरे स्वर में कुछ कहा और फिर हाथों में एक जुविश हुई और वे फिर नीचे-नीचे लटक गये। मालूम हुआ कि अब्दुल मन्नान को आठ-दस संगीनें भोंककर मुर्दा जानकर उन्होंने पद्मा में बहा दिया था। दो दिन तक वह बहता रहा और दो-तीन दिन आधा बाहर किनारे पर आधा पानी में पड़ा रहा। लेकिन पद्मा माँ ने ऐसा ‘चोमोत्कार’ किया कि उसका प्राण लौट आया पद्मा तो माँ है, मारती कैसे ? फिर अस्पताल आया। बहुत इलाज हुआ पर इसके हाथ की ताकत, आवाज सब जाती रही। एक हाथ तो उठता भी है, पर दूसरा हाथ बिल्कुल सुन्न पड़ गया है।

मैंने उसकी ओर देखा। मृत्युलोक से लौटा हुआ वह अब्दुल मन्नान उसी तरह शून्य भाव से खड़ा था। उसको पद्मा माँ ने जिला जरूर दिया, लेकिन अभी भी वह अपनी मौत जी रहा था, महाकाल का महाशून्य। “ईसा जब वहाँ पहुँचा तो लजारस की दोनों बहनें उसके पाँवों पर गिर पड़ीं, ईसा ने अपने मृत मित्र लजारस को फिर जिन्दा कर दिया।” बाइबिल में कभी पढ़ा था। लजारस मेरे सामने खड़ा है। वह मृत्युलोक से लौटा लेकिन मृत्युलोक को साथ लिये-लिये। लजारस की आँखों से अब्दुल मन्नान की आँखों में जो

गहन अँधेरा भरा सवाल झाँक रहा है, उसका जवाब कोई दे सकेगा क्या ?

बेबसी में समझ नहीं आता कोई क्या करे ? जैसे उस जकड़न से छूटने मात्र के लिए हम एक प्याले में चाय बनाकर प्याला अब्दुल मन्नान की ओर बढ़ाते हैं। उसके हाथ में एक जुबिश होती है और फिर वे गिर जाते हैं। हम भूल गये थे कि उसके हाथ सुन्न हैं, एक गहरी ग्लानि हमारे चेहरों पर छा जाती है, पर अब्दुल मन्नान वैसे ही खड़ा है, खामोश, शून्य !

बहुत प्यार से लाई गई वह चाय अकस्मात् फीकी बेस्वाद लगने लगती है। वहाँ ठहरना दूबर हो गया है।

सिराजुल इस्लाम साहब से विदा लेने गये तो मालूम हुआ वे सो रहे हैं। दिन भर प्रशासन, रात को गुरिल्लाओं का आना-जाना, बस बीच में जब भी समय मिलता है दो-चार घण्टे सो लेते हैं। आज तो खाना भी 5 बजे शाम को खाया। वे आँखें मलते हुए आते हैं, हाथ में है अपने पैड पर लिखा 'धर्मयुग' के पाठकों के लिए अपना वक्तव्य।

पूरब में रात जल्दी उतर आती है। हवलदार अब्दुल बारी उनसे आवश्यक निर्देश लेकर वापस अपनी चौकी को लौट रहे हैं हमारे साथ। सब चुप हैं। जाने क्यों सबका मन भारी है। दूर-दूर तक फैले धान के खेतों पर घना अँधेरा। छायादार पेड़ों के बीच उखड़ी-उखड़ी सड़क की झलक, बीच-बीच में पानी भरे गड्ढों में झलकते आकाश की चमक। बाहर अँधेरा, अन्दर एक उदासी। आते ही आते आत्मीय बन जाने वाले इस क्षेत्र से लौटते समय कैसा तो लग रहा है। और अगर अक्टूबर-नवम्बर में फिर सब ओर से असहाय अकेले लोगों पर पाकिस्तानी टैंक और बममार टूट पड़े तो ! इनकी स्वाधीनता को स्वीकार कर इनके साथ कन्धा मिलाकर कोई न खड़ा हुआ तो ! एक-एक व्यक्ति ने चलते समय इसरार किया है कि फिर आइएगा। लेकिन अगर हम फिर आए भी तो जिन्होंने बुलाया है, वे मिलेंगे क्या ? कितना गाढ़ा, कितना अपरिहार्य अँधेरा है ?

और अकस्मात् अगल-बगल के खेतों में कुछ चमककर बुझ जाता है। हम कुतूहल से देखते हैं। सैकड़ों जुगनू, पोखरों पर, खेतों पर, पेड़ की डालों में चमकते, बुझते, उड़ते जाते हैं। इधर हमारे साथ-साथ उड़ रहे, उधर हमारी बगल से उड़ते हुए दूसरी ओर निकल गये। कितना जीवन्त है सोनार बाँगला का अँधेरा भी।

शास्त्री जी याद दिलाते हैं : रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक कविता लिखी थी, जुगनू पर :

“जिनकी हमने दिन में की अवहेला
वे ही बनते दीप, रात की बेला !”

अब्दुल बारी की चौकी आ गई। नहीं, अब हम रुकेंगे नहीं। इस धरती से खामखाह मोह होने लगा है, लेकिन अब्दुल बारी का आग्रह। 'हम ऐसे नहीं जाने देंगे।' वे हाथ पकड़कर आग्रह करते हैं। घुप अँधेरे में हम चौकी के आँगन में फिर जाते हैं। वहीं मेज आती है कुर्सी पोंछी जाती है। रात के अँधेरे में दीखता नहीं। मेज पर यह पीला-पीला

अथातो युद्धजिज्ञासा

मैं नहीं जानता कि शुरुआत कहाँ से करूँ, क्योंकि सच बात है कि आप नहीं जानते कि युद्ध-क्षेत्र की शुरुआत कहाँ से हो जाती है। मुक्त क्षेत्र एक शान्त भौगोलिक क्षेत्र था। एक चेक पोस्ट बताता था कि यहाँ भारत की जमीन समाप्त होती है, दूसरा चेक पोस्ट बताता था कि यहाँ बाँगला देश शुरू होता है। लेकिन युद्ध एक माहौल होता है। एक हवा में फैली-फैली-सी सहम। घटनास्थल के बहुत-बहुत पहले से युद्ध को आप महसूस करने लगते हैं, तमाम चीजों में, चेहरों में, आवाजों में यहाँ तक कि रास्तों के सुनसान घुमावों में, खेतों के सन्नाटों में, टीलों के उभारों और खन्दकों के अँधेरों में। और कितना उलझा होता है यह एहसास। कल युद्धस्थल से 14 मील दूर उस कस्बे की गहरी, काली कफ़्यू लगी रात में रह-रहकर उधर से आती तोपों और इधर से जवाब देती तोपों की गरज सुनसान अँधेरे को कँपा देती थी और फिर कितना सन्नाटा हो जाता था, एक तरह से दिल बिठा देने वाला सन्नाटा, बेहद अशान्त कर डालनेवाली निश्शब्द शान्ति।

यह क्षेत्र तैतुलिया की तरह दूर तक फैला धान के खेतों की सपाट हरीतिमा का नहीं है, यहाँ वृक्षों, लतरों, झाड़ियों से लदे टीले हैं, बीच में साँप की तरह बलखाती सड़क है, ऊपर चढ़ती, नीचे उतरती पगडण्डियाँ हैं, केले, बाँस, सुपारी के घने झुरमुट हैं, दलदल भरे बड़े-बड़े गड्ढे हैं और रास्तों पर थके, उदास, धूल-भरे शरणार्थियों की अनटूटी कतारें हैं और हैं बीच-बीच में मशीनगनों चलने की आवाज, जो जाने कितने मील दूर से हवा के साथ आकर इन टीलों में बहुत क्षीण प्रतिध्वनि बनकर भटक जाती हैं। धड़ाम ! धड़ाम ! हम चौंक पड़े, जीप के ड्राइवर का मुँह फक पड़ गया। पास ही तोप के गोले गिरे हैं। लगता है, पाकिस्तानियों ने शेंलिंग शुरू कर दी। “अभी परसों चार-पाँच लोग इसी टीले के पास गोला फूटने से मर गये थे। जब से ‘जय बाँगला’ शुरू हुआ इस एरिया में 100 से ज्यादा आदमी मर चुका है, पाकिस्तानी गोलाबारी से।” बस, अगले मोड़ पर जीप हमें उतार देगी। आगे हम जानें, हमारा काम जानें।

आगे जीप वाला हर्गिज-हर्गिज नहीं जाएगा। “साहब बस देख लिया, यही बाँगला देस है, अब लौट चलिए।”

हमारे दिलों की धड़कन तेज न हुई हो, गला थोड़ा सूखने न लगा हो, आँखें थोड़ी और चौड़ी और चौकन्नी न हो गई हों, यह बात नहीं है, लेकिन मन में और कुछ भी हुआ। वह क्या है ? एक अजीब-से अदम्य कुतूहल की रोमांचक खुशी, एक सम्मोहन जो हमें खींच रहा है ठीक युद्धक्षेत्र के बीचोबीच। हमारी चाल में एक अजीब स्पन्दन आ गया है, पाँवों में एक नई ताकत। क्या यह वह सम्मोहन है, जो साँप की बेहद भोली लेकिन बेहद जहरीली आँखों में आँखें डालकर देखने से आता है ? या यह वह उत्सुकता है, जो किसी नितान्त अनमहसूस किये हुए अज्ञात को पहली बार महसूस करने की सम्भावना पर आती है या यह वह खुशी है, जब आदमी किसी एक मूल्य के लिए युद्ध और शहादत में शामिल होने या उसके साक्षी बनने की सार्थकता में मृत्यु की देहरी पर खड़ा होकर महसूस करता है। या शायद इन सबका मिला-जुला हुआ सम्बेदन !

जीप रुक गई है और हम अपने कैमरे, थैले, सामान लेकर उतर पड़े हैं। आगे नितान्त वर्जित प्रदेश है। हवा युद्ध से बोझिल है लेकिन ‘आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है।’ कहाँ और कैसे मृत्यु के फ्रेम में तोड़-मरोड़कर जीवन को फिट कर लेता है, इसका कोई ठिकाना नहीं। इस अजीब से स्थल पर भी जीवन अपनी साधारण गति से चल रहा है। बाएँ एक बड़ा-सा पोखर है, दाएँ एक छोटा-सा बाँस का पुल है जिसके पेड़ों के बीच कुछ झोंपड़ियाँ हैं। एक औरत पोखर में साड़ी निवोड़ रही है। पास के एक नल पर कुछ वृद्धाएँ पानी भर रही हैं। दो चार ग्रामीण लुंगी-बनियान में खड़े बतिया रहे हैं। एक बहँगीवाला बहँगी में सब्जी लादे पेड़ तले सुस्ता रहा है। “अभी गोले कहाँ से गिरे ?” पूछने पर एक ग्रामीण खेतों के पार एक गाँव की ओर इशारा कर देता है। और हँसकर (बाँगला में) कहता है, “सुबह तो बहुत गोला आया था, दो तो इसी पोखर में पड़ा है। कोई मरा ही नहीं।” मुझे धक्का-सा लगता है। मरने न मरने की बात को वह कितने निरपेक्ष भाव से कह रहा है। जो गोले पोखरे में गिरे वे इस किनारे पर भी गिर सकते थे। पर उसे इसका कोई बोध नहीं। वह कहता जा रहा है, “इधर रोज गोला का दागादागी चलता है...”

“लेकिन...” और मेरा वाक्य अधूरा रह जाता है, क्योंकि कहीं से दो मुक्ति सैनिक राइफल लिये आते हैं और एक चुप्पी छा जाती है। उनका स्पष्ट आदेश है कि इस बिन्दु से आगे हम नहीं जाएँगे, हम उसे अपना परिचय देते हैं। बाँगला देश-मिशन से मिला पत्र दिखाते हैं, लेकिन उनकी आँखों में आया नया आदरभाव भी निषेध की दृढ़ता को तोड़ नहीं पाता, आगे किसी को जाने का हुक्म नहीं है।

अब सुबेद अली और करीम भाई का आसरा है। कल आते ही सुबेद अली से जैसे मुलाकात हो गई, वह भी एक अद्भुत संयोग था। यदि इस नितान्त अजनबी युद्धग्रस्त कस्बे में आप अपने डेरे की ओर जा रहे हों और सड़क किनारे किसी

धुँधली रोशनीवाले रहस्यमय कमरे में कुछ लोग कानाफूसी कर रहे हों और उनमें से एक हमें देखते ही उछल पड़े और जोर से आवाज लगाए—“शास्त्री ! शास्त्री ! हाउ आर यू हीयर, अनबिलीवेबल” तो आप स्तब्ध नहीं हो जाएँगे ? ढाका के युवा बैरिस्टर सुबेद अली अवामी लीग के एम.पी.ए. (सदस्य प्रान्तीय सभा) थे और विष्णुकान्त शास्त्री के विश्वविद्यालय बाँगला देश सहायक समिति के डेलीगेशन में अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों का चक्कर लगा चुके थे। कल वे मिले, हमारा इरादा जानकर पहले समझाते रहे कि हम युद्धक्षेत्र में न जाएँ, यह इस वक्त सबसे सक्रिय और खतरनाक क्षेत्र है, लेकिन जब हम जिद पर अड़े रहे तो बोले, “अच्छा तो मैं अकेले नहीं जाने दूँगा, मैं भी चलूँगा और करीम भाई को भी ले चलूँगा। इनसे मिलो करीम भाई, ये हैं भारती और ये हैं शास्त्री और हमारे करीम भाई एम.एन.ए. हैं।”

सुबेद और करीम इन मुक्ति सैनिकों को अलग ले जाकर फुसफुसाकर कुछ बात करने लगे। हम आशंकित थे कि कहीं इस पुण्यक्षेत्र के द्वार तक आकर न लौट जाना पड़े। लेकिन थोड़ी देर में देखा, मुक्ति सैनिकों ने उन्हें सलाम किया और जैसे वे प्रकट हुए थे वैसे ही वे झुरमुटों में कहीं अदृश्य हो गये।

करीम भाई अलसाये-से धीरे-धीरे चलने के आदी हैं लेकिन सुबेद लगभग उछलकर आया, “तुम लोग कुछ ऐसा देखने जा रहे हो जो अभी तक हममें से भी किसी ने नहीं देखा है। मैंने भी सिर्फ सुना भर था, पर उड़ते-उड़ते।”

“क्या ?” हमने बहुत उत्सुकता से पूछा, सुबेद अपनी धुन में डबल मार्च करते खेतों की मेड़ों पर बढ़ते चले जा रहे थे। मुड़कर बोले, “चले आओ। वे लोग बहुत खुश हैं उनके क्षेत्र में उनके एम. पी. ए. और एम. एन. ए. आये हैं। चले आओ, चले आओ ! तुम भी क्या याद करोगे कि सुबेद के साथ आये थे।” करीम भाई एक-एक कदम मेड़ों पर सँभाल-सँभालकर रखते हुए मुस्कराते हुए चल रहे थे। बालकृष्ण ने कैमरे तैयार कर लिये थे।

खेतों के पार हल्की-सी उठान थी और पुख्ता जमीन के कटे-फटे कगारे। उसके बाद कुछ झाड़-झंखाड़, कुछ पेड़, पेड़ों के बीच कुछ लोगों के होने की झलक मिल रही थी। बस और कुछ नहीं ! दाएँ-बाएँ देखा तो एक ओर एक खेत में कुछ सफेद बगुले पंजे उठा-उठाकर चल रहे थे और दूसरी ओर एक झोंपड़ी थी जिसके पास कुएँ में से कोई पानी भर रहा था। कौन हैं ये लोग जो युद्ध की छाया में ऐसे अनासक्त भाव से बसे हुए हैं ? अब खेत खत्म हुए और हम उठानवाली पुख्ता जमीन पर आ गए। सामने पेड़ों तले वह क्या है ? ओह, दो-तीन तम्बू पड़े हुए हैं और पेड़ तले कुछ लोग लुंगी-बनियान पहने चीड़ के बक्सों पर बैठे बातें कर रहे हैं। क्या सुबेद अली यही दिखाने ले जा रहे हैं ? यह भी शायद कोई छोटा-मोटा मुक्ति फौज शिविर है। यह कौन नई चीज हुई। हम तो इससे कहीं बड़ी छावनियाँ देखकर आए हैं।

सुवेद अली हमारी निगाहों में आए शंका भाव की बिना परवाह किए हमें वहाँ खड़े रहने को कहते हैं और खुद आगे बढ़कर उनके पास जाते हैं। हम अनमने-से खड़े हैं। यह दलदली इलाका, उस खुशनुमा उत्तरांचल की तरह नहीं जहाँ हम होकर आए हैं। यहाँ झाड़ियों में बड़े-बड़े डाँस हैं, रंग-विरंगे कीड़े हैं, जो उड़-उड़कर हमारे बदन पर बैठने की कोशिश करते हैं। जूते कीचड़ से लथपथ हैं अनुभवी बालकृष्ण ने तो जंगलवूट खरीद लिया था।

उनमें से एक सुवेद अली से बात करके अन्दर जाता है और अन्दर से एक प्रौढ़ व्यक्ति आकर सुवेद अली से हाथ मिलाता है। सुवेद अली इशारा देते हैं, “ऑल क्लीयर, हरा सिग्नल, आइए।” हम जाते हैं और आस-पास झाड़ों में से स्टेनगनों लिये अनेक मुक्तिसैनिक हमारे चारों ओर घिर आते हैं। ‘यह क्या ?’ हम सवालिया निगाह से देखते हैं। अकस्मात् तम्बू से पर्दे उठा दिए जाते हैं और हम देखते हैं, हमारी ओर मुँह किए हुए अनेक जंगी तोपें !

तोपें ! तो क्या मुक्तिवाहिनी ने तोपखाना भी तैयार कर लिया ? यह कब ?

“अभी-अभी” सूबेदार ने हँसकर सबसे हाथ मिलाते हुए कहा—“यह हमारा बिल्कुल ताजा सीक्रेट है। आप पहले बाहरी मेहमान हैं जो इसे देख रहे हैं। सारी मुक्तिवाहिनी को इस तोपखाने पर फख है। हमने इसका नाम मुजीब बैटरी रखा है। देखिए, इस पर हाथ रखकर देखिए, अभी भी गरम होगी। कुछ अरसा पहले शेलिंग की है हमने। लेकिन इण्डिया के पास तो बहुत अच्छी आर्टिलरी है, आपने बहुत बढ़िया तोपें देखी होंगी। यह तो बहुत पुराना मॉडेल है। किसी तरह से कहीं से जुटाया है हमने पर शुरुआत यों ही होती है साहब, फिर हमारी अपनी मुजीब बैटरी है और हमें इस पर बहुत नाज है।” सूबेदार साहब बहुत साफ जवान बोल रहे थे। मालूम हुआ कि न केवल वे बल्कि इस बैटरी के ज्यादातर जवान पाकिस्तान आर्टिलरी में थे और पश्चिम पाकिस्तान में पोस्टेड थे। वहाँ तो उर्दू बोलनी होती है। वे सभी कुछ ही महीने पहले सीमा पार कर निकलकर आए हैं। उनका परिवार कहाँ है, कैसा है, कुछ पता नहीं ? आते ही कमाण्डर-इन-चीफ कर्नल उस्मानी ने इस तोपखाने का सरंजाम किया बड़ी मुश्किल से। पश्चिमी पाकिस्तान में उनकी आर्टिलरी में अमरीकी और चीनी तोपें थीं, उन्हीं पर इनकी ट्रेनिंग हुई थी, लेकिन अब तो उनके लिए नहीं अपने बाँगला देश के लिए लड़ रहे हैं, इन तोपों पर हाथ साध लिया है। वैसे उधर पाकिस्तान ने अपने मोर्चों पर जो तोपें लगाई हुई हैं वे तो 20-20 मील गोला फेंकती हैं और बहुत ही हल्की हैं, ये तो भारी भी हैं और बहुत ‘लांग रेंज’ नहीं हैं इनका।

“तो फिर आप मुकाबला कैसे करते हैं ?” शास्त्री जी ने पूछा।

“मुकाबला सिर्फ हथियारों से नहीं होता, हथियार के साथ हिम्मत चाहिए, और दिमाग और उधर दिमाग कहाँ ?” सुवेद अली इस शान से बोल रहे हैं गोया आर्टिलरी का उनका पुराना अनुभव हो।

लेकिन बालकृष्ण शस्त्रास्त्रों के बारे में काफी जानते हैं। अपनी जिन्दगी के कितने

ही बरस उन्होंने फौजी छावनियों में बिताए हैं और 'धर्मयुग' के सेना विशेषांकों के लिए सदा वे ही कैमरा लेकर गए हैं। वे सुवेद अली के भावना भरे उद्गार का प्रतिवाद नहीं करते, लेकिन अलग धीरे से मुझसे कहते हैं, "मोर्चे पर दिमाग अकेले से कब तक काम चलेगा, इन बेचारों के पास हथियार के नाम पर क्या है ? पाकिस्तानियों के पास दुनिया की नयी से नयी अच्छी मारक तोपें हैं और इनके पास न जाने कब की पुरानी ये दो-तीन तोपें, शायद पाकिस्तान के किसी फौजी कबाड़खाने से छीनकर लाए हैं। इनसे कैसे काम चलेगा ? खुद भारत के पास काफी आधुनिक तोपें हैं, हम क्यों नहीं दे सकते इन्हें ?"

करीम भाई, जो इतनी दूर चलकर आने में थोड़े हॉफ गए थे, निरपेक्ष भाव से हमारी बातें सुनते रहे। फिर धीरे से बोले—“इण्डिया पर वैसे भी बहुत बोझ पड़ गया। हमारे इतने रेफ्यूजी आ गए। उनका कितना खर्च है। अभी तो लड़ाई चल रही है, इण्डिया भी रिकग्निशन (मान्यता) देगा, हमें तो भरोसा है।”

लड़ाई तो चलती रहेगी पर कैसे ? अभी मानसून के बाद धरती सूखेगी और उनके टैंक आगे बढ़ेंगे। इन बेचारों के पास तो टैंक का ढाँचा भी नहीं है। आसमान साफ होगा और उनके हवाई जहाज इन पर बम बरसायेंगे। रडार और फाइटर प्लेन की तो बात दूर, इनके पास तो एण्टी-एयरक्राफ्ट गन भी नहीं हैं। “तब ? तब क्या होगा ?” बालकृष्ण पूछते हैं। सच तो यह है कि हमारे पास सवाल ही सवाल हैं ? उनका जवाब किसी के पास नहीं।

पर शायद चरम निराशा और साधनहीनता में आजादी के योद्धा के पास एक ही जवाब होता है, हिम्मत।

“जी, हमारी इस बैटरी में कुल 135 जवान हैं, और जूनकी हिम्मत का अन्दाज आप इसी से लगा सकते हैं कि उनमें से ज्यादातर लोग पश्चिम पाकिस्तान की छावनियों में बहुत कड़े पहरे में लगभग नजरबन्द थे, लेकिन इस आजादी की लड़ाई में शरीक होने के लिए जान खतरे में डालकर अभी जुलाई-अगस्त में निकल भागे। कितने ही उनमें से बॉर्डर पार करते हुए शूट कर दिए गए। जो बचे वे यहाँ डटे हुए हैं।” सूबेदार हमें तोपखाने का पूरा ब्यौरा दे रहे हैं। “तोपों का काम खास ट्रेनिंग का होता है, इसलिए यहाँ केवल रेगुलर फोर्स (नियमित वाहिनी) के लोग हैं, छापामार गुरिल्ला (गणवाहिनी) तो यहाँ से 12-14 मील आगे हमारे सबसे अगले कैम्प में है। रेगुलर फोर्स की वर्दी ? क्या हम मामूली हालात में लड़ रहे हैं ? हाँ, वैसे हम सबके पास वर्दी थी, बूट थे, सब कुछ था, लेकिन जब वहाँ से छिप-छिपकर निकले, तो क्या आप सोचते हैं पूरी वर्दी से लैस होकर निकलते और पाकिस्तानी फौज के हाथों मारे जाते। जो जैसी हालत में था, हथियार छिपाकर निकल पड़ा। कुर्ता, पाजामा, लुंगी-बनियान, कमीज, नेकर, कुछ केवल लुंगी में उघड़ बदन, और हम जैसे वहाँ से आए थे वैसे ही हैं। हमने कहा वर्दी और बूट के बिना भी काम चल जाएगा, लेकिन तोप और गोलों के बिना काम कैसे चलेगा ? पहले वह मिल जाए फिर देखा जाएगा। वह मिल गया और हमने

अपने शेख साहब को याद करके इसका नाम मुजीब बैटरी रखा। अब खुदा चाहेगा और शेख साहब की दुआ होगी तो हम फतेह भी करेंगे और वर्दी, बूट से लैस ढाका में उन्हें सलामी देंगे। आइए, आपको पूरा तोपखाना दिखाएँ।”

“तम्बू के नीचे जमीन में से मिट्टी निकालकर चारों ओर मेड़ बनाई गई है और नीचे समतल थाले में तोपें जमाई गई हैं। तोपों के पास शेल (गोलों) के डिब्बे बक्सों में भरे हैं। तम्बू के बिलकुल बगल में एक ढाल पर बंकर बना है, जिसमें एक टेलीफोन लगा है। यहाँ से दूर कहीं ऊँचाई पर एक और बंकर बनाया है। उसे बैटरी आब्जर्वेशन पोस्ट कहते हैं। प्रमुख अफसर वहीं है। नक्शे और बाइनाकुलर के सहारे वह वहाँ से शत्रुक्षेत्र का निरीक्षण करता है और लक्ष्य चुनता है। फिर उस बंकर से यहाँ तोपखाने के बंकर में टेलीफोन से आदेश देता है और निशाने की स्थिति बताता है। उसके अनुरूप तोपों का मुँह घुमाकर ऊपर-नीचे कर गोले भरकर तोप दाग दी जाती हैं। वैसे तो आगे 15 मील तक मुक्तिवाहिनी का कब्जा है, लेकिन अगल-बगल से झाड़ियों में छिपकर कई बार पाकिस्तानियों के दस्ते आए हैं और यहाँ जमकर युद्ध हुआ है। वे हर बार मारे गए या भाग गए हैं, लेकिन वे झाड़ों और झुरमुटों में छिपकर कभी भी आ सकते हैं, इसीलिए यहाँ पर हमारे सैनिकों की सख्त पेट्रोलिंग है। 10, 12 मील इधर और 10, 12 मील उधर, हर खेत में, हर झुरमुट में, हर टीले पर हमारी टुकड़ियाँ हर वक्त राइफल ताने गस्त लगाती हैं, रात-दिन, 24 घंटे। वह सुनिश्च, आपने मशीनगन की आवाज सुनी ! नहीं, यह बाएँ से नहीं आ रही, मुठभेड़ इधर हुई है दाएँ, टीलों से टकराकर आवाज बाएँ से आती लगती है। अभी आधे घण्टे में खबर आ जाएगी कि हमारी किस टुकड़ी से लड़ाई हुई है। मशीनगनें फिर चलने लगती हैं। आज पाकिस्तानी हमले पर आमादा हैं। और लीजिए तोप के दो गोले !” हम अचकचाकर ऊपर आकाश की ओर देखने लगे, सूबेदार हँसा, “नहीं, इधर नहीं आएगा। वे उधर रघुरामपुर की ओर गिर रहे हैं। उन्हें अभी अन्दाज नहीं हो पाया है कि तोपखाना कहाँ है ? हम हर दूसरे-तीसरे दिन मील-दो मील दूर अपनी जगह बदलते रहते हैं। जब तक उन्हें पता लगे और वे यहाँ निशाना साधें हम कहीं और हट जाते हैं।”

“इसका मतलब यह है कि आपको गोले से शहीद ही होना है डॉक्टर भारती तो यहाँ कल आइए !” सुबेद बोला।

“कल तक कौन इन्तजार करेगा डियर सुबेद ! गोला तो आज ही खाना है, गोला यहाँ नहीं आता तो चलो हम लोग ही रघुरामपुर चलें।” मैं बहुत ही पागलपन का प्रस्ताव रखता हूँ और लो, प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो जाता है।

लेकिन सूबेदार ने अंगद का पाँव टिका दिया, “न ! कतई नहीं। इस एरिया में कोई भरोसा नहीं। रघुरामपुर तो दूर, हमारे आब्जर्वेशन पोस्ट तक जाते-जाते कहाँ, किस खेत में, झाड़ में उनकी टुकड़ी मिल जाए, इसका कोई ठिकाना नहीं। खेत भी यहाँ धान के नहीं, 8-8 फुट के ऊँचे जूट के हैं। पता नहीं चलता 10 गज आगे कौन है।”

लेकिन हम भी अड़ गए हैं। जाना तो है ही। सूबेदार बंकर में जाकर अपने अफसर को खबर करते हैं। कुछ देर तक सवाल-जवाब चलता है, अन्त में बाहर आकर कहते हैं, “चलिए, एक हल निकल आया। कैप्टन साहब रघुरामपुर ही नहीं, हमारे कब्जे का सारा एरिया और उसके पार पाकिस्तानी छावनी तक उन्हें दिखा देंगे बाईनाकुलर से। उनकी भी जिद रह जाएगी !”

हम एक-दूसरे की ओर देखते हैं। सुबेद सुझाता है, “चलो, पहले वहाँ तक चलें, फिर वहाँ से आगे भी चलने का रास्ता निकालें।” हम उठ खड़े होते हैं। “अभी बैठिए साहब, पहले खूब इन्टेसिव पेट्रोलिंग कराकर देख लें कि रास्ता साफ है, तब जाइए।” और दो-दो, तीन-तीन की टुकड़ियाँ स्टेनगन लेकर जाँच-पड़ताल के लिए निकल पड़ती हैं।

शास्त्री जी और सुबेद सैनिकों से बातें कर रहे हैं, उनसे पूछ रहे हैं कि पश्चिम पाकिस्तान में क्या माहौल था, वे कैसे निकलकर आए। उनका घर-बार कहाँ है ? वे सब बताते हैं। पहले तो पाकिस्तान में किसी को पता ही नहीं था कि यहाँ क्या हो रहा है। फिर धीरे-धीरे कुछ खबर फैली, फिर वहाँ बड़े पैमाने पर पंजाबी छोकरो की भर्ती शुरू हुई रजाकार और मुजाहिद बनाने के लिए, और बंगाली रेजीमेण्टों को सताना शुरू हुआ। जरा-सी बात पर कोर्टमार्शल। फिर कुछ भनक पड़ी कि यहाँ क्या हो रहा है तो हम लोग छोड़कर आ गए लेकिन यहाँ आकर देखा कि जैसा जुल्म इन्होंने किया है उसका तो वहाँ अन्दाज भी नहीं था। और बताते-बताते उनमें से कुछ उदास हो जाते हैं, कुछ उत्तेजित।

कैसे छोटे-छोटे लड़के हैं ? कुछ की तो ट्रेनिंग भी पूरी नहीं हुई थी। एक मुस्काता हुआ घुँघराले बालोंवाला नेकर पहने लड़का। एक चश्मा लगाए साँवला लड़का। उसने बालकृष्ण से अपनी फोटो उतरवायी और मेरे पास आकर खड़ा हो गया। पूछा, “आप अपने पेपर में सब फोटो छापेंगे ?”

“हाँ।”

“तो एक बात मैं बोलता हूँ आप छाप देंगे ?”

“जरूर, बोलो क्या बोलते हो।”

“आप इण्डिया के जनरल से बोलो कि हम सब मुजीब बैटरी के जवान का आपको निवेदन है कि अगर इण्डिया पाकिस्तान का जंग हो तो प्लीज आप हमको परमीशन दें कि हम लाहौर के मोर्चे पर फाइट करें। बाँगला देश तो शाधीन होएगा ही, लेकिन हम ढाका का बदला जब तक लाहौर में नहीं लेंगे, हमें चैन नहीं मिलेगा। हम खान लोग को बताना चाहते हैं कि उसकी छाती पर टैंक चलाके उसका घर-बार बंबार्ड करके कैसा लगता है। हम लाहौर को मैप से मिटा देंगे। लाहौर का चिन्हारी भी रखेंगे नहीं। आप लिखेंगे न, विश्वास से बोलते हैं।”

उसके इस आकस्मिक विस्फोट से मैं स्तब्ध रह जाता हूँ। उसका साँवला चेहरा तमतमा उठा है और चश्मे के पार से उसकी आँखों से घृणा उबली पड़ रही है। मुझे

चुप देखकर वह कहता है, “इण्डिया हमें चान्स देगा तो ठीक, नहीं तो अगला बीस बरस में कोई कन्द्री से पाकिस्तान का जुद्ध होगा, तो हम उस कन्द्री की ओर से लाहौर पर हमला करेगा। लेकिन मारेगा जरूर, छोड़ेगा नहीं।”

मैं कुछ कहता नहीं, उसके कंधे पर हाथ रखे खड़ा रहता हूँ, अन्तरंग में कहीं उससे एक नई सम्पृक्तता महसूस करता हुआ। हाँ, यह व्यक्ति है, जो किसी भयानक अन्याय के प्रति उबलकर अन्यायी से चरम, अपने अन्तर्तम से घृणा कर सकता है। मैं जैसे चरम प्यार के प्रति सर झुकाता आया हूँ, वैसे ही कहीं इस प्रकार की परम घृणा को भी उतना ही गहरा आदर देता रहा हूँ। अगर इस सात्विक घृणा की अदम्य शक्ति पर मुझे आस्था न होती, तो शायद मैं अश्वत्थामा को इस प्रकार कृष्ण के सामने सर उठाकर स्थापित न कर पाता।

लेकिन फिर क्या यह युद्ध घृणा का है, नकारात्मक है, केवल बदले का है ? हाँ ? हाँ वह भी है और ‘प्यार’ का, ‘भालोबाशा’ का भी है। क्या कैथोलिक चिन्तकों ने यह नहीं कहा था कि “घृणा प्यार का सबसे श्रेष्ठ अभ्यास (अप्रेंटिसशिप) है। जो तहेदिल से घृणा कर सकता है वही तहेदिल से प्यार भी कर सकता है।” बहादुर योद्धा-मानस ही इसका सही एहसास कर सकता है। कायरों का प्रेम और अहिंसादर्शन छद्मदर्शन होता है। ‘नहि मानुषात् श्रेष्ठतरम् हि किञ्चित्’ की घोषणा करनेवाला युद्ध का सबसे बड़ा दार्शनिक, महाभारतकार व्यास इसे खूब अच्छी तरह समझता था। और निखिल विश्व-साहित्य में मानव-मन का इतना गहरा अध्येता कोई और हुआ हो, मैं नहीं जानता। अगर वे काव्य न लिखकर दर्शन लिखते, तो उनका पहला सूत्र होता, “अथातो युद्ध जिज्ञासा !”

वैसे युवा सैनिकों की इस उत्तेजना का तात्कालिक कारण बाद में मालूम हुआ, जब ले. कर्नल खालिद मुशरफ से अगले दिन भेंट हुई। वह बहादुर, कल्पनाशील, पढ़ा-लिखा विचारपूर्ण योद्धा, इस क्षेत्र का क्षेत्रीय-सेनाध्यक्ष है। कल्लेआम शुरू होने के बाद ही मुशरफ ने अपने पंजाबी अफसर और सिपाहियों को गिरफ्तार कर विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया और फिर वे और लेफ्टिनेण्ट जियाउर्रहमान मिलकर इस सारे पूर्वांचल में एक के बाद दूसरा युद्ध लड़ते रहे, युद्ध के अनुभव बताते हुए उन्होंने कहा, “बंगाली योद्धाओं के मनोबल को तोड़ने के लिए यहिया खाँ की सेनाओं ने कैसे-कैसे अमानुषिक काम किए हैं इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस क्षेत्र से हमें हटाने की कोशिश वे छह महीने से कर रहे हैं। कल्लेआम, गोलाबारी, आगजनी, नापाम बम, जब सबसे हार गए, तो उन्होंने एक निहायत वहशियाना हरकत की। मोर्चा एक नदी के किनारे जमा था। हमारे युवा सैनिक बहादुरी से डटे थे। जब पंजाबी सैनिक हर तरह से हार गए, तो हम लोगों ने देखा कि वे कस्बे से पच्चीस, तीस बंगाली औरतें पकड़ लाए हैं। उनके कपड़े उतारकर उन्हें आगे कर पीछे संगीनें ताने बढ़ते चले आ रहे हैं। हमारे छात्र-सैनिकों का खून खौल उठा, लेकिन अगर हम गोली चलाते हैं, तो वे अभागी औरतें मारी जाती हैं। फिर वे रुक गए और चुनौती देने लगे कि चलाओ गोली और

युद्ध यात्राएँ : 155

हमें चुप खड़ा देखकर हमारी आँखों के सामने उन्होंने उन अभागी औरतों को बेइज्जत करना शुरू किया। वीभत्स दृश्य था। बस लड़के थोड़ी देर बुत बने खड़े रहे, और फिर जैसे एकदम उन पर खून सवार हो गया। वे पागलों की तरह उन पर टूट पड़े। उस दिन हमारे बहुत बच्चे मारे गए, लेकिन पाकिस्तानी भी भून दिए गए। हमारी वह सबसे अच्छी टुकड़ी थी, अब उनमें से बहुत कम बचे हैं। लेकिन तब से इन्हें रह-रहकर याद आती है, और जब याद आती है वे घृणा से उबल पड़ते हैं।”

लेकिन घृणा भी स्वाति की बूँद की तरह होती है। जिस पात्र में पड़े, वैसा रूप लेती है। चूँकि इन स्वातन्त्र्य योद्धाओं का चरित्र और इनका लक्ष्य उन बर्बर पाकी सैनिकों से बुनियादी तौर पर अलग है, इसलिए अपनी सारी उत्तेजना के बावजूद ये मर्यादाएँ नहीं तोड़ते। कभी-कभी तो युद्ध के चरम तनाव भरे क्षणों में इन्होंने जिस चरित्र का परिचय दिया है, वह अद्भुत है। मुशर्रफ ने एक और घटना बताई। बोले, “आपको मालूम है। हमारी गणवाहिनी रेजीमेण्ट में एक बहुत छोटा लड़का है। मुश्किल से 18, 19 बरस का। लेकिन उसने ऐसा काम किया कि मैं जो यहाँ का सर्वोच्च अफसर हूँ, मैंने खड़े होकर उसे सैल्यूट दिया। वे लोग एक मोर्चे से लौटे, तो किसी ने रिपोर्ट दी कि उस लड़के की फायरिंग-रेंज में दो पाकिस्तानी सैनिक थे। उसने एक को मारा। दूसरा भी उसकी रेंज में था पर इसने राइफल नीची कर ली, उसे बचकर निकल जाने दिया। मुझे चिन्ता हुई। यह क्या बात है ? यह द्विविधा क्यों ? मैंने उसे बुलाकर पूछा। उसने बताया कि रिपोर्ट सही है। हुआ यह कि दो पाकिस्तानी सैनिक पेट्रोलिंग कर रहे थे। अचानक हमारा सामना हो गया। मैंने गोली चलाई। एक को गोली लगी और वह गिर पड़ा, दूसरा भागा। मेरी रेंज से बाहर हो गया। लेकिन मैंने देखा, वह फिर लौट रहा है। मैं छिप गया, मैंने फिर निशाना साधा। पर मैंने देखा वह पांस आकर पहलेवाले मृत सैनिक को उठाकर कन्धे पर लाद रहा है। मैंने बन्दूक साधी, पर फिर नीची कर ली। उस वक्त मुझे लगा कि वह तो सिर्फ अपने दोस्त का दोस्त है। उस समय दुश्मन नहीं। मैंने गोली नहीं चलाई। मैं कसूरवार हूँ। आप जो सजा दें कबूल है। मैंने उसकी ओर देखा। फिर खड़ा हुआ और उसे मैंने सैल्यूट दी। उससे कहा, आई एम प्राउड ऑफ यू। बात यह है कि बहादुर आदमी घृणा भी बहुत बड़े दिल से करता है, डरता नहीं। छोटा, टुच्चा आदमी अपनी जान को डरता है, इसलिए अमानुषिक क्रूरताएँ करता है। मैंने अपने बहादुर लड़कों से कहा कि यह हमारी लड़ाई, हमारी बाँगला देश की लड़ाई उन ‘वैल्यूज’ (मूल्यों) की लड़ाई है जो बहादुर, निडर सच्चे लोगों की ‘वैल्यूज’ होती हैं। इस पर कायम रहे हम, तो हमें क्रूर से क्रूर, अमानुषिक से अमानुषिक दुश्मन हरा नहीं सकेगा।”

लेकिन यह पृष्ठभूमि तो बाद में जानी। उस समय तो वह साँवला चेहरा था, और थी उसकी तमतमायी घृणा, चरम घृणा, सात्विक घृणा।

खबर आ गई थी कि चारों ओर जाँच कर ली गई है, पेट्रोलिंग और कड़ी कर दी गई है। हम लोग आगे जा सकते हैं। लेकिन फिर भी सूबेदार की सख्त हिदायतें

थीं—चारों ओर चौकत्रे होकर देखते रहें, हमारे आगे-पीछे चार मुक्ति सैनिक हिफाजत के लिए जाएंगे और जरा भी कहीं खटका हो तो तुरन्त ठहर जाएँ, गोली चले तो कीचड़ की परवाह किए बिना लेट जाएँ, ब्रश-फायर हो तो हमारी मुसीबत कि हमें यह भी नहीं मालूम कि ब्रश-फायर क्या होता है। अन्त में गठे बदन के साँवले से, नारंगी रंग की कैजुअल शर्ट पहने दूसरे सूबेदार सिराज हँसकर बोले, “ठहरिए, मैं खुद आप लोगों को ले चलूँगा” और हम चल दिए। कुछ दूर आगे एक मुक्ति सैनिक पेट्रोलिंग से लौट रहा था। उसकी चाइनीज राइफल उससे माँगकर उन्होंने कन्धे पर लटका ली, खेतों की मेड़ों और झाड़-झंखाड़ के बीच में से हम जा रहे थे। कीचड़ बेहद था। हर नये मोड़ पर हम ठहरे थे आगे थाह लेते थे, फिर बढ़ते थे, आगे थाह लेते थे, फिर बढ़ते थे। रह-रहकर मशीनगनों या राइफलों के छूटने की आवाज आती थी, कभी दाएँ से, कभी बाएँ से, कभी पीछे से। गोलाबारी जरूर बन्द थी। ‘ठहरिए ! सूबेदार सिराज की आवाज आयी, मैं खड़ा हो गया। ‘हिलिएगा मत ! वे पास आए, मेरे कन्धे पर से उन्होंने सँभालकर कोई चीज बन्दूक की नली से हटाकर फेंक दी, “देखिए, पेड़ पर से जोंक चू पड़ी थी। बहुत खबरदारी रखिएगा। ये जोंक यहाँ बहुत हैं, कीचड़ में भी, पेड़ों पर भी। आप सैडिल पहनकर क्यों आए। जंगल-बूट और जुराब के बिना अगली बार मत आइएगा ! इस कीचड़ में साँप भी बहुत होते हैं,” मैंने सन्तोष की साँस ली। जोंक थी, मैं तो जाने क्या समझा ! और फिर निगाह गई उन तमाम मुक्ति सैनिकों पर जिनके पास जुराबें तो दूर, चप्पलें तक न थीं। नंगे पाँव, नंगे बदन, लुंगी पहने, जोंकों, साँपों और पाकिस्तानियों से भरे क्षेत्र में पेट्रोलिंग कर रहे थे। जब बम्बई से चला था, तो दशहरे-दुर्गापूजा की धूमधाम शुरू हो गई थी और कलकत्ते में हर जगह जूता कम्पनियों के बड़े-बड़े इश्तहार थे ‘पूजा के लिए विशेष जूते।’ शो-केसों में रंग-बिरंगी डिजाइनों के जूतों की नुमायशें थीं। काश, कोई एक बड़ा-सा कोलाज बनाता। ये इश्तहार, ये शो-केस और उन पर चिपके कीचड़ सने, बिवाई-फटे, पेट्रोलिंग करते ये हजार-हजार सैनिक पैर और बीच-बीच में नागफनी, कीड़े, जोंक और साँप।

खेत खत्म हो गए थे और अब झाड़ियों भरे टीलों की कतारें थीं। एक सैनिक आगे हो गया। ‘जिधर से वह चले, ठीक उसी जगह पाँव पर पाँव रखते चलिए। जरा इधर-उधर हुए कि यहाँ कमर-कमर तक दलदल है’। इस समय तो दिन है, रात को ये कैसे इस दलदल में युद्ध करते होंगे ?

अब एक बड़ा कड़ा इम्तहान था। दो ऊँचे टीलों के बीच एक दर्रा था। मुश्किल से तीन-चार हाथ चौड़ा। दर्रे के बीच जहाँ कभी रास्ता रहा होगा, वहाँ कई हाथ गहरी काली कीचड़ भरी थी। इतनी गीली थी वह कीचड़ कि उसमें से रह-रहकर बुलबुले फूट रहे थे। हम इधर ही ठहर गए। सूबेदार सिराज ने खुद कीचड़ के ऊपर से दर्रा पार करने का ढंग बताया। दोनों ओर टीलों की ढलान पर फिसलन थी। पर उसी पर एक पाँव जमाकर तिरछे होकर चलना था। दोनों ओर उगे झाड़ों और दरख्तों की एक-एक डाली या जड़ पकड़कर पहले आजमा लेना था कि वह उखड़ेगी तो नहीं, तब

डाली के उल्टी ओर वाले टीले पर एक पाँव जमाना था, फिर दूसरी डाली, फिर दूसरा पाँव, फिर तीसरी डाली...और अन्त में दर्रा समाप्त होने पर बाहर निकलने के पहले एक बार सावधानी से चारों ओर देख लेना था कि उस ओर टीले की आड़ में दुश्मन मशीनगन लिये ताक लगाए तो नहीं खड़ा है।

“कितनी खतरनाक है यह कीचड़”—किसी ने कहा, तो सिराज बोले, “यह हमारा बड़ा मददगार है। पाकिस्तान को तो सारी दुनिया हथियार दे रही है, हमको कोई कुछ नहीं देता, तो चलो, अल्लाह ने बाँगला देश को यह कीचड़ दे दिया। आपको नहीं मालूम कि पठान हो या बलूची हो या पंजाबी खान सिपाही हो, इस कीचड़ से उनका प्राण काँपता है। इसीलिए कैन्टूनमेण्ट से निकलता नहीं। निकला कि कीचड़ में फँसा कि फिर हमारा 17 बरस का नया छोकरा भी साफ ‘एम’ (निशाना) लगाता है।”

फिर यह काला कीचड़ तो खास तोहफा है वहाँ का। एक पास से गुजरते देहाती ने बताया कि “युद्ध नहीं होता तो रघुरामपुर तक से लोग आता है यह कीचड़ ले जाने। माँ दुर्गा का प्रतिमा इससे बेशी अच्छा बनाता है।”

इधर कोई सड़क, कोई पगडण्डी, कुछ नहीं था फिर भी ग्रामीणों की आवाजाही जारी थी। मालूम हुआ कि पिछले छह महीने से तुमुल युद्ध हो रहा है। इस मुक्त क्षेत्र पर पाकिस्तानियों ने बार-बार आक्रमण किया है लेकिन हर बार मुँह की खायी है और अब खीज में वे इसके आस-पास अपने अधिकृत क्षेत्रों में गाँव के गाँव जला रहे हैं। उधर दाईं ओर एक बड़ा नगर था, जिसका नाम ही ‘कस्बा’ है। वह उन्हीं के अधिकार में था लेकिन फिर भी कुछ ही दिनों पहले उस पर उन्होंने तोपों से हमला किया और सड़कों और गलियों में कत्लेआम किया। करीब 1000 लोग मारे गये। हजारों लोग वहाँ से भागे हैं। वे, और इन जलते गाँवों के लोग भागते-छिपते भी बयाबान जंगलों में मिल जाते हैं, 25000 तो केवल कहीं त्रिपुरा में भागकर आये हैं और वे सब मुसलमान हैं। एक-एक।

“यह देखिए, यह लान पर गद्दा देख रहे हैं। तोप का गोला सुबह यहाँ गिरा था। अभी ताजा गद्दा है यह।”

“और वह क्या है ?” मैंने पूछा। उधर एक ऊँची-सी जगह पर एक अजीब-सी झोंपड़ी बनी थी। पास ही एक दूटा हुआ फूस का छप्पर पड़ा था।

“यह पाकिस्तानी फौज की चौकी थी। मुक्ति फौज की पहली जीत के बाद जब पाकिस्तान ने जवाबी हमला किया तो हम लोगों को बहुत पीछे हटना पड़ा। यह जो दर्रा पार करके हम लोग आये हैं, उसके उस ओर मुक्ति फौज थी और यहाँ सब पाकिस्तानी फौज पड़ी हुई थी। उसके बाद हम लोगों ने हमले किये। कई हफ्ते लड़ाई चलती रही लेकिन इस चौकी पर पाकिस्तानी जमे रहे। लेकिन फिर एक रात को हम लोगों ने बहुत जबर्दस्त हमला किया और उस दिन यहाँ से उनको उखाड़ फेंका।

“अब वे कहाँ हैं ?”

“अब वे यहाँ से मीलों पीछे चले गये हैं। अब यह सामने आप टीला देख रहे हैं। इसके ऊपर हमारा आब्जर्वेशन पोस्ट बंकर है। वहाँ से आप कैप्टन की दूरबीन से देखिएगा। आपको आगे का वह सारा एरिया दिखेगा जहाँ हमारा कब्जा है। और वहाँ से आपको तीनों तरफों का वह हिस्सा भी दूर तक दिखेगा जहाँ पाकिस्तानी फौजें हैं। इधर आइए, सीढ़ियों की ओर !”

टीले पर कच्ची मिट्टी काट-काटकर सीढ़ियाँ बनी थी। दोनों ओर घनी झाड़ियाँ। बड़ा रहस्यमय लगता था वह रास्ता। ऊपर टीले को सपाट कर कुछ जूट के खेत थे। काफी ऊँचे जूट के हरे पौधे लहरा रहे थे। जूट के खेतों के उस ओर टीले का शिखर समतल था जहाँ से खड़े होकर चारों ओर का 15 मील दूर तक का सारा क्षेत्र दिखाई दे रहा था। नीचे थे हरे-भरे खेत, और तीनों ओर क्षितिज के पास हरे पेड़ों का घेरा। उन हरे पेड़ों के पार दो जगहों से धुआँ उठ रहा था। मैले बादलों की पृष्ठभूमि में पहले तो धुआँ नहीं दिखता था। पर धीरे-धीरे साफ दिखने लग गया।

“ये उन्होंने गाँव जला रखे हैं। इधरवाला गाँव काफी बड़ा मालूम होता है। कल से जल रहा है। यह दूसरा गाँव उन्होंने आज जलाया है कुछ देर पहले। सुबह इधर आये थे तो यह धुआँ नहीं था।”

प्रभु इस रस को,
नये रस को क्या कहते हैं ?

मटमैला धुआँ सफेद लेकिन मैले बादलों की पृष्ठभूमि में धीरे-धीरे उठ रहा था। मैं यहाँ जूट के खेत के किनारे खड़ा हूँ। हरे धान के पूलों में एक खास सौंधी ताजी हरी महक होती है। उस महक से लदी हवा धीरे चल रही है, मगर ठण्डी है, खुशनुमा है। नीचे मीलों धान के खेत हैं जिन पर कहीं-कहीं धूप है। वहाँ वे सुनहरे हो गये हैं। और उनके पार है अर्द्ध-वृत्ताकार नारियल, सुपारी, आम की गहरी हरी कुंज रेखा। द्विजेंद्रलाल राय ने कभी लिखा था इसी दृश्य के लिए :

“कोयाय एमन हरित छेत्र, आकाश तले मेशे
एमन धानेर ऊपर ढेऊ खेले जाए, बाताश काहार देशे”

(कहाँ है ऐसा हरा-भरा क्षेत्र, क्षितिज पर्यंत आकाश से मिलता हुआ। धान के खेतों पर खेलती लहरें, ऐसा बातास-ऐसी हवा क्या किसी और देश में है ?)

पर क्या उन्हें मालूम था कि उस बातास में उड़ते बालों को सँभालते हुए जब मैं यहाँ खड़ा होकर उनकी यह पंक्तियाँ याद करूँगा तब उस हरित क्षेत्र के पार आकाश में जलते हुए गाँवों का धुआँ धीरे-धीरे उठ रहा होगा और बातास में खुन्की की लहर के साथ मिली होगी बाँगला देश के हजारों गाँवों के जलने की पीड़ा।

“देखिए, सँभालकर, आपके पीछे खाई है !” एक मुक्ति सैनिक ने चेतावनी दी। मैंने मुड़कर देखा। एक टेढ़ी-मेढ़ी फौजी ट्रेंच (खाई) पूरे टीले के शिखर पर फैली हुई थी। उसके सुदूर बाएँ सिरे पर था एक ऊपर से छाया हुआ बंकर। यही उनका आब्जर्वेशन पोस्ट है, और तब मैंने देखा सावधानी से झाड़ियों में से छिपाया हुआ टेलीफोन का इकहरा तार जो इस बंकर से, दूर तोपखाने के बंकर तक जाता है। जहाँ से हम आये हैं। कैप्टन बंकर में है। टेलीफोन पर कुछ जरूरी सन्देश आ रहे हैं। करीम

भाई और शास्त्री जी बंकर के पास खड़े गोलन्दाजी की टेकनीक समझ रहे हैं, बालकृष्ण कैमरे के साथ व्यस्त है और मैं और सुबेद अली ट्रेंच की बनावट समझने की कोशिश कर रहे हैं। लहरियादार तनावट की इस 200 गज लम्बी ट्रेंच में 100 से अधिक सैनिक बैठकर लड़ाई कर सकते हैं। जब आमने-सामने मुकाबला हो तब इन खाइयों का सामरिक महत्व बढ़ जाता है। युद्ध केवल एक भावना, एक उत्साह, एक माहौल ही नहीं है, युद्ध एक विकसित टेकनीक भी है जिसके लिए प्रशिक्षण जरूरी है। ले. कर्नल खालिद मुशर्रफ ने बाद में इन्हीं खाइयों का हवाला देते हुए बताया था कि किस तरह शुरू-शुरू में प्रशिक्षण और अनुशासन के अभाव में उनके कितने ही बहादुर उस्ताही छात्र-मुक्ति फौजी मारे गये थे। वे सभी राइफल चलाना सीख चुके थे। लेकिन बाकी प्रशिक्षण का समय ही नहीं था। उनसे कहा गया था कि वे इन खाइयों में छिपकर निशाना साधकर बैठे रहें। पाकिस्तानी सेना अगर बगल से गुजर रही हो, तो भी चुपचाप बैठे रहें। जब वे थोड़ा आगे निकल जाएँ लेकिन फायरिंग रेंज में हों, तब अकस्मात, उन पर ट्रेंच से गोलियाँ बरसायी जाएँ, उनमें से बहुत से मारे जाएँगे। कुछ भागेंगे, कुछ मुड़कर गोलियों का जवाब देंगे। उस समय उन थोड़े से लोगों को मारना आसान होगा। लेकिन हुआ यह कि ज्यों ही पाकिस्तानी सैनिक आए, उनको देखते ही छात्रों का खून खौल उठा और वे 'जय बाँगला' का उद्घोष करते हुए गोली चलाने लगे और उसके बाद उछलकर बाहर आ गए। उनका बाहर आना था कि प्रशिक्षित पाकिस्तानियों ने उन्हें गोलियों से भून डाला। कई बार ऐसी ट्रेजेडी हुई, इसीलिए अब 2, 3 महीने का प्रशिक्षण जरूरी हो गया है। कैम्पों और शस्त्रों की कमी के कारण वे पहले के मुकाबले में कम संख्या में मुक्ति सैनिकों को प्रति माह तैयार कर पाते हैं लेकिन अब नये तैयार होने वाले उनके मुक्ति सैनिक अपनी मारक शक्ति में बेजोड़ हैं। औसतन एक मुक्ति-सैनिक के एवज में अब 40 पाकिस्तानी सैनिक मारे जाते हैं।

ट्रेंच ने जहाँ-जहाँ मोड़ लिया है वहाँ-वहाँ अधिक चौड़ी हो गई है और हर चौड़ान के बीचोबीच एक गोल कच्चा चबूतरा बना हुआ है। चबूतरों के केन्द्र बिन्दु पर एक-एक मोटा खोखला हरा बाँस गड़ा है। इतने ताजे हैं वे बाँस कि शायद आसपास की बंसवटों से काटकर लाये गये हैं। निस्सन्देह इनमें बाँगला देश का ध्वज फहराया जाता होगा और जब टीले के शिखर से पाँच-छह ध्वज लहराते होंगे तो कितना खूबसूरत लगता होगा।

जब मैंने अपना यह खयाल सूबेदार सिराज को बताया तो वे हँस पड़े, "आपके हाथ में कमाण्ड हो तो हम सब बेमौत मारे जाएँ, इसमें शक नहीं। भाईजान, यहाँ झण्डे फहराकर हम क्या दुश्मन के हवाई जहाजों को दावत देंगे कि आइए, हम पर बम बरसाइए, यही है हमारी ट्रेंच" और तब मालूम हुआ कि ये बाँस किसी और मसलहत से हैं यहाँ पर !

कुछ हफ्तों पहले हम लोगों ने अखबारों में पढ़ा था कि निरीह-निहत्थे लोगों पर पाकिस्तानी हवाई जहाजों ने मशीनगनों से गोलियाँ बरसायी हैं, मुक्तिवाहिनी के

पास एक भी एंटी-एयरक्राफ्ट गन नहीं है फिर भी उन्होंने असाधारण शौर्य से केवल मशीनगनों से इन पर निशान साधा और दो-एक विमान गिरा दिये। सहसा विश्वास नहीं हुआ था। कुछ लोग बोले, “यह सब खामखाह की गप्प है।” लेकिन नहीं, यह कैसे सम्भव होता है, इसकी प्रक्रिया हमें समझायी जा रही है। “यह ठीक है कि सेबरजेटों के मुकाबले में हमारे पास न रडार हैं न एंटी-एयर क्राफ्ट गन। कोई हमें कुछ न दे पर हमारी बँगला भूमि ने ये हरे बाँस उपजाने में कंजूसी नहीं की है। मजबूरी में सेबरजेट के मुकाबले में हमें इन बाँसों का इस्तेमाल करना पड़ा है।” मेरी आँखें अचरज से चौड़ा जाती हैं, यकीन नहीं होता। “जी हाँ ये बाँस। आप देखते हैं यह बाँस बहुत मजबूत है और पोला है। और बहुत गहरा गड़ा हुआ है। इसी बाँस में से जहाँ कल्ले फूटते हैं, हमने एक टुकड़ा काट लिया है जिसमें तीन सींग हैं जैसे गुलेल में होते हैं। नीचेवाला सींग इस बाँस के छेद में डाल देते हैं। अब ऊपर दो सींग निकले हुए हैं। यह बन गया मशीनगन रखने का आधार। अब बाँस के छेद में पड़े सींग पर हम इसे चारों ओर घुमा सकते हैं और इस पर रखी मशीनगन का मुँह भी आसानी से चारों ओर घूमता जाता है। हवाई जहाज जिधर भी घूमे मशीनगन को इस पर आसानी से घुमाते जाते हैं और निशाना साधकर गोली चलाते हैं। अब आप पूछेंगे कि साधारण गोली से हवाई जहाज कैसे गिर पाता है। उसका भी एक राज है। बममार जहाज हों या फाइटर प्लेन, उन सबों का पेटा बहुत नाजुक होता है। और वहीं पेट्रोल टंकी भी होती है। आप देखते हैं कि यह ट्रेंच ऐसी जगह पर है जो आस-पास की जमीन से बहुत ऊँची है। गाँवों पर गोलियाँ बरसाने के लिए हवाई जहाज को झपट्टा मारकर काफी नीचे उतरना पड़ता है। चक्कर लगाता हुआ जब वह गोलियों से गाँवों को भूनता है तब हम कुछ नहीं कर सकते। लेकिन जब वह गोलियाँ चला चुकने के बाद मुँह ऊँचा कर और दुम नीचे कर ऊपर उठने की कोशिश करता है उस वक्त उसका पेटा सामने पड़ता है और तभी हम उस पर निशाना साधकर मशीनगन चला देते हैं। उस समय अगर हमारा निशान ठीक बैठ गया तो दुनिया की कोई ताकत उस विमान को बचा नहीं सकती। गोलियाँ उसे छेद देती हैं, पेट्रोल की टंकी फटकर जलने लगती है और पूरा विमान जलता हुआ मुँह के बल चक्कर काटता हुआ नीचे गिर पड़ता है।”

अत्याचारी आक्रमणकारियों को मुँहतोड़ जवाब देने के लिए कृतसंकल्प इन साधनहीन, बहादुरों की बेबसी पर आँखें नम हो जाती हैं। और उनका अदम्य साहस देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अपने गाँव के सिवान पर उगनेवाले हरे बाँस के सहारे ये कितनी भयानक चुनौती स्वीकार कर बैठे हैं। आखिर मूलतः ये साधारण किसान ही तो हैं। अपनी धरती, अपने खेत, अपने हल-बैल, अपनी फसलों, अपने घरबार और अपनी वनस्पति से जुड़े हुए। अगर इन्होंने योद्धा का बानक न धारण किया होता तो इसी बाँस को काटकर ये अपनी झोंपड़ी की दीवारें और छप्पर का ठाठ बना रहे होते,

इसी को छीलकर छिलकों से बुन-बुनकर फर्श के लिए चटाइयाँ बना रहे होते, कपड़े टाँगने की अलगनी बना रहे होते, अनाज रखने के लिए टोकरियाँ और कुठले बना रहे होते, आने जाने के लिए नालों पर टिकाकर बाँसों के पुल बना रहे होते और दिन ढले गोधूलि वेला में दिनभर की मेहनत भुलाने के लिए पोखर किनारे बैठकर बजाने के लिए हरे बाँस की बाँसुरी बना रहे होते और उसमें फूँक रहे होते गाँव की किसी किशोरी का नाम। इनके इस सहज सौन्दर्य पगे जीवन से अनुप्राणित होकर उसे कृष्ण की लीला में ढालकर कोई चैतन्य विभोर होकर नाच उठा होता, कोई ब्रजबूली का बँगला कवि जगन्नाथ दास गा उठा होता :

यमुना के तीरे धीरे चलु माधव, मन्द मधुर वेणु बाजोइ रे,
इन्दिर नयनि बरज-वधु कामिनी, सदन तेजिया वन घाओई रे !

(यमुना के तीर पर मन्द मधुर वंशी बजाते हुए माधव धीरे-धीरे चले आ रहे हैं, वंशी से मुग्ध होकर, इन्दीवर नयनी, कामिनी, ब्रजवधुएँ घर छोड़-छोड़कर जंगल में भागती आ रही हैं।)

और इस हरे बाँस की बाँसुरी के नशे में किसे याद रहता कौन हिन्दू हैं, कौन मुसलमान ? क्या इसी बंगाल के शासक नवाब हुसेनशाह नहीं थे जो अपने दरबार के कवि यशोराज खान से इसी बाँसुरी के पद सुनते थे :

एक पयोधर चंदन लेपित, आरे सहजई गोर
हिम धराधर कनक मूधर, कोले मिलल जोर
माधव तुया दरसन काजे—

हमारे अनेक सतही विचारक समझ नहीं पाते कि कैसे युग-युग से यही पेस्टोरल रोमांस मुक्ति की क्रान्ति में बदलता आया है। वे यह नहीं समझ पाते कि मनुष्य मन की वह कौन-सी रहस्यमयी प्रक्रिया है जो इसी सौन्दर्य-बोध को धधकती क्रान्ति-चेतना में बदल देती है। वे यह नहीं समझ पाते कि इतिहास का वह कौन-सा क्षण होता है जब इसी बाँसुरी के लिए कच्चा हरा बाँस काटनेवाले उसे ट्रेंच में गाड़कर असत्य के खिलाफ युद्ध का आधारस्तम्भ बना देते हैं। और जब गाँव जलाये जाते हैं, गोलियाँ बरसायी जाती हैं, और लुटे सदन तजकर वन की ओर धानेवाली औरतों पर विदेशी सैनिक सामूहिक बलात्कार करते हैं और दुनिया के तमाम नपुंसक प्रजातन्त्रवादी और मार्क्सवादी पाखण्डी खामोश खड़े देखते रहते हैं तब उन ग्रामीण क्रान्तिकारियों के सहारे के लिए यहिया खा के खिलाफ उनके पूर्वज नवाब हुसेन शाह के कवि यशोराज खान ही काम आते हैं, अपने नये रूप में। तब उनका नाम होता है रवीन्द्रनाथ टैगोर जो उसी वंशी की याद दिलाकर लिखते हैं :

‘तोमार आकाश, तोमार बाताश, आमार प्राणे बाजाये बाँशी, सोनार बाँगला आमी तोमाय भालोवाशी।’ और यह उनका राष्ट्रगीत बन जाता है और प्राणों में बजनेवाली

वह वंशी ट्रेणों में गाड़ दी जाती है मशीनगनों चलाने के लिए ! इस रस को कौन जान सकता है, वही जो हर हृदय और हर धरती में बिंधी कविता और क्रान्ति का असली रिश्ता जानता है :

सोई इह रस जान

पंच गोड़ेश्वर भोगपुरंदर, भणें यशोराज खान !

“टु द ट्रेचेज प्लीज !” कैप्टन की तेज आवाज बंकर में से आती है। फौरन खाई में ! नहीं, खड़े नहीं, खाई में बैठ जाइए। मालूम होता है कि शेलिंग शुरू होने जा रही है। मुझे बंकर में बुला लिया जाता है। कच्ची मिट्टी में काटकर एक लम्बा चबूतरा बना है जिसके सिरहाने-पैताने मिट्टी में ही काटकर दो बड़े-बड़े आले बना लिए गये हैं। आलों में कैप्टन की तमाम फौजी चीजें रखी हैं, कागजात, अस्त्र-शस्त्र, कपड़े चबूतरे पर बाँस की चटाई और चटाई पर एक दरी तकिया भी मिट्टी काटकर बना हुआ है। उसी के पास टेलीफोन है। सुबेद, बालकृष्ण, शास्त्री जी सभी आकर जमे हैं। सामने पारदर्शी प्लास्टिक में लिपटा उस क्षेत्र का एक बड़ा-सा फौजी नक्शा फैला है। सामने लम्बा आयताकार झरोखा है जिस पर कैप्टन की दूरबीन और स्टेनगन रखी है। बारिश का पानी तो बंकर में नहीं आ सकता लेकिन चारों ओर की नमी से बंकर इस कदर तर है कि दरी भीगी हुई है। निचोड़िए तो पानी चू पड़े और इसी बंकर में, इसी दरी पर कैप्टन को सारा दिन, सारी रात गुजारने पड़ते हैं।

यहाँ भी महानन्दा तट-शिविरवाली बंदिश है। बंकर के अन्दर का या कैप्टन का चित्र लेने की सख्त मुमानियत। कैप्टन का नाम भी नहीं; उनका परिवार भी पाकिस्तान में छूट गया है। हाँ, बंकर के लम्बे आयताकार झरोखे से नीचे फैले सारे प्रदेश का चित्र ले सकते हैं। नीचे पेड़ों के झुरमुट में एक गाँव-सा नजर आता है, उसके बाद खेत—कुछ जूट के, कुछ धान के, उसके बाद सफेद-सी पक्की इमारत, मालूम होता है वह एक उजड़ा रेलवे स्टेशन है। और दूरबीन से बहुत गौर से देखिए तो स्टेशन के सामने एक पतली रेखा, वह है रेलवे लाइन ओर दाईं ओर वह एक लम्बा पतला खम्भा है। हाँ, वह है बाँगला देश का ध्वज जो इस बात का सबूत है कि रेलवे लाइन पर मुक्तिफौज का कब्जा है। इसी ध्वज के ओर बाएँ तीन मील तक बाँगला देश क्षेत्र है। उसके बाद वह जो हरा कुंज-सा आप देखते हैं, उसके पार पाकिस्तानी सेना है। यहाँ चाइनीज लाइट मशीनगन की बहुत बड़ी ब्रिगेड पाकिस्तानियों ने रख छोड़ी है और इस क्षेत्र में शुरू में कुछ चीनी प्रशिक्षक भी दीख पड़े थे। अब नहीं दीखते। मुठभेड़ लगभग रोज होती रहती है। अभी-अभी नीचे से टेलीफोन आया था कि उधर मुठभेड़ हुई है। और दो पाकिस्तानी सैनिक मारे गये हैं। अमूमन मुठभेड़ के बाद ही पाकिस्तानी तोपें गोला फेंकने लगती हैं और यह जगह ऊँची और सामने होने के कारण उनके गोलों का सहज निशाना बनती है। वही खबर पाने के बाद हम लोगों को कैप्टन ने हुक्म दिया था कि हम खाइयों में बैठ जाएँ, किसी भी क्षण गोला आ सकता है।

वास्तव में पाकिस्तानियों ने गोले फेंकने शुरू कर दिये थे, लेकिन इधर नहीं, उस ओर जिधर मुठभेड़ हुई थी। हवा का रुख उल्टा था अतः आवाज बहुत मद्धिम आती थी।

तो क्या मुक्तिवाहिनी का कब्जा इस रेलवे लाइन तक ही है ? नहीं, इस टीले के बिलकुल नीचे झुरमुट में छिपा है गाँव रघुरामपुर। वहीं इस क्षेत्र की स्थल सेना के कैप्टन का हेडक्वार्टर है। उसके बाद खेत, फिर रेलवे लाइन और फिर अन्तिम चौकी है। उसके बाद काफी दूर पर एक नदी है। उस नदी के इस पार मुक्ति फौज और उस पार पाकिस्तानी टुकड़ियाँ हैं। नदी का नाम था अगर मैं भूलता नहीं तो स्यालदा-स्यालदा नदी का युद्ध इस दौर का सबसे भयानक युद्ध माना जाता है और उस युद्ध में ले. कर्नल खालिद मुशर्रफ के अपूर्व रण कौशल की चर्चा इस सारे क्षेत्र में व्याप्त है।

इस युद्ध में कुछ ऐसा पेंच आ पड़ा था कि दोनों पक्ष जान की बाजी लगाकर अड़ गये थे। वास्तव में यह युद्ध इस रेलवे लाइन के लिए था। यह रेलवे लाइन कोई साधारण रेलवे लाइन नहीं है। यह चटगाँव से आती है और ढाका को जाती है। चटगाँव के बन्दरगाह पर उतरनेवाले सारे टैंक, बख्तरबन्द गाड़ियाँ, जीपें, फौजी सामान सेनाएँ, हवाई जहाजों के कल-पुर्जे सब इसी लाइन से ढाका जाते थे। जब खालिद मुशर्रफ की सेनाओं ने इस लाइन को तोड़ डाला और इस क्षेत्र पर कब्जा कर लिया, तब टिक्का खाँ ने चुनौती दी थी कि चार दिन के अन्दर इस लाइन को चालू कर देंगे। उन्होंने अपनी सारी ताकत लगा दी लेकिन मुक्तिवाहिनी ने भी यहाँ पर जमकर मोर्चा लिया, चार दिन के आज छह महीने हो गये, लेकिन इस लाइन पर पाकिस्तानी ट्रेन नहीं चल पाई। बाँगला देश का झण्डा वहाँ शान से फहरा रहा है। पाकिस्तानी अखबारों में उन्होंने यह झूठ फैलाना चाहा कि चटगाँव ढाका लाइन पर ट्रेन चलने लगी हैं। लेकिन यह कैसा बेसर-पैर का झूठ है यह हम देख रहे हैं।

कैप्टन दूरबीन से ये जगहें दिखाकर फिर पास रखे नक्शे पर उनकी स्थितियाँ बताते जाते हैं। लेकिन हम तो तुले हैं कि नीचे उतरकर मीलों दूर इन जगहों को खुद जाकर देखेंगे। कैप्टन जवान है और हमारे आग्रह पर पसीज जाते हैं। तय यह होता है कि सूबेदार सिराज हमें नीचे रघुरामपुर तक ले जाएँगे, दूसरे कैप्टन के हेडक्वार्टर तक। वहाँ अगर वे अनुमति देंगे तो रेलवे लाइन तक लेकिन उसके उस पार, बिलकुल नहीं, कदापि नहीं। “लेकिन ठहरिए ! हम जवाबी शेलिंग शुरू करने जा रहे हैं। उसके बाद जाइएगा।”

यानी अब कैप्टन यहाँ से हुक्म देंगे और वहाँ से मुजीब बैटरी की तोपें गरज उठेंगी। पहले कैप्टन दूरबीन एडजस्ट करके हमारे हाथों में देते हैं और हमें उस लक्ष्य का अता-पता बताते हैं जहाँ वे गोलाबारी करेंगे। “स्टेशन की इमारत के बहुत दाएँ हटकर एक बड़ा-सा अकेला नारियल का पेड़ है, दीख पड़ा आपको ? अब उसकी सीध में बहुत पीछे झुरमुट में एक सफेद-सी इमारत दीख रही है ? वह स्कूल की इमारत

है। खाली पड़ी है। पहले उसमें पाकिस्तानी छावनी थी। अब वहाँ से पीछे हट गये थे वे लोग। उस इमारत के पीछे बाँस का झुरमुट। उसके बाएँ इधर पाकिस्तानी बंकर है और खेमे हैं। उन्हीं बंकरों और खेमों पर हम गोले फेंकने जा रहे हैं। उधर देखिएगा। और अब वे टेलीफोन पर पहले उन्हें सावधान करते हैं। फिर आदेश देते हैं; इतने डिग्री दायें, फिर इतने डिग्री पीछे फिर इतने डिग्री बगल में, निशाना साधिए। फायर ! और हम टेलीफोन पर उन्हीं आदेशों को मुजीब बैटरी के बंकर पर जोर से दोहराया जाता हुआ सुनते हैं और फिर जोर से वहाँ सूबेदार हुक्म देते हैं, “फायर !” और आवाज होती है ‘गुड़ गुड़ गुड़म !’ फिर दो सेकण्ड सन्नाटा। एक तेज सीटी की-सी आवाज। यानी उड़ता हुआ गोला ठीक हमारे बंकर के ऊपर से गुजर रहा है। लो, वह जोर से वहाँ बिस्फोट हुआ और ऊँचा-धुएँ का बादल वहाँ फट पड़ा, और दो सेकण्ड बाद आवाज आयी—‘धड़ाम !’ वह जगह इतनी दूर है कि वहाँ से आवाज आते कुछ देर लग जाती है।

बंकर पर से गुजरते गोले की सीटी, विस्फोट का धुआँ और गोला फटने की आवाजें हमें रोमांचित ही नहीं करतीं, हम पर जैसे एक युद्ध का नशा-सा छा जाता है। कैप्टन मुस्कराकर हमें देखते हैं और फिर टेलीफोन पर आदेश देते हैं, इस बार लक्ष्य थोड़ा बायें खिसका देते हैं। फिर तोप का छूटना, उड़ते गोले की सीटी, विस्फोट का धुआँ और अन्त में गोला फूटने की आवाज। इस बंकर में बैठना जिसके ऊपर से गोले गुजर रहे हों और हर क्षण की यह आशंका कि कब जवाबी गोले इस बंकर पर आ गिरें और हमारी हड्डी-पसली का पता न चले, आह ! क्या जिया है हमने उन क्षणों में ? ‘की पूछेसि अनुभव मोय !’

एक-एक कर छह बार तोपें दगती हैं और एक-दो गोलों के बाद तो हमारी हिम्मत इतनी खुल जाती है कि निशानों के बारे में हम फरमाइश करने की जुर्रत करने लगते हैं। हम पछता रहे हैं कि टेपेरेकार्ड और टेलीलेंस कैमरा लाये होते तो आज इन गोलों की आवाज और पाकिस्तानी छावनियों में इनका विस्फोट हमेशा की यादगार के रूप में सुरक्षित कर लेते। लेकिन मन पर जो रेकार्ड हो गया और चित्र खिंच चुका है वह क्या कभी मिट सकेगा ?

कैप्टन हमें आधे घण्टे तक रोके रहकर बातों में लगाये रहते हैं और जब उन्हें यकीन हो जाता है कि अब जवाबी गोलाबारी नहीं होगी तभी बंकर के बाहर निकलने देते हैं। बाहर निकलकर कमर सीधी कर मैं सुबेद अली से कहता हूँ, “देखिए, उनके क्षेत्र में करीम भाई और आप, उनके एम. एन. ए. और एम. पी. ए. आए तो छह तोपों की सलामी उन्होंने दी आपको !”

“नहीं जनाब, यह सलामी तो हमारे सम्माननीय राजकीय अतिथियों की है। लेकिन अभी यह सिर्फ 6 तोपों की है। अगले महीने आना तो 11 तोपों की सलामी दिलवायेंगे। तब आपका स्टेटस बढ़वा देंगे।”

और अब कप्तान से विदा लेकर हम चल पड़ते हैं। सूबेदार सिराज आगे-आगे

हैं। बायें नीचे से उतरकर रास्ता रघुरामपुर को जाता है। रास्ते के नाम पर पगडण्डी भी नहीं। सिर्फ झाड़-झंखाड़ ढँकी ढलानें और गड़ढे।

धान के खेत में नीचे दो-तीन लोग आते-जाते दीख पड़ते हैं। “कौन हैं ये ? आपके सैनिक ?” “नहीं।” गौर से देखकर सिराज बताते हैं, “ये सीवीलियन हैं। गाँववाले। धान निरा रहे हैं। गाँववाले ? यानी इधर से जाते और उधर से आते गोलों की छाया में रेल लाइन के किनारे के खेतों में वे लोग शान्ति से अपनी खेती भी कर रहे हैं। हाँ, मुक्तिवाहिनी ने अपील की है कि मुक्तक्षेत्र में धान की खेती जारी रहे ताकि हमारी सेना को रसद की कमी न रहे। अतः जो गाँव छोड़कर चले भी गये हैं वे दिन में खेती करने आ जाते हैं।” सलाम है इस बहादुर कौम को ! अपनी-अपनी जगह पर देश का हर नागरिक युद्ध में शरीक है। कुछ के हाथ में मशीनगनों और तोपें हैं, कुछ के हाथ में हल और धान के पूले। आजादी की लड़ाई इसे कहते हैं !

कितना बेरौनक रहा होगा इसके मुकाबले राजभवन की कालीनों पर वर्दी पहनकर माउण्टबेटन का आना और वहशियाना दंगों की अमंगल छाया में सत्ता की भीख हमारी फैली हथेलियों पर रख जाना। मेरी बात पर न सही आप अंग्रेज लेखक लियोनार्ड मौसले की बात का तो यकीन करेंगे, उसने लिखा था, “अगस्त 1947 से लेकर नौ महीने बाद तक लगभग एक करोड़ साठ लाख हिन्दुओं, सिखों और मुसलमानों को घरबार छोड़कर खून की प्यासी भीड़ से बचने के लिए भागना पड़ा। उसी अरसे में छह लाख लोग मारे गये। 1947 भारतवर्ष के चीलों और गीधों के लिए बड़ा ही शानदार वर्ष था।”

इसीलिए अगर भारत के कथाकार यशपाल ने उसे ‘झूठा-सच’ कहा तो पाकिस्तान के शायर फैज ने पाकिस्तान बनने पर 14 अगस्त, 1947 के बारे में कहा, “ये दाग दाग उजाला ये शब गुजीदा सहर, वो इंतजार था जिसका ये वो सहर तो नहीं—ये वो सहर नहीं जिसकी आरजू लेकर—चले थे यार कि मिल जायेगी कहीं न कहीं।”

ये बात दूसरी है कि उस दिन भी तोपें दगी थीं कराची में भी और दिल्ली में भी, लेकिन वे तोपें इस बात का ऐलान करती थीं, कि हमने धर्म के आधार पर दो राष्ट्र बनाने की झूठी, मानव-विरोधी कल्पना के आगे, ब्रिटिश चालबाजों के आगे घुटने टेक दिये जिसका कुफल हम आज तक भोग रहे हैं। तोपें आज भी दगी थीं लेकिन ये मुजीब बैटरी की तोपें धर्म के आधार पर दो राष्ट्र की उस कल्पना की धज्जियाँ उड़ा रही थीं। बता रही थीं कि संस्कृति, भाषा और आजादी साम्प्रदायिक राजनीति के संकीर्ण दायरे से परे की चीज है। इन तोपों की सलामी का किसी से क्या मुकाबला ?

वह किशोर योद्धा

उस सन्नाटे को याद कर आज भी मन खौफ से भर जाता है। जाने कैसा तो था वह गाँव। कुंजों से घिरा। तीन-चार बड़े सुन्दर फूस छाये कच्चे घर। बीच में बड़ा-सा गोबर लिपा चौक। लेकिन न औरतों की चूड़ियों की खनक, न मर्दों की बातचीत, न बच्चों का कोलाहल, न गायों का रँभाना, न कुत्तों का भौंकना, यहाँ तक कि दूर-दूर तक आँगन में या पेड़ की डालों पर चिड़ियों की चहक तक नहीं। लगता था जैसे किसी को जिन्दा नहीं छोड़ा गया है। आदमी ही नहीं, पशु-पक्षी तक का नाम निशान मिटा दिया गया है। और उस भयानक हादसे के साक्षी हैं इन झोंपड़ियों के दरवाजे जो लाशों की आँखों की तरह खुले हैं। वे टीन के बक्से जो आसपास अधखुले पड़े हैं, वे फटी साड़ियाँ, टूटी चूड़ियाँ, बच्चे की फटी किताबें जो कीचड़ में दबी पड़ी हैं।

फिर दो छप्परों के बीच बाँस अटकाकर ये किसके कपड़े सूख रहे हैं ? लुंगियाँ, बनियानें। कौर यह क्या है ? छप्पर के सहारे टिके लम्बे बाँस के सिरे पर बँधी लटकी एक खोपड़ी। हिम्मत जवाब दे रही है लेकिन फिर भी हम एक झोंपड़ी के अन्दर झाँकते हैं। एक कतार में पड़े हुए दस-बारह शरीर ! यह हम कहाँ आ गये ?

और उस खौफनाक सन्नाटे के आलम को तोड़ती एक आवाज पीछे से सुनाई देती है। हम चौक पड़ते हैं। पीछे मुड़कर देखते हैं। दूसरी झोंपड़ी के दरवाजे पर एक सफेद दाढ़ीवाला बुढ़ा हमें कुतूहल से देख रहा है। उसका एक हाथ टूटा हुआ है। उस पर पट्टियाँ बँधी हैं। दूसरे हाथ से वह झोंपड़ी का दरवाजा थाम कर धीरे-धीरे नीचे उतरने की कोशिश कर रहा है।

‘जय बाँगला’ सूबेदार सिराज को देखकर वह सलाम करता है। और वे दोनों बातें करने लगते हैं।

यह रघुरामपुर है।

इस क्षेत्र में मुक्तिवाहिनी का हेडक्वार्टर है। धीरे-धीरे इस प्रेततिलिस्म का भेद खुलने लगता है। इस गाँव को पाकिस्तानियों ने बुरी तरह लूटा था। जबरन औरतों

को पकड़कर इसी आँगन में उनके साथ बलात्कार किया और फिर उन्हें छावनी में भेज दिया था। मर्दों को संगीनों भोंक कर खेतों में उनकी लाशें फिंकवा दी थीं। अब इन खाली झोंपड़ियों में मुक्तिसेना के वे छापामार जो रात को दूर-दूर तक छापा मारने जाते हैं, दिन में यहाँ आकर सोते हैं। उस झोंपड़ी में रात की छापामार टुकड़ी आराम कर रही है। आपने देखा नहीं—दीवार से टिकी उनकी राइफलें ? नहा-धोकर ये कपड़े सूखने फैला दिये हैं। कुछ के पास तो यही कपड़े हैं। नंगे बदन कच्ची पहने सो रहे हैं, ऑपरेशन पर जाते समय इन्हें पहन लेंगे। नींद गहरी तो होगी ही, रात को बीस-बीस मील का चक्कर लगाते हैं। आपकी आवाज क्या चीज है बन्धु, ये तोप के गोलों के बीच भी नींद ले लेते हैं। देखते नहीं, वह उस झोंपड़ी का टीन, सुबह ही गोला पड़ा था पर फूटा नहीं। टीन में छेद हो गया है। गोला हमने उठाकर कीचड़ में फेंक दिया। यह खोपड़ी ? हाँ ! यह हमारे हवलदार पटवारी ने टाँग रखी है।

खोपड़ी क्यों टाँग रखी है ?

धीरे-धीरे दो-एक और सोये हुए लोग जागते हैं। अब आँगन में थोड़ी चहल-पहल हो जाती है। हम थके हैं और बेहद प्यास लगी है। वे दौड़कर घड़ा उठा लाते हैं। उसी काली मिट्टी का घड़ा। घड़ा तो है पर गिलास नहीं है। कारतूसों के खाली डिब्बे मौज-धोकर उनमें हम जी भर कर पानी पीते हैं। वे अफसोस करते हैं कि उनके पास मूड़ी, चिवड़ा या गुड़ भी नहीं कि हमें पानी के साथ दे सकें।

हवलदार पटवारी की चर्चा हरेक की जबान पर है। उनका सबसे बहादुर सैनिक। उसके हाथ में राइफल है कि कमाल, निहायत पुराने किस्म की राइफल, लेकिन क्या निशाना है कि रेंज में आया दुश्मन मजाल है जो जिन्दा लौट सके। इस सेक्टर क्या, दो-चार सेक्टर में हवलदार पटवारी का जवाब नहीं। अभी तक अकेला दो सौ से ज्यादा पाकिस्तानियों को मार चुका है।

कैसा होगा वह भयानक साहसी योद्धा !

सूबेदार सिराज उसे बुलाने जाते हैं। पर यह क्या उनके साथ तो गोरे रंग का, सौम्य-सा, लजाई मुस्कान वाला एक बहुत छोटी उम्र का युवक आ रहा है। हाथ जोड़ कर नमस्कार कर संकुचित-सा खड़ा हो जाता है। यह हवलदार पटवारी है। इसने दो सौ पाकिस्तानी सिपाही मारे हैं। सच !

लेकिन शायद गोरे, सुकुमार उम्र के युवा योद्धाओं की एक अलग कौम होती है। वे आल्हा खण्ड के आल्हा ऊदल हों, महाभारत के अभिमन्यु हों या पद्मावत के गोरा बादल हों, हवलदार पटवारी के कच्चे, बेहद भोले मुँह, और चौड़े कन्धों को देखकर जाने क्यों मुझे वे ही किशोर योद्धा याद आते हैं।

किशोर हवलदार पटवारी ई. पी. आर. में था। विद्रोह हुआ, मुक्तियुद्ध हुआ। चारों ओर से टिकका खाँ के भयानक अत्याचार की खबरें आनी शुरू हुईं, वह लड़ता था पर उसका मन अपने गाँव की ओर लगा था। वह छुट्टी लेकर अपने गाँव गया। गाँव जल चुका था। खेतों में गाँव की औरतों की क्षत-विक्षत लाशें पड़ी थीं। घरवालों

का कहीं पता नहीं था। गाँव के सिवान पर तीन-चार कटे सर टाँगकर वे चले गए थे। उसने पहचाना। दो हिन्दू पड़ोसी थे एक उसका बुजुर्ग चाचा।

और वहाँ से लौटा हुआ हवलदार पटवारी एक दूसरा ही व्यक्ति था। वह एक पाकिस्तानी सिपाही की खोपड़ी थी जिसे उसने लाकर इस बाँस पर टाँग दिया था और उसके बाद उसकी वह राइफल वज्र बन गई थी। वह दुश्मन को देखकर उसे जिन्दा नहीं छोड़ता था। कई बार उसने अपनी जान भयानक खतरे में डालकर दुश्मन को मारा था। उसके दुस्साहस के लिए कई बार कैप्टन ने उसे स्नेह से समझाया था, वह इसी तरह विनम्रता से सर झुकाए सुन लेता है, लेकिन रणक्षेत्र में ही नरमुण्डों से खेलने का नशा उसे पागल बना देता है।

बालकृष्ण के आग्रह पर वह खोपड़ी बाँस से उतार ली जाती है और हवलदार पटवारी उसे हाथ में लेकर कैमरे के सामने खड़ा हो जाता है। और अब उसकी आँखों में न आवेश की लाली है न चमक, केवल एक बड़ी गहरी उदासी है और वह जाने कहाँ बहुत डूबी आँखों से देख रहा है। इस समय क्या है उसकी निगाहों के सामने, उसका गाँव। जहाँ से वह बहुत प्यार देकर और पाकर चला था, जहाँ वह अब कभी भी वापस नहीं लौट पाएगा और कभी लौटा भी तो वह गाँव, वह गाँव नहीं होगा जो कभी था।

गाँव का दूसरा हिस्सा अधिक आबाद था। पेड़ों के नीचे लोग बैठे थे, टेलीफोन का तार दीख रहा था। उधर एक पोखर था, जिसमें पक्की सीढ़ियाँ और घाट बना हुआ था। दो-एक बुजुर्ग और कुछ बच्चे नहा रहे हैं। युद्ध है तो क्यों, बच्चों के लिए पानी में कूदने, छपाछप करने का सुख तो गोलाबारी के बीच भी वही रहता है। एक नाटा साँवला-सा युवक नंगे बदन, लुंगी लगाये, कन्धे पर तौलिया डाले पोखर की ओर जाता हुआ एक कबरी छोटी-सी गाय को हाथ से कुछ खिला रहा है और बड़े प्यार से उसकी गर्दन सहला रहा है। इतनी तनाव और तोप-बंदूकों के बीच यह सहज ममता भरा ग्राम्य-दृश्य मन को बड़ा दिलासा दे जाता है।

सूबेदार सिराज सलाम करते हैं तो मालूम होता है कि नंगे बदन नहाने जाते हुए जो सज्जन गाय को प्यार कर रहे थे, वे ही हैं कैप्टन (उनका परिवार भी पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्र में फूट गया है। अतः उनका भी नाम और चित्र देना मना ! सुविधा के लिए हम उन्हें कैप्टन ज कहेंगे) इस क्षेत्र को तीन ओर से पाकिस्तानी सेनाओं ने घेर रखा है। रेलवे लाइन को वे किसी तरह मुक्तिवाहिनी से छीनना चाहते हैं, लेकिन कैप्टन ज आज 6 महीने से न केवल इस रेलवे लाइन पर बाँगला देश का ध्वज फहराते रहे हैं वरन् उनके नेतृत्व में पाकिस्तानी और पीछे ढकेले जा चुके हैं। उनके लिए मशहूर है कि वे, जहाँ भी मुठभेड़ होती है, अपने सैनिकों के पास तुरन्त पहुँच जाते हैं और सबसे पहली गोली खुद झेलने को तैयार रहते हैं। लेफ्टिनेण्ट कर्नल खालिद मुशर्रफ ने कई बार उनको बहुत समझाया है कि उनके जैसे बहादुर, दूरदर्शी, रणकुशल कैप्टन का जीवन बहुत मूल्यवान है। जहाँ सैनिक का काम है वहाँ उन्हें खुद अपने को बेवजह

खतरे में नहीं डालना चाहिए। लेकिन कैप्टन ज का कहना था कि साधारण युद्ध से अलग है यह मुक्ति-युद्ध। इस जन-युद्ध में यह जरूरी है कि नायक अफसर नहीं बरन साथी हो। उनके शौर्य की जो गाथाएँ सुनी हैं, उनसे इस व्यक्ति की तो कल्पना ही नहीं होती थी। यह साँवला-सा मधुर मुस्काता हुआ, मृदुभाषी व्यक्ति। इस चितकबरी गाँव की गैया को प्यार करता हुआ। बाद में मालूम हुआ, इस गाँव से जो परिवार भाग गये उन्हीं में से किसी की गाय है, अब मुक्ति सैनिकों की दुलारी हो गयी है। कैप्टन से तो इतनी हिल गयी है कि वे मोर्चे पर जाते हैं तो उन्हें रँभा कर बुलाती है।

मुदुलता कैप्टन ज के स्वभाव में गहरी बसी है। उधर तीन व्यक्ति झाड़-झंखाड़ काटकर जमीन साफ कर रहे थे। हमें देखा, फिर मुँह झुकाकर काम में लग गये। मालूम हुआ, वे बिहारी मुसलमान रजाकार हैं। जो पाकिस्तानियों की ओर से जासूसी करते थे। मुक्ति सैनिक इन्हें गिरफ्तार कर लाये थे। लेकिन कैप्टन ज ने उन्हें मारा नहीं। उन्हें मजदूरी के काम में लगा दिया है और उन पर पहरा रखते हैं।

हम रेलवे लाइन तक हो आये इसकी अनुमति उन्होंने दे दी। वे नहाने की तैयारी कर चुके बरना साथ चलते। लेकिन सूबेदार सिराज तो हैं ही, उन्होंने अपने चार सैनिक और साथ कर दिये हैं और सख्त ताकीद कि रेलवे लाइन पर हम ज्यादा देर न ठहरें, हर वक्त उधर मुठभेड़ का खतरा रहता है। जाने-आने, 15 मिनट देखने-भालने में कुल घण्टा भर लगेगा—तब तक यहाँ खाना तैयार हो जाएगा।

फिर वही जूट के खेत और कीचड़, और जंगली झाड़ियाँ। पैण्ट के पाँयचे उलट कर हमने ऊपर कर लिये थे और पता नहीं किसी जंगली घास के स्पर्श से या किन्हीं के काटने से, हमारे खुले पाँवों में रह-रहकर बेहद खुजली और टीस-सी होने लगी थी। बालकृष्ण के माथे पर तो किसी कीड़े ने उस दिन जो काटा, तो बम्बई तक वह घाव पकता रहा।

मशीनगनों की आवाजें रह-रहकर आ रही थीं और जिधर मुजीब बैटरी ने गोलाबारी की थी, उस क्षेत्र के कई मील पीछे से बहुत जोर का धुआँ उठ रहा था। लगता था, फिर कहीं जोर की आग लगायी गयी है।

और लीजिए, अब जिस रेलवे लाइन को एक बारीक रेखा की तरह हमने टीले के बंकर पर से दूरबीन से देखा था, वहाँ हम पहुँच गये हैं।

रेल भंजकों को जगने दो !

पता नहीं बचपन में कभी आपके छोटे-से गाँव के उदास सूने-से स्टेशन ने आपके मन को उद्वेलित किया है या नहीं ? मुझे किया है ? बिलकुल कच्चा, नीचा प्लेटफार्म, दूर-दूर तक फैले खेतों के बीच एक छोटी पक्की इमारत, एक-दो लालटेंने और दूर-दूर पता नहीं कहाँ से आती हुई रेल की लाइन। गाँव की धिरायी हुई जिन्दगी में जहाँ तक नजर जाती है, वहीं तक अपना संसार सीमित होता है। लेकिन रेल की लाइन पर आइए कि लगता है, आप एक ऐसी ज्ञान रेखा को छू रहे हैं, जो न जाने कितने अज्ञाने संसारों से आती है और न जाने किस संसार में जाती है। सहसा आपका दिक्बोध विस्तृत हो जाता है।

लेकिन जिन्दगी में पहली बार एक ऐसी रेलवे लाइन पर खड़ा हूँ, जहाँ दिक्बोध को समयबोध या इतिहासबोध आच्छादित कर लेता है। स्टेशन छोटा है, बहुत छोटा लेकिन यह रेल मार्ग बाँगला देश का सबसे महत्त्वपूर्ण रेल मार्ग है तीन समानान्तर रेलवे लाइनें आ रही हैं। चटगाँव से आनेवाली, ढाका जानेवाली यह लाइन पाकिस्तानी हुकूमत की प्राणवाहिनी रही है। चाय और जूट इस पर से लदकर चटगाँव के बंदरगाह जाता था। जाता रहा 25 वर्ष तक, दाम चुकता रहा प. पाकिस्तान के शोषकों को और 25 साल के बाद उसका बदला उन्होंने चुकाया, 25 मार्च की रात को ! ढाका की सड़कों पर निहत्थों को कुचलते हुए जो टैंक घूम रहे थे, सोते हुए नागरिकों पर जो तोपें आग उगल रही थीं, रुकैया हाल की बेबस छात्राओं पर जो सैनिक बलात्कार कर रहे थे, वे टैंक, वे तोपें, वे सैनिक चटगाँव पर जहाज से उतरकर इसी रेलवे लाइन पर से फौजी ट्रेनों में भरकर गये थे। क्या रात बिरात कभी वे फौजी ट्रेनें सिगनल न पाकर इस छोटे-से स्टेशन पर रुकी होंगी, या दिन में धड़धड़ाती हुई बिना रुके निकल गई होंगी और परदेशी पंजाबी-बलूची सैनिकों ने गौर भी नहीं किया होगा कि यह निहायत पिढ़ी-सा स्टेशन कौन है ?

लेकिन आज अब मुक्तिवाहिनी ने चटगाँव से ढाका जानेवाली उनकी यह

प्राणनलिका काट दी है, तो मन्दभाग का यह छोटा-सा स्टेशन उनके उपनिवेशवाद का टर्मिनल बिन्दु, विराम चिह्न बन गया है। वे कसम खा रहे हैं कि किसी तरह इसे जीत कर ट्रेनों फिर चालू करें और मुक्ति सैनिक हैं कि लाइन के उस छोर पर शान से स्वाधीनता का जो ध्वज फहरा रहे हैं, उसे झुकने नहीं देते।

कभी-कभी बहुत-बहुत पहले पढ़ी कविताएँ, मन में पता नहीं कहाँ दबी रहती हैं और बीस-तीस वरस बाद अकस्मात उनका अर्थ कौंध जाता है। ऐसी ही एक कविता थी, किसी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कम्युनिस्ट कवि की 'लेट द रेल स्प्लटर एवेक।' अगर मैं भूलता नहीं तो उसका हिन्दी अनुवाद किया था मेरे अग्रज बन्धु केदारनाथ अग्रवाल ने, 'रेल भंजकों को जगने दो ! वे जो रेल भंजन करते थे, वे वास्तव में किसानों का कच्चा माल और मजदूरों की मेहनत ट्रेनों पर लादकर ले जानेवाले और बदले में भाड़े के दमनकारी सिपाहियों को ट्रेनों में भेजनेवाले उपनिवेशवादियों की रीढ़ का भंजन करते थे। यह बात आज 28 वर्ष बाद इस टूटी हुई रेल की पटरी पर खड़े होकर समझ में आ रही है। सन् 42 में सब ओर से हार जाने पर जयप्रकाश ने देश के युवा छात्रों से क्यों कहा था कि अंग्रेज दुश्मन को उखाड़ने के लिए रेल की पटरियाँ उखाड़ दो, यह बात आज समझ में आ रही है। यह बात दीगर है कि उस समय कम्युनिस्ट पार्टी जयप्रकाश और सुभाष को फासिस्टों का एजेंट कह रही थी। (इतिहास का कैसा मजेदार व्यंग्य है कि आज उसी सुभाष से प्रेरित मुजीब जनक्रान्ति का महान नायक है और बाँगला देश के बारे में अन्तरात्मा की सच्ची आवाज जयप्रकाश के कण्ठ से ही उद्घोषित हो रही है, यह बात दूसरी है कि बाँगला देश की कम्युनिस्ट पार्टियाँ सहायत्री दल भारतीय कम्युनिस्टों से ज्यादा समझदार साबित हुए हैं, कम-से-कम अभी तक वे अपने देश के स्वाधीनता आन्दोलन के साथ हैं।)

बहरहाल रेल भंजक जागे हुए हैं। जब तक ट्रेनों पर स्वाधीन बाँगला देश का झण्डा नहीं फहराएगा, यह लाइन खण्डित रहेगी। लाइन के आर-पार दो-तीन गायें चर रही हैं। गायें पालतू हैं। यह उनके गले में लटकी घण्टियों से पता चलता है। हम लोगों को देखकर आस-पास से कुछ गाँववाले आ गए हैं। सुबेद अली और करीम भाई से बात हो रही है, दिन-रात चलनेवाली मुठभेड़ों के कुछ रोमांचक किस्से चल रहे हैं। मैं अभी भी गाँव में रहने की उनकी हिम्मत पर दंग हूँ। एक छोकड़ा स्टेशन की इमारत की ओर ले जाता है हमें। टिकटघर में अब भी टिकट रखे हैं। ढेर से टिकट, रसीद बुकें, फाइलें फर्श पर और बाहर प्लेटफार्म पर बिखरे पड़े हैं। छह महीने से बेकार पड़ी लाइन के बीच में अगल-बगल बरसाती पौधे उग आए हैं। एक जगह पटरी उखाड़ने से गड़बा बन गया है, जिसमें बरसाती पानी इकट्ठा हो गया है। पानी इस समय दर्पण की तरह चमक रहा है। एक जगह दूर तक उखड़ी हुई पटरियाँ बीच में तिकोने शिखर की तरह उठ गई हैं।

मैं थककर चूर हूँ। पसीने से तरबतर, चलते-चलते पाँव जवाब देने लगे हैं। उसी उखड़ कर उभरी हुई पटरी पर बैठ जाता हूँ। यह जगह खतरनाक है, लेकिन मुझे बैठा देखकर सुबेदार सिराज कुछ कहते नहीं, बस बन्दूक तानकर उधर पहरा देने लगते हैं।

यहाँ पर थोड़ी देर भी टिकने के लिए कैप्टन ने सख्त मना किया था।

जहाँ स्टेशन का नामपट है, उसके बिल्कुल पास बाँसों का एक कुंज है और छोटा-सा पोखर है। वहाँ थोड़ी-सी हवा के झोंके हैं, ठण्डक है। हम वहीं सुस्ताने लगते हैं। अकस्मात् एक झोंके के साथ एक तीखी दुर्गन्ध आती है। शायद पोखर में कहीं कोई लाश होगी। यहाँ कौन-सी नदी है, कौन-सा पोखर है जहाँ वे अपनी बर्बरता की सड़ाँध नहीं छोड़ गए हैं ! हम घूमकर दूसरी जगह छाँह में बैठ जाते हैं। जाने क्यों इस स्टेशन से जाने का मन नहीं हो रहा है। लगता है थोड़ी देर में कोई बैलगाड़ी आएगी और हमें बिठाकर देहात के उस कच्चे घर ले जाएगी, जहाँ से हम कभी चले आए थे।

जिस देश में हमलावरों ने हर घर उजाड़ दिया हो, वहाँ यह सोचना मेरी खामखयाली है न ?

खामखयाली तो यह भी है कि यहीं से वक्त रहते लौट जाने के बजाय हम अगली और आखिरी चौकी चानला (चानखोला) की ओर चल पड़े हैं। वही इस युद्ध क्षेत्र का आखिरी बिन्दु है। उसके सामने ही है श्यालदा नदी और उस ओर पाकिस्तानी छावनी। इसी पोखर के किनारे से पगड़ण्डी जाती है। पगड़ण्डी के दोनों ओर जंगल हैं, और इसीलिए और भी खतरनाक। जरा-सी आहट पर सिराज साहब खुद रुक कर टोह लेते हैं, तब हमें बढ़ने देते हैं। हमारे साथ आए मुक्ति सैनिकों में से एक हमारे साथ है तीन हमारे समानान्तर घने पेड़ों के बीच में से टोह लेते हुए चल रहे हैं। सचमुच अब एक गहन अनजाने भय का वातावरण है। मैं एक क्षण को, केवल एक क्षण को यह सोचता हूँ कि अगर गोली लग जाय तो कोई बात नहीं, लेकिन कोई पाकिस्तानी टुकड़ी घेर कर कैद कर ले जाय तब ? वह जलालत कितनी असहनीय होगी ? और मैं जाता तो जाता अपने साथ शास्त्री जी या बालकृष्ण को भी खतरे में डालने का क्या हक था मुझे ?

शुरुआत में दो झोंपड़ियाँ दीखती हैं, उनके बीच कीचड़ भरा रास्ता, लेकिन कीचड़ में यह क्या है, कितना सुन्दर, कैसा आधुनिक-सा पैटर्न। मैं रुक जाता हूँ। एक केले का बड़ा-सा पत्ता कीचड़ में गिर गया है, पैरों से चिर कर कट-फट गया है, और उस अनियमित पैटर्न पर जहाँ-जहाँ पेड़ से कुछ पीले पत्ते गिरकर एक अद्भुत प्रभाव डाल रहे हैं। यही है चानला गाँव की देहरी। देहरी पर हमारे स्वागत के लिए जो खूबसूरत पाँवड़ा बिछा है, क्या उसकी कल्पना की जा सकती थी। भय, मृत्यु के सर्वग्राही भय के बीच ऐब्स्ट्रेक्ट सौन्दर्य का यह टुकड़ा कैसा रोमांचित कर गया। बालकृष्ण ने उसका चित्र लिया और लीजिए, कैमरे में उस पाँवड़े के किनारे किसी मुक्ति सैनिक के दो नंगे कीचड़ सने पाँव उस सौन्दर्य को एक और नया आयाम दे गए। मैं सच कहता हूँ आपसे, उस सौन्दर्य ने ऐसा जकड़ लिया था उस समय कि शास्त्री जी कून्धे पर हाथ रख कर आगे न लेचलते, तो मैं वहीं टोना खाया-सा जड़ खड़ा रहता। खौफनाक माहौल में एक सहज नैसर्गिक सौन्दर्यखण्ड का प्रभाव कैसा रहस्यमय लगने लगता है।

पूरे गाँव में अब मुक्ति सैनिकों की छावनी है। वे सब बाहर निकलकर हमारा स्वागत कर रहे हैं। जब से युद्ध शुरू हुआ है, इस आखिरी बिन्दु पर पहली बार कोई

मेहमान सिविलियन आया है। मेजर भी बहुत खुश है। लेकिन बाहर नहीं आते। बनियान पहने लुंगी लपेटे तख्त पर बैठे अन्दर कैप्टन ज को फोन कर रहे हैं। मालूम होता है, कैप्टन ज हर 15-20 मिनट पर फोन करके उनसे हम लोगों की कुशल पूछते रहे हैं कि हमें तुरन्त लौटा दिया जाय, लेकिन मेजर का कहना है कि आप लोग जान हथेली पर रखकर यहाँ तक आये हैं तो चाय बिना पिये कैसे जायेंगे ? तीन-चार युवा सैनिक तुरन्त सामनेवाले बरामदे में चाय बनाने दौड़ पड़ते हैं।

अतिथि सत्कार की कैसी ललक है उनमें। वे बरामदे में चाय का देगचा चढ़ा रहे हैं। बरामदे के बाहर कुछ दूर रह रह गोलियों के सवाल जवाब हो रहे हैं। मेजर वहाँ की सामरिक स्थिति समझा रहे हैं। यह हर क्षण खतरे की जगह है। हर दूसरे तीसरे वे इस पर हमला करते हैं। हर झोंपड़ी में मुक्ति सैनिक हर वक्त तैयार रहते हैं। जहाँ हम बैठे हैं, उसकी खिड़की में भी मशीन फिट किए हुए सैनिक सन्नद्ध बैठा है। लेकिन मेजर में अद्भुत आत्मविश्वास है। वे तो यहाँ तक तैयार हैं कि जब हमने यहाँ तक आने का खतरा उठाया है तो वे श्यालदा नदी तक में हमें नाव पर भेज सकते हैं। जाइए, गंगा-जमना में नौका-विहार किया होगा, हमारी श्यालदा में भी कर आइए। लेकिन कठिनाई सिर्फ यह है कि हमें तैरना नहीं आता और हमें देखते ही पाकिस्तानी मोर्चा बाँधकर ब्रश-फायर करना शुरू कर देंगे। इसलिए यहीं बैठें। यहाँ कुछ हुआ भी, तो उनके सैनिक निबट लेंगे।

उनका यह झोंपड़ी-हेडक्वार्टर काफी बड़ा है। एक बड़ा-सा तख्त पड़ा है, जिस पर मेजर का बिस्तरा भी है, उनका दफ्तर (कागज-पत्र फाइलें रिपोर्ट) भी, उनका टेलीफोन भी और मशीनगन का मुँह खिड़की के बाहर किए हुए, हर क्षण सावधान, उकड़ूँ बैठा हुआ उनका अंगरक्षक भी। पास एक बड़ी-सी मेज, जिस पर टेलीफोन की बैटरी रखी हुई है। उनके सिरहाने ऊपर एक स्वाधीन बाँगला देश का झण्डा है, जिस पर दो तलवारों का क्रास। उन तलवारों की मूठ को खूँटी बनाकर उनकी कमीज टँगी है। कोने में रखी है एक बड़ी-सी चौखुंटी लालटेन, जो मंदभागा स्टेशन पर रही होगी, अब यहाँ काम दे रही है। एक ओर दीवारों से टिकी राइफलें और स्टेनगनें रखी हैं और हर ओर शस्त्रास्त्रों से भरे चीड़ के बक्से रखे हैं। मेहमानों के लिए कहीं से दो कुर्सियाँ भी लाई जाती हैं, लेकिन अन्दर कारतूसों और हथगोलों से भरे बक्सों पर बैठने का सुख ही कुछ और है।

अब मेरी निगाह झोंपड़ी पर टँगे नक्शों पर जाती है। एक ओर दुनिया का एक नक्शा टँगा है, दूसरी ओर चट्टग्राम (चटगाँव) जिले का नक्शा। तरह-तरह के स्कूली चार्ट टँगे हैं। मालूम हुआ कि आगे एक बच्चों की पाठशाला थी (जिसे हमने आब्जर्वेशन पोस्ट बंकर से दूरबीन से देखा था), जिसे पाकिस्तानियों ने अपनी छावनी बना रखा था। वहाँ से उन्हें भगाकर ये नक्शे और चार्ट यहाँ लाकर टाँग दिए गए हैं। एक चार्ट है बच्चों के स्वास्थ्य और सफाई से सम्बन्धित। क्लास में बच्चे कालर कैसे ठीक रखें, गंदे और साफ हाथ, बैठ कर पढ़ने या खड़े होने का सही और गलत ढंग, 'शरीर रत्न' !

और मुझे सहसा याद आ जाते हैं शरणार्थी कैम्पों में देखे हुए बच्चे, कूड़ा-कर्कट

गठरी-मुठरी पर भूखे-प्यासे पड़े हुए। वे बच्चे जो बमों के धमाके से चेतना खो बैठे हैं और सिर्फ गुमसुम पड़े फटी-फटी आँखों से देखते रहते हैं। वे बच्चे, जिनके हाथ-पाँव आग में झुलस गए हैं। वे बच्चे, जो उस समय डर के मारे माँ से चिपके हुए थे, जब खाँ सिपाहियों ने हमला किया और संगीन की नोकों से परे धकेलकर उनकी माताओं को पकड़कर ले गए और गोली खाकर लहलुहान पिता छटपटाता हुआ उनकी आँखों के सामने खामोश हो गया, वे बच्चे, जो दहशत के मारे सदा के लिए गूँगे हो गए, वे बच्चे, जो हैजे में मर गए, पर माँ उन्हें गोद में चिपकाए रहीं वे बच्चे...

यहिया खाँ ने इन बच्चों को स्वास्थ्य और सफाई का कितना भयानक पाठ पढ़ाया है !

लेकिन इस ओर यह क्या है ? दीवार पर एक लम्बी पतली लकड़ी का अड़ास बना है जिस पर कुछ तेल, मसाला, आलता की शीशियाँ रखी हैं। एक सेंदुरदानी, कुछ खतों के बण्डल, एक-दो किताबें और इधर शीशे की गुरियों की माला गूँथकर उसके सहारे एक बड़ा-सा पीला पका हुआ खीरा सजावट के तौर पर टंगा हुआ है। उसके नीचे बड़ी खूबरसूरत रेशमी कढ़ाई की दो डिजाइनें फ्रेम करके टेंगी हुई हैं। नीचेवाली कढ़ाई एक सुन्दर गुलदस्ते की है, जिस पर काढ़नेवाली ने अपना नाम भी काढ़ दिया है—उषा रानी।

युद्ध शिविर में यह सब बड़ा रहस्यमय लगता है। मैं मेजर से पूछता हूँ, “यह सब क्या है ! किसका है ?”

मेजर बताते हैं कि यह उन लोगों का है, जो इस घर में रहते थे। भागते समय वे सब छोटा-मोटा सामान यहीं छोड़ गए। हम लोग आए तो इसे सँभालकर रख दिया है। अभी वे लोग इण्डिया में होंगे। हम स्वाधीन हो जाएँगे तब ये लोग सब अपने घर लौटेंगे तो अपना सब छोटा-मोटा सामान याद करके ढूँढ़ेंगे नहीं ? तभी के लिए सब सँभालकर रख दिया है।

“आपको विश्वास है कि वे लोग लौटेंगे ?”

“क्यों नहीं लौटेंगे ? जब उनका मुक्ति फौज जीत जाएगा, उनकी बाँगला देश सरकार का राज होगा, तो जरूर लौटेंगे। अपना घर-बार छोड़कर काहे कहीं और पड़े रहेंगे। फिर अल्लाह के फजल से उनका घर तो सलामत है।” और सहसा मेजर खिड़की से बाहर की ओर देखने लगते हैं, “हाँ, यह नहीं मालूम कि वो लोग सलामत हैं या नहीं ! इण्डिया तक पहुँच गए या बीच में ही... आपको सुबेद साहब और करीम साहब ने तो सब बताया होगा। भागते हुए लोगों पर बम बरसाया, मशीनगनिंग किया, और जो बचा उसको बिहारी रजाकार लोग ने लूटा और डाओ-बरछी से कतल कर दिया।”

कहाँ होंगे इस घर के रहनेवाले ? नाजुक हाथों से कढ़ा हुआ नाम उषा रानी और पोखर के पास से आता हुआ सड़ी लाश की दुर्गन्ध का झोंका मेरे जेहन में घुलमिल जाता। कौन होगी उषा रानी ? इस घर की बहू ? इस घर की बिटिया ? कितनी बड़ी होगी ? कढ़ाई के लिए लच्छियाँ किससे मँगवाई होंगी ? किस हालत में भागना पड़ा

होगा ? घर छोड़ते समय इस तस्वीर और इस सेंदुरदानी की ओर देखा भी होगा या नहीं ? कहाँ होगी अब ? किसी नदी-पोखर में सड़ी-गली ? किसी पाकिस्तानी फौजी छावनी में क्षत-विक्षत ? किसी शरणार्थी कैम्प में फटी साड़ी सँभालती हुई राशन के लिए लाइन में धक्के खाती हुई ?

और मेरी आँखें कढ़ाई की तस्वीरों पर टिक जाती हैं। मैं उदास निगाहों से उन रेशमी रंगों को देखता रहता हूँ। नीचेवाले गुलदस्ते के ऊपर एक और तस्वीर है, जिसके ऊपर मेजर की फौजी पाकेट वाच टँगी है। उस तस्वीर में हरे धागों से एक पेड़ बना है। पेड़ की डालों पर फूल हैं, जिनकी पाखुरियाँ सफेद हैं, डंठल नारंगी। कोई भी पहचान लेगा कि फूल हरसिंगार के हैं। हर यानी शिव के शृंगार का फूल। और सचमुच वृक्ष के नीचे सफेद धागों से एक शिवलिंग भी काढ़ा गया है।

और यह क्या है ? उसी के बगल में मदीना की मस्जिद का एक रंगीन चित्र टँगा है। लीथो पर छपा, अतिपरिचित चित्र। क्या यह भी उन्हीं लोगों का है ? मेजर बताते हैं। यह उनके एक अर्धेड़ हवलदार का है। धरम-करमवाला आदमी है। खार्ड में भी रहता है तो इस तस्वीर को साथ ले जाता है। कहता है, खुदा हमारी रक्षा करता है। दरवाजे के पास खड़ा हवलदार यह बात सुनकर हमारी ओर देखकर बहुत मीठे-से मुस्करा देता है।

“लेकिन इसी के बगल में शिव जी की तस्वीर लगी है, तुम्हें बुरा नहीं लगता ?”

“बुरा नहीं मानना साहब, ओ भी तो हमारा हिंदू बाँगला भाई का भगवान है ! ओ भी तो हमारा मुक्ति फौज का ‘रक्खा’ (रक्षा) करेगा।” हवलदार बड़ी मिठास से जवाब देते हैं। “ये छवि तो ओ लोग टाँग के गया है, हटाएगा हम तो ओ लोग बुरा मनाएगा न ! ये घर तो उसका है, हम लोग तो हियॉ कैम्प लगाया है। समझ गया न आप ?”

फोन की घण्टी खनखनाती है। मेजर ध्यान से सुनते हैं, फिर फोन रखकर बताते हैं कि रघुरामपुर से कैप्टन ज का फोन है। खाना बन गया है और आप लोगों के लिए इन्तजार कर रहे हैं। फिर मुस्कराकर कहते हैं—“आपके जाने के बाद यहाँ हमारी टुकड़ियाँ अपना ‘ऑपरेशन’ शुरू करेंगी। आज शाम का काफी जोरदार कार्यक्रम है।”

हम चलते हैं। सारे मुक्ति सैनिक ऑँगन में इकट्ठे हो गए हैं और ‘जय बाँगला’ की तुमुलध्वनि से विदा देते हैं। गाँव की सीमा तक पहुँचाने पूरी भीड़ आती है और उनमें से अनेक मंदभागा स्टेशन तक छोड़ने आते हैं।

हम रघुरामपुर पहुँचे भी नहीं थे कि पाकिस्तानी तोपें गरज उठती हैं।

हम पहुँचे, तो देखा कैप्टन बहुत चिन्तित हैं। हमारे पहुँचते ही आश्वासन भरी खुशी उनके चेहरे पर चमक उठती है। उनके साथ चाय पीकर चले, तो दिन ढलने लगा था।

के बोले माँ

यहाँ कुछ पता ही नहीं चलता कि अकस्मात् कब धूप सिमट गई और कब दिन ढल गया ! न तिरछी होती हुई उजाले की शहतीरें न नारंगी पड़ते हुए बादल, न शाम की खुनक लिए हवा। सिर्फ स्याह पड़ते हुए खेत और सूने गाँव और भी सुनसान लगते हुए। इस बार हम किसी और रास्ते से लौट रहे हैं। बीच में कई छोटे-छोटे गाँव हैं जहाँ झोंपड़ियों के बीच में अँधेरा दुबकने लगा है। एक गाँव के आँगन में धान फैला हुआ सूख रहा है और एक कोने में कटा हुआ जूट झोंपड़ी से टिका पड़ा है। झोंपड़ी में एक परिवार है। करीमभाई उन लोगों से बातें करते हैं। मालूम हुआ, वे यहाँ रहनेवाले नहीं। उनका गाँव पिछले सप्ताह जला दिया गया तो अब यहाँ खाली झोंपड़ी में टिक गए हैं। भागते हुए धान और जूट लाए थे उसे सुखा रहे हैं। उनके चेहरे पर न आतंक है, न दुख, न भय, न आक्रोश। केवल खाली-खाली-सा चेहरा, मानों उन्होंने स्वीकार कर लिया है कि जो हो रहा है वह तो हो ही रहा है। वे हर क्षण जी रहे हैं और हर अगला क्षण जीवन का होगा या मौत का इसकी चिन्ता भी करनी छोड़ दी है। सिर्फ एक वजूद, एक अस्तित्व, जीवन और मौत का फ्रेम तोड़कर टिका हुआ, अधर में, शून्य में।

युद्ध में जिन्दगी के कितने आयाम देखने को मिलते हैं ?

“भारती, लुक हियर, यह देखो !” अब क्या देखना बाकी है ! यह सुवेद भाई क्या दिखा रहे हैं ! बड़े उत्साह से सुवेद एक जूट का बहुत लम्बा कटा हुआ डंठल हाथ में लिए उत्साह से बुला रहे हैं। तोपें, मशीनगनों, उखड़ी रेतें, जलते गाँव देख आए हैं, लेकिन वाह रे सुवेद भाई, अभी जूट का पौधा देखना बाकी है ? “नहीं, यह बात नहीं !” सुवेद बड़े धीरज से समझाते हैं : “देखो यह जूट का पौधा कम-से-कम 9 फीट होगा। यहाँ जूट ही तो है, जिसकी वजह से पाकिस्तान ने बाँगला देश पर कब्जा रखने के लिए जान लड़ा दी है। हिन्दुस्तान में भी जूट होता है, पर पता नहीं हमारी बाँगला देश की धरती में क्या है कि इतना लम्बा और रेशेदार जूट यहीं होता है। और इतना

मजबूत रेशा है इसका कि देखो इसी 9 फीट के जूट पर लाहौर भी खड़ा है, कराची भी बसी है, इसी पर इस्लामाबाद टिका है, और इसी को बाजार में भुनाकर पाकिस्तान के 22 उद्योगपति रईस परिवारों के लिए शराब, रखैलें, दावतें और ऐश खरीदा जाता है। अब समझे, मैं क्यों दिखा रहा था यह। इसमें अद्भुत चमत्कार है, इस जूट में और जो इसे पैदा करती है, वह बाँगला देश का लोग भूख से मरता है और जो हम कहें कि भूख से नहीं मरेंगे, तो गोली से मारता है।” सुबेद एक क्षण रुककर देखते रहे फिर बोले—“जानते हो, शेख साहब हमारे मुजीब साहब बस इसी तरह बहुत आसान ढंग से बुनियादी बातें अपने देश के किसानों को, गाँववालों को समझाया करते थे।”

“शायद यही इस क्रान्ति की सम्प्रेषणीयता का राज है, सुबेद।” मैंने कहा—इस क्रान्ति ने तुम्हारे छात्र, तुम्हारे लेखक, तुम्हारे बुद्धिजीवी को कितना बदल दिया है। बिना इसके जाने लोगों को समझाना कठिन है कि चाहे अर्थशास्त्र की बात हो या राजनीति की, भाषा की हो या संस्कृति की, बड़े-बड़े लच्छेदार किताबी शब्दों के द्वारा आप बौद्धिक रोआब जरूर हाँक सकते हैं, लेकिन उनसे क्रान्ति नहीं होती। होती है, आवाम की अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी के साथ एकात्म कायम कर जीवन के महानतम मूल्यों को सहजतम शब्दों में और प्रतीकों में पेश करने से। और इसके लिए गोष्ठियाँ, गोलियाँ, धमकियाँ, डेलीगेशन, कुछ भी काम नहीं आता। इसके लिए केवल एक चीज चाहिए। अपने देश, अपने लोग, अपने परिवेश, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति में बहुत गहरी जड़ें, अपने इर्द-गिर्द व्याप्त संकट को आँखों में आँखें डालकर देखने का ईमानदार साहस। अपने व्यभिचारी कुण्ठाग्रस्त अहं की खोल में दुबके रहकर लोग शब्दों की कै करते रहते हैं, और उसे क्रान्तिकारी साहित्य समझते हैं ?”

युवा बैरिस्टर सुबेद अली हँसे : “यार, हमारे यहाँ भी यही सब था। यह तो सन 50-52 के बाद जब हमने पहचाना कि हमसे हमारा पूरा सांस्कृतिक व्यक्तित्व छीना जा रहा है, विदेशी भाषा लादने के नाम पर और फिर सर्वहारा बनने के बाद अपनी संस्कृति को हथियार बनाकर हमने लड़ाई शुरू की। तब सारे साहित्य का स्वर बदल गया बन्धुवर ! अब याहिया खाँ हमें मार नहीं सकता। हमसे जूट छीन लो, धान छीन लो, राइफल छीन लो, हम अपनी संस्कृति लेकर फिर उठ खड़े होंगे और उसका कोई जवाब उनके पास नहीं, क्योंकि हर चंगेज, हर हिटलर, हर यहिया के पास सब होता है—दौलत, सेना, कूटनीति; उनके पास एक ही चीज नहीं होती : संस्कृति ! और क्या समझते हो कि इसे वह जानता नहीं, इसीलिए उसने चुन-चुनकर हमारे लेखक, हमारे अध्यापक, हमारे छात्र का खून किया, क्योंकि वह जानता था कि क्रान्ति का उद्गम स्रोत कहाँ है ? खोटा जानवर ! बंगाली लड़कियों को पकड़कर छावनी में ले गया। बोलता है, एक-एक के साथ दस-दस फौजी बलात्कार करके नई पाकिस्तानी नस्ल बनाएगा। भारती ! हम लोग उन्हें कभी माफ नहीं करेंगे ! कभी नहीं !”

बातें करते हम लोग चलते जा रहे हैं। धीरे-धीरे घिरता हुआ अँधेरा है और दूर से आती हुई गोलाबारी की आवाजें। झाड़ियों में से, कीचड़ पर से तरह-तरह के डाँस,

मच्छर, कीड़े कभी-कभी हाथ से, चेहरे से टकराते हैं। अब भी एक छोटा-सा गाँव है। उजाड़ सुनसान। हमारे पहुँचते ही कोई जानवर सूखी पतियों में खड़-खड़ करता भागता है, शायद सियार होगा। उधर एक झोंपड़ी जलकर राख हुई पड़ी है। इधर की झोंपड़ी में कौन है ? कोई हमें देखते ही छिप गया है। कौन है ! 'ठहरिए।' सिराज साहब हमें साथ लेकर आगे बढ़ते हैं। झाँककर देखते हैं, चौंक उठते हैं। एक बुढ़िया ! झुर्रियों पड़ा सहमा हुआ चेहरा, उकड़ू बैठी, डरकर दीवार से दुबक गई है। हमको देखकर गों-गों करके कुछ बोलती है। पर कुछ समझ में नहीं आया। बेहद डरी हुई है।

सुबेद अली आगे बढ़कर बाँगला में बातें करने लगते हैं। उसका अता-पता पूछते हैं। कौन है ! कहाँ से आई है। इस सुनसान मुर्दार गाँव में, गोलाबारी में क्यों पड़ी है ? धीरे-धीरे उसका विश्वास कुछ-कुछ लौटता है। बोलती है बोलते-बोलते बीच में फिर काँप कर चुप हो जाती है मालूम होता है कि पाँच महीने से इसी तरह भटक रही है। बुढ़ा पति मार डाला गया, जवान बेटी मायके आयी थी। उसे माँ-बाप के सामने तीन-चार सिपाहियों ने बेइज्जत करके संगीनें भोंक दीं और जवान लड़का खेत पर था, वहीं से भाग गया। किसी ने बताया, मुजीब साहब की फौज में उसने नाम लिखा लिया। तब से गाँव-गाँव, छावनी-छावनी अपने लड़के को ढूँढ़ रही है। बस एक बार मिल जाए। वह देख ले कि ठीक से खाता-पीता है या नहीं। तुमने देखा हो, तो बता दो भइया, बिलकुल तुम्हारे ही बराबर था।

सुबेद अली हिल उठे हैं। उसके बिलकुल पास बैठकर उसका हाथ हाथ में लेकर कहते हैं; "मैं भी तुम्हारा बेटा हूँ माँ, उसे कुछ नहीं होगा, देखो मैं भी तो मुजीब साहब की फौज में हूँ," बुढ़िया फटी-फट ही आँखों से सुबेद के चेहरे की ओर देखती है। और फिर मुँह घुमा लेती है। उसके होंठ काँपने लगते हैं और जोर से रोने लगती है, "आमार केऊ नाई, अल्ला ! आमार केऊ नाई !"

सुबेद अली उसके पास में बैठकर दिलासा देते हैं। फिर पर्स निकलकर 10 रु. का नोट उसे देते हैं, "माँ, तुम यहाँ नहीं रहो। कम-से-कम रघुरामपुर चली जाओ। यहाँ तो रात को जंगली जानवर आ सकते हैं। जंगल है बिलकुल।"

वह जड़ बैठी है। दस का नोट भी उसके हाथ से गिर गया है। सिराज साहब आगे बढ़कर नोट उसके आँचल में बाँध देते हैं। सुबेद चुपचाप बैठे उसके हाथ थपकाकर दिलासा दे रहे हैं। किसी के पास, बोलने के लिए शब्द नहीं। सिर्फ बालकृष्ण के कैमरे का एक फ्लैश और फिर वही नीम अँधेरा और खामोशी।

सुबेद का चेहरा बेहद संजीदा हो आया है। करीम ने सर झुका लिया। शास्त्री जी चुप हैं। मैं अलग हट आया हूँ, क्योंकि मेरे गले में अजब तरह से रुलाई का वेग उमड़ रहा है।

गाँव पीछे छूट गया है और हम खामोश चल रहे हैं। और एक बार फिर सन्नाटे को कँपाता हुआ वह आर्तनाद, "अल्ला ! आमार केऊ नाई। बाबा ! आमार केऊ नाई !" और फिर सब खामोश।

सब खामोश हैं, मुर्दा ! बिलकुल जड़ ये पीछे छूटते गाँव, ये खेत ये पोखर, ये टीले ये घिरते अँधेरे में विचित्र आकृतिवाले झाड़-झंखाड़, सब चुप हैं। सिर्फ एक प्रेत स्वर हमारा पीछा कर रहा है, 'बाबा, आमार केऊ नाई।' इतिहास की सबसे जीवन्त, सबसे प्रखर, सबसे गहरी क्रान्ति की समूची ट्रेजेडी क्या इतने थोड़े से शब्दों में कभी व्यक्त हो पाई थी, 'आमार केऊ नाई ! केऊ नाई, केऊ नाई।' न संयुक्त राष्ट्र, न दुनिया की हर समस्या पर बोलनेवाले बड़े-बड़े बुद्धिजीवी, न मार्क्सवादी सरकारें, न प्रजातन्त्री सरकारें, न ईरान, न अरब। 'अल्ला ! आमार केऊ नाई ! कितनी बेवसी कितनी ग्लानि से भर उठा हूँ मैं ! क्यों ? मैं क्यों ?

और अब सिराज साहब विदा लेंगे। वही पोखर आ गई है, जहाँ से हम जीप से उतरे थे। फिर वही नुक्कड़ पर खड़े लोग, वही बातें इधर फिर गोले गिरे थे। लेकिन फिर पोखर किनारे की जिन्दगी पूर्ववत् चलने लगी।

और सहसा बालकृष्ण ने कैमरा सँभाला। मैंने देखा और चौंक पड़ा। क्या ऐसा हो सकता है कि किसी पेंटिंग की कोई छवि सचमुच जिन्दा हो उठे। 'बाँगला देश अंक' में हमने पल्ली-प्राण चित्र छापा था। पूर्व बंगाल के अनिनन्द्य सौन्दर्य का प्रतीक वह सुन्दर ग्रामवधू घड़ा लिये पोखर में नहाती हुई। उसकी पीठ है और चेहरे की जरा-सी झलक। विश्वास नहीं होता, लेकिन चालीस-पचास वर्ष बाद वही स्त्री पोखरे में चली आ रही है, बिलकुल वैसी ही देहयष्टि, वही ग्रामीण भोलापन !

लेकिन इस बार उसके हाथ में घड़ा नहीं है। आजादी का युद्ध उस पर अपनी छाप छोड़ गया है। उसके हाथ में ग्रेनेड रखने का एक सैनिक डब्बा है, जिसमें तार बाँधकर उसे पानी भरने का बर्तन बना लिया गया है। और वह पाकिस्तानी तोपों की गोलाबारी में बेखौफ चली आ रही है, मुक्ति फौज के लिए पानी भरकर ले जाने के लिए।

मन आया, दौड़कर वापस जाऊँ। उस बुढ़िया से कहूँ, "माँ, तुम अकेली नहीं हो। देखो तुम्हारी बेटी वहाँ है, उसके हाथ में ग्रेनेड का डब्बा है, माँ तुम्हारे 60,000 बेटे हैं। मुजीब की फौज में लड़ रहे हैं। माँ, के बोले तुमि अबले ! बहुबलधारिणीम्..."

लेकिन जानता हूँ कि वह फटी-फटी आँखों से देखती रहेगी और फिर रो पड़ेगी—'बाबा ! आमार केऊ नाई ! चुपचाप पोखर किनारे खड़ा रहता हूँ। उसमें प्रतिबिम्ब होता आकाश देख रहा हूँ। बाताश उसके पानी में डेऊ (लहर) खेल रहा है। तोमार आकाश तोमार बाताश आमार प्राणे..."

धीरे-धीरे चुपचाप थके पाँव, उदास मन, आकर जीप पर बैठ जाता हूँ।

अन्त में सेना नायक के समक्ष

अब यह यात्रा-चक्र पूरा होने को है बस एक कार्य बाकी है। विदा लेने के पहले सेना नायक से मिलना !

कई दिनों की लगातार बारिश खुलने के बाद की एक शाम, गहराती हुई। बाहर के अहाते में आम पर कोई एक पाखी बोलकर चुप हो गया है और हम इन्तजार कर रहे हैं सेनाध्यक्ष से मुलाकात का। कितने ही सवाल हैं मन में मुक्तिवाहिनी की गतिविधि को लेकर, लेकिन सब सवालों के ऊपर एक गहरी उत्सुकता है उस वयोवृद्ध योद्धा के दर्शन करने की, जिसने नाटो-सीटो, अमरीका और चीन जैसी महाशक्तियों के आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित खूँखार पाकिस्तानी फौजों को लुंगी और फटी बनियानों और पुरानी जंग खाई बन्दूकों वाले गुरिल्ला सैनिकों के सहारे न केवल चुनौती दी है, वरन् उनको मुँहतोड़ जवाब दिया है—जमीन पर भी, समुद्रों पर भी। उनका एक चित्र देखा था स्वतन्त्र बाँगला देश सरकार की स्थापना के अवसर पर, कैसे होंगे वे प्रत्यक्ष में ?

प्रारम्भिक कार्यवाहियों के बाद उनके सामने ले जाए गये हम। सामने की दीवार पर टँगे बाँगला देश के विशाल नक्शे के सामने चित्र द्वारा परिचित सफेद मूँछोंवाले जिस व्यक्ति ने उठकर प्रेमपूर्वक स्वागत किया वे थे कर्नल उस्मानी। युद्ध के कठोर अनुभवों की रेखाओं में जिस मृदुल मानवीयता का भाव घुला-मिला था उससे एक अजीब सम्भ्रमपूर्ण आदर मन में अपने आप उभर आया। धर्मयुग के पिछले अंकों में प्रकाशित सारी सामग्री उलटते-पलटते वे बार-बार पिछली यादों और सन्दर्भों में डूब जाते। अनेक छपे हुए चित्रों की घटनाओं के सन्दर्भ बताते हुए वे 'पश्चिमी पाकिस्तान भी टूट रहा है' वाले अंक के मुख पृष्ठ पर जो लड़का भुट्टो के विरुद्ध पोस्टर लिये खड़ा है, उस पर कुछ देर रुके। फिर बोले, "यह घटना मेरे सामने हुई थी, बाद में उन्होंने इस लड़के की हत्या कर दी, आपको मालूम है ? उसके बाद ही उन्होंने रात को मेरे घर पर आक्रमण किया था। लेकिन भाग्य की बात है कि मैं उस समय तक

घर से जा चुका था। और मैं तो एक था, उन्होंने हमारे देश के साथ क्या नहीं किया, लेकिन अब हमारी मुक्तिवाहिनी जवाब दे रही है।" और नूतनतम समाचार यह था कि 13 समुद्रगामी जहाज मुक्तिवाहिनी ने डुबे दिए थे, जिनमें अनेक 15,000 टन के थे। अपनी मुक्तिवाहिनी की नवगठित जल सेना की इस नई उपलब्धि पर उन्हें गर्व-मिश्रित प्रसन्नता थी।

बांग्ला देश का यह वयोवृद्ध योद्धा नेता उस रात को पाकिस्तानी दरिन्दों के हाथ नहीं पड़ा, यह सचमुच भाग्य की बात थी। नियति को संसार के एक अभूतपूर्व क्रान्ति-युद्ध का संचालन उनके हाथ सौंपना था। आज सचमुच वे अपने बांग्ला देश के लिए वही तो कर रहे हैं जो कभी सुभाष ने भारत के लिए किया था।

लेकिन यह बात सुनकर उनका वे तेजस्वी प्रदीप्त चेहरा एक गम्भीर विनय और समर्पण से नत हो आया। वे बोले, "नहीं, मैं तो कुछ नहीं कर रहा। सारा श्रेय मेरे बहादुर बच्चों को जाता है। मुक्तिवाहिनी के जवान, किसान, विद्यार्थी जो मोर्चे पर लड़ रहे हैं उनके पास पूरे साधन नहीं हैं, पर संकल्प है, साहस है, दिलेरी है। दुश्मन बहुत ताकतवर है। आज बांग्ला देश में पाकिस्तानी सेना के 5 डिवीजन तैनात हैं। अमरीका और चीन के दिये हुए सारे अस्त्र-शस्त्रों के साथ। हमारे पास सच पूछिए तो सचाई, इन्साफ और लगन के अलावा क्या है ? यही हमारे हथियार हैं।"

वे एक क्षण रुके। "मैं 1967 में रिटायर हुआ और मैंने तय किया कि अब अपनी वृद्धास्था शान्ति से बिताऊँगा। मैं यँ भी शान्त जीवन का विश्वासी रहा, लेकिन शेख ने सन् 67 में मुझे अवामी लीग में बुलाया।" और सहसा उनकी आवाज में एक तरलता आ गई—“संचालक मैं नहीं, मैं केवल अनुयायी हूँ। हम सबका नेता केवल एक है शेख मुजीब। वे एक बहुत ऊँचे पैराए के इन्सान हैं, उनकी देशभक्ति बहुत गहरी है। उन्होंने मुझ जैसे कितने ही लोगों को नई प्रेरणा, नया जीवन दिया है। उनके आह्वान ने हजारों सैनिक बना दिये, लाखों जीवन दान करनेवाले बलिदानी, ये सब उनका निर्माण हैं। उन्हीं के द्वारा दिखाए गये भविष्य के निर्माण की कोशिश हम सब कर रहे हैं। यह एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी है, जो वक्त ने मेरे दुर्बल कन्धों पर डाल दी है। यह मेरे लिए बहुत बड़ा सम्मान है। लेकिन मैं अपनी सीमाएँ जानता हूँ। मेरा देश मेरे लोग गरीब हैं। यह ठीक है कि हमारे देश के पास इतना प्राकृतिक वैभव है कि उसे सही विकास देने पर हमारे देश की सम्भावनाएँ बहुत हैं, पर अभी तो पाकिस्तान द्वारा शोषण के कारण हम विलकुल साधनहीन से हैं।

“वैसे इतिहास में यह पहला मौका है, जब कोई जनता और उसकी सेना लोकतान्त्रिक पद्धति से चुनी हुई सरकार की स्थापना के लिए, मुक्ति के लिए, उपनिवेशवाद की अमानवीयता के विरुद्ध इस्लाम के नाम पर किए जाने वाले नितान्त गैरइस्लामी आचरण के विरुद्ध संघर्ष कर रही हो। यही हमारी मुक्तिवाहिनी की अन्तर्निहित शक्ति है।"

‘यहाँ पर हम आपसे पूर्णतया सहमत हैं।’ हमने कहा, “लोग, चाहे वे राजनेता

हों या बुद्धिजीवी, अभी बाँगला देश-क्रान्ति के और आपके मुक्तवाहिनी के गुरिल्ला युद्ध के वास्तविक ऐतिहासिक महत्त्व को समझ नहीं पा रहे हैं। अभी तक इतिहास में जितनी क्रान्तियाँ हुई हैं, जितने गुरिल्ला युद्ध हुए हैं, उनमें एक छोटा क्रान्तिकारी अल्पमत रहा है, जिसने बहुमत को संचालित करनेवाली स्थापित शासन-व्यवस्था के विरुद्ध अभियान किया है। लेकिन यह संसार के इतिहास में पहला गुरिल्ला युद्ध है जो अल्पमत क्रान्तिकारियों का नहीं, वरन चुनाव की प्रजातान्त्रिक प्रणाली द्वारा विशाल बहुमत का समर्थन प्राप्त कर चुके हैं। उसके पीछे प्रजातान्त्रिक प्रणाली की सच्ची प्रामाणिकता है, जो आज तक किसी गुरिल्ला अभियान के साथ नहीं रही। माओ का, हो ची मिह का, अल्जीरिया का और क्यूबा के कास्त्रो का गुरिल्ला युद्ध जाग्रत, सक्रिय अल्पमत का युद्ध था, जिसने धीरे-धीरे बहुमत को जागृत किया। इस दृष्टि से उन्होंने गुरिल्ला युद्ध की जो रणनीति निर्धारित की, वह उनकी सीमाओं के अनुसार थी, लेकिन क्रान्तियों के इतिहास में अद्वितीय बहुमत समर्थित बाँगला देश का गुरिल्ला युद्ध उन सबसे अलग है। क्या इस दृष्टि से आप अपने गुरिल्ला युद्ध में कुछ नीतिगत या चरित्रगत विशेषता प्रतिष्ठित कर रहे हैं ?”

“यह आपका विश्लेषण सही है। हाँ, यह बिल्कुल सच है कि हमारा गुरिल्ला युद्ध किसी छिपे भूमिगत अल्पमत का युद्ध नहीं है। वह बहुसंख्यक जनता की इच्छाओं-आकांक्षाओं की सक्रिय अभिव्यक्ति है। हमने पहले लोकतान्त्रिक पद्धति के द्वारा अपना निर्णय लिया। अपना लक्ष्य निर्धारित किया जब नितान्त पशुबल और शस्त्र-शक्ति के आधार पर हमारा लोकतान्त्रिक अभियान कुचल दिया गया, तब अपने आप अपने स्वतन्त्र निर्णय से सारा बाँगला देश सशस्त्र प्रतिरोध में एकजुट होकर उठ खड़ा हुआ। छावनियों में रहनेवाले सैनिक भी, विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्र भी, झोंपड़ियों में रहनेवाले किसान भी, जिसे जो भी शस्त्र मिला, पुरानी बन्दूकें भी, खेत काटने के दाओ-हँसिया भी, लाठियाँ और बाँस भी। और खयाल कीजिए किस दुश्मन के खिलाफ, जिसके पास बममार हवाई जहाज भी हैं। टैंक भी हैं, युद्धपोत भी हैं। इसीलिए ऐसे दुश्मन से अब मुँह दर मुँह मोर्चा लेने के बजाय हमें चतुराई और कौशल का सहारा लेना पड़ा। हमारी पूरी गुरिल्ला रणनीति इसी के अनुरूप ढल रही है। और हमें जो आशाजनक सफलता मिल रही है वह इसीलिए कि यह किसी छोटे गिरोह की लड़ाई नहीं है, यह पूरी जनता की लड़ाई है। यह ऐसी उपनिवेशवादी हुकूमत के खिलाफ है जो केवल हमारा शोषण ही नहीं करती, हमारी पूरी सांस्कृतिक सत्ता का नाम-निशान मिटाने पर तुल गई है। इसलिए हमारी मुक्तिवाहिनी का युद्ध गुरिल्ला युद्ध इसी अर्थ में है कि हम अपने से बहुत श्रेष्ठ युद्ध-क्षमतावाले दुश्मन से बहुत साधारण शस्त्रों के सहारे युद्ध कर रहे हैं। इसीलिए हमारा रणकौशल सामान्य युद्धभूमि का रणकौशल नहीं है। लेकिन इस अर्थ में वह गुरिल्ला युद्ध नहीं है कि वह अपने ही देश के एक संगठित अल्पमत द्वारा स्थापित बहुमत समर्थित व्यवस्था के विरुद्ध छिपकर चलाया जानेवाला युद्ध हो। सारा देश, पूरी जनता हमारे साथ है, हमारे युद्ध में सहभागी है।”

“निस्सन्देह यह संसार के इतिहास में अपने ढंग की अकेली मुक्ति फौज है, नहीं मुक्तिवाहिनी”, हमने अपनी बात का संशोधन किया, “जो अनेक तत्त्वों के स्वतः प्रेरित निर्णय से संगठित होती गई। हम यह जरूर जानना चाहेंगे कि अब मुक्तवाहिनी का जो रूप है, उसमें कौन से और किस प्रकार के तत्त्व सम्मिलित हैं ?”

“हाँ, संरचना की दृष्टि से मैंने अपनी मुक्तिवाहिनी के दो प्रमुख घटक निर्धारित किये हैं। पहला, जिसको ‘नियमितवाहिनी’ कहा जाता है और दूसरा जिसे हम ‘गणवाहिनी’ कहते हैं। नियमितवाहिनी में वे लोग हैं जिन्हें किसी प्रकार का पूर्वशिक्षण प्राप्त है, जो ‘होल टाइम्स सर्विस रेगुलर्स’ रहे हैं। सबसे पहले इसमें आते हैं ईस्ट बंगाल राइफल के सैनिक, जिन्हें बंगाल टाइगर्स कहते थे। फिर ई.पी.आर. (ईस्ट पाकिस्तान राइफल्स) अर्थात् सीमा सुरक्षा दल के सैनिक फिर सिविल आर्म फोर्स, सिविल पुलिस, मुजाहिद या अन्य सहायक सैन्य संगठन के लोग। ये सब नियमितवाहिनी में आते हैं। इन्हीं में जलसेना तथा वायुसेना के नियमित सैनिक, आर्टिलरी, सिग्नैल्स तथा सैन्य इंजीनियर भी सम्मिलित हैं।

“दूसरा घटक है, ‘गणवाहिनी’ इसमें वालंटियर्स सिविलियंस हैं। छात्र, मजदूर, किसान, भविष्य में यही ‘गणवाहिनी’ हमारा मुख्य स्थाई आधार बनेगी। हम बहुत बड़ी सेना रख सकने की स्थिति में नहीं हो पायेंगे, लेकिन एक बहुत समर्थ, बहुत सशक्त नियमित सेना का आधारभूत तत्त्व यही ‘गणवाहिनी’ के लोग होंगे, क्योंकि जिस समाजवादी व्यवस्था का निर्माण हमें अपने देश के लिए करना है ये उसी के प्रति प्रतिबद्ध होंगे, अपने अवाम को गरीबी से मुक्त कर उनके जीवन स्तर में सुधार लाने के दायित्व के प्रति ये सचेत हैं और रहेंगे।”

“यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। लेकिन यहाँ पर हम एक सवाल उठाना चाहेंगे। ये जो ‘गणवाहिनी’ के योद्धा हैं उनकी मानसिकता में देशकाल के प्रति एक जागरूकता है। वे अपने संग्राम का ऐतिहासिक और सामाजिक सन्दर्भ समझते हैं, लेकिन इनसे भिन्न मानसिकता इन ‘नियमितवाहिनी’ के लोगों की होगी, जो आजीविका के लिए सेना में भर्ती हुए और पाकिस्तानी अनुशासन का पालन करते रहे। क्या आपको नहीं लगता है कि इन दो मानसिकताओं के कारण कोई अन्तर्विरोध मुक्तवाहिनी में कहीं पनप सकता है। आखिर इन दोनों घटकों में आप एक अन्तर्ग्रथन (इटीग्रेशन) कैसे लाएँगे ?”

“बहुत आसान है। इसलिए कि ‘नियमितवाहिनी’ के सैनिकों की सामाजिक पृष्ठभूमि ने इस अन्तर्ग्रथन के लिए उन्हें पहले ही मानसिक रूप से तैयार कर दिया था। पाकिस्तानी सेना में जो बंगाली टुकड़ियाँ थीं, उन्हें पिछले पचीस वर्षों में विषमता सहनी पड़ी है। पश्चिमी पाकिस्तान पूर्वी भाग के प्रति जो अन्याय करता रहा है, उसका शिकार बंगाली सैनिकों को भी बनना पड़ा है। ‘इस्लामी ब्रदरहुड’ की जितनी बातें पाकिस्तान के हुक्काम करते रहे, वह सब पाखण्ड थीं। यह बात दूसरी थी कि ये सैनिक थे, अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान। देशभक्ति के कारण पाकिस्तानी व्यवस्था

को अखण्डित रखने की चेष्टा में साथ देते रहे, लेकिन फिर भी दोनों खण्डों में जो अन्तर्विरोध था, उससे वे भलीभाँति परिचित थे।

“सच बात यह है कि पूर्व और पश्चिम को मिलाकर एक पाकिस्तानी राज्य बनाने की कल्पना थी ही नहीं। सन् 40 में इस्लामिक स्टेट्स (राज्यों) की बात थी। एक राज्य बनाना गलती थी और बहुत कटु अनुभवों के बाद उचित यही था कि इस गलती को सुधार दिया जाए। हमने यही कोशिश की कि यह गलती शान्तिपूर्ण ढंग से सुधार जाए। इसीलिए चुनाव हुए और चुनावों का निर्णय स्पष्ट है। इस सन्दर्भ में भी हमारे सैनिक स्पष्ट थे। बाँगला देश का आह्वान उन्होंने हृदयंगम किया हुआ था। आततायी शोषक को हटाया जाए, बाँगला देश स्वाधीन हो। इसमें दो मत नहीं थे। यूँ थोड़े-बहुत क्विसलिंग (देशद्रोही जयचन्द) हो सकते हैं, लेकिन बहुत कम।

“इसमें कोई शक नहीं कि सेना को राजनीति से पृथक् रहना चाहिए। लेकिन इस कथन में राजनीति का अर्थ है दलगत राजनीति लेकिन देशभक्ति दलगत राजनीति से ऊपर होती है। हमारी सेनाएँ देशभक्त हैं और इस मानसिक भूमि पर हमारी ‘नियमितवाहिनी’ और ‘गणवाहिनी’ में पूर्ण एकात्म और अन्तर्ग्रथन है।”

“अच्छा, यह तो हुई उनकी मानसिकता और आन्तरिक तैयारी। अब एक नाजुक सवाल। शस्त्रास्त्रों की क्या स्थिति है। ? क्या है आपके पास और क्या नहीं है ? किन चीजों की जरूरत है ?”

“मैं संक्षेप में यही कह सकता हूँ कि शस्त्रास्त्रों की स्थिति बहुत असन्तोष जनक है। ‘मुक्तवाहिनी’ में (रेगुलर फोर्सेज के वे लोग जो पहले पाकिस्तानी सेना में थे) के दस्ते हैं। उन्होंने विद्रोह करके बाँगला देश के पक्ष में आते समय कुछ पाकिस्तानी शस्त्रास्त्र अपने कब्जे में कर लिये थे। इनमें कुछ ऐसे भी शस्त्रास्त्र हैं, जो चीनियों ने पाकिस्तान को दिए थे, वे शस्त्रास्त्र हल्के हैं, मजबूत हैं, अच्छी मारवाले हैं, मगर बहुत कम हैं। कुल मिलाकर हम जैसा घमासान युद्ध आज कर रहे हैं उसके अनुपात से हमारे पास हथियारों की बेहद कमी है।

“हमें दो प्रकार के हथियारों की सख्त जरूरत है। अपनी सुप्रशिक्षित किन्तु छोटी ‘नियमितवाहिनी’ के लिए दूर तक गहरी मार करनेवाले शस्त्रास्त्रों की तथा अपनी विशाल संख्यावाली ‘गणवाहिनी’ (गुरिल्ला योद्धाओं) के लिए स्वचालित (आटो वेपंस) शस्त्रास्त्रों की। हमारे पास दोनों की सख्त कमी है। यह कमी इस दृष्टि से और भी घातक है कि हमारा दुश्मन पाकिस्तान कई विदेशी शक्तियों की भरपूर सामरिक सहायता पा रहा है और उसके पास आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों का विशाल भण्डार है, जो और भी भर रहा है। उसके पास ट्रकों और हवाई जहाजों की लाइनें लगी हैं। जो उसे रोज शस्त्रास्त्र पहुँचा रही हैं।” और यहाँ पर कर्नल उस्मानी एक क्षण को रुके और दीवार की ओर शून्य दृष्टि से देखते हुए बोले, “उनके पास भयानक मारवाले नवीनतम युद्धक और ब्रमवर्षक विमान हैं हमारे पास साधारणतम एण्टीएयरक्राफ्ट (विमान भेदी) गन भी नहीं हैं।” उनकी इस बात पर और जिस मर्मस्पर्शी उदासी के साथ यह बात कही

गई थी, हमारे चेहरे पर विवशता और ग्लानि की एक छाया उभर आई, शायद उस अनुभवी वयोवृद्ध योद्धा ने उसे भाँप लिया और तुरन्त स्नेहभरे स्वर में बोले, “लेकिन हम नितान्त अकेले हों, यह बात नहीं है। अनेक देश और सबसे बढ़कर हमारे निकटतम पड़ोसी और मित्र भारत ने हमें बहुत नैतिक समर्थन दिया और अपनी तमाम समस्याओं के बावजूद हमारे इतने शरणार्थी नागरिकों को मेहमानों की तरह रखा और देखभाल की। हम भारत के बहुत आभारी हैं, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपने सभी मित्रों के। वैसे यह भी ठीक भी है कि हमें अभी बहुत सहायता की आवश्यकता है, शस्त्रास्त्रों की खासतौर से। हमें एक ऐसे दुश्मन का मुकाबला करना है जो आधुनिकतम और बहुत ही खतरनाक अस्त्र-शस्त्रों से सर से पाँव तक लैस है।”

“भारत की जनता मुक्तिवाहिनी के रोमांचक, साहसपूर्ण स्वातन्त्र्य युद्ध के साथ पूरे हृदय से है। वे अपनी साधनहीनता के बावजूद तन-मन-धन से मुक्ति योद्धाओं की सहायता करना चाहते हैं, किन्तु उनके सामने अभी यह स्पष्ट नहीं कि धन या वस्तु किस रूप में वे सहायता कर सकते हैं और किस प्रकार वह सहायता आपको पहुँचे ?”

“हम इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि भारतीय जनता के मन में हमारे संग्राम के लिए कितना उत्साह है। उनकी यह भावना बहुत बल प्रदान करती रही है जहाँ तक सहायता का प्रश्न है, हमें इस वक्त दो प्रकार की सहायताएँ चाहिए—एक, हमारे योद्धाओं के लिए हर प्रकार की चिकित्सा और औषधि-सम्बन्धी सहायता। हर तरह की दवाएँ, सर्जरी के औजार, रक्त कोष, विटामिन की गोलियाँ, एण्टोबायोटिक्स। ये तमाम चीजें बाँगला देश सरकार को दीजिए और बाँगला देश सरकार का स्वास्थ्य विभाग इन्हें आवश्यकतानुसार वितरित करे। यह हमारी पहली आवश्यकता है। दूसरे, भारतीय मुद्रा में मिलनेवाली धनराशि भी हमारे लिए बड़ी उपयोगी साबित हो सकती है। हमारी सरकार उस धन से मुक्तिवाहिनी के अधिकारियों के परामर्श से आवश्यक सामग्री खरीद सकती है।”

“कुछ दिनों पहले आपके सेक्टर कमाण्डरों की एक कान्फ्रेंस हुई थी, ऐसा सुना गया था यह भी सुना गया था कि उसमें बाँगला देश की घनघोर वर्षा-ऋतु का भरपूर लाभ उठाने की योजना बनी थी। क्या आप उसका लाभ उठा सके ?”

“अवश्य, आप उन क्षेत्रों में गये हैं, आप स्वयं देखें कि हमारी मुक्तिवाहिनी क्या कर रही है। इसलिए मैं अधिक कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन एक तथ्य ही तस्वीर की एक झलक पेश करता है। इस मानसून का लाभ उठाकर हमारे मुक्ति योद्धाओं ने शत्रु पर भरपूर चारों की हैं और इस सीमा तक सफलता मिली है कि अगर हमारा एक योद्धा खेत रहा, तो एक के अनुपात में उनके 40 सैनिक मारे गये हैं।”

“लेकिन मानसून के बाद क्या होगा ? धरती सूखने और आसमान खुल जाने के बाद पाकिस्तानी सेना स्थल और वायु मार्ग से पुनः आप पर आक्रमण करने की चेष्टा करेगी। उसका मुकाबला करने के लिए क्या आपने तैयारियाँ कर ली हैं ?

“वायु मार्ग का उपयोग अभी भी वह मौका मिलने पर कर लेता है। अभी दो

दिन पहले का दिल दहला देनेवाला समाचार था कि उसने मेमनसिंह क्षेत्र में नापाम बमों का प्रयोग किया है। मानसून के बाद वह भारत पर आक्रमण कर सकता है और यदि उसने आक्रमण करने का निश्चय किया, तो शायद त्रिपुरा को सबसे पहला लक्ष्य बनाएँ, क्योंकि त्रिपुरा तीन ओर से घिरा हुआ है और शेष भारत से त्रिपुरा पहुँचने का मार्ग भी लम्बा और घुमाव वाला है। उधर पंजाब, कश्मीर या आपके राजस्थान की सीमाओं पर भी वह शरारत कर सकता है। वास्तव में हर कायर अत्याचारी जब बिलकुल निराश हो उठता है, तो वह कैसे भी दुष्टतापूर्ण प्रतिघात पर उतर आता है। दुश्मन यानी पाकिस्तान मौके की घात में बैठा है। ज्यों ही जमीन सूखकर इतनी कड़ी हो जायेगी कि टैंक और बख्तरबन्द गाड़ियाँ चल सकें, वह आगे बढ़कर हमला करेगा और केवल मुक्तिवाहिनी को नष्ट करना चाहेगा, वरन बाँगला देश की सीमाओं को पार कर वह भारत पर आक्रमण करने की पूरी चेष्टा करेगा। इसमें उसका मुख्य उद्देश्य यह होगा कि वह बाँगला देश की समस्या को उलझा दे और उसे भारत-पाक संघर्ष का रूप दे दे। भारत-पाक संघर्ष का रूप देने में उसकी चाल यह है कि वह फिर तुरन्त अपने मित्रों की मदद से इसे संयुक्त राष्ट्रसंघ में ले जाए और अपनी बला संयुक्त राष्ट्रसंघ के मध्ये मढ़कर बाँगला देश के बुनियादी सवाल से सारी दुनिया का ध्यान अन्यत्र बाँटा देने में सफल हो जाए।

“वैसे सच बात तो यह है कि इस अत्याचारी दुश्मन ने इन्सानियत को बाला-ए-ताक रखकर संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में अंकित सारे बुनियादी मानवीय अधिकारों का हनन किया है। हमारे सन्दर्भ में तो इसका अपराध और भी जघन्य है। एक अल्पसंख्यक फौजी गुट ने पूरी जनता को दमन, कत्लेआम, बलात्कार, आगजनी और घोर पाशविक नृशंसताओं का शिकार बनाया, महज इसलिए कि वह उस जनता के उस प्रजातान्त्रिक फैसले को लागू नहीं करना चाहता था जो वैधानिक ढंग से, चुनाव के माध्यम से बहुमत ने दिया था। उस चुनाव में जो वहाँ पहली बार हुए थे, वहाँ, जो पाकिस्तान था। जी हाँ, पाकिस्तान था, यह मैं खूब सोच-समझकर कह रहा हूँ। क्योंकि वह था, अब नहीं रहा। 25 मार्च 71 की रात को पाकिस्तान टूट गया।

“लेकिन उसकी साजिशें और हरकतें अभी खत्म नहीं हुई हैं। बाँगला देश के जिन हिस्सों पर उसका कब्जा है वहाँ से वह त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल के कुछ क्षेत्रों पर आक्रमण करने की चेष्टा करेगा। पश्चिम में जैसा मैं कह चुका हूँ वह पंजाब, कश्मीर और राजस्थान की सीमाओं पर हमला करने की कोशिश करेगा। लेकिन कुछ क्षेत्रों में वह केवल दूरगामी हमले कर भारत के यातायात के साधनों पर चोट करने की कोशिश कर सकता है। उसकी एक और शरारत यह होगी कि बाँगला देश के पाक-अधिकृत क्षेत्रों में वह फिर बहुत बड़े पैमाने पर अत्याचार और नरसंहार शुरू करके आतंक फैलाए ताकि और अधिक शरणार्थियों को भारत की ओर ठेल सके। उसकी एक कोशिश यह भी होगी कि बलात्कार और नरसंहार कर जिन अभागों की सारी धन-सम्पत्ति छीनकर उसने शरणार्थी बनाकर भारत की ओर भेज दिया है, उन

अभागों के बीच अपने गुप्तचर भेजकर अनावश्यक तनाव और अशान्ति फैलाए। और फिर उसका अन्तिम अस्त्र यह होगा कि अपने पंचमांगियों द्वारा विशेष रूप से सीमा क्षेत्रों में साम्प्रदायिक दंगे कराए, ताकि सुरक्षा-प्रबन्ध और सुरक्षा-सामग्री के व्यवस्थित यातायात में बाधा पहुँचे। शत्रु बहुत कुटिल और अमानवीय है, वह यह सब कर सकता है और हमें हर तरफ से चौकसी बरतनी होगी। हम हर तरफ चौकसी बरतने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। दुश्मन धूर्त है, कुटिल है। ताकतवर भी है, पर हमारा पक्ष न्याय का है और खुदा हमारा रक्षक है, जीत हमारी होगी !

“निस्सन्देह जीत आपकी होगी। हम सब दिन-रात दुआ करते हैं कि आपकी जीत हो, लेकिन छोटा-सा, अटपटा-सा, सवाल आपकी इजाजत से करना चाहूँगा। अक्सर यह देखा गया है कि सैन्यशक्ति से पाई जाने वाली विजय एक-दूसरे प्रकार की सैनिक तानाशाही का रूप भी ले लेती है। क्या हम यह मान लें कि मुक्तिवाहिनी इसका अपवाद होगी और विजय पाने के बाद भी आपके जांबाज मुक्तिसैनिक उसी प्रजातन्त्र और धर्मनिरपेक्षता के प्रति निष्ठावान रहेंगे, जिसके लिए वे आज जान हथेली पर लेकर लड़ रहे हैं। बदल तो नहीं जायेंगे ?”

“कतई नहीं, मैं आपको इसका यकीन दिलाता हूँ। इसकी वजह भी जान लीजिए, अच्छी तरह समझ लीजिए। हमारे मुक्ति योद्धा वेतनभोगी, सत्ताकामी सिपाही नहीं हैं। कुछ आदर्शों से प्रतिबद्ध हैं। भाड़े के टट्टू नहीं हैं। उन्हें वेतन तो दूर हम पहनने के लिए वर्दी और जंगल-बूट तक नहीं दे पाए हैं। गंजी और लुंगी में, नंगे पैर, घनघोर बारिश में जोंकों और साँपों भरे दलदलों में, घनान्धकार में वे पुरानी राइफलों या हथगोले लिये निकल जाते हैं, क्यों ? अपनी मातृभूमि की इज्जत बचाने के लिए। इसलिए कि उनकी मातृभूमि पर फिर से गुलामी की वेड़ियाँ न जकड़ दी जाएँ; इसलिए कि फिर दुश्मन लाखों का नरसंहार न करने पाये, बुनियादी मानव अधिकारों को न कुचलने पाए। वे जनता से कटे किसी हुक्मरान तानाशाह के तनख्वाहखोर सिपाही नहीं। वे उस विशाल जनशक्ति के अविभाज्य अंग हैं, जिसे हम बाँगला देश कहते हैं। उन्होंने इसीलिए तो हथियार उठाये हैं कि बाँगला देश की समूची जनता की जो आशाएँ-आकांक्षाएँ हैं उनको वे अपने कार्य द्वारा वास्तविकता में परिणत कर सकें। और फिर हमारी ‘गणवाहिनी’ जो हमारे युद्ध की प्राणशक्ति है, ‘नियमितवाहिनी’ से कई गुना अधिक है और उससे भी कई गुना अधिक है बाँगला देश का नागरिक योद्धा और यह प्रजातन्त्र और धर्मनिरपेक्षता का सपना तो उसी का है। सैनिक तानाशाही के खिलाफ ही तो उनकी लड़ाई है। नहीं, किसी भी किस्म की सैनिक तानाशाही के जारी रहने का कोई सवाल ही नहीं उठता।”

एक क्षण वे रुके। इस बीच में कोई अत्यावश्यक सैनिक सन्दर्भ आया था। उसे सुनकर आवश्यक निर्देश देकर उन्होंने अपनी बात जारी रखी—“सैनिक तानाशाही ? देखिए, हमारे बाँगला देश की जनता महान है। वह गरीब है, लेकिन उसका इतिहास स्वतन्त्रता के लिए अनवरत संघर्ष, अद्भुत शौर्य और महानतम बलिदानों का इतिहास

रहा है। वे कभी भी यह नहीं सहन करेंगे, एक क्षण को नहीं सहन करेंगे कि फिर कोई सैनिक तानाशाही उन पर आरोपित की जाए। प्रजातन्त्र और धर्मनिरपेक्षता उनके इस जीवन-मरण संग्राम की रीढ़ है। मैं आपको याद दिलाना चाहूँगा कि 7 नवम्बर, 1970 को बाँगला देश के नागरिक आम चुनावों में मतदान के लिए गये और अपना निर्णय विशाल बहुमत से उन्होंने अवामी लीग के घोषणापत्र में निरूपित सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम के पक्ष में घोषित किया। अवामी लीग के घोषणापत्र में बाँगला देश का राष्ट्रीय लक्ष्य यही बताया गया है कि एक धर्म निरपेक्ष प्रजातान्त्रिक समाज-व्यवस्था कायम हो, जिसका आधार समाजवाद हो। और आप तो जानते ही हैं कि इस कार्यक्रम को 169 में से 167 पार्लियामेंट सीटों का समर्थन प्राप्त हुआ और कुल डाले हुए वोटों के 80 प्रतिशत वोट अवामी लीग के पक्ष में थे। अतः इस महान जन-निश्चय के विरुद्ध यदि कोई जाने की हिम्मत करेगा, तो वह अपनी शामत ही बुलाएगा। लेकिन ऐसा कोई करेगा ही नहीं। जहाँ तक मैं भविष्य को देख रहा हूँ, मेरी पूरी आस्था है कि मुक्तिवाहिनी की विजय के बाद धर्मनिरपेक्षता और जनतन्त्र के दृढ़ आधार पर समाजवाद के आने की प्रक्रिया और भी तीव्र होगी।”

इण्टरव्यू खत्म हो चुका था। निर्धारित समय से कहीं अधिक समय हम ले चुके थे। हम धन्यवाद देते हुए उठे, तो कर्नल उस्मानी बहुत गम्भीर स्वर में बोले, “एक बात और जरूर लिख लीजिए, मैं मन से बहुत गहरी धार्मिक आस्था वाला इन्सान हूँ। हम जिन मूल्यों के लिए लड़ रहे हैं वे अल्लाताला के निर्देशों के अधिक अनुकूल हैं, पवित्र कुरान इन्हीं उदात्त आदर्शों का उपदेश देता है !”

मेरे सगे बड़े भाई : शेख मुजीब

(बम्बई में डॉ. लोहिया के माध्यम से परिचय हुआ था— मनुभाई भिमानी से हैंसमुख स्नेहशील और वृद्धावस्था के बावजूद बेहद सक्रिय !

मनुभाई भिमानी कच्छ के उद्योगपति और नेता थे। लेकिन उनका निवास बम्बई और कलकत्ता में था। वे कच्छ सत्याग्रह के समय डॉ. लोहिया के साथ रहे। फीरोज गांधी के मित्र होने के नाते इन्दिरा जी के विश्वासपात्र थे और चूँकि बाँगलादेश में उनकी कई जूट की बड़ी मिलें चलती थीं अतः वे शेख मुजीब के भी अन्तरंग मित्र थे।

निर्वासन के दिनों में जब शेख मुजीब पाकिस्तानियों द्वारा कैद कर लिये गये थे उन दिनों शेख मुजीब के छोटे भाई शेख नासिर मनुभाई भिमानी के पास रहने आ गये थे। मनुभाई ने बम्बई में ही उनका परिचय मुझसे कराया। उन्होंने अपने बड़े भाई मुजीब के बारे में जो कुछ बताया वह एक महत्वपूर्ण अन्तरंग दस्तावेज है। इसलिए वह विवरण यहाँ ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत किया जा रहा है।)

दो मार्च, 1970 का वह दिन हमेशा मेरी आँखों के सामने तैरता रहता है, जब असहयोगात्मक सत्याग्रह पर न केवल पूरा ढाका, बल्कि सारे बाँगला देश के लोग मुजीब भाई के आह्वान पर स्वातन्त्र्य-समर में कूद पड़े थे, उनके हाथों में हथियार नहीं थे, उनके चेहरों पर प्रतिहिंसा या क्रूरता नहीं थी और न ही उनके चेहरे डरे हुए थे। वे अपने उस अधिकार और सम्मान की माँग कर रहे थे जिसे ब्रिटिश दासता से मिली आजादी के बावजूद उनसे छीन लिया गया था, पिछले दो दशकों से उन्हें छलावे में रखकर उनका शोषण किया जा रहा था। एक दासता के बाद दूसरी दासता, जो उससे भी अधिक क्रूर और निरंकुश थी, उन पर थोप दी गई थी। और यही कारण था कि अब पाकिस्तान में आम चुनाव का नाटक हुआ, तो उन्होंने खुले मन से अवामी लीग शेख मुजीब की पार्टी को मतदान कर जनतन्त्री शासन की स्थापना का स्वप्न देखा।

युद्ध यात्राएँ : 191

हर महीने की तरह उस समय में भी खुलना से ढाका आया हुआ था। मुजीब भाई का सारा समय सत्याग्रह आन्दोलन तथा लोगों से विचार-विमर्श में निकलता। केवल नाश्ते तथा भोजन के समय ही वे घर पर दिखाई पड़ते। जल्दी-जल्दी कौर तोड़ते और फिर बाहर निकल पड़ते। कभी-कभी इसके लिए भी समय नहीं मिल पाता और पूरा-का-पूरा दिन बिना खाए गुजर जाता। घर में, पूरे ढाका में एक ही तरह का उत्साह, असहयोग आन्दोलन की ही चर्चा—क्या मजदूर, क्या विद्यार्थी, क्या छोटे-मोटे कर्मचारी, क्या सर्वोच्च पदाधिकारी और हाईकोर्ट तथा अन्य न्यायालयों के न्यायाधीश सभी असहयोग आन्दोलन में संलग्न। हवाई जहाज, रेलवे, बन्दरगाह, कारखाने सभी बन्द। और घर पर ? रेणु भाभी (मुजीब भाई उन्हें रेणु कहते हैं, वैसे उनका असली नाम है—फजल अतुत्रिसा) नेताई अन्दाज में जोर-शोर से आजादी की इस पुरजोर लहर का बखान करतीं कि 'अब पाकिस्तान की तानाशाह हुकूमत के दिन जाने ही वाले हैं, कि अब शीघ्र ही सत्य और अहिंसा की स्थापना होगी, कि हम स्वातन्त्र्यज्योति स्थापित करके ही रहेंगे। चूँकि अल्लाह के राज्य में देर है अन्धे नहीं ! और सत्याग्रही आन्दोलन की यह लहर केवल भाभी तक ही नहीं थी। 4-5 वर्ष का रसेल और 12-13 वर्ष की रेहाना (मुजीब भाई का सबसे छोटा लड़का और लड़की) अपने दोस्तों और सहेलियों के साथ उत्साह से नारे लगाते घूमते फिर रहे थे।

दो मार्च को जब मैं ढाका से खुलना के लिए रवाना हुआ तो संकट के बादलों का कहीं चिह्न तक नहीं था। सारा कामकाज ठप्प था, किन्तु सारा ढाका चहल-पहल और आजादी की दीवानगी से भरा लेकिन 23 मार्च आते-आते मुझे ऐसा लगने लगा कि जरूर कहीं से खतरे का राक्षस अपना सिर उठा रहा है। मेरे बीबी-बच्चे तथा माता-पिता मेरे पास (नूरनगर : खुलता) ही थे। 23 मार्च को अन्ततः परेशान होकर मैंने मुजीब भाई को ट्रंककाल किया। काफी परेशानी तथा सैकड़ों बार टेलीफोन करने के बाद कहीं वे टेलीफोन पर मिल पाए थे। मैंने उनसे अपने मन के डर की बात बताई तथा कहा कि मैं माँ (80 वर्ष) तथा अब्बा (95 वर्ष) को गाँव भेज देना चाहता हूँ। और न हो तो भाभी (36-37 वर्ष) और बच्चों—कमाल (18-20 वर्ष), जमाल (14-15 वर्ष), रसेल (4-5 वर्ष), हसीना (22-23 वर्ष) तथा रेहाना (12-13 वर्ष)—को भी गाँव ही भेज दिया जाए।

टेलीफोन पर मुजीब भाई के ठठाकर जोरों से हँसने की आवाज सुनाई दी। बड़ी बेफिक्र हँसी थी वह ! “नासेर पुरुष होकर तुम घबड़ा रहे हो ! यहाँ लाखों माँएँ, बहनें और बच्चे तथा भाई, सत्याग्रह आन्दोलन में जुटे हुए हैं और किसी खतरे के डर से मैं रेणु और सबको गाँव भेज दूँ ! दृढ़ मन से अपना काम करो, कोई डर नहीं है !” किन्तु मेरे मन में फिर भी धीरज की गाँठ नहीं बँध पा रही थी।

शाम होते-होते मैंने माँ और अब्बा को अपने बड़े लड़के हिलाल (12 ½ वर्ष) और लड़की मीना (10 वर्ष) के साथ गाँव भेज दिया। नूरनगर से तुंगीपाड़ा। (जिला फरीदपुर) स्थित हमारा गाँव 50-60 मील दूर पड़ता था, सड़क नहीं। स्टीमर से जाने में पूरे

7 घण्टे लगते थे। वे लोग जब स्टीमर से खाना हो गए तो मैं कुछ आश्चर्य हुआ। लेकिन 24 और 25 मार्च का दिन बीतते-न बीतते यहिया खाँ और भुट्टो के नापाक इरादों ने अपनी चाल दिखाना शुरू कर दिया। मेरे बँगले को, जो पूरे खुलना में सबसे सुन्दर और आलीशान बँगला था, जंगखोरों ने जलाकर राख कर दिया।

ढाका के साथ-साथ खुलना में भी कल्लेआम शुरू हो गया। यह पता चलने पर कि क्रूर सैनिकों का तोपों से लैस काफिला मेरे बँगले की ओर आ रहा है और रास्ते में पड़ने वाले मकानों से लोगों को बाहर खींचकर सैनिक उनकी हत्या कर रहे हैं, मेरे सामने एक ही उपाय रह गया—बीबी-बच्चों को लेकर कहीं सुरक्षित जगह निकल जाऊँ। बचपन में ही मेरी दाहिनी टाँग खराब हो गई थी। दौड़ सकता नहीं था, फिर भी किसी तरह डॉली (पत्नी, आयु 29 वर्ष), सलाहुद्दीन (7½ वर्ष), लीना (5 वर्ष), सोहेल (3 वर्ष) तथा बाबू (1 वर्ष 2 महीने) को लेकर घर से निकल पड़ा। 27 मार्च तक एक गुजराती मुसलमान के घर छिपा रहा। बाहर खुलना जल रहा था, सत्ताखोरों की सत्तालोलुप आग की ज्वाला में। लेकिन जल्द ही वह घर भी छोड़ना पड़ा। वे बेचारे तो मुझे छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, किन्तु मैं जानता था कि सैनिक बड़ी जोर-शोर से मेरी तलाश कर रहे होंगे और सूचना मिलने पर मुझे शरण देनेवाले उस परिवार की खैर भी नहीं। बड़ी मुश्किल से, बार-बार समझाने पर वे जाने देने के लिए कहीं राजी हुए। एक देशी नौका से हम वहाँ से खाना हुए किन्तु इस तरह से जाना खतरे से खाली नहीं था, अतएव हमने पैदल चलना शुरू किया। खेतों-झाड़ियों, नदी के किनारे तथा जंगलों में छिपते-छिपाते बढ़ते रहे। डॉली तथा बच्चे बेतरह थक गये थे, चल नहीं पा रहे थे, भूखे-प्यासे, अलग से।

दो दिन, दो रात चलते हुए हो गए थे। एक जगह मैंने एक लांचवाले से बातें कीं और उससे कहा कि वह हमें तुंगीपाड़ा तक अपनी लांच से भेज देने की व्यवस्था करा दे। वह मुझे अच्छी तरह जानता था। झट राजी हो गया। हम जब लांच में सवार हुए तो लांच-चालकों ने उससे कहा कि इन लोगों को लेकर जाने पर सम्भवतः लांच दुबारा वापस न आए। लेकिन उस दिलेर व्यवसायी का दिल बहुत कोमल था। उसने कहा, “मुझे इस लांच से ज्यादा इनकी जिन्दगी की परवाह है। ये बंगबन्धु मुजीब के भाई हैं। अगर इनको कुछ हो गया तो बहुत बड़ा पाप लगेगा। हम मुँह दिखाने लायक नहीं रहेंगे। तुम इन्हें सुरक्षित ले जाओ। अगर एक लांच से हाथ ही धोना पड़ा तो कोई बात नहीं, किन्तु इन लोगों को तकलीफ नहीं होनी चाहिए। और बेचारे वे लोग बड़ी सावधानीपूर्वक लांच चलाते हुए, खतरे की टोह लेते हुए हमें गाँव तक पहुँचा गये—पूरे एक दिन, एक रात चलकर।

आन्दोलन की लहर गाँव तक भी उसी जोर-शोर से पहुँची थी, किन्तु अभी तक कल्लेआम की विभीषिका से गाँव मुक्त था। सैनिक वहाँ तक नहीं पहुँचे थे। लेकिन बकरे की माँ कब तक खैर मनाती ! मुजीबुर्रहमान के गाँव का रुख सूँघते हुए सैनिक अचानक 16 मई को तड़के साढ़े छह बजे गाँव आ पहुँचे, और आये

गाँव में आग लगा दी तथा लूटपाट शुरू कर दी। जब वे हमारे घर पहुँचे तो गाँव के लोगों ने विरोध किया, 'यह बंगबंद्य मुजीब के पिता का घर है। इसे आप हाथ नहीं लगा सकते', और सैनिकों ने उनमें से तीन लोगों को जिनमें दो छात्र भी थे तथा हमारे तीन नौकरों को पकड़कर लाइन में खड़ा कर दिया तथा एक-एक कर शूट कर दिया। बड़ा अजीब-सा दृश्य था वह। आजादी के उन दीवानों को, मुजीब भाई के प्रति अति श्रद्धालुओं को बड़ी निडरता के साथ मरते हुए मैंने देखा। 'धौंय' की आवाज एक साथ कई मशीनगनों से निकली, और उनके मुँह से 'जय बाँगला' और फिर सब शान्त।

उन्होंने हमारे घर में घुसकर मनमाने ढंग से लूटपाट की। नकदी रुपये पैसे, आभूषण, कीमती सामान तथा कपड़े, बर्तन जिसके जो कुछ हाथ लगा, लूट ले गए और मकान में आग लगा दी। उस विशालकाय मकान का आधा हिस्सा जलकर राख हो गया। मिट्टी की सुराहियाँ तक बेरहमी से फोड़ दी। माँ ने साहस किया और कहा कि छोटे बच्चे को पीने के लिए एक गिलास तो छोड़ दें, इस पर एक सैनिक अधिकारी कैप्टन ने बड़ी उद्दण्डता से कहा, "अपने बेटे मुजीब से कहना कि गिलास खरीद कर लाए और फिर पानी पिलाए" एक दूसरे ने कहा, "तुम यह लिखकर दे दो कि तुम्हारा बेटा गलत राह पर है और वह लोगों को भड़का रहा है, देशद्रोह कर रहा है तो हम कुछ नुकसान नहीं करेंगे।"

माँ शेरनी-सी बिफर पड़ी। वे अपनी क्रूरता के झण्डे गाड़कर चले गए। अपने मकान के सामने ही हमने एक छोटा-सा झोंपड़ेनुमा मकान बना लिया और बच्चे-खुचे सामान से अपना काम चलाने लगे। 20 दिन के बाद 6 जून की रात को कुछ काम से मैं घर से बाहर चला गया था। लगभग साढ़े तीन बजे रात को फिर क्रूर सैनिकों ने गाँव पर हमला किया और सोते हुए लोगों पर न केवल फायरिंग शुरू की बल्कि पूरे गाँव में आग लगा दी। और सोते हुए लोगों को मकानों से निकालकर बेरहमी से मारा। हमारे उस झोंपड़े में भी आग लगा दी। बाबू और सोहेल डॉली के साथ सो रहे थे। दूसरे कमरे में माँ, अब्बा तथा और बच्चे सोए हुए थे। जान बचाकर जिसको जिधर रास्ता मिला भाग निकला। जब मैं कल्लेआम और आगजनी की खबर पाकर वहाँ पहुँचा, सारा गाँव वीरान पड़ा था। किसी का कुछ पता नहीं था। मेरा सारा परिवार कहाँ गया, कोई सूचना नहीं। मेरे सामने अन्धकार छा गया।

मैं वहाँ से पैदल ही छिपता-छिपाता घोपाखाली (खुलना) पहुँचा। फिर कई दिन तक इधर-उधर भटकता, सैनिकों की खूँखार नजरों से बचता तथा माता-पिता और बीबी-बच्चों का पता लगाता घूमता रहा।

अपने पूरे परिवार में अकेला मैं ही था जिसे राजनीति से कोई सरोकार नहीं था और पेशे से व्यवसायी था। चुनावों के दौरान चुनाव व्यवस्था का प्रबन्ध जरूर मेरे हाथ में दिया जाता और मैं मुख्य तौर से उसका आर्थिक पक्ष ही ज्यादा सँभालता। जो भी खर्च पड़ता देता। किन्तु इस तरह भटकते हुए एक बात मेरे दिमाग में आई कि हमारे

परिहार का हर आदमी पाकिस्तानी तानाशाही के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है और उनके दमन का शिकार हो रहा है। फिर मैं ही अलग क्यों रहूँ ? जहाँ-तहाँ जाता, लोग मेरा इसलिए स्वागत-सत्कार तथा सहायता करते कि मैं मुजीबुर्रहमान का भाई था। व्यवसायी नासेर को कोई नहीं जानता था, जिसके पास अथाह सम्पत्ति थी, नाम था। और फिर उस समय से ही मैंने अपना नियम बना लिया—अब बाल-बच्चों की परवाह छोड़कर रोजाना गाँव-गाँव घूमता, लोगों से मिलता और उनका उत्साह बढ़ाता, धैर्य दिलाता, संघर्ष करने के लिए उन्हें प्रेरित करता और आजादी की आग जगाता फिरता और वे लोग यह सुनते ही कि मैं मुजीबुर्रहमान का छोटा भाई हूँ, बड़े जोश से आजादी की लड़ाई में शामिल हो जाते।

अब जब भी अकेला होता बार-बार तुंगीपाड़ा (गोपालगंज फरीदपुर जिला) याद आता, जहाँ रिटायर होने के बाद अब्बाजान (शेख लुत्फर्रहमान) बस गए थे, अंग्रेजों के जमाने में वे एक रुतनपरस्त सरकारी अफसर थे। साफ दिल के खुदाबन्द। घर पर माँ (सायरा हतून), मुजीब भाई, मैं तथा चार बहनें—वेगम, थांडू, हेलेन तथा लिली। वेगम थांडू और हेलेन मुझसे बड़ी थीं तथा लिली छोटी। मुजीब भाई मुझसे 13-14 वर्ष बड़े। उस हँसमुख तथा भरे-पूरे परिवार में वे शुरू से ही अलग दीखते। जहाँ हम लोग नित नये कपड़े-लते, नये-नये पकवान खाने और घूमने की फरमाइशें लादा करते मुजीब भाई अपने हिस्से की चीज बाहर लोगों में बाँट आने में दत्तचित रहते। घर पर पढ़नेवाली डॉट न तो उन्हें विचलित कर पाती और न ही भयभीत।

गरीबों और अभाव पीड़ितों में सामान बाँटने का यह नशा जो बचपन से ही उन पर सवार हो रहा था अभी तक नहीं छूटा। एक बार गाँव में गोला (देहरी) के भीतर बन्द चावल, अब्बा की अनुपस्थिति में गाँववालों को बाँट देने पर कितनी फटकार सुनने को मिली थी !

अब्बा सरकारी नौकरी में थे और पढ़ाई के महत्त्व को समझते थे। अतएव उन्होंने हम लोगों को मामूली शिक्षकों के हाथ में छोड़ने के बजाय अंग्रेजी स्कूल में डालना ज्यादा पसन्द किया और लोगों के विरोध के बावजूद हमारा नाम अंग्रेजी स्कूल में लिखा दिया। मुजीब भाई मिशन स्कूल में तथा मैं पब्लिक स्कूल में (दोनों गोपालगंज) पढ़ने के बाद कलकत्ता चले आए। मुजीब भाई का नाम इस्लामिया कॉलेज में लिखवाया गया और हॉस्टेल में रखा गया। और मुझे बड़ी बहन हेलेन के घर।

इस्लामिया कॉलेज में उनका बड़ा रुतबा था। हर कोई उन्हें जानता। घर से माहवारी मिलनेवाला खर्च दूसरों के काम आता। वे बजाय अपनी फीस भरने के या अच्छा खाने-पहनने के उनकी फीस भर देते और जरूरत पड़ने पर उनके परिवार की सहायता भी करते। फल यह होता कि न केवल उनका नाम, फीस न देने के कारण कट जाय या समय पर न देने के कारण उन्हें जुर्माना पड़ता, बल्कि कई-कई रातें और दिन फाकेमस्ती में गुजार देने पड़ते। सही सलामत किताबें भी उनके पास नहीं हो पातीं। या तो खरीद ही नहीं पाते अथवा खरीद भी लेते तो दूसरों के काम आतीं।

लेकिन फिर भी जब वे अच्छे नम्बरों से पास हो जाते, तो हम सभी को बेहद आश्चर्य होता, विशेषकर अब्बाजान को। इसी तरह खेलकूद में भी आगे। राजनीति, जन सेवा में अपना सारा समय गुजारने के बावजूद वे खेलकूद के लिए न जाने कहाँ से समय निकाल लेते। स्कूल में हर साल कैप्टन चुने जाते—फुटबॉल के भी बैडमिंटन के भी तथा और भी कई खेलों के।

और दरियादिली का आलम यह कि वे हॉस्टेल से मिलने के लिए बहन के यहाँ आते और मुझसे धीरे से पूछते, 'नासेर, तुम्हारे पास कितने पैसे हैं ? मैं उन्हें बतला देता हर बार की तरह। और हर बार की तरह वे एक सादा कागज निकालते, देख नासेर, आज तू मुझे जितना पैसा देगा उसका कई गुना करके मैं तुझे 10 वर्ष बाद दूँगा। हाँ ! इस कागज पर तुझे रसीद बनाकर दिए दे रहा हूँ। सच, तुझे 10 वर्ष बाद काफी पैसे दूँगा। इसके बदले में ! और मैं जेब खर्च के लिए मिले तथा कुंजूसी से बचाकर रखे गए अपने सारे पैसे उन्हें देता—एक दिन दुगुने-तिगुने होकर मिलने की लालच में।

पैसे मिलते ही वे बजाय बहन से कुछ बात किए चुपचाप सीधे निकल आते। जब रात में हॉस्टेल वापस आते तो बिना भोजन किए सो रहते। जेब उनकी खाली हो चुकी होती। हम छुट्टियों में गाँव जाते। मेरे पास नए कपड़ों का स्टॉक जमा होता जाता और उनके बक्से में मुश्किल से एक आध कपड़े ही बचे दिखाई पड़ते। शरीर पर ओढ़ा हुआ शाल या चादर तक नहीं बचती, उसे भी किसी-न-किसी जरूरत-मन्द को बाँट आते। पिता डाँटते। 'कमाई तो एक पाई की भी नहीं कर सकते और दान में इस तरह तेज हो कि जैसे खुद अपनी ही कमाई बाँट रहे हो। अच्छा टकसाल खोल दिया है तुमने...' माँ कहती, 'खोका (मुजीब) पगला गया है। कितना भी डाँटो, इस पर तो असर ही नहीं होता, बस हँसता रहता है।'

और यह पागलपन न जाने कितने अन्दाज में बढ़ता गया कि एक दिन उन्हें विश्वविद्यालय से हमेशा के लिए निष्कासित कर दिया गया, यह आरोप लगाकर कि मुजीबुर्रहमान अनुशासनहीन हो रहा है... बजाय पढ़ने के छात्रों को बगावत के लिए भड़का रहा है... लोगों में जन-आन्दोलन के बीज बो रहा है... जन-आन्दोलन के गीत गा रहा है...

1947 में विभाजन के बाद हम दोनों भाई कलकत्ता से वापस चले आए। मेरा नाम खुलना में लिखाया गया और मुजीब भाई ने ढाका विश्वविद्यालय में कानून के पंचवर्षीय डिग्री कोर्स में प्रवेश लिया। विभाजन के बाद ही अपनी सत्तालोलुपता का जलवा दिखानेवाले पाकिस्तानी नेताओं के इरादों ने बड़ी जल्दी वहाँ के लोगों का मोह भंग कर दिया। और इससे सर्वाधिक प्रभावित होनेवालों में थे मुजीब भाई।

1948 में मुहम्मद अली जिन्ना ने जब एक सार्वजनिक सभा में पूर्वी पाकिस्तान की भाषा उर्दू होने का ऐलान किया तो मुजीब भाई अकेले ही उठ खड़े हुए उनका विरोध करने के लिए। मुझे याद है बड़ी बुलन्द आवाज में उन्होंने कहा था, "नहीं,

यहाँ की भाषा बाँगला होगी, उर्दू नहीं—कतई नहीं !” और पाकिस्तानी शासकों की आँखों में गड़ जाने के लिए यह काफी था। बस, यहीं से वह दास्तान शुरू हुई आजादी की लड़ाई की, तानाशाही शासकों द्वारा अपनी सत्ता की कब्र खोदने और अमानुषिक अत्याचारों, दमन तथा सैनिकशाही की !

तीन वर्ष बीतते-बीतते पूर्वी पाकिस्तानी शासकों को, अपनी कुर्सी तथा सत्ता के गिर्द मँडराने वाले खतरे को भाँपकर, उन्हें विश्वविद्यालय से निष्कासित करने के लिए बाध्य होना पड़ा। उनकी पढ़ाई का यह चौथा वर्ष था। और उसके बाद ही उन्हें पाकिस्तान सरकार ने जेल भेज दिया।

और पाकिस्तान निजाम में उनकी उस पहली गिरफ्तारी का समाचार सुनते ही मुझे बेतरह धक्का लगा था। मैं खुलना में था। अभी मेरी शादी नहीं हुई थी। भागा-भागा भाभी के पास पहुँचा। मुझे भाभी की बेहद चिन्ता थी। हसीना और कमाल अभी छोटे थे। कमाल तो बहुत ही छोटा—शायद गोद में था। मैं सोच रहा था उनकी गिरफ्तारी के समाचार से बेहद दुखी भाभी ठाठें मारकर रो रही होंगी, किन्तु वहाँ पहुँचते ही मुझे एक धक्का और लगा—उनके चेहरे पर दृढ़ता की मुस्कान थी। मैं उन्हें सान्त्वना देने आया था। उल्टे वे मुझे समझा रही थीं। मैं मुजीब भाई की गिरफ्तारी के विरुद्ध मुकदमा लड़ने की बात कर रहा था और वे मुझसे कह रही थीं—“नासेर भैया, अत्याचारी के दरबार में उसी के विरुद्ध फरियाद और वह भी उसी से ! सपना तो नहीं देख रहे हो ?” मेरी एक भी दलील वे नहीं मान रही थीं, “वे गलत तो नहीं कर रहे हैं। तुमने महात्मा गांधी को या सुभाषबाबू को देखा था। जब वे गिरफ्तार होते थे, तो कौन-सा मुकदमा उन्हें छुड़ा देता था ? फिर उस समय तो कुछ गुंजाइश भी थी। अब कहाँ से होगी ? हमारे लिए तो यह सरकार (पाकिस्तानी सरकार) भी विदेशी है....”

मुझे नहीं मालूम था भाभी इतना गहरे सोच लेती हैं। वे समृद्ध परिवार से आई थीं और समृद्ध परिवार की ही बहू बन गई थीं। आजादी की किसी लहर से उनका वास्ता नहीं पड़ा था, लेकिन इसके बावजूद उनके विचार मुजीब भाई के विचारों से एक कदम भी पीछे नहीं थे। और सचमुच मुजीब भाई की गिरफ्तारी से वे तनिक भी चिन्तित नहीं हुईं, जब कि गाँव में कोहराम-सा मच गया था। माँ ने कई दिन तक खाना-पीना छोड़ दिया था। उनकी जबान ‘हाय खोका, जेले गैला ! चिल्लाते-चिल्लाते सूख गई थी। गश्-सा आने लगा था। और अब्बा मुट्ठियाँ पीछे बाँधे टहल रहे थे जैसे विश्वास नहीं कर पा रहे हों, कुछ निश्चय-सा कर रहे हों या कुछ सोच नहीं पा रहे हों। केवल भाभी शान्त थीं।

और बाद में मैंने महसूस किया—भाभी के इन क्रान्तिकारी विचारों ने मुजीब भाई को कितना प्रोत्साहित किया होगा—सदैव आजादी और अपने अधिकारों के विरुद्ध संघर्षरत रहने के लिए, भाभी उन्हें जरा भी यह महसूस नहीं होने देती थीं कि आजादी के जंग के मैदान में वे अकेले हैं। यहाँ तक कि बाज वक्त उनके साथ वे सभाओं में

भी जातीं, जरूरत पड़ने पर भाषण भी देतीं।

जेल से छूटने के बाद मुजीब भाई एक तरह से ढाका में स्थायी रूप से रहने लगे। भाभी-बच्चे उनके पास रहते, कभी माँ के पास गाँव में और कभी मेरे पास खुलना में। बाद में तो भाभी भी वहीं रहने लगीं। जब वे जेल चले जाते तब वही उनका काम-काज देखतीं। उनकी पार्टी के लोग भी उन्हें एक दूसरा मुजीब ही समझकर उनके पास आते। हाँ, मुझे एक अच्छा सम्बोधन मिल गया था—जब भी उनसे टेलीफोन करता या ढाका पहुँचता, छूटते ही बोलता, “कहो लीडर भाभी, आज कहाँ स्पीच देने जाना है। आज किसकी सभा हो रही है ?” और उनकी हँसी एक अलग ही समां बाँध देती।

अब्बाजान जानते थे कि मुजीब पढ़-लिखकर कोई अच्छी नौकरी करनेवाला जीव नहीं है, उसका साँचा एक अलग ही मिट्टी का बना हुआ है। वे ब्रिटिश सरकार में एक अच्छे पद पर थे और घर से भी सम्पन्न थे। तुंगीपाड़ा में काफी बड़ा मकान, ढेर सारे एकड़ उपजाऊ खेत। अतएव उन्होंने मेरी पढ़ाई पर विशेष ध्यान दिया। इसका एक दूसरा कारण और भी था—बचपन में 6-7 वर्ष की आयु में टायफॉयड की बीमारी में मैं अपनी दाहिनी टाँग गँवा बैठा था। काफी इलाज हुआ, किन्तु कोई फायदा नहीं। कलकत्ता में डॉ. (स्व.) विधानचन्द्र राय ने टाँग ठीक करने की बहुतेरी कोशिश की, किन्तु सब बेकार। फल यह हुआ कि पूरे परिवार की सहानुभूति का केंद्र बन गया। यहाँ तक कि परिवार और घर-बार की चिन्ताओं से मुक्त अलमस्त मुजीब भाई की भी चिन्ता का अंगर कोई विषय बनता तो मेरी बेकार दाहिनी टाँग ही। बड़े प्यार से मेरी टाँग पर हाथ फिराते फिर वही कहकहा, जैसे मन के भीतर कुछ दबाते हुए कह रहे हों, “तू काहे को फिकर करता है रे ! देख, तुझसे बड़ा मैं हूँ न मेरे रहते तुझे परेशान होने की कोई जरूरत नहीं।”

लेकिन मेरा मन पढ़ने में नहीं लगता। किताबों की गलियों में घूमने के बजाय मैं व्यवसाय करना चाहता था। लेकिन घर पर कोई राजी नहीं। अब्बाजान से कहता तो वे हँसते—‘देखवा ! एक भाई लोगों के लिए दानखाता खोलता चल रहा है और दूसरा चला है व्यवसाय करने ! रही माँ, तो उसे इन सबसे कोई मतलब नहीं। वह तो चाहती थी, बस उसके दोनों बेटे बहुत बड़े आदमी बनें, किन्तु उन्हें कोई तकलीफ न हो। मुजीब भाई की दानशीलता पर उन्हें खुशी होती, किन्तु जब शरीर का कुर्ता तथा चप्पल तक वे किसी को दे आते तो उन्हें लगता कि कहीं सचमुच मुजीब पगला तो नहीं गया है ! कहतीं, “अरे खोका, लोगों की मदद करना तो बड़ी अच्छी बात है रे, किन्तु तू अपना पेट काटकर जो...” और जब मैं माँ से बजाय पढ़ने के व्यवसाय करने की बात करता तो उन्हें लगता—“यह तो बड़े की तरह छोटा भी पगला रहा है। चल-चल, पहले पढ़-लिख तो ले फिर...”

और 1952 में सचमुच मेरा जी उचट गया पढ़ाई से। बिना किसी को सूचित किए बेहद नाराज घर से चुपचाप भागकर असम जा पहुँचा। पास में कुछ रुपये थे,

सो कई दिन तक खर्च चला, खूब घूमाघामा भी। लेकिन समस्या आई सारे पैसे उड़ जाने के बाद। बिना पैसे के व्यवसाय कहाँ से होता, सो नौकरी की तलाश में एक गुजराती हिन्दू व्यापारी बी. बर्जुबन जेठा के यहाँ पहुँचा। उनसे विनती की कि 'बहुत गरीब आदमी हूँ। माता-पिता भी बहुत गरीब हैं। अब आप ही कुछ मदद कीजिए।' वे बेचारे बड़े सीधे आदमी। बहुत प्रभावित हुए। मैंने उन्हें अपना नाम नासिर ख़ाँ बताया, पता भी गलत दिया और उनके लेबर सप्लाय सिंडिकेट में सुपरवाइजर की नौकरी मिल गई। तलब भी कुछ तय नहीं की। बस, जब जरूरत पड़ती उनके घर पहुँच जाता और जितने भी रुपये माँगता वे दे देते। धीरे-धीरे उनके घर का एक तरह से सदस्य ही बन गया।

एक साल पूरा होते-होते मुजीब भाई को मेरा पता चल गया। उस समय तक वे काफी प्रभावशाली हो चुके थे। पूर्वी बंगाल के बाहर भी लोग उन्हें जानने-पहचानने लग गए थे। उन्होंने मुझे तार दिया कि 'जल्दी चले आओ, आम चुनाव होने वाला है, उसमें तुम्हें मेरी मदद करनी है। अब्बा और माँ बहुत परेशान हैं तुम्हारे लिए...' और घर का मोह, मुजीब भाई की आवाज ने वहाँ और ठहरने की सारी हिम्मत मुझसे छीन ली। मैं श्री जेठा के पास त्यागपत्र देने पहुँचा। वे मुझे छोड़ने के लिए राजी ही नहीं। और जब उनसे बताया कि मैं शेख मुजीबुर्रहमान का भाई हूँ तथा उनके चुनाव का काम करने के लिए मेरा वहाँ जाना नितान्त जरूरी है, तो न केवल वे वहाँ तक भेजने के लिए तैयार हो गए, बल्कि बार-बार कहते रहे, "देखो, रुपये-पैसे या किसी चीज की जरूरत हो तो संकोच मत करना, हाँ ! मैं भी तुम्हारे पिता के ही समान हूँ।"

उधर पाकिस्तानी सैनिक तानाशाही मुजीब भाई की आवाज कैदबन्द करने पर तुल गई, इधर राजनीति से बिल्कुल दूर मैं व्यवसाय में लग गया। धीरे-धीरे बढ़ाता गया। अनाज से लेकर हर चीजें गाँव से हम दोनों भाइयों के पास आतीं। हर महीने माँ सारे सामान करीने से लदवाकर ढाका और खुलना (मेरे पास) भेज देती।

एक दिन मैं माँ के साथ उनसे मिलने ढाका पहुँचा तो माँ मुजीब भाई से मिलते ही रोने लगी। वे अभी-अभी जेल से आए हुए ही थे, "देख खोका, घर में तू ही बड़ा है। नासेर बेचारा लँगड़ा है। मेरा क्या भरोसा, कब भगवान को प्यारी हो जाऊँ। इसका ध्यान रखना, इसके बाल-बच्चों का भी..." और मुजीब भाई जोर से हँसने लगे, "माँ (हम माँ को माँ ही कहते थे), ये नासेर तो बहुत बड़ा आदमी है। इसके पास तो बहुत पैसे हैं। मैं तो हमेशा जेल में रहता हूँ। इसकी परवाह भला मैं क्या करूँगा। उल्टे इसी को मेरे बीवी-बच्चों की परवाह करनी पड़ेगी। देख, तू इसे समझा दे कि मेरे न रहने के बाद कहीं यह उन बेचारों को भूल न जाए !"

और जब वे खुलना आते तो पहुँचते ही कहते, "देख ना सेठ, तूने बहुत पैसा कमा लिया है। अब मैं उसमें से खर्च कराने पहुँच गया हूँ।" सामान घर में रखते और निकल पड़ते लोगों से मिलने के लिए एक-एक का हाल-चाल पूछते फिरते या सुबह

होते ही मेरे बँगले पर जो मजमा लगता तो गई रात खत्म नहीं होता। सुबह निकलने के पहले डॉली उनके कुर्ते और जैकेट की जेब में काफ़ी रुपये रख देती बाहर जाने के पहले बस इतना पूछते, “डॉली, मेरी जेब में कुछ रुपये-रुपये तो हैं न ?” और डॉली कहती, “हाँ, भाई साहब। रुपये रख दिए हैं।” और वे मुस्कराते हुए चले जाते तथा रात में जब वापस आते तो सारी जेबें खाली होतीं ठीक यही हाल ढाका में होता। घर से निकलने के पहले भाभी उनकी जेब में रुपये डाल देतीं कभी-कभी बहुत परेशान होतीं तो बिगड़ पड़तीं, “रुपये बाँटने में तो बड़ी तेजी दिखाते हो, किन्तु कमाने की भी सोचते हो ! कभी कमाकर बाँटो तो जानूँ ?” और वे मुस्कराते रहते बरबस भाभी भी मुस्करा देतीं। वे बिगड़तीं जरूर किन्तु कभी उन्हें किसी काम के लिए रोकती नहीं, गई रात जब तक आ नहीं जाते वे भोजन नहीं करतीं।

मुजीब भाई का हाल इधर यह था कि सामने जो भी जरूरतमंद दिखाई पड़ता, उनके हाथ में जो भी नोट आता बिना देखे उसे थमा देते। वह नोट 500 रु. का भी हो सकता, 100 का भी या दस, पाँच, दो, एक का भी। एक बार मैंने उनसे कहा कि ‘कम-से-कम रुपये देने के पहले देख तो लिया करें कि कितने का नोट है,’ तो वे हँसकर बोले, “नासेर, सम्भव है अगर नोट देख लूँ और कहीं वह ज्यादा कीमत का बड़ा नोट निकला तो देने की इच्छा न हो। इसलिए मैं बन्द मुट्ठी उसकी ओर बढ़ा देता हूँ। उसके भाग्य में जो नोट आ जाए ले जाए।”

फिर मैंने भाभी को इससे निजात पाने का एक रास्ता सुझाया, “भाभी, तुम उनकी जेब में बड़े नोट मत रखा करो। एक, दो, पाँच और दस के ही रखा करो। इससे अधिक-से-अधिक लोगों की जरूरतें भी पूरी हो जाया करेंगी और तुम्हें परेशानी भी नहीं होगी।”

एक बार वे खुलना आये तो सुबह-सुबह मेरे कर्मचारियों ने उन्हें घेर लिया और उनसे कहा कि नासेर साहब से कहकर उनका तलब बढ़वा दें। उन्होंने उनसे पूछा, “कितनी तलब बढ़वाना चाहते हो ?”

“आप अगर रुपया दिला दें तो भी हम खुश है।” उन्होंने मुझे बुलाया, “तुम इन्हें कम तलब क्यों देते हो ? इनकी मेहनत से ही तुम पैसेवाले बन रहे हो। पहले इनकी तलब बढ़ाओ तब कुछ और काम करो।”

मेरे कर्मचारियों की मुझसे कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती। कोई काम निकालना हो तो वे सीधे मुजीब भाई को पकड़ते। मेरे ही क्या दूसरे व्यवसायियों के कर्मचारी भी उन्हीं के पास पहुँचते और वे जो फैसला दे देते, दोनों पक्ष आँख मूँदकर स्वीकार कर लेते।

भाभी मुझे बहुत मानतीं। मामूली से मामूली काम बिना मुझसे पूछे नहीं करतीं। लगभग हर रात टेलीफोन पर हमारी बातें होतीं, लड़कों की लड़ाई से लेकर मुजीब भाई की राजनीति तक पर हम बड़ी गम्भीरता और जिम्मेदारी के साथ बातें करते। इसी तरह मेरी पत्नी डॉली का कोई काम बिना मुजीब भाई की सलाह के नहीं

चलता। कोई सलाह अगर मैं उसे देता भी, तो वह छूटते ही कहती, “चलो हटो, तुम्हें क्या मालूम घर-गृहस्थी का कामकाज। तुम तो बस ऑफिस का काम ही कर सकते हो। बिना मुजीब भाई के आदेश के मैं कुछ नहीं करूँगी।” और जब मैं उसे याद दिलाता कि ‘मैं कितना होशियार और जिम्मेदार हूँ कि बिना मुझे पूछे भाभी अपना कुछ काम नहीं करतीं’ तो वह मुझे अँगूठा-सा दिखाती हुई बोलती, “अरे रहने दो अपनी ये शेखियाँ। वो बेचारी तो सीधी-सादी हैं, उन्हें तुम भले ही मूर्ख बना लो, मुझे नहीं बना सकते।” और जब कभी वह मेरे किसी काम से बेहद परेशान होती तो शोख लड़कियों की तरह झट से मुजीब भाई को टेलीफोन करती। और मैं गये रात जब वापस आता तो टेलीफोन पर सुनने को मिलतीं मुजीब भाई की हिदायतें और मीठी फटकार ! और डॉली मुझे टेलीफोन पर डॉट सुनते देख खूब खुश होती, “सुना ? आगे फिर नहीं मानें तो भाई साहब से शिकायत कर दूँगी, हाँ !”

हमारे घर में सचमुच उल्टी गंगा बहती थी। मुजीब भाई को अपने बच्चों की बिल्कुल परवाह नहीं होती और न मेरे बच्चों को मेरी। जब भी वे खुलना आते, बच्चे सारी पढ़ाई-लिखाई, काम-काज भूलकर उनके गिर्द इकट्ठा हो जाते। उन्हीं के पीछे-पीछे लगे रहते—कोई उनकी गोद में चढ़कर उनकी मूँछों से खेलता, उनके कान पकड़ता, तो कोई पीछे से उनकी आँखें मूँदता, पाइप भरता-सुलगाता यहाँ तक कि वे रात में उन्हीं के बिस्तर पर सो रहते।

मुझे लगभग हर महीने ढाका जाना पड़ता उनसे मिलने के लिए। वहाँ पहुँचते ही जैसे घर में समारोह-सा छा जाता। और फरमाइशों की बौछार होने लगतीं, “काकू, यह फिल्म बड़ी अच्छी है, आज इवनिंग शो देखने चलेंगे, अब्बा को बोलिए न प्लीज !” “हमने बहुत दिनों से मार्केटिंग नहीं की हमें यह सामान लेना बहुत जरूरी है। पहले मार्केटिंग करेंगे, फिर फिल्म देखने चलेंगे।” और बड़ी मुश्किल से मुझे उनके कार्यक्रमों की तालमेल बिठानी पड़ती। मुजीब भाई से कहने की तो बेचारों की हिम्मत ही नहीं पड़ती। हिम्मत तो दूर मौका ही कहाँ मिलता। केवल सुबह 8 बजे वे नाश्ते की टेबल पर बच्चों के बीच बैठ पाते। फिर जो निकलते तो दिन में 2 बजे खाने के लिए आते। उस समय बच्चे स्कूल गये होते। घर पर आये लोगों से बातचीत करने के बाद शाम को निकलते तो रात 12 बजे से 2 बजे के बीच ही आ पाते। उस समय बच्चे सो रहे होते, और बेचारी भाभी को उन्हें दिलासा देना पड़ता, “जब तेरे काकू आएँगे तब जाना।”

ढाका का घर हमेशा लोगों से भरा रहता। अन्दर एक बड़ी देगची में चाय का पानी खौला करता। हर आधे घण्टे में या नये व्यक्ति के आने पर केतली भरकर चाय बाहर पहुँच जाती। जितनी देर मुजीब भाई घर से बाहर या अवामी लीग पार्टी के कार्यालय में रहते, आनेवालों से भाभी ही बातें करतीं, उनके दुःख-दर्द सुनतीं, उनकी समस्याएँ हल करतीं। मैं पहुँचते ही कहता, “कहो भाभी, तुम अपनी कचहरी में लोगों

की फरियाद सुनने कब जा रही हो !” और वे मुस्करा देतीं, “अब बच्चों की फरियाद तुम सुनो !” और मैं धीरे-से पूछता, “और तुम्हारी ?” वे हँस देतीं, हुश, मुझे क्या, जब तक मेरा छोटा भाई है मुझे फरियाद करने की चिन्ता क्यों और उनका यह छोटा भाई होता मैं।

बचपन में ही उन लोगों की शादी हो गई थी। वे दो बहनें थीं। भाई एक भी नहीं। उनके पिता भी तुंगीपाड़ा में बहुत बड़े जमींदार थे—800 बीघे की खेती। रिश्ते में भी वे कुछ लगते थे। भाभी का स्वभाव बड़ा मिलनसार खुला हुआ, साफ नेक-हृदय और हँस-मुखमन। मेरे ढाका पहुँचते ही उनका काम दोहरा हो जाता। घर में सब रोटी खाते और मेरे लिए चावल बनता, पुलाव-जर्दा बनता। तरह-तरह की मछलियाँ मँगाई जातीं। मैं जब देखता, वे किसी न किसी काम में फँसी रहतीं, लेकिन जबान बन्द नहीं रहती। सामनेवाला कभी बोर नहीं होता। लोगों को हँसाती रहतीं।

कोई भी पर्व आता, मेरे, डॉली और सभी बच्चों के लिए वे कपड़े ढाका से भिजवातीं, पकवान बनाकर भिजवातीं, बच्चों को त्योहारी के रुपये भेजतीं, चाहे काली-पूजा का त्योहार हो, चाहे ईद-बकरीद, हमारे लिए सभी बराबर थे। घर पर उनका शासन था, किन्तु हर कोई अपनी मरजी का करने के लिए स्वतन्त्र। घर में हम बैंगला में बातें करते, कुर्ता-पाजामा पहनते, औरतें साड़ी-ब्लाउज पहनतीं। सूट, बुशर्त का कोई स्थान नहीं। हमारे यहाँ हिन्दू मुसलमान का कभी भेद नहीं रहा। हमारे फार्म के अस्सी प्रतिशत कर्मचारी हिन्दू थे। सारा व्यवसाय निरंजन बाबू, एम. कॉम. देखते थे। वही जनरल मैनेजर थे। क्षितीशचन्द्र पाल खजांची थे और चाँदपुर के ब्रांच मैनेजर विचित्र सेन तथा चालना पोर्ट के मैनेजर हुदलाल दास थे। भगवान जाने आज बेचारे वे लोग कहाँ होंगे।

मैंने मुजीब भाई को कभी चिन्तित या परेशान होते नहीं देखा, न तो तब जब वे जेल में बन्द होते और न ही तब जब वे घर या गाँव पर होते—लोगों की समस्याएँ निपटाते होते। बैठकखाने से उनके अट्टहास, हँसने, खिलखिलाने और लोगों को मजेदार लतीफों द्वारा हँसाने की आवाज सुनाई पड़ती रहती कि बाहर से गुजरने वाला यूँ ही समझ जाता कि मुजीब भाई बैठकखाने में ही हैं।

वे अगरतला षड्यन्त्र केस के झूठे नाटक में फँसाकर एक लम्बे अरसे के लिए जेल में ठूस दिए गए थे। भाभी ने ढाका में ही हसीना के लिए एक लड़का देखा। लड़का वैज्ञानिक था। उन्होंने लड़का देखते ही सीधे मुझे सबसे पहले फोन किया, “नासेर भाई, तुम्हारी भतीजी के लिए रिश्ता देखा है। आकर तय कर जाओ।” मैं उसी समय डॉली के साथ ढाका रवाना हो गया। लड़का देखा और बातचीत भी तय हो गई। फिर अब्बा और माँ को सूचना देकर मुजीब भाई से मिलने के लिए जेल में पहुँचा। जितने दिनों वे जेल में रहते मैं उनसे मिलने हमेशा पहुँचता, किन्तु कभी-कभी उन्हें छिपा कर किन्हीं अज्ञात जेलों में रख दिया जाता और बहुत कोशिश करने पर

भी उनका पता जब न चल पाता तो नहीं मिल पाता।

मिलते ही उन्होंने हर बार की तरह कहा, “अरे नासेर, तू ती बड़ा दुबला हो गया है। समझा, समझा। तू मेरी चिन्ता कर रहा है न ! खोका (कभी-कभी वे प्यार से मुझे खोका भी कहा करते थे) मुझे कुछ नहीं हुआ है। अरे कहीं दबा कर रखने से सत्य की आवाज दबती है या अहिंसा को मार सकती है ! पाकिस्तानी शासकों के मन में पाप है, क्योंकि वे अत्याचारी हैं। सो मेरा कुछ नहीं हो सकता। तू मेरी चिन्ता मत कर। माँ-बाप, बच्चों तथा रेणु की देखभाल करना। तुम्हारे ही कंधे पर सब कुछ है फिर कुछ रुककर बोले, “हाँ, तुम्हारा कारोबार कैसा चल रहा है, देखो कर्मचारियों को कोई तकलीफ न हो समझे !” मैंने उन्हें हसीना के विवाह तथा लड़का तय होने की बात बताई तो वे प्रसन्न हो गए, “चल, तूने और रेणु ने बड़ा अच्छा किया। अब तुझे ही उसकी शादी की सारी जिम्मेदारी सँभालनी पड़ेगी। देख, मैं तो जेल में बन्द हूँ, अकेले तुझे ही इतना भार निपटाना पड़ेगा।”

मैंने उन्हें सुझाया, “आप शादी के समय तक के लिए पैरोल पर रिहा हो लें। भाभी तथा बेचारी हसीना और दामाद को आपका अभाव खलेगा...”

इस बार भी वे मुस्कराए, “तो तू चाहता है कि अपने निजी काम के लिए इस अत्याचारी शासक से दुआ की भीख माँगूँ ? उनसे कहूँ कि मेरी बेटी का विवाह है, तुम मुझ पर रहम खाओ। बहुत मुश्किल है नासिर ! हमें अपना अधिकार चाहिए। रहम की भीख नहीं। मेरा हसीना को प्यार कहना और कहना कि जब मैं रिहा होऊँगा तो उसे आशीर्वाद देने आऊँगा। तुम सारी व्यवस्था देख लेना।”

और मैं वापस लौट आया। बिना उनके आए हसीना की शादी हुई। हाँ, मुजीब भाई ने कहा था कि बहुत ताम-झाम और धूम-धड़ल्ला नहीं होना चाहिए। बेकार में पैसे पानी की तरह नहीं बहाए जाने चाहिए। इस गुलाम और गरीब देश में उनकी बेटी की शादी सादे ढंग से ही होनी चाहिए। मुजीब भाई के आदेश का मैंने पालन किया। अब्बा और माँ गाँव से आ गए थे। ढाका के तथा बाहर के सारे लोग सहायता के लिए खड़े हुए, हसीना के सौभाग्य के लिए दुआ माँगने के लिए।

वे पैरोल पर केवल एक बार रिहा हुए थे—जब माँ की तबीयत बहुत खराब हुई थी। लगा था, अब उनका बचना मुश्किल होगा। लेकिन तब भी वे रहम की भीख माँगकर नहीं आए थे। माँ की गम्भीर बीमारी की खबर के फलस्वरूप पाकिस्तान सरकार को खुद विवश होना पड़ा था, उन्हें पैरोल पर छोड़ने के लिए।

हसीना की शादी के ठीक एक वर्ष बाद रिहा होकर वे घर आए थे।

मैं ढाका आया था। ज्यों ही पहुँचा, मुजीब भाई को बाहर जाने के लिए तैयार पाया। साथ में थे उनके सहयोगी। बातें करते हुए ही मैं उनके साथ बाहर निकल आया। काफी दूर तक उनके साथ पैदल चलने पर मैंने कहा, “आप कार से क्यों नहीं चलते ? पैदल चल रहे हैं,” वे उसी रफ्तार से चलते हुए ही बोले, “देख रहे हो उन्हें,

हमारे इन साथियों में सभी तबके के लोग हैं। पूँजीपति भी, मजदूर भी और बुद्धिजीवी भी। ये सभी पैदल चल रहे हैं। हमारे देश की करोड़ों गुलाम जनता पैदल चल रही है। उनके शरीर पर मामूली कपड़े भी नहीं। मैं कार से कैसे चलूँ ?" और वह दूरी उनके घर से कम-से-कम 6-7 मील की थी।

वे बहुत तेज चलते थे कि कुछ लोगों को उनका साथ देने के लिए एक तरह से दौड़ना भी पड़ जाता। एक साथ 20-22 मील पैदल चलना उनके लिए बड़ी मामूली बात थी। अचानक तेज चलते हुए उन्हें मेरे पैर का ध्यान आया कि किस तरह मुझे उनके साथ दौड़ना-सा पड़ रहा है। वे रुके, "अरे तू अभी भाभी-बच्चों से भी नहीं मिला और मेरे ही साथ चला आ रहा है ! तुझे मेरे साथ चलने में तो बड़ी तकलीफ हुई होगी। फिर तू ठहरा कारों से चलनेवाला आदमी। अब तू घर जा और भाभी वगैरह से बातें कर। अरे हाँ, मैं तो डॉली से उसका हाल-चाल पूछना ही भूल गया था। अच्छा, रात में वापस आकर बातें करूँगा..."

और मैं वहाँ से वापस घर आ गया। मैं घर पहुँचा तो भाभी मुझे देखते ही जोरों से फिक्क कर हँस पड़ीं, "कहो भैया, आज तो फँस गए न उनके चक्कर में ! कितना मील दौड़ाया उन्होंने पैदल !"

लेकिन इस सब वातावरण के बावजूद मैं राजनीति में नहीं ही जा पाया। बाकी पूरा परिवार देश के दुख-दर्द से सम्बद्ध। हमारी सबसे बड़ी बहन का लड़का अवामी लीग में था और एम. पी. ए. (प्रान्तीय असेम्बली का सदस्य) चुना गया। छोटी बहन के पति बाँगला देश के सेक्रेटरी हैं। तीसरी बहन के पति भी अवामी लीग पार्टी के टिकट पर एम. एन. ए. (राष्ट्रीय असेम्बली के सदस्य) चुने गए। दूसरी बहन के पति अभी भी यहियाशाही की यातना के शिकार हो रहे हैं। उनका क्या हाल है भगवान ही जाने ! बहनें कहाँ हैं, यह भी मुझे नहीं मालूम।

इस बार आम चुनाव के समय भी चुनाव व्यवस्था की जिम्मेदारी मुझ पर ही रखी गई—विशेषकर आर्थिक पक्ष की। खुलना से यहियाशाही ने खड़ा किया था साबूर खाँ को, जो कभी 10 वर्ष तक पाकिस्तानी मन्त्रिमण्डल में रह चुके थे और मुस्लिम लीग के दबंग नेताओं में थे। उन्हें अपनी जीत का पूरा भरोसा था। किन्तु वे थे राजनीति के पक्के खिलाड़ी उन्होंने अपना नामांकन-पत्र दाखिल करने के बाद सबसे पहला काम यह किया कि अपने चुनाव व्यवस्थापक से, जो उनके मन्त्रित्व कार्यकाल के समय उनका निजी सचिव भी रह चुका था, खुलना शहर और गाँव के अपने निर्वाचन क्षेत्रों की सही स्थिति का जायजा लेने के लिए कहा। कुछ दिन बाद जब वह वापस आया तो उसका मुँह लटका हुआ था। पूछने पर बोला, "जनाब, अच्छा होगा कि आप भी मेरे साथ चलें और लोगों से मिलकर उनके मन की टोह लें।"

दोनों व्यक्ति लोगों के घर पहुँचते और मत देने की अपील करते तो लोगबाग उन्हें आश्वस्त करते, "आपके रहते हम दूसरे किसी को, वोट कैसे दे सकते हैं। हमारा वोट बिलकुल आपके लिए रिजर्व है..." और तभी उनकी निगाह घर में दीवार पर टँगे

मुजीब भाई के चित्र पर पड़ती, जिस पर वाकायदे जुही या गुलाब या किसी और ताजे फूल की माला पड़ी होती। अथवा इधर घर का मुखिया उन्हें ही वोट देने का आश्वासन दे रहा होता, उधर दरवाजे पर खड़े घर के बच्चे नारे लगा रहे होते।

‘मिष्टी खवावो वोट देवो शेख मुजीब, शेख मुजीब। शेख मुजीब आमार बाप, शेख मुजीब आमार...’ और उन बेचारों को वहाँ से चुपचाप खिसकते ही बन पड़ता। अन्ततः निराशा की यह हालत हो गई कि नाम वापस लेने के अन्तिम दिन बेचारे को अपना नाम वापस लेकर खुलना से विस्तर ही बाँधना पड़ा। खुलना के अवामी लीग के उम्मीदवार को 1 लाख 39 हजार वोटों में से 1 लाख 36 हजार वोट मिले थे। शेष 3 हजार में कितने ही अवैध हो गए थे।

दो मार्च को ढाका से वापस खुलना लौटने से पहले की बात। अवामी लीग का सविनय अवज्ञा सत्याग्रह बड़ी तेजी पर था और सामूहिक असहयोग की यह लहर देखने पर, लोगों की एकजुटता पर, दाँतों तले अँगुली दबा लेनी पड़ती थी। मैं बच्चों के साथ खाना खाकर लेटा हुआ भाभी से इस सत्याग्रह के बारे में बातें कर रहा था। लगभग दो-तीन बजे रात को मुजीब भाई आए। भाभी ने खाना परसा। मुजीब भाई ने मुझे बुलाया, “नासेर, खाना खा लो।” हर बार की तरह खाने की टेबल पर मैंने खाना खाने का नाटक नहीं किया, जब कि इसके पहले कितनी भी देर से वे घर पहुँचते, आते ही मुझे साथ खाने के लिए बुलाते; लेकिन मैं तो बच्चों के साथ पहले ही खा चुका होता। बुलाने पर चला जाता और साथ बैठकर खाना खाने, चावल का एक टुकड़ा भर धीरे-धीरे निगलने का नाटक करता। भाभी खाना भी खाती जातीं और मेरे नाटक पर मुस्कराती भी जातीं। मुजीब भाई कहते, “तू तो कुछ खा ही नहीं रहा है। लगता है तुझे खाना पसन्द नहीं आया। रेणु, कल सुबह से इसके मन माफिक खाना बनाया करना।”

लेकिन उस दिन मैंने नाटक नहीं किया। बड़ी संजीदगी से पूछा, “मुजीब भाई, क्या आप सोचते हैं कि यह सत्याग्रह सफल होगा ? कहीं अहिंसा से हिंसा का मुकाबला किया जा सकता है ? या किया भी जा सकता है तो कितने दिन तक ? काम छोड़कर बॉयकाट करनेवाले लोग कब तक इस तरह टिक सकेंगे ?”

वही प्रसन्न हँसी, “महात्मा गांधी ने भी जब इसी तरह सविनय सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया तो उस समय भी लोगबाग यही कहते थे कि ताकत का मुकाबला कहीं बिना हथियार के अहिंसात्मक सत्याग्रह से किया जा सकता है ? लेकिन अन्त में गांधी जी की ही विजय हुई थी।” फिर कुछ देर तक रुककर बोले, “गांधी जी के सही माने में शिष्य हमी हैं, उनके असली आशीर्वाद के पात्र भी हमी हैं। जो आन्दोलन उन्होंने सन् बयालीस में शुरू किया, 29 वर्ष बाद हमने भी उसे अपनाया, बल्कि भारत आजाद हो गया और हमें आजादी के बावजूद दुहरी गुलामी से मुक्त होने के लिए सत्याग्रह जारी रखना पड़ा। और तुम देख नहीं रहे हो किस जोश-खरोश के साथ बच्चा-बच्चा इस सत्याग्रह में भाग ले रहा है...”

दो मार्च को जब मैं वहाँ से चला तो भी वे हँस रहे थे, भाभी भी मुस्करा रही

थीं। सभी बच्चों ने हमें विदाई दी थी, उसी गर्मजोशी के साथ जिसके साथ वे दिया करते थे।

आज अकेले खाने के लिए बैठता हूँ, तो मुझे डॉली, भाभी और सारे बच्चे, लगते हैं, मेरे गिर्द बैठे हुए बेफिक्री की हँसी हँस रहे हैं। मुजीब भाई कह रहे हैं—देखो, अब यह मोटा हो रहा है। अब इसका शरीर मेरी तरह तन्दुरुस्त हो जाएगा तो लोगों को खूब धोखा होगा कि असली मुजीब कौन है ? लेकिन धक्का लगता है। लाखों की सम्पत्ति और व्यवसाय का मालिक मैं, शेख अबू नासेर, आज उसी एक कुर्ता, लुंगी, जवाहर जैकेट तथा पाजामे-बनियान के सहारे जिन्दगी काट रहा हूँ जिसे पहने हुए किसी तरह खूँखार दस्तों के पंजों से बाहर निकल आया था। पता नहीं माँ वहाँ किस हालत में बुढ़ापे के एक-एक दिन, एक-एक पल काट रही होगी। शायद वह मेरे बारे में निराश हो चुकी होगी और मुजीब भाई भी क्या सोचते होंगे कि जिस छोटे भाई के कन्धे पर भाभी तथा बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी सौंपकर निश्चिन्तता के साथ लोगों के अधिकार तथा लादी हुई गुलामी की जंजीरें तोड़ फेंकने के लिए संघर्ष में जुट गए थे, वह तो सुरक्षित भारत जा पहुँचा है किन्तु भाभी और बच्चे ढाका में नजरबंद हैं...

बार-बार 2 मार्च का वह दिन याद आता है। जब मैं और डॉली कार से रवाना हुए तो भाभी ने मुस्कराते हुए कहा था, "इस बार सत्याग्रह में हम तथा पूरा परिवार इस तरह व्यस्त रहा कि खुलकर ठीक से हँसी-खुशी की दो बातें भी नहीं कर पाए। लेकिन अगली बार, भैया, जब हम मिलेंगे तो खूब हँस-हँसकर बातें करेंगे। हमारी वह सुबह हमारी सफलता की सुबह होगी, क्योंकि इस बार हम कुछ-न-कुछ फैसला जरूर करेंगे।"

उस दिन सुबह तड़के ही मुजीब भाई अवामी लीग के कार्यालय चले गये थे। 1 मार्च की रात की वह भेंट आखिरी भेंट बन गई थी। अब वे कहाँ हैं ? कैसे हैं ? उनसे भेंट होगी या नहीं ? होगी भी तो किन परिस्थितियों में !

युद्ध यात्रा

युद्ध यात्रा : कालिन्दी तट की भटकन

मुक्तिवाहिनी के साथ बाँगला देश के मुक्त क्षेत्रों की यात्रा करके बम्बई लौट आया हूँ। पर बम्बई पहुँचकर भी जैसे जम नहीं पाया हूँ। मन उन्हीं अनुभवों को दोहराता रहता है। वे खतरे, वे दलदल, वे नंगे पाँव बन्दूक लिये किशोर और युवा। इधर अखबार भी दिन-रात उन्हीं खबरों से भरे हैं। कहते हैं जसोर के पास घमासान लड़ाई हो रही है। वनगाँव का मोर्चा भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हो रहा है। युद्ध को अपनी आँखों से देखना ही देखना है। मगर कैसे ?

कलकत्ते आ गया हूँ। भारतीय सेना के पूर्वी कमाण्ड का हेडक्वार्टर यहीं है। यहाँ आकर मालूम होता है कि इस बार बिना दिल्ली से अनुमति लिये पूर्वी कमाण्ड भी किसी पत्रकार को भारतीय सीमा पार कर कहीं जाने की अनुमति नहीं दे सकता। वहाँ से अनुमति लेने में कम से कम चार-पाँच दिन तो लगेंगे ही।

इन चार-पाँच दिनों में क्या किया जाय ? बैठे तो नहीं रहा जा सकता ?

सहसा मनुभाई भीमानी से भेंट होती है। पुराने स्वतन्त्रता सेनानी, कच्छ के सत्याग्रह में डॉ. लोहिया के सहयोगी भीमानी जी अब बड़े उद्योगपति हैं। कभी बम्बई रहते हैं, कभी कलकत्ते। पूर्वी बंगाल में उनकी जूट मिलें हैं, गहरे सम्पर्क हैं पूर्वी बंगाल में। “बहुत उत्सुकता है ?” हँसकर पूछते हैं, “चलो बिना सेना की अनुमति के जलमार्ग से सीमा पार ले चलता हूँ—स्टीमर से चलना होगा।” रातो-रात कार्यक्रम बन जाता है। स्टीमर के द्वारा छिपकर कालीगंज क्षेत्र में नदियों के मार्ग से जाने का। और हम चल पड़ते हैं।

लोहे और बाँस का बनाया गया यह नौका घाट, बड़े-बड़े बज्रों पर लादकर यात्रियों को कहाँ भेज रहा है नहीं मालूम। सिर्फ इस बहुत विशाल नदी का नाम मालूम है—कालिन्दी। उधर से आकर इच्छामती का संगम होता है। उससे और ऊपर कालीगंज के पास है जमना। ज्वार के समय इस विशाल जल-प्रवाह में जो लहरें उठती हैं, उसके आगे बम्बई का समुद्र पालतू लगता है। यह नदी भारतीय सीमा

में है। नदी के बीचोबीच हमारे दो बड़े युद्ध-स्टीमर लंगर डाले हुए हैं। दायीं ओर के पोत पर है कमाण्डर मुखर्जी का जल-शिविर। एक मोटर बोट हमें वहाँ ले जाने के लिए घाट पर आकर लगती है।

मैं मोटर बोट से झुककर कालिन्दी का जल अंजलि में लेना चाहता हूँ। अपने इलाहाबाद की कालिन्दी के शान्त-मन्थर जल पर तैरती नावों पर अपने कैशोर्य के कई महत्वपूर्ण मोड़ों की यादें कसकने लगी हैं (मेरी मजबूरी)। मुझे क्या मालूम था कि एशिया के इतिहास के एक महत्वपूर्ण मोड़ पर मैं जिस नदी के तट पर आ खड़ा होऊँगा उसका नाम भी कालिन्दी होगा।

कमाण्डर मुखर्जी ! शान्त, सचेत, मितभाषी। वे बताते हैं कि सतखीरा अभी मुक्त नहीं हुआ है, लेकिन मुक्तिवाहिनी उसकी सीमा पर पहुँच गयी है। खुलना में युद्ध बहुत घमासान होगा। उसे जीतना आसान नहीं। (उनका अन्दाजा कितना सही था ! खुलना में ढाका के पतन के बाद भी युद्ध चलता रहा।)

कमाण्डर मुखर्जी नक्शे पर उस क्षेत्र की सारी स्थिति हमें समझाते हैं और कुछ जरूरी सलाहें। मसलन अनेक हिस्से ऐसे हैं, जो आज सवेरे ही मुक्त हुए हैं और हम पहले भारतीय नागरिक होंगे, जो वहाँ जायेंगे। सड़कों के आसपास, खेतों में, घास में पाकिस्तानी माइनें बिछी हुई हैं और निर्धारित रास्तों से एक कदम भी हम इधर-उधर हुए तो चियड़े उड़ जायेंगे। रजाकारों या भगोड़े पाकिस्तानी सैनिकों के इक्का-दुक्का गोल झाड़ियों और बँसवटों में छिपे हुए हैं और जरा भी अन्देशा होने पर, या अकेला पाने पर उनकी स्टेनगन और राइफलें बारूद उगलने लगेंगी। कहीं-कहीं प्रत्याक्रमण भी हो रहे हैं, लेकिन मेजर जलील साथ हैं, अतः चिन्ता की बात नहीं। वापस घूम कर टाकी ! गली के एक मोड़ पर कुछ आतुर सावधान युवा चेहरे, साँवले, कमीज-लुंगी पहने। सितम्बर में जिन मुक्तिसैनिकों को देखा था, उन्हीं की जाति के। हमारा अनुमान सच है, बगल की एक दुर्गजिली इमारत में मेजर जलील हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। बाहर यह टुकड़ी पहरा दे रही है।

ऊपर के कमरे में मेजर जलील। खूब भरा-भरा गहरा साँवला चेहरा, नाटा कद, घनी मूँछें, और रूखे-बिखरे खड़े बाल—हिप्पियों जैसे। बन्द गले का फौजी स्वेटर, औपचारिक स्वागत करके वे अपने काम में लग जाते हैं। बारिसाल में जन्मे मेजर जलील, विदेशों में सैन्य शिक्षा ले चुके हैं। उनकी व्यक्तिगत रुचियाँ बहुत कुछ 'मॉड' पीढ़ी की हैं, चलने का ढंग, बोलने का लहजा, अंग्रेजी गानों का चुनाव। उस शेक-टिविस्ट-जाज की दुनिया से अकस्मात् इच्छामती और जमना की काली कीचड़ में लथपथ, मूड़ी और गुड़ चबाते हुए छापामार युद्ध की यह दुनिया कितनी अलग है ? मार्च के आखिरी हफ्ते में जब कहर तारी हुआ, ढाका में ही नहीं, बारिसाल में भी पंजाबी सैनिक खुलेआम लूट-आगजनी और बलात्कार करते घूम रहे थे। एक दिन उनके घर के ही सामने की सड़क पर शोर सुन पड़ा। उन्होंने देखा कि पाकिस्तानी सिपाहियों का एक दस्ता, अन्धाधुन्ध इधर-उधर

बंगाली घरों पर फायरिंग करता हुआ, गालियाँ बकता हुआ चला आ रहा है। उनके साथ तीन बंगाली युवतियाँ हैं। दो अर्द्धनग्न, अचेत, जिन्हें टॉगें और बाँहें पकड़कर वे झुलाते हुए ला रहे हैं। अकस्मात् दूसरा दस्ता आया। आते ही जानवरों की तरह हो-हो कर उछला और तीसरी औरत को वहीं सड़क पर गिरा दिया। मेजर जलील अपनी स्टेनगन लेकर नीचे उतर आये। उन्होंने सैनिकों को ललकारा, अपना परिचय दिया, बताया कि यह व्यवहार जानवरों का है, बहादुर सैनिकों का नहीं। सैनिक थोड़े सहमे। उन्होंने संगीनों नीची कर लीं, लेकिन फोश गालियाँ देते हुए बोले कि इन बंगालियों को वे मजा चखा देंगे। इनकी औरतों ने सरकश बंगाली पैदा किये हैं, अब हर औरत को पाकिस्तानी पैदा करने का मौका देंगे। और फिर एक पैशाचिक अट्टहास कर वे अकल्पनीय गन्दी बातें बकने लगे। मेजर जलील का खून उवाल के बिन्दु तक पहुँच चुका था। गरजकर बोले, “भूलो मत कि मेरी माँ भी बंगाली है !”

“तो उसे भी भेज दो !” एक सैनिक बोला, लेकिन वाक्य समाप्त होते-होते मेजर जलील की बन्दूक छूट चुकी थी—और वह क्षण था कि एक झटके में मेजर जलील का पाकिस्तान हमेशा के लिए मर गया !

घाट पर खड़ी मुक्तिवाहिनी की गनबोट साइरन दे रही थी और अब हमें चलना था। लेकिन चलने के पहले मेजर जलील हमें अपने युद्ध क्षेत्र का पूरा परिचय देने के लिए कुछ नक्शे और चार्ट ले आये थे। कर्नल उस्मानी ने समूचे युद्ध क्षेत्र को अनेक सेक्टरों में बाँट दिया था। मेजर जलील सेक्टर नं. 9 के इन्चार्ज थे। इस सेक्टर में चार जिले हैं—खुलना, फरीदपुर, बारिसाल और पटुआखाली। हर जिला कई ‘जोन’ में बँटा हुआ था। खुलना में 7 जोन, फरीदपुर में 9 जोन, बारिसाल में 9 जोन और पटुआखाली में 3 जोन। हर जोन भी थानों के हिसाब से बँटा हुआ था। कुल मिलाकर चारों जिलों में 83 थाने थे, जिनमें मेजर जलील के अनुसार 30 नवम्बर को 75 थाने उनके अधिकार में थे।

इनकी युद्ध और प्रशासन व्यवस्था कैसे चलती है, इसके बारे में पूछने पर ज्ञात हुआ कि हर सेक्टर का एक लिबरेशन कमाण्डर है और एक प्रशासन कमाण्डर। उनके अन्तर्गत हर जोन का एक-एक लिबरेशन और एक प्रशासन कमाण्डर है। यह व्यवस्था थाने तक चलती है और उसके बाद गाँव तक।

हर गाँव में मुक्तिवाहिनी का हिसाब यह है कि कुछ मुक्तिसैनिक वहाँ स्थायी रूप से तैनात हैं, जिन पर वहाँ की सुरक्षा और व्यवस्था का जिम्मा है। इसके अलावा हर गाँव में मुक्तिसैनिकों की चलनशील टुकड़ी (मोबाइल यूनिट) है। जहाँ भी लड़ाई होती है वहाँ शत्रु पर दबाव डालने के लिए ये टुकड़ियाँ बुला ली जाती हैं। गाँववालों को शस्त्र मिल गये हैं। मुक्त होने के बाद वे अपने ही क्षेत्र में निष्क्रिय न पड़े रहें, इसलिए यह व्यवस्था की गयी है।

यह बातचीत चल ही रही है कि एक नौसैनिक लाया जाता है। वह सैल्यूट करके

अपनी रिपोर्ट देता है। एक ग्रीक स्टीमर का पीछा उन्होंने रात को किया है और उसकी लिखित रिपोर्ट वह मेजर जलील के सामने रख देता है। नाम है मकबूल बी. आलम पाकिस्तानी नौसेना का भूतपूर्व सैनिक, इस युद्ध के लिए पाकिस्तान की ओर से छोटी घातक पनडुब्बियाँ लेने फ्रांस भेजा गया था। वहीं से उसने राजनीतिक प्रश्रय माँगा और पाकिस्तानी नौकरी छोड़कर मुक्तिवाहिनी में शामिल हो गया। उन दिनों अखबारों में खुलना के आसपास जो अनेक पाकिस्तानी फौजी स्टीमरों के डूबने के समाचार आये थे, वे सब मकबूल आलम के कारनामे थे और तब तक आलम सात पाकिस्तानी स्टीमर डुबो चुका था।

मेजर जलील आलम की रिपोर्ट लेते हैं, शाबाशी देते हैं और एक कमाण्ड स्लिप पर कमाण्ड लिखते हैं—एक मोटी हरी स्याही की कलम से—काली फौजी स्याही से नहीं। मॉड फैशन के साइकेडेलिक रंगों का मोह यहाँ भी इस तरह प्रकट हो रहा है, यह देखकर मैं अपनी मुस्कराहट रोक नहीं पाता। “येस, माई फेवरिट कलर ?” मेजर जलील कहते हैं और चलने के लिए उठ खड़े होते हैं। “मगर डॉक्टर भाई, भारती साहब, ये रंग तो हमारे बाँगला देश के पलैंग का बूझिए ?”

“हुजूर, यह गनबोट खासतौर से आपके लिए मँगवायी गयी है।” खुर्शीद मेरा हाथ पकड़कर स्टीमर पर चढ़ाते हुए बोले, “घबराइए मत, यह देखिए, आगे मशीनगन फिट है। अगर गोली चले तो नीचे सीटों के बीच में लेट जाइएगा। हम तो इससे हवाई हमले का भी मुकाबला कर चुके हैं, वैसे अभी शाम तक तो कोई डर नहीं है।”

नौका का नाम है ‘बंगशक्ति’। सभी युद्ध नौकाओं के नाम बड़े साहित्यिक हैं—बंगवज्र, बंगधारा, बंगवामा ! सभी पाक नौसेना से छीनी गयी हैं। फिर मरम्मत करा कर नया रंग-रोगन और नया नाम। हमारी इस ‘बंगशक्ति’ का पाकिस्तानी नाम था लैला !

इंजिन स्टार्ट होता है और ‘बंगशक्ति’ लहरें चीरती चल पड़ती है। मशीनगन पर गोलियों की लम्बी पेट्टी चढ़ा दी जाती है और दो सैनिक सतर्कता से बैठ जाते हैं मशीनगन के ठीक आगे खुले डेक पर हम बैठे इच्छामती की लहरों पर से आते झोंकों का मजा ले रहे हैं। मनुभाई बताते हैं कि वह सामने उस पार श्रीरामपुर के झुरमुटों में विधानचन्द्र राय की पुरानी कोठी दीख रही है। पहले बरसों तक हर वर्ष दुर्गापूजा के लिए वे श्रीरामपुर आते थे, लेकिन बाद में पाकिस्तान ने रोक लगा दी।

श्रीरामपुर से फिर ‘बंगशक्ति’ देवभाटा की ओर चल पड़ती है। मनुभाई के

टिफिन में गुजराती पूड़ियाँ और आलू की सब्जी है, पर मेरी भूख-प्यास हवा है। कैप्टन खुशीद मेरा और अपना हिस्सा ले आते हैं और खाते-खाते हम बातें कर रहे हैं। कैप्टन खुशीद को अगरतला केस में अय्यूब ने फँसा दिया था, क्योंकि वे शेख मुजीब के भानजे थे। तब वे पश्चिम में ही 'पोस्टेड' थे। कैसे अय्यूब ने उनको बुलाया, कैसे उनको डरा-धमका कर मुखबिर बनाना चाहा, भारत के कल्पित षड्यन्त्रों की कैसी झूठी तस्वीरें खींचीं, कैसे इस्लाम की दुहाई दी और अन्त में निराश होकर कैसे जेल भेज दिया—सारा किस्सा बहुत ही दिलचस्प है। दूर से हरे कुंजों में एक लाल इमारत दीख रही है। वही है देवभाटा। घाट काफी औघट है। बहुत ऊँचा कगार, काला लिसड़ा कीचड़, खजूर के दो तने काट कर कीचड़ में लिया कर सीढ़ी बनायी गयी है, फिर भी उतरना मुश्किल है। अन्त में एक लम्बा हरा बाँस काट कर लाया जाता है और हम उसे पकड़कर कहीं-कहीं उससे लटक कर उतरते हैं।

“नारा-ए-तकबीर ! अल्लाहो अकबर !” गगनभेदी नाद गूँजता है। हम चौंक उठते हैं। लेकिन दूसरे ही क्षण बोल आता है—“जय बाँगला !” “बंगबन्धु शेख मुजीब ! जिन्दाबाद !” हम आश्चर्य होते हैं। आजाद देवभाटा आज मुक्तिवाहिनी के विशाल शिक्षण शिविर में बदल गया है। अल्लाहो अकबर यहाँ का प्रिय नारा है। इनके पिता-पितामह ने यह नारा लगा कर यहाँ धर्मान्ध पाकिस्तान बनाया था। उनकी सन्तानें यही नारा लगा कर पाकिस्तान से विद्रोह कर रही हैं धर्मनिरपेक्ष बांग्लादेश की स्थापना के लिए। अल्लाह सचमुच महान् है। उसका नाम लेकर तानाशाह कब तक खैर मना सकते हैं !

यहाँ से हमें जीप पर कालीगंज जाना है। जीप चलती है और सैकड़ों मुक्तिसैनिक घुमावदार सड़क पर दोनों ओर खड़े होकर हमें गार्ड ऑफ ऑनर दे रहे हैं और रास्ते में चले जा रहे हैं कुछ थके हुए ग्रामीण अपना बैघना-बोरिया लादे हुए। क्या अभी भी शरणार्थी आ रहे हैं ? उतर कर पूछने पर मालूम हुआ—नहीं, ये शरणार्थी घर लौट रहे हैं। देवभाटा से 12 मील दूर इनका गाँव है। पाँच परिवार हैं। दो हिन्दू, तीन मुसलमान, एक हिन्दू वृद्धा चलने से लाचार है उसे बारी-बारी कर टोली के हिन्दू-मुसलमान युवक गोद में चढ़ाकर ले जा रहे हैं। अब फसल तैयार है, पाकिस्तानी जला नहीं चुके होंगे, तो जाते ही फसल काटेंगे !

खेतों को पार कर सड़क अब जंगल में मुड़ गयी है। आम, बाँस, केले के घने कुंज, बीच-बीच में काई ढके पोखर और वृक्षों से लटकी लतरें। “हाए डॉक्टर ! हायसिंघ, व्हाट ए कलर !” मेजर जलील बिलकुल मॉड लहजे में बोल उठते हैं। कौन-सा वनफूल था, मुझे नहीं मालूम। मेजर जलील कुछ-कुछ घर की याद में डूबे हैं। “आपने बारिसाल नहीं देखा। इतनी घनी हरियाली है वहाँ, यह तो कुछ नहीं।” बारिसाल से मेरे मन में इलाहाबाद उभरता है, एक तो गंगापार झूँसी के आगे छतनगा का जंगल याद आता है, पर उससे भी अधिक यह कि बारिसाल की ही पारेरहाट रियासत के निर्वासित राजा

सूर्यप्रसन्न वाजपेयी आज भी इलाहाबाद में अपने पारेरहाट भवन में रहकर बारिसाल की याद करते रहते हैं।

साखीपुर और पारुलिया में युद्ध अपनी गहरी छाप छोड़ गया है। सड़क के दोनों ओर बंकर हैं। बंकर क्या छोटे-छोटे किले समझिए। दो मकानों पर तो छत पर ईंटें चुन-चुन कर पाकिस्तानियों ने बंकर बनाये थे। उनका मुख्य उद्देश्य था इस पुल की हिफाजत। यहाँ तक कि पुल के नीचे दोनों तरफ उन्होंने बाँसों की तीन-तीन दीवारें बनायी थीं और उनमें माइन लगा दी थीं कि कोई छापामार रात-बिरात पुल तक न पहुँच पाये। अन्त में जब वे कालीगंज से भागे, तो सतखीरा जाते हुए उन्होंने यहाँ पर एक बार फिर रुक आखिरी मोर्चा बाँधने की कोशिश की। एक पूरी बटालियन थी उनकी, उसके साथ 25 पाउण्डवाली तोपें, रेकॉयललैस गन, और बहुत छोटी पहियेदार चीनी तोपें थीं। लेकिन मुक्तिवाहिनी के निरन्तर हमलों के आगे उन्हें भागना पड़ा। भागते वक्त उन्होंने मिट्टी का तेल छिड़ककर और डाइनामाइट लगाकर यह पुल उड़ा दिया। अब वे यहाँ से 5 मील दूर एक ईंटों के भट्टे में खाइयाँ खोद कर बैठे हुए हैं। पुल के पार दोनों ओर की दुकानों पर स्वाधीन बाँगला ध्वज फहरा रहे थे। हालाँकि कभी-कभी उनके गोले जरा आगे आकर गिर रहे थे। पुल के नीचे कुत्ते जमा थे। मालूम हुआ, इसी पारुलिया खाल के पास एक और हादसा हुआ था। अप्रैल में आसपास के गाँवों से करीब दो-तीन सौ हिन्दू-मुस्लिम शरणार्थी भागते हुए आये थे और पाक फौजों को देखकर इसी पुल के पास कगारों में छिप गये थे। रात को पाक सैनिकों ने चुपचाप छावनी से निकलकर उन्हें घेर लिया और एक-एक को गोली से भून डाला। तीन दिन तक लाशें वहीं पड़ी सड़ती रहीं। जब पूरा कस्बा दुर्गन्ध से सड़ने लगा, तब कस्बे के सभी अधेड़ पढ़े-बेपढ़े कुदाल लेकर गड्ढे खोद कर उन्हें दफनाने गये। अधेड़ इसलिए कि युवक या तो मारे जा चुके थे या मुक्तिवाहिनी में चले गये थे।

और यह संहार शुरू हुआ था उर्दू भाषा से, आते ही फौज ने हुक्म दिया कि कस्बे के सारे साइनबोर्ड उर्दू में कर दिये जायें, यहाँ किसी को उर्दू लिखना नहीं आता था। दूसरे दिन उन्होंने 7 दुकानदारों को एक लाइन में खड़े करके गोली मार दी। उन्हें शक था कि बाँगला में लोग मुक्तिवाहिनी के लिए संकेत लिखते हैं। इतने घबरा गये कस्बे के लोग कि उन्होंने चन्दा करके सतखीरा से एक उर्दू पेण्टर बुलवाया और साइनबोर्ड बदलवाये।

इक्का-दुक्का दुकानें और इमारतें तेजी से जाती जीप पर पीछे छूटती जा रही हैं। कालीगंज आ रहा है। जमना किनारे बसा यह कस्बा जब आज युद्ध ध्वस्त होने

के बाद इतना रौनक-अफरोज है, तो पहले तो कितनी चहल-पहल रहती होगी यहाँ। कुछ फूस, कुछ टीन की छोटी-छोटी दुकानों की कतार। नदी के दोनों ओर लम्बे-लम्बे गोदाम, जिनमें से बाँस और लोहे के छोटे-छोटे माल लादने-उतारने के मचान। कुछ इकहरी, कुछ दुमंजिली पक्की इमारतें और बीच-बीच में खेत और बाँस, केले के हरे झुरमुट। युद्ध के पहले यह खुलना जिले का काफी बड़ा नदी-बन्दरगाह था। जूट यहाँ से लदकर खुलना जाता था और चालना बन्दरगाह से लदकर आयातित माल सीधे कालीगंज तक आता था। जमना के कगार काफी ऊँचे हैं। लेकिन इस वक्त भाटा है, अतः पानी बहुत कम। “जलील, इधर से नदी के रास्ते खुलना कितनी देर में पहुँचा सकते हो ?” मनुभाई पूछते हैं। “काफी जल्दी, यहाँ से खुलना सिर्फ 40 मील है। लेकिन बीच में 400 जगह फायरिंग होगी !” मेजर जवाब देते हैं।

वाकई मेजर हुदा ने सच कहा था। यह शहर बंकरों का शहर है। हर गली में बंकर, नदी किनारे बंकरों की कतार, हर सरकारी इमारत में बंकरों की पाँत, और दीवार तो शायद ही कोई बची हो, जिस पर गोलियों के निशान न हों। और यह क्या ? नारियल के पेड़ों के बीच एक बहुत बड़ा-सा मिट्टी का चौकोर ढेर। मालूम हुआ, यहाँ लाशों का बहुत बड़ा ढेर था। गट्टे खोदने के बजाय चारों ओर से ट्रकों पर लाद-लाद कर उन पर मिट्टी थोप दी गयी है, वह भी इसलिए कि बदबू से बंकरों में पाकिस्तानियों का बैठना मुश्किल हो गया था। और फिर तो लगने लगा कि यह नरहत्या की भयानक नगरी है। अस्पताल के पास अब भी कितनी लाशें पड़ी सड़ रही हैं।

बाद में किसी ने दिखाया एक पुल, जिस पर छोटा-सा बाँध-सा बँधा था। यही वह पुल था, जहाँ एक रजाकार लोगों को मार-मार पानी में फेंक दिया करता था। डाक बैंगले का चौकीदार। नाम—मोहम्मद लालू। मारने के पहले लोगों के पेट चीर देता था ताकि पानी भर जाये और लाश तैरे नहीं। हट्टा-कट्टा ? नहीं, दुबला-पतला, धिनौना-सा ! महीने भर पहले उसे मुक्तिवाहिनी ने पकड़ लिया और तब अपने माँ-बाप को याद कर बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो रहा था।

शाम पूरी तरह उतर आयी थी और हत्याओं का एक भयावनापन चारों ओर माहौल में छा गया था। हम जल्दी से जल्दी वहाँ से निकल आना चाह रहे थे। बीच में बाँस के एक झुरमुट में डूबता सूरज अटक गया था। सिन्दूरी नहीं, गाढ़े खून के रंग का। इतना खौफनाक सूर्यास्त मैंने अपनी जिन्दगी में कभी नहीं देखा था। लेकिन मुझा तो उससे भी खौफनाक चीज देखी। एक छोटा-सा चार-पाँच बरस का बच्चा, एक खोपड़ी लिये खड़ा था। पास के खेत में और हैं, उसने बताया। हम लोग धर्रा गये। कल्लेआम के बीच पले ये अबोध बच्चे क्या जीवन भर सहज हो पायेंगे ? मनुभाई उसे खोपड़ी फेंक देने को कहते हैं और जेब से निकालकर एक रुपया देते हैं। वह खुश होकर भाग जाता है। लेकिन इस दान का प्रतिफल हमें तुरन्त मिलता है। अगले मोड़ पर तीन बच्चे हड्डियाँ और खोपड़ी लिये खड़े हैं। हमारा खून सर्द हो जाता है।

मेजर जलील हमारी स्थिति समझ रहे थे। “चलिए उस पार चलें—नाजिमगंज।”

नाव आती है और हम उस पार जाते हैं, नाजिमगंज, कालीगंज का नया नदी पार का मुहल्ला ।

यहाँ बाजार में कुछ रौनक है। लालटेन और पेट्रोमैक्स जल गये हैं। एक पुराने ग्रामोफोन पर कोई बँगला गीत बजा रहा है। नाजिमगंज और कालीगंज का मुक्तिवाहिनी कमाण्डर कैप्टन शचीन आता है। साँवला रंग, हँसमुख चेहरा, उजले दाँत, मेजर जलील उसे गले से लगा लेते हैं। उनका जांबाज सहयोगी है वह। हमारे लिए डाब, चाय और गुलाबजामुन मँगवाता है। एक सरकारी इमारत के आँगन में कुर्सियाँ निकाल ली गयी हैं और हम चाँदनी में बैठे हैं चाय आती है, तो अन्दर से एक बड़ी-सी दफ्तरी गोल मेज निकाली जाती है। हम चारों ओर कुर्सियाँ खींच लेते हैं।

कैप्टन शचीन चाय का प्याला छोड़कर अपने मुक्तिसैनिकों के बीच चले गये हैं। वह टुकड़ी साखीपुर जा रही है। हम देखते नहीं, पर कैप्टन शचीन कह रहे हैं—“तुमको माँ काली की कसम है, आज काम पूरा करके आना।” टुकड़ी के नौजवान मुक्त कण्ठ से कहते हैं—“माँ काली की कसम, बोलो नारा-ए-तकबीर अल्लाहो अकबर—बंगबण्धु शेख मुजीब—जिन्दाबाद, जिन्दाबाद !” इस मिले-जुले नारे पर मेरा मन भर आया है। चाय अकस्मात बहुत अच्छी लगने लगी है।

हमारी वापसी के लिए दूसरी युद्ध नौका आ गयी है, पर पानी कम होने के कारण मुड़ नहीं पा रही। अन्त में घाट पर लगती है।

कुछ दूर चल कर नदी खूब चौड़ी हो गयी है। चाँदनी में कितनी खूबसूरत लगती है ! इधर बसन्तपुर है, उधर हिंगलघाट। बसन्तपुर आजाद हो चुका है, लेकिन एक गोली छूटने की आवाज आती है। हमारे मशीनगन के निशानेबाज सतर्क हो जाते हैं। सर्चलाइट उधर घुमा दी जाती है। कहीं नहीं, कोई नहीं। सिर्फ बाँसों-नारियलों के झुरमुट और जहाँ सर्चलाइट नहीं, वहाँ बेले के गजरे जैसी चाँदनी। सुनसान नदी पर सिर्फ हमारा स्टीमर चला जा रहा है।

युद्ध : अप्रत्याशित आरम्भ

आप उस उदासी को क्या कहेंगे जो हिमालय की गगनचुम्बी चोटियों की रहस्यमय बर्फ के उजलेपन से भी न धुल सके ? मैं सोच में डूबा हूँ कि आखिर जब सबसे ज्यादा मारक युद्ध जेसोर में चल रहा है, कलकत्ते के इतने पास, तब हमारे पुराने मित्र ईस्टर्न कमाण्ड के पी. आर. ओ. डाइरेक्टर कर्नल रिखी ने हमें शिलांग क्यों भेज दिया है ? वहाँ से हम कहीं वास्तविक चलते हुए युद्ध के पास पहुँच भी पायेंगे, या उसी तरह निराश लौटेंगे जैसे बनगाँव की जेसोर सीमा से भटककर लौट आये थे।

तीस नवंबर को कालीगंज से लौट कर दूसरे ही दिन सुबह हम जेसोर रोड पर चल दिये हैं। हावड़ा और दत्तपुकुर पार कर घनी छायादार सड़क जेसोर रोड ! बनगाँव का गुंजान आबाद कस्बा। कार्यक्रम था कि वहाँ सीमा पार कर मुक्तिवाहिनी के जेसोर सेक्टर के मेजर उस्मान या झींकरगाछा के विजेता कैप्टन हुदा से मिलकर अन्दर जायेंगे, लेकिन पहुँच कर मालूम होता है कि सीमा तो दूर, इच्छामती के पुल से ही रास्ता बन्द-सा हो गया है। इस अनजाने कस्बे में अकस्मात कोई पुकारता है, 'डॉ. भारती ! और दौड़कर गले लगाता है। ये हैं दिलीप दा (विश्वविद्यालय मुक्ति-संघर्ष सहायक समिति के दिलीप चक्रवर्ती)। उनके साथ हैं सुभाष बाबू के भतीजे डॉ. शिशिर घोष और अन्य दो डॉक्टर। मालूम हुआ कि घायलों की देखभाल के लिए वे आये हैं। उस पार जाना असम्भव। मालूम होता है कि तीन स्पेशल बसों में भर कर दो सौ के लगभग देशी-विदेशी पत्रकार कर्नल रिखी के साथ आये हैं, वे भी लौट रहे हैं। बसों पुल पर दीख पड़ीं। हम लपके। पत्रकार सारे झुँझलाये हुए हैं और कर्नल रिखी व्यस्त। हम भी कर्नल रिखी के सामने जाकर चुपचाप खड़े हो जाते हैं। वे हमें देखते ही सहज मीठी मुस्कान के साथ स्वागत करते हैं और दूसरे ही क्षण, "कोई फायदा नहीं, कलकत्ते लौट जाइए। आज कुछ नहीं हो सकता। कल 12 बजे दफ्तर में आपका इन्तजार करूँगा।"

क्या इसी के लिए हम आये थे ? मैं इतना खीजा हुआ हूँ कि लौटते समय

दत्तपुर्कुर की रंग-बिरंगी देहाती हाट से खरीदी हुई ताजी लाल मूलियाँ और सिंघाड़े भी बेस्वाद लगते हैं। खा रहा हूँ, क्योंकि दिन भर चाय के अलावा कुछ नहीं मिला।

दूसरे दिन कर्नल रिखी के दफ्तर पहुँचे, तो शान्त-सुव्यवस्थित रहनेवाले उनके दफ्तर में हुड़दंग मचा हुआ था। कमरों में, गलियारों में, सीढ़ियों पर, लिफ्ट में यहाँ तक कि चपरासी के स्टूलों तक पर हर देश, हर भाषा, हर रंग के, दुनिया के कोने-कोने से आये पत्रकार-छायाकार भरे थे। उनके बीच से किसी तरह कर्नल रिखी निकलकर आते हैं, हमें अलग ले जाते हैं और जल्दी-जल्दी बताते हैं कि सुबह हेडक्वार्टर से आपके लिए परमीशन आ गयी है। अब पहले प्लेन से शिलांग चले जाइए। वहाँ हमारे पी. आर. ओ. आपको आगे का कार्यक्रम बतायेंगे। “लेकिन शिलांग ? हम तो सोचते थे अगरतला जायें, पिछली बार...” हमें शिलांग की बात समझ में नहीं आती। पिछली बार अगरतला से कोमिल्ला सेक्टर गये थे मेजर खालिद मुशर्रफ के क्षेत्र में। “अब फिर न कीजिए, पिछली बार भी आप सही जगह गये थे !” कर्नल रिखी पत्रकारों की भीड़ में फिर गायब हो जाते हैं।

गोहाटी से शिलांग पहुँचते-पहुँचते ठिठुरन इतनी जबर्दस्त हो गयी है कि ठिकाना नहीं। जिस आर्मी पी. आर. ओ. को हमारे साथ जाना है वह कहीं और है, दूसरे पी. आर. ओ. कैप्टन भटनागर कल 10 बजे आयेंगे, तब तक आराम करें। लेकिन आराम कहाँ ?

सोच रहा हूँ, आज शुक्रवार हो गया, 3 दिसम्बर। पता नहीं यहाँ शिलांग के आगे कहीं जा पाऊँगा भी या नहीं ?

गोधूलि बेला और भी बेचैन कर जाती है हमेशा। आज तो और भी ! यों ! करीब 6 बजे सारी बत्तियाँ गुल हो जाती हैं। सायरन बजने लगते हैं चारों ओर अन्धा घुप्प ! यह हुआ क्या ? बात क्या है ?

पुलिस वाले सड़क पर चलती गाड़ियों, मोटरसाइकिलों, स्कूटरों की बत्तियाँ बुझावाना शुरू करते हैं तब कहीं जाकर माजरा समझ में आता है। पुलिसवाला कहता है—“पाकिस्तान हमला बोल दिया है, पश्चिम बार्डर पर बम गिराया है। इधर भी गिर सकता है। बत्ती बुझाओ।” चारों तरफ रेडियो पर लोग समाचार सुनने लगे हैं। मालूम हुआ बिना किसी चेतावनी के पाकिस्तान ने हमला बोल दिया और पहली ही लपेट में पठानकोट, अमृतसर, श्रीनगर, अम्बाला, आगरा पर जबर्दस्त बमबारी की है। इतने अचानक हमले की किसी को कल्पना भी नहीं थी। उसका इरादा था कि पहले ही हमले में भारतीय वायुसेना की कमर तोड़ दी जाए। बेहद चिंता हुई—क्या हुआ होगा। पर शीघ्र ही वायुसेनाध्यक्ष पी. सी. लाल ने बुलन्द घोषणा की कि “चोट करना तो दूर दुश्मन हम पर खरोँच तक नहीं लगा सका !” मन थोड़ा आश्वस्त होता है। तो युद्ध आरम्भ हो ही गया और हम स्वेटर, ओवरकोट, मफलर में लिपटे शिलांग में भटक रहे हैं। न कलकत्ता लौट सकते हैं न अगरतला जा सकते हैं। सारी उड़ाने बंद। सारी ट्रंक लाइनें अस्त-व्यस्त। पता नहीं बम्बई में क्या हो रहा होगा ?

रात उतर आई है। कमरों में कार्निंस के पीछे लकड़ियाँ जला दी गयी हैं, हीटर लगा दिये गये हैं। लेकिन ठिठुरन है कि बला। सुबह तक कोहरा घास में बर्फ बन जायेगा। रात को पीने के लिए रखे पानी पर बर्फ की पपड़ी जम जायेगी। मैं जाग रहा हूँ ब्लैक आउट की वजह से मोमबत्ती जला कर। आशंका है आज रात गोहाटी और शिलांग पर पाकिस्तानी हवाई हमला करेंगे। कुछ पीकर और सब थक कर सो गये हैं। मैं जाग रहा हूँ कि रात बारह बजे रेडियो पर इन्दिरा जी बोलने वाली हैं। लेकिन पता नहीं कहाँ से इस अँधेरे में ढोलक, मृदंग और किसी मादक लोकगीत की आवाज आ रही है। इस खौफनाक वातावरण में यह संगीत कैसा ?

शाम को चाँद बहुत देर से उगा। यहाँ नहीं। शिलांग से सैकड़ों मील दूर, मेघालय और सिलहट (बांग्लादेश) की सीमा पर स्थित बलाट के डाक बँगले में सुबह 10 बजे पी. आर. ओ. कैप्टन भटनागर ने आते ही खबर दी कि कलकत्ते के आदेशानुसार कार्यक्रम बदल दिया गया है और अब हम डावकी की जगह बलाट से सिलहट क्षेत्र की सीमा पर जायेंगे। बलाट, मैंने तो कभी यह नाम ही नहीं सुना। मालूम हुआ कि संसार के इतिहास में शरणार्थियों का सबसे बड़ा कैम्प वहीं है। तीन लाख शरणार्थी। यानी तीन बड़े कस्बों की आबादी के बराबर। लेकिन हम शरणार्थी कैम्प देखने आये हैं क्या ? यह क्या मजाक हो रहा है ?

कैप्टन रघुनाथ कृष्ण भटनागर, पी. आई. बी. दिल्ली से डेलीगेशन पर आर्मी में आये हैं।

ऊँची-नीची, कच्ची, बेमरम्मत पहाड़ी सड़क पर धचके खाते-खाते शाम हो गयी है। मेघालय का अजीब करिश्मा है कि दिन भर खुली धूप, लेकिन शाम को पता नहीं कहाँ से घने बादल घिर आते हैं। दिन के 12 बजे से ठिठुरन शुरू होती है, शाम और रात बर्फीली। रात 12 बजे से सर्दी घटने लगती है। अब चलते-चलते रात हो गयी है और हम घने पहाड़ी जंगल में से गुजर रहे हैं। कहाँ गयी वह नीली पंडुक जैसी चिड़िया, जो शाम को बार-बार हमारी जीप के आगे आकर उड़ने लगती थी ! इन जंगलों में बहुत शहद है, और उतने ही भालू-तेंदुए भी हैं। काले तेंदुए भी। और जंगलों के बीच से ही नीचे बहुत दूर रोशनियाँ दिखायी देती हैं। मीलों तक फैली हुई, वही है बलाट।

चाँद देर में निकलेगा। अँधेरा बेहद घना है। डाक बँगले के आगे ही नदी का पाट है और उसके पार रोशनियाँ। मीलों फैली, यह माइलाम है, कोई बताता है।

अभी तक हमारा सामान जीप पर लदा है। डाक बँगले में कोई जगह नहीं। यह तो अगर आधे घण्टे बाद कहीं से लेफ्टिनेण्ट कर्नल खुराना न आ जाते तो रात जीप में ही गुजारनी होती। लेफ्टिनेण्ट कर्नल खुराना निहायत शरीफ, बुजुर्गाना लहजे में हमारी ओर देखकर कहते हैं—“भेरे जैसा बूढ़ा आदमी तीन दिन से जीप पर चल रहा है, बिना सोये, आप इतने में थक गये। चलिए, आपके आराम का इन्तजाम करता हूँ।” बार्डर सिक्कोरिटी फोर्स के मेस से हमारे लिए खाना बनकर आता है।

सुबह जब हम 10 मील तक फैले माइलाम के इन शरणार्थी कैम्पों से गुजर रहे थे, तब इस संगीत का रहस्य मालूम हुआ। ये तमाम लोग सिलहट और मैमनसिंह जिले के हिन्दू-मुसलमान किसान हैं। वहाँ इनके खेतों में फसलें पक गयी होंगी। फसल पकने पर काटने के पहले ये खूब जी-भर कर नाचते-गाते हैं। कल पकी फसलों की याद में बाँसुरी, ढोल बजा कर नाच रहे थे। फसल कहीं और है, संगीत कहीं और, सिर्फ पकने का समय और उगता हुआ चाँद इनके मन में फसल और संगीत को जोड़ गया था।

कितनी भयानक ट्रेजेडी हुई है यह शरणार्थियों का निष्क्रमण, कितनी बड़ी समस्या थी हमारे प्रशासन के सामने और कितनी कुशलता और साहस से इस समस्या को सरकार ने सँभाला है, इसका अन्दाज शायद मुझे कभी न हो पाता, अगर मैं इस बलाट के कैम्प में न आता। तीन लाख लोग। मीलों जीप चलाते जाइए और झोंपड़ी का कहीं अन्त नहीं, और जिस बीहड़ पहाड़ी जंगली रास्ते में हमें बीस-बीस मील तक आदमी की शक्ल देखने को नहीं मिली, उसी रास्ते से गोहाटी और शिलांग से तीन लाख आदमियों के रहने-सहने, खाने-पीने, केरोसिन और दवाइयों की प्रतिदिन व्यवस्था करना कितना दुस्तर काम है, इसका अन्दाजा क्या अखबारों से लग सकता है ?

इन शरणार्थी कैम्पों के बीच से गुजारे हुए 10 मील हमें 100 मील लगने लगे हैं। लेकिन अब खेत आ गये हैं। खुला मैदान। बीच-बीच में दो-तीन बड़े-बड़े पत्थर गड़े हैं। मालूम हुआ, यहाँ भारत का क्षेत्र खत्म हुआ। आगे बाँगलादेश है।

और दो मील आगे वह है मुक्तिवाहिनी का एक बहुत महत्त्वपूर्ण, लेकिन बिल्कुल अचर्चित अट्टा चीनाकांटी, नहीं सीनाकांटी, क्योंकि सिलहट का बंगाली 'च' को 'स' बोलता है। वास्तव में सुनामगंज और सिलहट में जो मुक्तिवाहिनी का युद्ध चल रहा है, उसमें इस अट्टे का बड़ा उपयोग हो रहा है। सुनामगंज यहाँ से 12-15 मील आगे है। इसके कुछ मुक्तियोद्धा सामने जाकर लड़ते हैं, ताकि पाकिस्तानी सैनिकों की रक्षापक्ति इधर बनी रहे। लेकिन इसका मुख्य हमला होता है, बायें और दायें बाजू से। यहाँ से भैंसगाड़ियों पर लाद कर रसद, बिस्तरे, हथियार और गोला-बारूद मुक्तिवाहिनी ले जाती है, बीहड़ पहाड़ी रास्तों से 35-40 मील चल कर। वे सुनामगंज और सिलहट को आजू-बाजू और पीछे से घेर रहे हैं और यह सब काम बहुत पोशीदा तरीके से हो रहा है। गाँव पर एक बाँगला-ध्वज फहरा रहा है। एक किसान सैनिक लुंगी बाँधे, राइफल लिये पहरा पर खड़ा है, लेकिन इसके अलावा पूरा गाँव सुनसान है, सिर्फ कुछ औरतें ढेंकी से धान कूट रही हैं।

अन्दर पहुँचकर मालूम होता है कि दो झोंपड़ों के बीच छिपकर भैंसगाड़ी पर युद्ध की सामग्री लद रही है, और पेड़ों के नीचे युद्ध-कौशल के क्लास लगे हुए हैं।

मैं मेजर मुतालिब को बताता हूँ कि कर्नल उस्मानी की बहुत इच्छा थी कि मैं सिलहट जाऊँ, क्योंकि सिलहट उनकी मातृभूमि है। जेसोर सेक्टर के मेजर उस्मान

ने भी कहा कि सिलहट उनके प्रदेश जाकर वहाँ के बहादुरों को सलाम दूँ। यहाँ तक कि कलकत्ता से चलते-चलते दिल्ली में बाँगला देश मिशन के अध्यक्ष हुमायूँ रशीद चौधरी से भी भेंट हुई थी। उन्होंने भी कहा था कि सिलहट की सरजमीं को मेरा सलाम देना, मैं वहीं का हूँ ! मेजर खुश हो उठते हैं। उनका गला भर आता है। बहुत भारी आवाज में कहते हैं—“उनका शुक्रिया कि वे लोग हमें भूले नहीं, वरना हम तो ऐसे सुनसान वीरान इलाके में यह लड़ाई महीनों से बिलकुल अकेले चला रहे हैं। पर उनसे कहना कि जब तक मेजर मुतालिब जिंदा है, वह इन पाक दरिन्दों को चैन से नहीं बैठने देगा।”

और इतने में छोटे मुर्शद अली दौड़ते हुए आते हैं—“पाकोस का जहाज।” सचमुच हवाई जहाज की आवाज सुन पड़ती है। और हम सब भागते हैं। यहाँ साइन नहीं है। आवाज सुनकर ही पता चलता है। कुछ खाइयों में छिपते हैं, कुछ केले के कुंजों में। गाँव बिलकुल सूना। जहाज आकर निकल जाते हैं। थोड़ी देर बाद बमों की आवाज आती है। “पाकिस्तानी पाथरवाट पर बम बरसा रहे हैं। आप लोग अब जीप ले कर जाइए।” मेजर कहते हैं। सबको विदा देते हुए खेद प्रकट करते हैं कि अन्दर नहीं ले जा सके। लेकिन धन्यवाद कि मैं मार्च के बाद आज आपके बीच हूँ सका हूँ। अंग्रेज पत्रकार से मुस्कराकर कहते हैं—“बाँगला देश में किसी से हिन्दू-मुसलमान मत पूछिएगा। आपको नाम से भी नहीं मालूम पड़ेगा, आप तो लड़कियों से ही पूछेंगे, उन सबके नाम बंगाली होते हैं !”

मेजर के लिए मेरे मन में एक नया आदर जाग गया है। शाम को शिलांग पहुँचे, तो मालूम हुआ कि ऐसा बहादुर निस्पृह अफसर है वह कि जवाब नहीं। पिछले आठ महीनों से अकेले, लड़ते-लड़ते उसमें कुछ सिनिसिज्म जरूर आ गया है और इसीलिए सब उसे ‘पगला मेजर’ कहते हैं—बड़े प्यार से।

शिलांग पहुँचकर सुबह कलकत्ते का फोन मिलाकर कर्नल रिखी से बात करते हैं तो वे अपने उसी सहज प्रसन्न भाव से कहते हैं कि कुछ कारणों से दो दिन आपको रुकना पड़ा। अब मैंने बात कर ली है। आपको कैप्टन भटनागर यथास्थान ले जायेंगे और वहाँ आपको आर्मी जीप मिल जायेगी और फिर उसके बाद आप आर्मी के साथ जहाँ तक जाना चाहें। लगता है, अब कुछ सही कार्यक्रम बन रहा है। पूरी दिलजमई होती है जब जीवन (गुप्ता) हमें बुलाकर हमें कहाँ जाना है, यह नक्शे पर समझाते हैं। हम अगर लंच के बाद चल दें, तो रात बारह बजे तक टैक्सी हमें वहाँ पहुँचा देगी। वहाँ से सुबह चार बजे आपको आर्मी जीप लेकर वहाँ चली जायेगी, जहाँ युद्ध चल रहा है।

तमाम अफसर मिलने आते हैं : मेजर मूर्ति, मेजर बाघवा, ब्रिगेडियर बेरी, जनरल नागरा—धर्मयुग को सब जानते हैं, सेना का प्रिय पत्र है—“वायुसेना और नौसेना पर आपने बहुत छापा है। इस बार आर्मी का करिश्मा देखिएगा।” वे प्यार से शिकवा करते हैं। इस पूरे क्षेत्र के जनरल हैं मेजर जनरल गंधर्व नागरा। तनी मूँछें और लाल

पट्टीवाले हैट में उनका व्यक्तित्व भव्य लगता है। वे बहुत व्यस्त हैं, अभी हेलिकॉप्टर से युद्ध क्षेत्र से आये हैं और फिर वापस जा रहे हैं। “अच्छा, कल वहीं मिलेंगे आप लोगों से। अब आप हमारे मेहमान हैं। बस, यह समझ लीजिए कि जो हम खायेंगे, वह आप खायेंगे, जहाँ हम सोयेंगे, वहाँ आप सोयेंगे—और यह याद रखियेगा कि यह युद्ध का मैदान है। लौट कर जायेंगे तो ठीक, नहीं तो...” और वे हँस दिये, प्यार से पीठ थपथपा कर बोले—“हमने कमालपुर ले लिया है और आज रात बख्शीगंज में हमारी सेना का डेरा है। कल सुबह आगे बढ़ेंगे। आप अभी चल दें, रात तक बख्शीगंज पहुँच जायें। वहाँ के कमण्डर, ब्रिगेडियर क्लेर को मैंने आप लोगों के बारे में कह दिया है।”

“जनरल, हमें कहाँ तक जाने की इजाजत होगी ?” मैं पूछता हूँ।

“इजाजत ? हाट नानसेंस। यू आर एन एडिटर। एडिटर लोग इजाजत कब से माँगने लगे ? जहाँ तक तुम्हारी मर्जी हो चलो। जो देखना चाहो देखो !”

सीना चौड़ा हो जाता है ! यही तो चाहते थे हम। कर्नल रिखी को हृदय से घन्यवाद देते हैं। सारी थकान हवा। अब हम जायेंगे अपनी सेना, अपनी विजयिनी सेना के साथ, स्वतन्त्र बाँगला देश में, जिसे कल इन्दिरा जी ने मान्यता दे दी है। अब मन खुश है, तो सब याद आ रहा है। कल शिलांग बाजार में थे हम। दोपहर को 11 बजे। एक सज्जन एक दुकान पर खड़े ट्रांजिस्टर पर खबरें सुन रहे थे। पार्लियामेण्ट में मान्यता देने की खबर आयी कि वे उछल पड़े। लोग एक-दूसरे के गले मिलने लगे। छोकरे नाचने लगे। क्या सोचा होगा लोगों ने, जब उन्होंने देखा होगा कि मैं मुँह मोड़ कर आँखों में छलक आये आँसू पोंछने लगा। कब से इन्तजार था इस दिन का। बहुत भरे गले से बाजार की भीड़ के साथ बोलता हूँ—‘इन्दिरा गांधी जिन्दाबाद ! ‘जय हिन्द ! लेकिन नारे क्या मन की गहरी बात कह पाते हैं !

शाम हो रही है और हम ट्रक पर जा रहे हैं, छह-छह इंच उछलते हुए। रात हो गयी है। किसी छोटे गाँव के बाजार में ट्रांजिस्टर पर खबरें आ रही हैं। हम रुककर खबरें सुनते हैं, फिर चल पड़ते हैं। घने अँधेरे में ट्रक दौड़ रहा है। अब सीमा पार कर बाँगला देश में आ गये हैं। मुक्तिवाहिनी का एक आदमी लालटेन लेकर आता है। तम्बू पर बाँगला देश का झण्डा। वह ड्राइवर से ट्रक रुकवाता है और फिर मुक्तियोद्धाओं की पूरी भीड़ ट्रक में कूद पड़ती है। सब छात्र हैं। कुछ को टूटी-फूटी अंग्रेजी भी आती है। उनकी स्टेनगनों से हमारे कन्धे रगड़ खा रहे हैं। इधर शायद रिवाज है, वे मुझसे बात करते समय ‘सर’ नहीं कहते—वस्ताद (उस्ताद) कहते हैं। बताते हैं—‘वस्ताद, इधर का पुकुर में सिंगा माछ, झागुर माछ बेशी है।’ अपने जिले की श्रेष्ठता बताकर खुश होते हैं। फिर हमें ‘आमर सोनार बाँगला’ गा कर सुनाते हैं। कमालपुर के पास उतर जाते हैं। जाते-जाते उनमें से एक कहता है—‘वस्ताद, आमार मित्र इण्डिया, आमी तोमाय भालोबाशी !’

बख्शीगंज (बाँगला देश) पहुँचते-पहुँचते घना अँधेरा हो आया है। कस्बा मानो

फौजी छावनी बन गया है। लालटेनों और टार्चों की रोशनी में जहाँ देखिए हमारे फौजी ट्रक, हमारे सिपाही। पेड़ों के नीचे, तम्बुओं में, सरकारी इमारतों में। हम हेडक्वार्टर ले जाये जाते हैं, ब्रिगेडियर क्लेर से मिलने। स्कूल की इमारत का एक कमरा। तख्त के पास एक मेज पर रखी लालटेन। कोने में टिकी एक राइफल। वे उठकर स्वागत करते हैं। लम्बा, कढ़ावर, भरा लेकिन सुता हुआ बदन। छोटी लेकिन ऊपर को ऐंठी हुई तनी मूँछें, कसी हुई दाढ़ी और केशों पर पगड़ी के बजाय एक पैराशूट के कपड़े का हरा भूरा स्कार्फ। “यह स्कार्फ हाजीपीर की याद है। वहीं से यह पैराशूट का कपड़ा लाये थे और हम सब, जो उस युद्ध में साथ थे, आज तक युद्ध क्षेत्र में इसे बाँधते हैं,” वे बताते हैं। चलते समय छड़ी का सहारा लेते हैं, क्योंकि एक पैर में अभी भी चोट है। पता चला कि अभी पिछले दिनों वे जनरल के साथ जीप में जा रहे थे, खुद ड्राइव करते हुए कि एक माइन पर जीप चली गयी। माइन फटी और जीप उड़ गयी। जनरल बहुत सख्त घायल होकर अस्पताल में हैं, लेकिन ब्रिगेडियर क्लेर बच गये, सिर्फ पाँव घायल हुआ। उन्हीं जनरल की जगह अब जनरल नागरा आये हैं। और जीप ? उसकी मरम्मत करा कर उसमें नया इंजन डलवा रहे हैं। वह जीप भाग्यवान साबित हुई। “लेकिन जो जीप तुम्हारे लिए मँगवायी है, उसमें बालू के बोरे नीचे रखवा दिये हैं। माइन पर पड़ेगी भी, तो ज्यादा चोट नहीं आयेगी।”

शेर आदमी हैं। आँखें तेज से दमक रही हैं—“तुम लोग जरा पहले आते तो कमालपुर की लड़ाई देखते। किस कदर मोर्चेबन्दी कर रखी थी उन्होंने। काफी जोर का मुकाबला करते रहे। फिर शनिवार को मुक्तिवाहिनी का योद्धा सफेद झण्डा और खत लेकर गया कि समर्पण कर दो। नहीं माने। अन्त में 147 कैदी बनाये हमने। बंकरों में लड़कियों को पकड़ रखा था उन्होंने। यहाँ सुबह देखना मेजर शौकत और कैप्टन एदतात की कब्रें हैं। गाँव वाले कहते हैं, मेजर शौकत ठीक आदमी था, लेकिन कप्तान एदतात बदमाश था। 50 बंगालियों को रोज मरवाता था। रेडियो आउटपोस्ट पर एक उनका हिम्मती जवान था। उसके सन्देश हम सुनते थे। जब उसे पकड़ा तो उससे पूछा, “तुम कुछ साथ ले जाना चाहते हो।” बोला, ‘कुरान’। हमने मँगवा कर सफेद कपड़े में लपेट कर उसे दिया। अचरज से उसकी आँखें फटी रह गयीं। शर्म से सर झुका कर बोला, “सर, हमें बताया गया था कि हिन्दोस्तानी लोग खूँखार हैवान होते हैं। सौरी सर।”

दो ईरानी भी थे। हमने पकड़े हैं। कल उनसे मिलना तुम। और स्वागत तुम देखते। उस छोटे-से कस्बे में 10,000 लोग, सब गले लगाने को उत्सुक, हमारे तो कपड़े फटते-फटते बचे। मालाओं से मुँह तक ढँक गया। और ये बड़े सतर्क लोग हैं। पहले कहीं एक औरत नहीं थी, सब जंगलों में छिपी थीं। जब जनरल ने कहा कि हम भारत के लोग औरतों का माता और बहन की तरह पूजन करते हैं तब औरतें भी आ कर जय बाँगला, जय हिन्द बोलने लगीं। मगर मुझे सबसे ज्यादा खुशी है कि मेरे सिर्फ चार जवान घायल हुए। हाँ, तुम्हें साथ ले चलेंगे ऐन मोर्चे पर। और उन्होंने, अपना

गिलास खाली करते हुए कहा, “तुम लोगों को 24 घंटे बीत गये सफर करते, अब जाकर आराम करो। आज शेरपुर खाली कर पाकिस्तानी भाग गये हैं। अभी 3 बजे शाम को। कल सुबह 8 बजे तैयार होकर वहाँ पहले पहुँच जाओ। 8.30 बजे हम और जनरल आयेंगे।”

हम आफिसर्स मेस में जाते हैं। एक कमरे में बेंचों पर कपड़ा डालकर उन्हें मेज बना लिया गया है। ब्रिगेडियर के सहकारी मेजर राजपाल हमारी देखभाल कर रहे हैं। सभी फौजी अफसर हम लोगों को देखकर अचरज भी करते हैं और खुश भी होते हैं, खासतौर से इंजीनियरिंग कोर के मेजर पोंगशे। वे पूना के हैं। बम्बई के लोगों को पाकर उन्हें लगता है, मानो घर के लोग आ गये हों।

ट्रकों, बंकरों, हथियारों के बीच में से लालटेन की रोशनी में हम बाजू की डिस्पेन्सरी की इमारत में ले जाये जाते हैं, जहाँ हमारे सोने का इन्तजाम है। बाहर खुले मैदान में, बरामदे में, सीढ़ियों पर, ऊपर छज्जों पर, कमरों में, हर जगह धान का पुआल बिछा कर हमारे सैनिक लेते हैं। कुछ सो गये हैं। कुछ बातें कर रहे हैं। एक टार्च की रोशनी में खत लिख रहा है। हमारे लिए तख्त उठाकर लाये जाते हैं। एक लालटेन भी मिल जाती है। पर बिस्तर ! वह तो हम लाये नहीं। मेजर पोंगशे की यूनिट से कम्बल आते हैं। मैं एक बिछाता हूँ, एक ओढ़ता हूँ, ओवरकोट को तह कर तकिये की तरह रख लेता हूँ। पानी ! रात को प्यास लगे, तो किसी भी सिपाही के फ्लास्क से मिल जायेगा।

लालटेन धीमी कर दी है। सारा बख्शीगंज सो गया है। यह नितान्त अपरिचित बाँगला देश का कस्बा। जिनको कभी नहीं जानता था, युद्धभूमि में उनसे घिरा हुआ आश्वस्त। चारों ओर खामोशी है, गहरी खामोशी। सिर्फ पास खेतों में कहीं सियार बोल उठते हैं। देर तक बोलते रहते हैं। फिर वे भी चुप हो जाते हैं। सिर्फ बैटरी चार्ज करनेवाली मशीन धक-धक कर चल रही है। सभी गाड़ियों की बैटरियाँ चार्ज हो रही हैं, सुबह के मार्च के लिए।

मुझे नींद नहीं आ रही। कल रात इस समय कहाँ थे ? दो सौ मील दूर ग्वालपाड़े के जंगल में। टैक्सी के दोनों पहिए पंक्चर हो गये थे। घुप्प अँधेरे में सड़क के दोनों ओर शाल के ऊँचे पेड़ों का घना जंगल। टैक्सीवाला पंक्चर पहिया लेकर एक जाती हुई जीप पर अगले गाँव चला गया है बीस मील दूर। जाते-जाते आश्वस्त कर गया था कि यह जंगल इधर मेघालय में फैला है और उधर असम में, लेकिन जंगली हाथी बार्डर थोड़े ही जानते हैं ! इधर से उधर चले जाते हैं यही सड़क पार कर, हाथी जीप उलट देते हैं, आदमी बीच में पड़ा तो सूँड में लपेट कर फेंक देते हैं। मगर आप घबराइएगा नहीं। और गाँव वाले सीधे हैं। कभी लालच आ जाये तो बात दूसरी है। सामान छीन लेते हैं। लेकिन कुछ होगा नहीं।

हम जंगल की आधी रात की ठिठुरती ठण्ड में शीशे बन्द कर के बैठे हैं। न आदमी न आदमजात। किसी गाँव से दूर कुछ आवाजें आती हैं। पता नहीं, कितनी

दूर है वह गाँव ! मुझे एक क्षण को भी नींद नहीं आती। रात में जंगल में क्या होता है, देख रहा हूँ। एक शाल वृक्ष के तने पर कहीं से रोशनी पड़ रही है। केवल एक तने पर, अजीब भुतहा-सा लगता है।

धीरे-धीरे रोशनी बढ़ती है। पता चलता है, कहीं चाँद निकल रहा था ऐसे कोण पर कि केवल एक पेड़ पर रोशनी पड़ रही थी। थोड़ी देर में चाँद ऊपर आ जाता है। अब जंगल का रंग बदल गया। घनाव के बजाय फैलाव। और फिर टप टप टप ! बारिश तो हो नहीं रही। नहीं, पत्तियों पर घनी ओस है। एक से दूसरी, दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी पत्ती पर ओस टपक रही है।

अब चाँदनी में सारा जंगल बूँदों का झरना बन गया है। लो अब चाँदनी धीमी पड़ रही है। पौ फटने वाली है शायद। पौ फटने के जरा पहले किसी घोंसले में चिड़ियों के बच्चे कुनमुनाते हैं और जब यादों के इस जंगल में सुबह का पहला पाखी घुँघरू की-सी आवाज में बोलता है, तब मुझे गहरी नींद आ जाती है। सिपाहियों की-सी गहरी, मगर सतर्क नींद। मेरी पहली सैनिक रात !

113498

ब्रह्मपुत्र की मोर्चेबन्दी

फौज का सवेरा भी खूब होता है। रात को जो शहर चारों ओर बस गया था, वह सारा सिमट कर लारियों और ट्रकों में भर चुका है और दो टुकड़ियाँ आगे मार्च भी कर चुकी हैं। हम जब अलसाते-अलसाते उठते हैं, तब तक हमारी इमारत के सारे सिपाही बिस्तरे बाँध कर ट्रकों पर सवार हो रहे हैं।

दिन में बख्शीगंज का असली रूप नजर आता है। हर जगह पाकिस्तानियों ने बंकर बनाये थे, ठोस पत्थर-सीमेंट के, ऊपर घास के धक्के। सामने बड़ी इमारत में उनका हेडक्वार्टर था। रक्षादुर्गों की तीन पंक्तियाँ और लड़ाई का सामान इतना बेहिसाब !

और हम मेस जाते वक्त वह बंकर देखते हैं, जिनमें उन्होंने औरतें रख छोड़ी थीं। वहाँ एक तख्त भी पड़ा हुआ है। हथियार तो अमरीका और चीन ने अपने मित्र को दिये थे, तख्त किसने दिया था ?

साढ़े सात बज गये थे और हमें ब्रिगेडियर और जनरल के पहुँचने के पहले शेरपुर पहुँचना था। जीप तैयार थी। सड़क के दोनों ओर हर पुलिया, हर गाँव पर बच्चे-जवान-बूढ़े खड़े थे और हमें देखते ही 'जय बाँगला' से आसमान गुँजा देते। जीप देखते ही खेतों से बच्चे 'जय बाँगला' चिल्लाते हुए दौड़ते थे। मुँह पर एक उल्लास था। एक सन्तोष।

शेरपुर के कुछ पहले पक्की सड़क शुरू हो जाती है। तीन दिन से धूल उड़ाती कच्ची सड़कों पर धक्के खाने के बाद यह पक्की सड़क वरदान-सी लगती है। मालूम होता है कि शेरपुर होती हुई यह ब्रह्मपुत्र के किनारे तक जाती है। शायद कभी जमालपुर पर पुल बनाने का इरादा रहा हो, पर कभी बना नहीं। और यही वजह है कि ब्रह्मपुत्र के उस पार जमालपुर पर पाकिस्तानी सेना ने बहुत सख्त मोर्चाबन्दी कर रखी है। वे नहीं चाहते थे कि इधर से भारतीय सेना बढ़कर उस किनारे पर कब्जा करे और दोनों किनारे जोड़कर पुल बना सके। मैं चलती जीप पर नक्शा निकालकर देखता हूँ, तो जमालपुर के मोर्चे का महत्व समझ में आता जाता है। अखबारों में जेसोर और कोमिल्ला की खबरें भरी पड़ी हैं। लगता है, जेसोर और कोमिल्ला से ही बढ़कर हमारी सेनाएँ

ढाका में दाखिल हो जायेंगी। लेकिन उधर बीच में बहुत-सी छोटी-बड़ी नदियाँ हैं, दर्जनों। अतः एक-एक स्थान पर पुल बनाने का या नावों को जोड़कर ट्रक पार कराने में हफ्तों लग जायेंगे। लेकिन उत्तर से जनरल नागरा की इस सेना के मार्ग में भारतीय सीमा से ढाका तक केवल एक नदी है ब्रह्मपुत्र। हमारी सेना उसे पार कर ले, तो माधोपुर-टंगाइल से जयदेवपुर होते हुए ढाका तक सीधी पक्की सड़क है। रास्ते में कोई रुकावट नहीं। इसलिए जमालपुर का युद्ध वस्तुतः ढाका का युद्ध है। हमने जमालपुर ले लिया कि फिर ढाका को गिरते देर नहीं लगेगी।

तो बाँगला देश की मुक्ति का असली मोर्चा ब्रह्मपुत्र पर है, यहाँ शेरपुर में। पूर्वी कमान की सारी रण योजना सचमुच बड़ी कुशलता से बनायी गयी है। जनरल नागरा और ब्रिगेडियर क्लेर बहुत सावधानी से बढ़ रहे हैं। जनरल को विश्वास है कि सबसे पहले वे और क्लेर ही ढाका पहुँचेंगे।

लेकिन जब हम शेरपुर में पहुँचते हैं, तो दूसरा मोर्चा लगा हुआ है। आजाद उत्फुल्ल नागरिकों का मोर्चा, भारतीय मित्रों के स्वागत के लिए। सड़क पर एक बहुत ऊँचा पक्का तोरणद्वार बना है। पास ही मुंसिफी अदालत में हमारी सेना की अग्रिम टुकड़ियाँ आकर डेरा डाल रही हैं। लेकिन लोग जमा हैं सामने के शेरपुर-क्लब के विशाल मैदान में। हजारों-हजारों लोग। रंग-विरंगी लुगियाँ पहने किशोर, युवक, ईद के-से कपड़े पहने बच्चे, कुर्ता-पजामा और गले में रूमाल डाले बूढ़े मौलाना, स्टेनगन लिए मुक्तिवाहिनी के जत्थे। सड़क पर आसपास के गाँवों से आये किसान भारतीय सेना की हर ट्रक, हर जीप का 'जय बाँगला' चिल्ला कर स्वागत करते हुए, उनसे हाथ मिलाते हुए, मना करने पर भी उन्हें पान, सिगरेट देते हुए किनारे पर पान-बीड़ी, मूँगफली-मिठाई, नारियल की दुकानें लग गयी हैं। लाउडस्पीकर पर कोई मुक्तिवाहिनी का सैनिक कुछ बोल रहा है—बाँगला समझने की कोशिश करता हूँ। वह कह रहा है, "15 दिन पहले हम पर पाकिस्तानी फौज की हुकूमत थी, इसलिए आपने ईद नहीं मनायी। आज आजादी की ईद है, अब हम कभी गुलाम नहीं होंगे। हमारे भारतीय मित्र अपनी जान देकर हमारे लिए यह आजादी की ईद लाये हैं। शेख मुजीब वो भी लायेंगे।" नारा लगता है, "जातीर पिता शेख मुजीब, जिन्दाबाद जिन्दाबाद !" बाँगला देश का हरा झण्डा बीच में फहरा रहा है, मैदान के बीचोबीच सफेद कपड़ा बिछाया गया है, जनरल के हेलिकॉप्टर के उतरने के लिए। एक मुक्तिसैनिक सफेद झण्डा लिए खड़ा है। मैत्री का, सुलह का झण्डा। हर हाथ में मालाएँ, गेंदे की, कागज और पत्तियों की, तगर और तुलसी की। हम लोग आगे बढ़कर भाषण मंच के पास जा रहे हैं कि लोग हमें घेर लेते हैं। मालाओं से लद जाते हैं हम। कौन-कौन हाथ मिलाकर बाँगला में क्या-क्या कह रहा है, कुछ मालूम नहीं। उन्हें मालूम नहीं हम कौन हैं, भारतीय हैं बस। कृतज्ञता और ममता किसी भी कौम की बहुत बड़ी सिफत होती है। मुक्तिवाहिनी के जवान हमें घेर कर मंच तक पहुँचाते हैं। हेलिकॉप्टर की आवाज सुन पड़ती है। लोग उछल-उछल कर देखते हैं। चक्कर काटकर हेलिकॉप्टर नीचे आता है। जनरल

उतरते हैं, पीछे क्लेर। और भीड़ ने दोनों को लपेट लिया है। मालाओं से लाद दिया है। बूढ़े आगे बढ़कर दोनों योद्धाओं को गले लगाते हैं। दुआएँ देते हैं। एक वृद्धा फूट कर रो पड़ता है। “यू आर अवर फ्रैण्ड ! ग्रेट फ्रैण्ड !” और रोता जाता है। लोग अपने बच्चों को गोद में उठा कर उनसे मालाएँ डलवाते हैं। लाउडस्पीकर पर नारे लगा रहे हैं—“जय इन्दिरा ! जय इन्दिरा !” और सहसा नया नारा सुनाई पड़ता है—“मुक्तिवाहिनी, मित्रवाहिनी, जिन्दाबाद, जिन्दाबाद ! भारत-बाँगला मित्रवाहिनी जिन्दाबाद, जिन्दाबाद !” कुर्सियाँ पड़ी रह जाती हैं, जनरल और ब्रिगेडियर मेज पर खड़े हो गये हैं। साथ हैं मुक्तिवाहिनी के कैप्टन अब्दुल अजीज और उनके सहायक ए. एस. भुइय़ाँ।

जनरल बोलते हैं (हिन्दी में)—“शेरपुर और गिद्धोनिवाज के बंगाली भाइयो ! मुझे बहुत खुशी है कि आपका इलाका आज दुश्मन से आजाद हो गया है।” और इस एक वाक्य पर फिर नारे लगने लगते हैं, फिर वे बोलते हैं—“मुक्तिवाहिनी आपकी जीत गयी। सिलहट और जेसोर पर कब्जा हो चुका है। (जय बाँगला ! जय बाँगला !) हम जल्दी ही ढाका में पहुँच जायेंगे (मित्रवाहिनी-मित्रवाहिनी, जिन्दाबाद, जिन्दाबाद !) बाँगलादेश की हुकूमत को भारत और भूटान ने मान लिया है। इस सबका श्रेय मुक्तिवाहिनी की बहादुरी को है और आपकी मदद से इस काम को हम अन्जाम दे सके। अब शेख मुजीब साहब जल्दी से जल्दी वापस आकर आपकी देखभाल कर सकेंगे। आप सब आज मन्दिर-मस्जिद में जाकर उनके लिए दुआ करना। अब मेरे साथ तीन बार बोलिए—जय बाँगला ! जय बाँगला ! जय बाँगला !” कैप्टन अब्दुल अजीज आगे आकर माइक हाथ में लेकर बोलते हैं : “जय हिन्द !” लोग हाथ उठाकर बोलते हैं : “जय हिन्द !” “भारत-बाँगला मैत्री जिन्दाबाद जिन्दाबाद !” एक मौलाना अपने नवासे को गोद में ले कर आये हैं कि जनरल उसके माथे पर हाथ रख कर दुआ दें। जनरल अपनी माला उसे पहना कर उसे गोद में ले लेते हैं।

महीनों बाद फूलमालाओं और मिठाइयों की दुकानें कल रात भर खुली रही हैं। पीछे शेरपुर-क्लब की इमारत में भारतीय अतिथियों के लिए जलपान की व्यवस्था है। आन्दोलन के ठीक महीने भर बाद पाक सेना आयी, 26 अप्रैल को। और उस दिन से फिर कालेज नहीं खुले। हत्या, बलात्कार और लूट-पाट शुरू हो गयी। कोई कोना ऐसा नहीं, जहाँ उनकी अमानुषिकता की छाप न छूटी हो। 12-12 बरस की बच्चियों को नष्ट करके उन्होंने संगीनें भोंक कर उनकी लाशें बीच बाजार में छोड़ दीं। इस जलपानगृह में ये लोग जो हमें इसरार कर-करके रसगुल्ले और समोसे खिला रहे हैं, स्थानीय अवामी लीग के एम. एन. ए. अनीसुर्रहमान, एम. पी. ए. मौलवी निजामुद्दीन, डॉ. आलम, कैप्टन अब्दुल अजीज, भुइय़ाँ, अबू यूसुफ और तमाम नये मित्र, इन्होंने क्या-क्या नहीं भोगा है, कल सुबह जब इन्होंने देखा कि पाक सेनाएँ ट्रकों और जीपों पर लद कर, हथियार लाद कर ब्रह्मपुत्र के तट पर जा स्त्री हैं, नौकाओं से पार उतर कर जमालपुर जाने के लिए, तब भी इनके चेहरे पर मुस्कान नहीं आयी। भेड़ियों की तरह टूट पड़नेवाले उन अत्याचारियों के सर झुके हुए थे।

बलबीर सिंह हमें अलग ले जाकर बताते हैं कि जनरल नागरा और ब्रिगेडियर क्लेर हेलिकॉप्टर से जन्दी ही ब्रह्मपुत्र के किनारे जा रहे हैं, स्वयं वह क्षेत्र देख कर आगे की योजना बनाने। हम अब बातचीत छोड़ कर तुरन्त जीप से जायें। ब्रह्मपुत्र यहाँ से कई मील दूर है, लेकिन जनरल की सख्त हिदायत है कि ब्रह्मपुत्र के दो मील इधर जो पोस्ट है, वस वहीं रुक कर जनरल का इन्तजार करें। दोनों ओर से गोलाबारी हो रही है। अगर हमारे होते हुए गोलाबारी शुरू हो जाये, तो जीप को खुली सड़क पर न छोड़ें। किसी पेड़ के नीचे या झुरमुट के पीछे खड़ी कर किसी आड़ में लेट जायें। बलबीर सिंह बाद में जनरल के साथ आयेंगे।

अब हमारी जीप तेजी से पक्की सड़क पर दौड़ रही है। सहसा हवाई जहाजों की आवाज आती है। हमारे दो बमवर्षक उड़ते हुए जमालपुर की ओर जा रहे हैं। रात को दुश्मन का वायरलेस सन्देश सुना जाता है कि सेनाध्यक्ष नियाजी ने ढाका से जमालपुर के कमाण्डर सुलतान अहमद को हुक्म दिया है कि न केवल जमालपुर नहीं छोड़ें, वरन् कमालपुर, बख्शीगंज, शेरपुर और दूसरी जगहों से लौटी फौज को इकट्ठा कर, हो सके तो ब्रह्मपुत्र के इस पार ही, भारतीय सेना पर हमला करके उसे घेर लें। किसी हालत में उन्हें ब्रह्मपुत्र के तट तक नहीं पहुँचने दें। हमारे कमाण्डर ने अपनी वायुसेना से मदद माँगी है कि हमारे बमवर्षक दिन में 4 सार्टीज लेकर जमालपुर में उनके फौजी हेडक्वार्टर, उनके शस्त्रागार और छावनी को बम्बाई करें। सार्टीज शुरू हो गयी है। हमारे बमवर्षक विमान उड़ते हुए उस पार जमालपुर पर चक्कर लगा रहे हैं। उधर से तोपें चलने लगी हैं। आसमान सहसा सजीव हो उठा है। हमारे विमान सहसा चील की तरह झपट्टा मारते हैं और दो भयानक धमाके सुनाई पड़ते हैं। दूर तक, गाँव, खेत, सड़क किनारे के पेड़ मानो काँप उठते हैं। आधे मिनट बाद दो धमाके और। और फिर हमारे विमान घूम कर जिधर से आये हैं उधर ही तेजी से लौट जाते हैं। पाँच मिनट बाद उधर से पाकिस्तानी तोपों की गरज सुनाई पड़ती है। हम जीप से उतरते हैं, पर सड़क पर लौटते भारतीय सैनिक हमें बताते हैं कि अभी हम आगे जा सकते हैं। ये तोपें हमारी ओर नहीं, भारतीय सेना की उस टुकड़ी की ओर चल रही हैं, जो रातोंरात बख्शीगंज के पास से चुपचाप नदी पार कर जमालपुर के बायें बाजू में जाकर मोर्चेबन्दी कर रही है। “अच्छा तो हमारे जवान उन्हें घेर रहे हैं ?” “हाँ, जनरल का हुक्म है कि उनके भागने और ढाका पहुँचने के रास्ते बन्द कर दो। वे भागे तो ढाका की सड़क ध्वस्त करते हुए जायेंगे।” जमालपुर की विशाल सेना के बाजू में जा कर हमारी इतनी छोटी टुकड़ी किस भयानक खतरे में होगी, हम कल्पना करके सिहर उठते हैं। भारतीय सैनिक किस फौलाद का बना होता है !

जनरल का हेलिकॉप्टर इधर आकर उतरा है। जनरल नागरा हैं। ब्रिगेडियर क्लेर हैं, जो हमें पहले मिले थे; इंजीनियरिंग यूनिट के ब्रिगेडियर एन. एल. बेरी हैं। क्लेर के अंगरक्षक बलबीर सिंह हैं, नागरा के अंगरक्षक मेजर बामी हैं। और दो एक और नये चेहरे। हमें पहले पहुँचा देखकर जनरल नागरा खुश हैं : “शाबाश !” बायीं ओर

के केले और आम के कुंजों में हमारा तोपखाना है। उनका अफसर और इन्फैण्ट्री के लोग जनरल के पास आकर सैल्यूट देते हैं। जनरल उनके कन्धों पर हाथ रखकर पूछते हैं कि कोई तकलीफ तो नहीं ! एक सैनिक मुँह बनाकर कहता है, “जबर्दस्त दुश्मन से पाला पड़ा है साहब ! हम पीछा करते-करते थक गये, वो कम्बख्त भागते-भागते नहीं थके।”

“कहाँ तक भागेंगे ?” क्लेर ने कहा, “पाकिस्तान बहुत दूर है।”

अब यहाँ से हमें पैदल जाना है, दो मील दूर, ब्रह्मपुत्र पर। चूँकि अब हम तोपखाने और मशीनगनों की मार के अन्दर हैं, अतः जनरल का हुक्म है कि सड़क पर हम बिखर कर चलें, झुण्ड बनाकर नहीं। सड़क के इधर-उधर जरा भी न जायें, क्योंकि माइनों बिछी हैं। जनरल के साथ-साथ एक वायरलेस आपरेटर चल रहा है, जो वायरलेस से बराबर बातें करता जा रहा है। सड़क के दोनों ओर हाथ में माइन का पता लगानेवाली घड़ी लेकर दो सैनिक चल रहे हैं, जरा आगे-आगे। यद्यपि खतरा है, लेकिन कई फलाँग तक कुछ नहीं होता।

और अब ब्रह्मपुत्र दीखने लगी है। उस पार किनारे-किनारे मीलों तक बसा है जमालपुर। उत्तर में ढाका की रक्षापंक्ति की प्रथम दुर्भेद्य सैन्य-छावनी। मैं बलबीर सिंह से दूरबीन माँग कर देखता हूँ। क्लेर मना करते हैं यहाँ से नहीं, उधर बंकर खाई में बैठ कर देखना ठीक होगा। अब बालू है और कुछ कँटीली झाड़ियाँ। बालू में उन्होंने एक बहुत बड़ी छावनी बनायी थी। तीन ओर गहरी खाई और हर कोने पर तथा बीच-बीच में बंकर। इन बंकरों में बेहद हथियार मिले हैं। एक बंकर में एक ट्रान्जिस्टर और एक में टूटी चूड़ियाँ और कुछ जनाने कपड़े। मशीनगन की गोलियों की खाली पेटियाँ तो तमाम बिखरी हुई अब भी पड़ी हैं। रात तक पाकिस्तानी यहाँ जमे थे। आधी रात भागे हैं। मुझे सिहरन होती है। जहाँ हम खाइयों में खड़े हैं, दस घण्टे पहले तक यहाँ दुश्मन अपने हथियारों के साथ जमा था।

मेजर बामी के हाथ में प्लास्टिक कवर में लिपटे जो बहुत बड़े नक्शे थे, वे जमीन पर फैला दिये गये हैं और खाई में खड़े होकर जनरल, क्लेर, बेरी और दूसरे आफिसर उन्हें देखकर आगे की रणनीति तय कर रहे हैं। बीच-बीच में वायरलेस पर सन्देश आ-जा रहे हैं। एक कोई सन्देश आता है और क्लेर रिसीवर का मुँह जनरल के कान के पास कर देते हैं। जनरल के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ जाती है। जनरल उसके बाद दूरबीन लेकर बंकरों और रेत के ढूँहों पर से जमालपुर के एक हिस्से का जायजा ले रहे हैं। मेजर बामी ने खुद वायरलेस ले लिया है। उधर से कुछ सूचना आती है। मेजर बामी पहले क्लेर को बुलाकर बताते हैं, फिर जनरल को बुलाया जाता है। जनरल आकर पहले सलाह करते हैं, फिर सन्देश भेजते हैं : “लिसन, देखा गया है कि एक ट्रेन तैयार खड़ी है। उनकी आर्मी उस पर कुछ लोडिंग कर रही है। अगर यह सच है तो ट्रेन को रोको। उनके जाने के सब रास्ते बन्द कर दो। नहीं, सड़क तोड़ो नहीं, पेड़ काट कर सड़क पर डाल दो।” फिर

जनरल ध्यान से सुनते हैं : “बहुत खुश हैं हमारे लोग यह जान कर कि हम यहाँ ब्रह्मपुत्र के किनारे पहुँच गये हैं। हिम्मती बच्चे हैं।”

उस तरफ जमालपुर में बेहद खामोशी है। आदमी तो आदमी सड़क पर, किनारे घाट पर, एक चिड़िया नजर नहीं आती। उनकी तोपों का कहीं पता नहीं। हमारी तोपें भी खामोश हैं। “हमारे बमवर्षकों ने उनकी सिट्टी-पिट्टी भुला दी है,” कोई कहता है। “चलिए अब उस बायेंवाली जगह से किनारे चल कर देखेंगे। वहाँ से जमालपुर का घाट सबसे नजदीक है,” जनरल कहते हैं। यहाँ पर तो नदी ने मोड़ लिया है और कगार नीचे है। नदी पतली है, पर रेत का फैलाव बहुत है, इधर भी, उधर भी। वहाँ पर दोनों किनारे बहुत नजदीक आ गये हैं।

जनरल वहाँ जाकर उसे खुद देखना चाहते हैं। हवाई जहाजों की आवाज फिर सुनाई पड़ती है। अब फिर दूसरी सार्टी। बिल्कुल हमारे ऊपर से हमारे बमवर्षक जाते हैं। फिर दो और दो-चार खौफनाक धमाके और फिर खामोशी। जमालपुर में एक जगह से जोर का धुआँ उठ रहा है। पाकिस्तानी तोपें बिल्कुल खामोश हैं।

बंकर से निकल कर हम फिर सड़क पर आते हैं, लेकिन सड़क पर नहीं चलते। मुक्तिवाहिनी के लियाजॉ आफिसर अब यूसुफ हमें सड़क पार खेतों में उतार कर झुरमुटों में से ले चलते हैं छिपते हुए। हम रुक-रुक कर देखते हैं दूरबीन से, जमालपुर सुनसान है। खेतों के पार एक गाँव है, घनी हरियालीवाला। हम गाँव में पहुँच कर क्षण भर को रुकते हैं। यूसुफ गाँववालों से कुछ बातें करते हैं। उनके माथे पर चिन्ता है। उनको खबर मिली है कि कोई रजाकार हमारी गतिविधियों की खबर जमालपुर को भेज रहा है। लेकिन खबर दो घण्टे पहले की है। वे कुछ करने की स्थिति में होते, तो अभी तक कर चुकते। हम गाँव से निकलते हैं। अब गाँव और ब्रह्मपुत्र के बीच में आधे मील का खुला फैलाव है। कुछ दूर तक खेत और उसके बाद रेत। खेत में कहीं-कहीं तिल के पीले फूल खिले हैं, कहीं-कहीं बैंगन की छोटी-छोटी पौध, जिसमें इक्के-दुक्के नीले फूल। आदेश है कि हम एक-दूसरे से काफी दूर-दूर पर तितर-बितर होकर चलें, यथासम्भव पीले फूलों वाले खेत में न चलें, क्योंकि रंग की पृष्ठभूमि में से दुश्मन हमें आसानी से देख लेगा। अब खेत पार हो गये हैं। रेत काफी महीन सूखी हुई है। पाँव रखने से उड़ती है। इधर का कगार बहुत ऊँचा है, नदी सिर्फ 500 गज चौड़ी है, उधर जमालपुर का कगार नीचा है। घाट तक सड़क आती है। जमालपुर में घाट किनारे एक पंक्चर हुई सिविलियन बस खड़ी है। इधर हमारी ओर एक स्थान पर एक पक्की कांक्रीट की जेटी है, नीचे से बालू खिसक गयी है। और बाहर निकली जेटी का एक भाग टूट गया है, पर छड़ों के सहारे लटक रहा है। सामने ब्रह्मपुत्र के पानी में बाँस गाड़कर मछली के जाल सुखाने के खड़े मचान बने हैं। इसी जेटी के पास बाँस के मचान के पीछे खड़े होकर जनरल और उनके सहयोगी मौका-मुआयना कर रहे हैं। वह है जमालपुर की पानी की टंकी, यह है रेडियो टावर, यह है 4 मंजिली एक ऊँची लाल सिविलियन इमारत, वह है कालेज का पिछवाड़ा। बलवीर सिंह की

दूरबीन हाथ से हाथ में घूम रही है। “वह देखिए, एक जीप आयी है घाट पर, लेकिन नहीं, बैक करके बस के पीछे चली गयी।” कोई बताता है फिर सब सुनसान। एक मिनट की अजीब चुप्पी, चुप्पी तोड़ते हैं ब्रिगेडियर क्लेर। जनरल के कन्धों पर हाथ रख कर कहते हैं—“अब वापस चलना चाहिए, काम तो हो गया।”

और हमारा मुड़ना था कि “शू...शू...शू...शिक !” कोई चीज हमारे बीच से गुजरती है और पास की रेत में धँस जाती है। रेत का गुबार उठता है। पलक मारते ब्रिगेडियर क्लेर लेट जाते हैं और अपने साथ जनरल को खींच लेते हैं—“लाइ डाउन ! दुश्मन फायर कर रहा है।” और वाक्य पूरा नहीं होता। हम लेट भी नहीं पाते कि “शू...शिक।” और फिर तो बौछार। मेरी आँखों के आगे एक क्षण के लिए घुप अँधेरा-सा और फिर लाल-लाल उड़ते चकत्ते से। शायद भय, शायद... ! साथ के दो विदेशी फोटोग्राफर कांफ्रीट स्लैब के नीचे हैं, उसके बाद बाहर जनरल नागरा और सबसे इधर खुले में मैं। वे चीजें ठीक हमारे ऊपर से गुजर रही हैं और बस 5 गज, 6 गज की दूरी पर गिर रही हैं। दिल की धड़कन रुकने-सी लगी है। क्लेर कुछ कहते हैं पर हमारे कान जैसे सिर्फ ‘शू...शू...शिक।’ सुन रहे हैं। और मुझे जरा-सी चेतना आती है। कहाँ हैं बालकृष्ण, ब्रिगेडियर बेरी, कैप्टन भटनागर ? मैं गर्दन घुमाता हूँ, जनरल कड़कती आवाज में कहते हैं—“हिलो मत, चिथड़े उड़ जायेंगे। वे रिकॉयललेस गन चला रहे हैं।” (रिकॉयललेस गन टैंक उड़ाने के काम आती है) मेरे होंठ सूख गये हैं, गला चिपक गया है, लेकिन जहाँ तक मुझे याद है, रिकॉयललेस गन सुनकर मैं हँसने की कोशिश करता हुआ कहता हूँ—“वे हमें टैंक समझ रहे हैं क्या ?” लेकिन आवाज शायद काँप रही है। फिर भी बोलने से एक बात होती है। जो संज्ञाएँ एकदम शून्य पड़ गयी थीं, वे जागने लगती हैं। मैं देखता हूँ, ब्रह्मपुत्र का शान्त जल, चमकती धूप। और हर 10 सेकण्ड के बाद अपने बिल्कुल नजदीक उनके निशाने। एक मुक्तिवाहिनी का आदमी सहसा पीछे से उठकर काँपती छिपकली-सा कगार पर आता है, उसके हाथ कहीं जा रहे हैं, पैर कहीं। गुड़ीमुड़ी होकर बालू पर भागता है, फिर फिसलता हुआ नदी में गिरता है और ‘गुड-गुड-गुडम’ एक गोला बिल्कुल उसके पास पानी में गिरता है। वह फिर उठकर भागता है और जाने कहाँ चला जाता है। “अब उन्होंने मोर्टार भी चलाने शुरू कर दिये।” क्लेर कहते हैं, जनरल नागरा और ब्रिगेडियर क्लेर बिल्कुल शान्त हैं और वे फायरिंग की क्या टेकनीक दुश्मन इस्तेमाल कर रहा है, इसकी बात हँस-हँस कर कर रहे हैं। कैसा विचित्र आत्मबल है हमारे योद्धाओं का ! मोर्टार के गोले मेरे बिल्कुल नीचे पानी में गिरते हैं। छींटों से मैं भीग जाता हूँ। फ्रेंच कैमरामैन मार्क रिबू कांफ्रीट स्लैब के नीचे से मेरा नाम लेकर चिल्लाकर कुछ कहता है। मुझे मोर्टार के विस्फोट में कुछ सुनाई नहीं पड़ता। कोई हाथ बढ़ाकर मेरे गले में पड़ा रंगीन झोला खींचकर अन्दर फेंक देता है। क्लेर इशारा कर रहे हैं कि जमीन से चिपककर लेट जाओ। जनरल अपना हैट उतार कर अन्दर फेंक देते हैं और फिर जाने कौन-कौन लेटा-लेटा मेरे ऊपर बालू फेंक रहा है। नाक, कान, होंठ, गर्दन सब रेत से

भर जाते हैं। बाद में मालूम हुआ कि जनरल और उनके दायें में बिल्कुल खुले में थे और जनरल के हैट की लाल पट्टी और मेरी पीली कमीज और नीला झोला धूप में खूब चमक रहा था और वे लोग ठीक उसी पर निशाना साध रहे थे। यही राज था कि गोले ठीक मेरे सामने और दायें 5-6 गज की दूरी पर गिर रहे थे। बालू फेंक कर मेरी कमीज ढाँकी जा रही थी।

हमारे बिल्कुल पीछे से गन का एक राउण्ड छूटता है। पहला खयाल यही होता है कि दुश्मन पीछे भी आ गया है, लेकिन ब्रिगेडियर बेरी कुछ चिल्लाकर कहते हैं, जिससे मालूम हाता है—बलबीर सिंह जान का खतरा लेकर घुटनों के बल खेत की मेंड़ पर बैठकर गन चला रहे हैं। शायद बलबीर सिंह की गन का इशारा था कि इधर से हमारे तोपखाने ने फायर शुरू कर दिया। आधे मिनट के बाद शायद हमारे तोपखाने की वजह से उन्होंने अपने मोर्टार और रिकॉयललेस की पोजीशन बदली होगी, क्योंकि आधे मिनट के लिए फायरिंग बंद हुई ! “लौटिये और छितरा कर। फायरिंग हो, तो लेटिए फिर बढ़िये।” हम उठकर भागते हैं। और फिर फायरिंग जारी। लेटना, फिर भागना, फिर लेटना, फिर भागना। भागते-भागते मैं देखता हूँ कि बालकृष्ण (हमारे फोटोग्राफर) आगे हैं, बायीं ओर, पीछे मैं हूँ और सबसे पीछे ब्रिगेडियर बेरी। बाद में मालूम हुआ कि गोले की चोट से उड़ा एक कांक्रिट का टुकड़ा उनके पैर में लग गया है।

साँस चढ़ गयी थी। मुँह पर खून झलकने लगा था। आँखों से धुँधला दिख रहा था। कुछ तो खून का दबाव कुछ पलकों में भरी रेत, थोड़ी देर में यह भी होश नहीं रहा कि फायरिंग कब आयी, किस ओर आयी, बस अन्धाधुन्ध गिरते-पड़ते, लेटते-उठते भागना और वह भी रेत में, ऊँचे-नीचे खेतों में—गाँव अभी कितनी दूर है ? देखने में वह रहा, पहुँचने में हर खेत पार करने में चार-चार फायरिंग !

गाँव पहुँचे तो साँस धौंकनी की तरह चल रही और लगता अब गिरे, अब गिरे। उनकी गोलाबारी जारी थी। वे कहीं से हमारी एक-एक गतिविधि देख रहे थे। क्योंकि अब गोले गाँव पर गिर रहे थे। लेकिन थोड़ी-सी आड़ चाहे वह केले के गाछों की हो या फूस के छप्परों की, कितनी मनोवैज्ञानिक सुरक्षा देती है। गाँव का दृश्य विचित्र था। गोलाबारी के बावजूद गाँववाले सब वहीं हैं। दो आदमी जल्दी से बाल्टी में पानी भरकर ले आये हैं और पाँच-छह लोग तीन खाट लिये चादरें डालकर खड़े हैं। मालूम हुआ कि औरतें और बूढ़े आसन बिछाकर अंजलि फैलाकर खुदा से दुआ कर रहे हैं कि हम बच जायें और जवान खाट लेकर आये हैं कि हम घायल हो जायें, तो शेरपुर पहुँचा दें। अब हमें पहली बार होश आता है कि देख लें कि सब लौट आये हैं या नहीं ! सब एक-दूसरे को गिनते हैं। उन्होंने गोलाबारी गाँव पर और तेज कर दी है। हम जल्दी-जल्दी मुँह धोते हैं। पानी से सिर्फ गला तर करते हैं, पानी पीना नहीं है, नहीं तो तेज नहीं चल सकेंगे। अभी

डेढ़-दो मील खेतों में से होकर अपनी चौकी तक पहुँचना है।

और 'मृत्युयात्रा' का दूसरा चरण शुरू होता है। हम खेतों में दूर-दूर छितरा कर चल रहे हैं। उन्होंने भी मोटर और रिकॉयललेस की जगह मीडियम मशीनगन चलाना शुरू कर दिया है। पर अब हम लेटते नहीं, बस सावधानी से बढ़ रहे हैं। जब अपनी जीपों के पास अपनी तोपखाने की यूनिट के किनारे पहुँचे, तब पैर मन-मन भारी हो चुके थे और जाँघें इस कदर भर गयी थीं कि हर कदम उठाने में कराहने की तबीयत होती थी।

अब हम अपनी चौकी पर हैं। हमें अपने बीच पाकर उनके चेहरे पर सुकून है। ऐसी खतरनाक स्थिति। वहाँ कोई आड़ नहीं, साफ मैदान में एक-एक को चुन सकते थे। ब्रिगेडियर बेरी अब अपना पैर देखते हैं, ज्यादा नहीं, गहरी खरोंच आयी है। सब अपनी-अपनी स्थिति बताते हैं। बालकृष्ण की एक फिल्म खतम हो गयी थी। वे कैमरा खोलकर रील बदल रहे थे कि फायरिंग शुरू। उनका चश्मा भी वहीं छूट गया। मेरी चमकदार रंगीन कमीज की चुम्बकीय शक्ति पर टिप्पणी हो रही है। ब्रिगेडियर बेरी और ब्रिगेडियर क्लेर जीवन में सिर्फ एक बार और ऐसी ही स्थिति में फँसे थे, हाजीपीर पर। उसी की स्मृति में वे पैराशूट के कपड़े का स्कार्फ आज तक बाँधते हैं। आज दूसरी बार ऐसा हुआ है। सुझाव है कि हम जो लोग आज साथ थे, उनकी तस्वीर एक साथ ली जाये और उसे हर व्यक्ति अपने पास रखे।

“कुछ भी कहिए, उनकी मार्क्समैनशिप (निशानेबाजी) अच्छी थी। मुझ पर इतना सच्चा निशाना था कि पाँच गज पर गोला गिर रहा था।” मैं कहता हूँ।

“जी, सही फरमाते हैं।” हेलिकॉप्टर के फ्लाईंग ऑफिसर संजीव वर्मा अपनी बड़ी-बड़ी मूँछें दबाकर बोले—“इतनी जबर्दस्त निशानेबाजी है उनकी कि अगर वे जरा चूक जाते, तो इस वक्त ग्रुप में सब होते, सिर्फ डॉक्टर भारती नहीं !” और सब ठठा कर हँस पड़ते हैं। और फिर तो पता नहीं, तनाव दूर हो जाता है या इतना अधिक है कि उसको दबाने के लिए ठहाके लगने शुरू हो जाते हैं। इस घटना की स्ट्रेटेजी, टेकनीक को लेकर हल्के-फुल्के ढंग से बातें होने लगती हैं। फौज की जिन्दगी भी क्या विचित्र है ! जिन्दगी और मौत के खेल का वे दिल खोलकर विश्लेषण कर रहे हैं और दिल खोलकर ठहाके लगा रहे हैं।

ब्रिगेडियर बेरी ने बिना दूरबीन के देखा था कि जीप आयी थी और बैक होकर बस के पीछे चली गयी थी। उसी पर वे रिकॉयललेस गन लाद कर लाये थे। बस की आड़ से चला रहे थे। रिकॉयललेस गन और मोटर में एक फर्क होता है। मोटर का

गोला जहाँ गिरता है वहाँ से उछल कर स्प्लिंटर चारों ओर दस गज के दायरे में गिरते हैं। अतः आप पर ही न गिरे गोला, दो-एक गज दूर गिरे, तो आप बच सकते हैं। वह गोला आसमान में एक बिन्दु तक जाकर सीधे नीचे गिरता है। पर रिकॉयललेस की मार सबसे घातक होती है। जमीन से बिल्कुल ऊपर तिरछी आती है। और अगर आप जरा भी हिले, 6 इंच ऊपर भी तो चिथड़े उड़ जायें। टैंक की फौलाद को भी भेद देती है। और कहीं वहाँ बालू न होकर कंकड़-पत्थर होते, तब तो हमको कोई नहीं बचा सकता था। हर गोले के बाद जो स्प्लिंटर उड़ते वे सबको ले डालते, चाहे हम लेटते, चाहे छिपते। हमें क्या मालूम था कि ब्रह्मपुत्र का जल हजारों वर्षों से हिमालय के पत्थर पीस-पीस कर जो बालू बनाता रहा है, वह इसीलिए कि इन घातक गोलों को सोख ले। बालू की वजह से हम बचे हैं, यह जानकर ही उन्होंने गाँव के बाद हम पर मीडियम मशीनगन चलाना शुरू किया था, क्योंकि यदि वह निशाने पर बैठ जाये तो फिर बचना मुश्किल था और हम असैनिक अज्ञानियों को देखिए कि उसी की फायरिंग के समय लेटने का कष्ट नहीं उठाया।

“आप लोगों ने देखा ? डॉ. भारती तो एम.एम.जी.फायरिंग में जनवासे की चाल चल रहे थे, उनकी मार्क्समैनशिप के बारे में बड़ी ऊँची राय है हुजूर की ! निशाखातिर थे कि लगेगा तो है ही नहीं।” वर्मा की भूरी मूँछों का शरारत भरा ठहाका फिर लगा। चाय, बिस्कुट और ठहाके। “पाकिस्तानी बिस्कुट हैं, यह भी आपको बहुत अच्छे लग रहे होंगे।” वर्मा बताते हैं, यह पैकेट भी बंकर में मिला था। ठहाके और ठहाके।

जनरल नागरा नक्शे देख रहे थे। सर उठाकर बोले—“भाई, कल-परसों तक जमालपुर पर कब्जा कर लेंगे, फिर तुम लोग खुद ही उनको बधाई देना, जिन लोगों ने फायर किया था।”

“बधाई क्या सर ? इनको कहिए, ये अपनी नक्शेबाजीवाली कमीज ही उतार कर दे दें।” वर्मा ने फिर फिकरा कसा।

जनरल नागरा, ब्रिगेडियर बेरी, मेजर बामी, वर्मा सब चले गये हैं। हेलीकॉप्टर वापस ले जाना है। उनके गोले यहाँ हमारी जीप तक ही नहीं, हेलिकॉप्टर के पास तक गिरे हैं। हमारी जीप आड़ में खड़ी कर दी गयी है। दूर पर गाँववालों के दो झोंपड़े हैं, जहाँ तख्त और ढेर-सा पुआल पड़ा है। सिर्फ ब्रिगेडियर क्लेर रह गये हैं। और हम लोग। खाना बन रहा है, खाकर शेरपुर जायेंगे। क्लेर अपने जख्मी पैर के कारण थक गये हैं। और तख्त पर लेट गये हैं। मेरे भी पाँव जवाब दे गये हैं। मैं पुआल पर आँख मूँदकर लेट जाता हूँ। जाड़े की धूप भली लग रही है। झोंपड़े से एक किसान धान ओसा कर अन्दर रख रहा है। शान्त निश्चिन्त। उस पर गोलाबारी युद्ध का कोई असर नहीं। बताता है कि ‘पाकोस तो चला गया, अब तो इण्डिया का आर्मी है, उसे क्या चिंता ! हमारी एक तोप के पेंच खोलकर उसे आगे ले जाना है। गाँववाले मदद को तैयार हैं। “बख्शीश, तोबा-तोबा, आप इससे हमारे दुश्मन को मारेंगे। इससे बड़ा बख्शीश क्या होगा !” खेतों पर जाड़े की धूप है, धान की

पकी फसल का सोनल फैलाव, पोखर के पास एक धीमे-धीमे चलता बगुला। और अभी-अभी यहीं मौत नाच रही थी। अब कितनी शान्ति है ! युद्ध भी धूप-छाँह का कैसा विचित्र खेल है।

वापस शेरपुर पहुँचे तो उनकी फायरिंग और हमारी आर्टिलरी की जवाबी शेलिंग की चर्चा थी। सब हाल पूछने आ रहे हैं। बधाई दे रहे हैं। मुक्तिवाहिनी के बहादुर कप्तान हलाल पन्ना और ए. एस. भुइयाँ मैदान में खींच ले जाते हैं, “आप बहादुर संवादिक हैं, एक फोटो आपके साथ हमारा जरूर होगा।” हम जमीन पर उनके साथ बैठ जाते हैं और तेल की दाल-मोठ कागज में आती है। हम सब खाते जा रहे हैं और हलाल पन्ना अपनी यूनिट पर फायरिंग के किस्से सुना रहे हैं—कमालपुर से आधा मील दूर धनुआ कैम्प में कैसे 100 मुक्तिसैनिक छिपकर पोजीशन में थे। किसी रजाकार ने खबर दी। उन्होंने आक्रमण कर दिया। हमारे पास एक छोटी मशीनगन, एक 2 इंची मोर्टार और 303 राइफल और एसलर थे। उनके पास 6.3 आटोमैटिक, एल.एम.जी., बी.एम.जी. और कितने स्टेनगन ! ढाई घण्टे फायरिंग चली। हमारा एम्यूनिशन खत्म। फिर हैंड ग्रेनेड मारा। हमारा दो आदमी मरा, उनका 22। हमने 8 एल.एम.जी. और 2 आइ.एन. ऑटोमैटिक भी छीन लिया। उनका कैप्टन अव्यूब भी मारा गया। फिर छोटे लड़के आलम की कहानी। आठ बरस का वह बच्चा, सर पर केला रखकर छावनी में घुस गया। वे बोले, पहले एक केला इसे खिलाओ, इसमें जहर तो नहीं है। वह केला खाया, सिपाही लोग को खिलाया। आधा घण्टा में उनका सब भेद लिया और रात को दो बजे अटैक बोल दिया। हकला-हकला कर बोलने वाले हलाल पन्ना की मशीनगन बहुत फरटि से बोलती है, यह इस क्षेत्र की पूरी पाकिस्तानी सेना को मालूम है।

हम बेहद थकान महसूस कर रहे हैं। आराम कहाँ करें ? हमारा सामान बिस्तर तो सब बख्शीगंज में है। लेकिन मेजर राजपाल बताते हैं कि आपका सब सामान आर्मी के साथ शेरपुर आ गया है। बख्शीगंज में तो अब तक पीछेवाली यूनिट आ चुकी होगी। सामान हमारा सामने के गोविन्द चन्द्र इन्स्टीट्यूशन के बायें बाजू के एक कमरे में लगा दिया गया है। गजब है, उनका इन्तजाम कि जहाँ हजारों सैनिकों, सैकड़ों सप्लाय की ट्रकों, टनों हथियारों के ठीक समय पर ठीक जगह पहुँचाने का इन्तजाम है, वहीं हमारा छोटे से छोटा सामान भी हमारे बिना पहुँच जाता है।

हमारे बगल में मेजर बधवा (इंजीनियरिंग यूनिट) और उसके बगल में कैप्टन त्रिपाठी (मेडिकल यूनिट) ठहरे हैं। तख्त लग गये हैं और दो तख्त कम थे, तो मेडिकल यूनिट से दो स्ट्रेचर आ गये हैं। अब बिस्तर का क्या हो ? कल रात तो मेजर पोंगशे ने कम्बल दे दिये थे। कोई बात नहीं। आज मेजर बधवा की यूनिट ने कम्बल भेज दिये हैं। दो बाल्टी पानी, एक मग और एक लालटेन भी आ गयी है। शान है हमारी भी !

लेकिन पीठ टिका पाने के पहले ही शेरपुर के सभ्रान्त नागरिकों का एक दल आया है हमसे मिलने, स्वागत करने। हम फिर बैठ जाते हैं। लालटेन की धुँआँती

रोशनी में बातें हो रही हैं। वे बताते हैं कि 'इण्डियन आर्मी का विजय का वास्ते आज हम मस्जिद में अल्लाह को बहुत दुआ माँगा।' इनकी कृतज्ञता, इनके प्यार का कोई हिसाब नहीं !

रात को सोया तो लगा, माथे पर ब्रह्मपुत्र का शीतल जलप्रवाह शान्ति दे गया है। गालिब याद आते हैं—“मौत का एक दिन मुअय्यन है,” उस निश्चित दिन के पहले कुछ नहीं होगा। होगा भी तो इसी तरह मौत शायद नींद की एक गहरी नदी होगी—गहरी लेकिन शान्त अस्तित्व के हिमालयों की दुर्गम घाटी से बहती हुई। मैं शान्त बहती नदी में धीरे-धीरे घुल जाता हूँ। नींद में निश्चिन्त, सब शान्त हैं, सिर्फ बाहर के पोखर में कभी-कभी मछलियों के उछलने की 'छप-छपाक' आवाज आती है।

दिसम्बर की धूपधुली सुबह, पोखर में काँपती हुई। उधर के किनारे पर हमारे सैनिकों की आती हुई, जाती हुई कतारों की खाकी परछाइयाँ। सीढ़ियों पर सुबह-सुबह नहाते, दातुन करते, साबुन मलते फौजी गठे हुए बदन, इधर के किनारे की घास पर उनके कपड़े निचोड़ कर सूखने के लिए फैलाये हुए कैसा जीवन्त लग रहा है यह प्रांगण ! कुछ सैनिक तैयार होकर कतार बाँध रहे हैं, कुछ अभी बरामदों में कपड़े बदल रहे हैं, कुछ जमीन पर बैठकर शेव कर रहे हैं, रातोंरात सैनिक टेलिफोनों के तार घास पर बिछा दिये गये हैं, पिछवाड़े की ओर एक तरफ ईंटों का जंगी चूल्हा बनाकर चाय के देगचे चढ़ा दिये गये हैं, एक ओर मोटर मरम्मत का गेराज बना दिया गया है, जहाँ गाड़ियों के बोनट खोलकर मरम्मत हो रही है, या टायरों के पंक्चर ठीक किये जा रहे हैं। उधर बड़े-बड़े पीपों में भरकर पेट्रोल लाद कर लाया गया है और गाड़ियाँ टोकन दिखा कर पेट्रोल भरवा रही हैं। कुछ कान पर जनेऊ चढ़ाकर बोटलों में पानी भर कर पीछे के पोखरों की ओर जा रहे हैं। एक सैनिक अपने किट में से सूई डोरा निकाल कर वर्दी का टूटा बटन टाँक रहा है। एक ओर ट्रक पर गिनती करके कम्बल और बिस्तरे लादे जा रहे हैं, एक ओर पेटियाँ। गेट के पास लंगर है, जहाँ गरम चपातियाँ सिंक रही हैं और तरकारी का देगचा चढ़ा हुआ है। मेडिकल यूनिट के पास सिविलियनों की भीड़ है, क्योंकि पास गाँव से वे किसी जख्मी औरत को तख्त पर लिटाकर, बाँस की बहँगी में लटकाकर, कम्बल से मुँह तक ढाँक कर कई मील दूर के गाँव से आये हैं। उसे जाते हुए पाक सैनिकों की गोली लगी थी। डॉक्टर अपने कमरे में गोली निकाल रहे हैं और उसका अघेड़ पति हर भारतीय का हाथ हाथों में लेकर बंगाली में दुआएँ दे रहा है। चारदीवारी के बाहर सड़क पर बाजार लग गया है, क्योंकि दस-दस मील से गाँववाले टोकरियों में भरकर बैंगन, साग मछलियाँ, चावल अदरक हरी सुपारी और मूलियाँ लाये हैं। यही वे गाँववाले हैं, जो दाम देने पर भी पाकिस्तानियों को रसद नहीं देते थे। चाहे गोलियों से भून दिये जायें और यही हैं, जिन्होंने भारतीय सेना के लिए रसद का ढेर लगा दिया है। किसी भी दाम ले लें, कोई मोल-भाव नहीं। और जब उन्हें बताया जाता है कि अब हमारी जरूरत पूरी हो गयी, हमें नहीं

खरीदना है, तो आकर बरामदों में अपना सामान टोकरियों से उलट जाते हैं कि दाम कौन माँग रहा है, हम तो आपको देने के लिए आये हैं, बेचने के लिए नहीं। इंजीनियर यूनिट के कुछ लोग कल बाजार में टार्च पेंसिलें और कुछ जरूरत की चीजें खरीदने गये थे। जब दुकानदार ने दाम लेने से इनकार किया, तो संकोच के मारे वे चीजें बिना लिये लौट आये। इधर ट्रकों की कतारें लगी हैं। कुछ फौजी, कुछ सप्लाई लेकर आनेवाली सिविलियन ट्रकों, जिन पर ट्रान्सपोर्ट कम्पनियों के नाम लिखे हैं और पीछे 'ओ.के.' या शेरों की चहकती लाइनें !

अत्याचार और हत्याओं के बारे में कुछ और तफसील से बताते हैं इकरामुल हक एडवोकेट। वे अवामी लीग के पदाधिकारी थे। पहले भाग गये थे, पर 28 मई को शेरपुर लौटे। 4 दिन डर के मारे घर में छिपे रहे। उनके भाई इमामुरशीद जमालपुर कालेज में बँगला के अध्यापक थे। वे राजनीति में नहीं थे, लेकिन बँगला पढ़ाते थे, इसलिए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हीं के साथ जमालपुर के प्रख्यात नेता अब्दुल हमीद मुख्तार को भी गिरफ्तार किया। उन्हें तो गोली मार दी। इमामुरशीद को बाद में छोड़ दिया, लेकिन उन्हें अमानुषिक यन्त्रणाएँ दीं। अभी तक उनका मस्तिष्क सन्तुलित नहीं हो पाया। अब वे पढ़ा भी पायेंगे या नहीं, कौन जाने ? श्मशान घाट और पी.टी.एन. इन्स्टीट्यूट, जमालपुर में लगभग 20 व्यक्तियों को रोज कत्ल किया जाता था, कुछ को गोली से, कुछ को संगीनों भोंककर, चन्द्रा गाँव में उन्होंने 8 गर्भवती औरतों पर बलात्कार किया और उनमें से एक बाद में मर गयी। मैं डर कर शेरपुर भाग आया, जमालपुर में अपनी प्रेक्टिस छोड़-छाड़ कर। यहाँ सब कारोबार ठप था। लोग घर से नहीं निकलते थे। आज रात को बैठे आपसे बातें कर रहे हैं। परसों तक क्या दिन में भी निकल सकते थे ? एक दिन मैंने देखा, यहीं 5 निरपराध लोगों को मेजर रियाज पकड़ कर ले गया और उन्हें शूट कर दिया। बेचारे अकबर और तालिब दो लोहार थे। उनकी दुकान में ही उन्हें मार डाला। उनका जनाजा भी नहीं निकलने दिया। यहाँ के अवामी लीग के सेक्रेटरी समद चौधरी का घर थाने के सामने है। उसी के आँगन में गद्दा खोद कर दोनों को दफना दिया। कहा यह, अवामी लीग को हम मशरिकी पाकिस्तान की हुकूमत दे रहे हैं। समद भागकर भारत चले गये थे। अभी लौटे नहीं। कल हम सुबह 7 बजे अपनी बहन के यहाँ जा रहे थे, तो देखा 30 सेना गाड़ी में पाकिस्तानी फौज भरकर जमालपुर की ओर भाग रही है। सब अपना सर नीचे झुकाये हैं, बन्दूकें बाहर निकाले हैं। दस बजे तक कोई घर से नहीं निकला कि यह भी उनकी चाल होगी। लेकिन यह खबर थी कि बख्शीगंज में इण्डियन आर्मी आ गयी है, तो 10 बजे सब घर से निकलकर एक-दूसरे से गले मिलने लगे। बोले—“आज ईद का आनन्दा है।” दिन को 2 बजे नबीनगर की ओर से चार हजार आदमी बाँगलादेश का झण्डा लेकर ‘जय बाँगला’, ‘जय स्वाधीन बाँगला’ बोलते हुए आये, तो हम लोग खुश हो गये। घर-घर में आनन्दा होने लगा। सब माला-फूल खरीदने दौड़े कि इण्डियन आर्मी का स्वागत करेंगे।

ईद का आनन्दा तो सचमुच किस तरह शेरपुर के चौराहे-चौराहे और गली-गली में है, यह हम खुद देख रहे हैं, मगर इनके बीच ये कौन हैं, तीन मैले-कुचैले लोग, थर-थर काँपते हुए ? उन्हें मुक्तिवाहिनी के लोग रस्सियों में बाँधकर लाये हैं और इण्डियन आर्मी के एक हवलदार के हवाले कर गये हैं। मुंसिफी अदालत के अहाते में भीड़ लग गयी है और लोग गुस्से से उन्हें देख रहे हैं। हम उधर जाते हैं कि पान की दुकान के पास खड़े दो भद्र सज्जन पहले हमें दूर खड़े देखते रहते हैं। फिर हिचक दूर कर पास आते हैं और हाथ मिलाते हैं। बताते हैं कि वे स्थानीय पुलिस सब-इन्स्पेक्टर हैं। उनके परिवार जमालपुर में हैं। वे हमसे जानना चाहते हैं कि आज शाम तक जमालपुर ले लिया जायेगा या नहीं। हम क्या बता सकते हैं ? वे बहुत गमगीन हैं, क्षमा माँगते-से स्वर में बोले—“हम इसलिए पूछ रहे थे कि हमारे बच्चे और उनकी माँ वहीं हैं।” हम मोड़ के पास जाकर देखते हैं, रस्सियों में बँधे वे तीन रजाकार अभी-अभी पकड़ कर लाये गये हैं। उनमें से दो तो हक्के-बक्के इधर-उधर देख रहे हैं एक के हाथ-पाँव थर-थर काँप रहे हैं। वह पहले लड़खड़ाता है, फिर बैठ जाता है। हम पूछते हैं तो मालूम होता है, दो सीरपुर और एक अडंगा गाँव का है। नाम शाहजहाँ, इज्जतअली और अब्दुल्ला, आसपास खड़े लोग बताते हैं कि उन्होंने बहुत उपद्रव किया था और अभी परसों रात तक जमालपुर में औरतें पहुँचायी थीं—“इज्जतअली, तुम्हें अपने देश की इज्जत का भी खयाल नहीं रहा, क्यों करते थे तुम यह ?” वह एक सम्भावित थप्पड़ की आशा में अपने मुँह पर दोनों हाथ रख लेता है, पर थप्पड़ न पाकर हाथ हटाकर मेरी ओर एक क्षण विचित्र निगाह से देखता है और हाथ जोड़कर बोलता है—“भूख से मरता था, ओ बोलारजाकार बनो तो पचासी रुपया मिलेगा। रुपया दिया भी नहीं !” पास खड़े मुक्तिवाहिनी के कैप्टन अब्दुल अजीज डपट कर कहते हैं बँगला में—“साला ! झूठ बोलता है। चार घर जला कर गहना लूटा और रोज दो औरत...फी औरत पाँच रुपया लाता था।” नागरिकों का बढ़ता क्रोध देखकर हवलदार उन्हें उठा कर कहीं और ले जाता है, अब्दुल्ला काँपते पैरों से बार-बार लड़खड़ा रहा है।

भीड़ में से एक सफेद दाढ़ीवाले बुजुर्ग मौलाना सहसा आते हैं और हमारे हाथ चूमकर बँगला में जाने क्या-क्या कहने लगते हैं। और बार-बार हमारा हाथ माथे से लगाते हैं। हमें कोई टूटी-फूटी हिन्दी में समझाता है कि पाकिस्तानियों ने इन लोगों को जाने के पहले डराया था कि मुक्तिवाहिनी आयेगी, तो सब दाढ़ीवालों की दाढ़ी मूड़ देगी और भारतीय सेना आयेगी, तो सबका मजहब बदल देगी। कल दिन भर मौलाना घर से नहीं निकले। जब उन्होंने देखा कि आप लोग तो बिना पैसा दिये चीज भी नहीं लेते, तो आज खुश होकर निकले हैं। पाकिस्तानियों को बेईमान बता रहे हैं। और आप लोगों को फरिश्ता। इसीलिए हाथ माथे से लगा रहे हैं।

कैप्टन अब्दुल अजीज और आसपास खड़े मुक्तिवाहिनी के लोग ठठाकर हैंस

पड़ते हैं।

कैप्टन अब्दुल अजीज के पास बायें स्पोर्ट वीयर और सफेद पैण्ट में एक सज्जन खड़े हैं—कॉलेज के टेडीबॉय की तरह। परिचय हुआ तो मालूम हुआ, वे हैं इस सेक्टर के इन्चार्ज। उनसे इस सेक्टर का इतिहास मालूम हुआ। इस सेक्टर का नम्बर है सेक्टर 11 और मुक्ति संघर्ष में इसका एक खास महत्त्व रहा है। 25 मार्च को मुजीब की गिरफ्तारी के बाद बाँगलादेश बेतार केन्द्र पर स्वाधीन बाँगलादेश की घोषणा हुई थी। 26 मार्च को अस्थायी सैनिक सरकार के मुखिया घोषित हुए। कर्नल जिया।

वे कर्नल जिया 26 मार्च को यहीं इसी सेक्टर में थे और वह घोषणा यहीं से जारी हुई थी। अब कर्नल जिया चटगाँव में हैं। कर्नल जिया के बाद मेजर अबू ताहिर ने इस सेक्टर का चार्ज सँभाला। युद्ध में वे सख्त घायल हुए और उनके एक पाँव का ऑपरेशन करना पड़ा। 25 मार्च को हमीदुल्ला खाँ ढाका में शेख मुजीब के घर के पास ही थे। 26 मार्च को कर्नल जिया की सरकार घोषित हुई, तो ढाका से अगरतला, अगरतला से कलकत्ता और फिर यहाँ पहुँचे। यहाँ आकर मानकछार के बाँगलादेश क्षेत्र का चार्ज लिया और अबू ताहिर के बाद इस पूरे सेक्टर का। पहले यहाँ मुक्तिफौज आर्टिलरी रेगुलर थी, फिर गणवाहिनी और नियमितवाहिनी के आधे-आधे लोग, अब गणवाहिनी 95 प्रतिशत। कुल 6,000 मुक्तिसैनिक इस क्षेत्र में हैं।

छब्बीस मार्च को स्वतन्त्र बाँगला देश की जिस अस्थायी सरकार की खबर सारे संसार में सनसनी मचा गयी थी, उसका गठन इसी क्षेत्र में हुआ था, यह बात तो किसी को मालूम ही नहीं थी। क्या रहा होगा उस दिन यहाँ का आलम ! अदम्य साहस भी, भय भी, अनिश्चयग्रस्त भविष्य भी, अदृढ़ निश्चय भी—

इसीलिए इस क्षेत्र को पाकिस्तानियों ने भरपूर सजा भी दी है। पहले की बातें तो हम सुन ही चुके हैं। अभी केवल 14 दिन पहले उन्होंने सुरुजदी और आसपास के गाँवों में जो किया है, उसे जाकर देखें तभी यकीन कर पायेंगे। हमीदुल्ला हमारे साथ मुक्तिवाहिनी के दो सैनिक कर देते हैं और हमारी जीप उन गाँवों की ओर चल पड़ती है।

रास्ते में मुक्तिवाहिनी के जत्ये कतार बाँधकर झण्डे लिये शेरपुर की ओर जाते हुए मिलते हैं। हमें देखकर उनमें जोश और ममता की लहर दौड़ती है, उसका बयान करना मुश्किल है। आज उनका एक नया नारा है—“इन्दिरा मुजीब बहन-भाई ! जिन्दाबाद जिन्दाबाद !” गाँव के लोग दौड़-दौड़कर आते हैं और हमारी जीप के पीछे-पीछे दौड़ते जा रहे हैं।

वह है नौगाँव। नौगाँव, ताराकंदी, सुरुजदी और अंडरिया—इन चार गाँवों में इसी 24 नवम्बर को उन्होंने 108 आदमियों की हत्या की थी। एक बूढ़ा न केवल जिसकी दाढ़ी और बाल सफेद हैं, वरन् जिसकी भौंहें और पलकें तक सफेद हैं, उसके बेटे और दो पोतों को भी उन्होंने मार दिया। बूढ़ा वहीं बैठा रहता है जमीन पर। न स्वागत

करता है, न शिकायत, केवल शून्य आँखों से देखता रहता है, शून्य में।

और अब दूसरा गाँव ताराकंदी। मैं नहीं जानता कि ताराकंदी का हाल किन शब्दों में लिखा जाये ! खूबसूरत निहायत हरे-भरे कुंजों और खेतों के आक्षितिज प्रसार के बीच एक झुलसा हुआ, काला, चिराँयध की गन्ध छोड़ता हुआ-सा बहुत बड़ा धब्बा। झोंपड़ों की दीवारें, छतें सब जलकर राख हो चुकी हैं, नीचे जमीन और पगडण्डियों पर राख और जले फूस, कपड़े, चारपाइयों की ढेरियाँ, उन ढेरियों पर पाँव रख-रख कर हम आगे बढ़ रहे हैं। जगह-जगह पर झोंपड़ों के कंकाल खड़े हैं। जले हुए खम्भे, जले हुए बाँस। अभी तक ये गाँववाले जंगलों में भाग गये थे। कल से लौटे हैं और अपना जला-अधजला सामान खखोरकर इन जले खम्भों के सहारे नये बाँस काट कर गाड़ रहे हैं, सरकण्डों की चटाइयों पर गीली मिट्टी थोप कर फिर झोंपड़े बनाने की तैयारियाँ कर रहे हैं। उनके चेहरे पर एक विचित्र भाव है, शायद वह—जिसे केवल निराला जी शब्द दे सकते थे : “दृष्टि वह जो मार खा रोयी नहीं।” इस धुएँ, राख और नृशंस अत्याचारों की धरती पर, घने पेड़ों के बीच भी तेज धूप अजीब ढंग से बरस रही है। मैं सिर उठाकर ऊपर देखता हूँ तो दिल दहल जाता है। न केवल केले और बाँस वरन् आम, नीम, कटहल और पीपल के बड़े-बड़े विशाल पेड़ों की पत्तियाँ और शाखें झुलस चुकी हैं। झुलसे हुए महावृक्षों के मुर्दार राख-रंग पर सूरज की धूप एक अजीब प्रेत वातावरण पैदा कर रही है। हमने पिछली यात्रा में मंदभागा के उस पार जलते गाँवों के धुएँ, इस यात्रा में सिलहट क्षेत्र के जलते गाँवों के चित्र लिए थे, लेकिन कई मील दूर से। वैसे गाँवों के अन्दर अग्निकाण्ड के बाद क्या मंजर होता है, इसकी क्या कल्पना भी कर पाये थे ?

लौट कर इन परिवारों का काम बँट गया था। बच्चे अधजला सामान खींच-खींच कर अलग रख रहे थे और बड़े अधजली लाशों को दफना रहे थे। तमाम लोग हमारे चारों ओर घिर आये थे और अपनी कथाएँ बता रहे थे। साबू शेख बता रहा है कि उसकी बूढ़ी माँ नसीरन खेत में छिप गयी थी। उन्होंने उसे खेत में गोली मार दी। लेकिन मरी नहीं। कन्धे पर पट्टी बाँधकर घिसटती रहती है। और फिर तो सबके किस्से हैं गाँव के मास्टर मोहम्मद जीनत अली जिनको तीन दिन तक वे बुला-बुला कर मारते रहे। अब्दुल जलील सरकार, जो कभी कलकत्ते रह चुके थे और अंग्रेजी बोल लेते थे। सुरुजदी के वसीमुद्दीन अहमद, जो यूनियन के सेक्रेटरी थे, जिनके उसी गाँव में सात भाई थे और 45 घर और आज जिनके सर पर छत भी नहीं थी। उनका गला भरा था और वे बार-बार यही कह रहे थे, “यू डू नॉट नो सर, इन माई हार्ट आई एम वैरी सारी। पाकिस्तानीज डिड दिस, बट व्हाई ?” उस एक गाँव में उन्होंने 160 घर जलाये थे।

कारण बताया इंग्लिश टीचर मोहम्मद अमजद अली ने। वे अवामी लीग के टिकट पर शेरपुर म्युनिसिपैलटी के सदस्य थे। उनका कहना था कि पाकिस्तानियों को शक था कि इन गाँवों में मुक्तिवाहिनी के लोग हैं। वास्तव में अमजद अली

ने पहले मार्च-अप्रैल में इन गाँवों में बाँगला देश का झण्डा फहराया था। फिर भागकर भारत जाना पड़ा। मई में फिर लौट आये। गिरफ्तारी पर इनाम था, अतः दलदलों में छिपे रहे। न तब, न अब तक बाँगलादेश सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ पाया था।

इतने में अब्दुल जलील सरकार सहसा बोलते हैं—“और साहब, पाकिस्तानी आर्मी इसलिए भी जुल्म किया कि हम अपना भाई को बेचा नहीं।” मालूम हुआ कि इस गाँव में एक हिन्दू परिवार था। डेढ़ कोस दूर पर, इन लोगों ने उस परिवार को बचाया। अभी 15 दिन पहले ! कहाँ है वह परिवार ? लगभग दस-बारह लड़के दौड़ कर जाते हैं और थोड़ी देर में एक व्यक्ति आकर खड़ा हो जाता है : ‘ये राधोराम हैं, रविदासी भाई हैं।’ मालूम होता है कि राधोराम बराबर यहाँ रहे। गाँववालों ने उन्हें बहुत प्रेम से रखा। उनकी दो जवान बेटियाँ थीं। बिहारी मुसलमान अल-बदरवालों को मालूम हुआ, तो वे आये। गाँववालों ने राधोराम के पूरे परिवार को छिपा दिया। एक दिन तो घण्टों दोनों लड़कियों को एक सूखे कुएँ में छिपाये रखा। चारों गाँवों में अग्निकाण्ड हुआ, 108 लोग मारे गये, पर गाँववालों ने राधोराम और उसके परिवार पर आँच नहीं आने दी। हम लोग चलने लगते हैं, तो राधोराम उदास स्वर में पूछते हैं। “अब तो हम शाधीन हैं, अब हम धोती पहिरने सकेगा न ?” मालूम हुआ, बिहारी रजाकार किसी को धोती पहने देख कर ही उसकी हत्या कर देते थे।

और एक और घटना सुनी सुरुजदी में। वह गाँव नयी कब्रों से भरा था। किनारे पर एक हिन्दू घर था, जिसमें 8 लोग थे। पाकिस्तानी सेना ने उस घर को घेर लिया। अगल-बगल के मुस्लिम पड़ोसी इस हत्याकाण्ड को रोकने आये, तो उन 8 हिन्दू बाँगालियों के साथ 18 बंगाली मुसलमानों को भी मार डाला। उन अठारहों की कब्रें वहीं बनी हैं। बताने वाला बोला—“फिर हम दो हिन्दू भाई लोग को मसान ले जाकर फूँका, हमी आग दिया, सर, उनका तो कोई नातेवाला नहीं था।” और बताते-बताते रो पड़ा।

हम लौटने लगते हैं, तो भागा-भागा एक और आता है। लुंगी लपेटे, नंग बदन। “आप इतनी दूर से गाँव में आया है, बिना मुँह जुठारे कैसे जायेगा ?” कब्रों, हत्याओं, राख की ढेरियों के इस गाँव में सत्कार स्वीकारना कैसे सम्भव है ? हम मना करते हैं, तो वह पाँव पकड़ लेता है। उसका नाम है मोहम्मद जोल्हासुदीन—“सारा गाँव में किसी के पास कुछ नहीं है। हम तो भड़भूजा है साहब। हमारा तो काम ही आग का है। हमारा बर्तन बच गया है औरत लोग आपका वास्ते मूड़ी भूजा है।” और वह अधजली अपनी झोंपड़ी में लाकर बिठाता है। धान की ताजी मूड़ी (लाई) भून कर लाया है। मूड़ी भर-भर कर हमारे रूमालों में डालता जा रहा है। हम जैसे-तैसे खाते हैं। कुछ दाने नीचे गिरते हैं, तो एक सफेद बिल्ली आकर उन्हें खाने लगती है। “बस, ये बर्तन बचा है, बदन का कपड़ा बचा है।” जोल्हासुदीन बताता है, “और ये बिल्ली बची है। पाकिस्तानी आया था तो झाड़ में छिप गया

था। बाद में हमको ढूँढ़ता आ गया। इसका प्रेम है साहब, मानुष प्राणी है, ओ पाकिस्तानी और रजाकार तो मानुष प्राणी नहीं।”

जोल्हासुदीन के उस टीन के अधजले झोंपड़े को कभी भूल पाऊँगा क्या ? ढिबरी, तेल की शीशी, प्याज, अदरक की कुछ गाँठें, एक बिल्ली और बस ! लेकिन जोल्हासुदीन के पास एक दिल था, जो क्रान्तियों के मसीहा माओ, डालर के कुवेर निक्सन जैसे पाखण्डियों के सारे दिल दिमाग और अरब संघ और ईरान-महोत्सव और लाल किताब और सातवें बेड़े और संयुक्त राष्ट्र की समूची इमारत से बड़ा था, बहुत बड़ा !

कमरे में लौटते-लौटते दिन ढलने लगा है।

अपनी छावनी की दो यूनिट कहीं और जा चुकी हैं, अपेक्षाकृत सन्नाटा है। कहाँ गयी होंगी !

ब्रिगेडियर क्तेर भी कहीं नहीं दीख रहे हैं।

क्या कहीं तगड़ा मोर्चा जम रहा है ?

कुछ पता नहीं ?

दोनों ओर से शेलिंग बहुत जबरदस्त हो रही है। तोप के धमाकों से पोखर का पानी तक काँपता प्रतीत होता है।

तीसरे पहर आफिसर्स मेस के पास जनरल नागरा अकेले खड़े दीखते हैं। कुछ विचारों में डूबे।

हम दौड़कर उनके पास जाते हैं, अभिवादन करते हैं—“जनरल क्या आज रात तक जमालपुर में दाखिल हो सकेंगे ?”

“शायद नहीं ?”

“कल ?”

“देखो ! कुछ नहीं कह सकते ! उनके रेडियो सन्देश हमने इंटरसेप्ट किये हैं। उन्हें सख्त आदेश है, जमालपुर पर जमकर लड़ने का। हमने सन्देश भेजा है कि आत्मसमर्पण कर दें, व्यर्थ में दोनों ओर की जानें गँवाने से फायदा ? लेकिन वे राजी नहीं हैं, देखो कल तक क्या होता है ?”

कल भी कुछ नहीं होता। रात को नींद उचटी-उचटी-सी, क्योंकि तोपें रह-रहकर गरज रही थीं। और हमारे बमवर्षक कई बार सार्टीज कर रहे थे। उधर पूरब और पश्चिम से हमारी फौजें ढाका के बहुत नजदीक पहुँच गयी हैं। तो क्या हमारी उत्तरी मोर्चे की सेना यहीं अटकी रह जायेगी !

गतिरोध-सा लगता है।

सुबह कुछ और टुकड़ियाँ ट्रक पर लदकर जा रही हैं। लंगर भी उठ गया है। उचाट-सी लग रही है छावनी ! लेकिन मैदान में कुछ रौनक है। मुक्तिवाहिनी के जल्ये और सिविलियन इकट्ठे हो रहे हैं। मालूम होता है कि स्वयं पूर्वी कमान के जनरल अरोड़ा 10 बजे हेलिकॉप्टर से आ रहे हैं। जनरल अरोड़ा यहाँ इस छोटे-से शेरपुर की सभा में क्यों ?

जनरल आते हैं। सौम्य, हँसमुख, विनम्र और मधुर। परिचय होने पर भी मैं कुछ कह नहीं पाता। एकटक इस योद्धा को देखता रहता हूँ, जिसकी रणनीति संसार के युद्धों के इतिहास में बेजोड़ साबित हो रही है।

सभा के तुरन्त बाद वे जनरल नागरा को लेकर विचार-विनिमय के लिए चले जाते हैं। लगता है, शीघ्र ही निर्णयात्मक कुछ होगा। यहाँ का मोर्चा निस्सन्देह पूर्वीय युद्ध की कुंजी है। जनरल अरोड़ा की सजगता भी अद्भुत है। कल रेडियो पर सुना था—कोमिल्ला में थे, जेसोर हो आये थे और आज यहाँ मौजूद हैं। शायद मोर्चा विस्फोटक बिन्दु पर है।

लेकिन शाम को भी कुछ नहीं होता। मेजर बधवा भी चले गये हैं। बगल का कमरा भी सूना हो गया है। कैप्टन(डा.) त्रिपाठी के कमरे में हम देर तक रात को न्यूज सुनते हैं। आज तो तोपों की आवाजें भी धीमी हैं। क्या मोर्चा कहीं उलझ गया है ? कल शाम से ब्रिगेडियर क्लेर, बलबीर सिंह, राजपाल सब कहाँ हैं ? मेजर बधवा कहाँ गये हैं ? यह तो बाद में मुक्तिवाहिनी के अबू यूसुफ ने बताया कि यहाँ से कई मील दूर रात के अँधेरे में कई चटाई के छाजनवाली बैलगाड़ियाँ पुआल लादकर ब्रह्मपुत्र के किनारे तक गयीं। वहाँ से उतरकर वह पुआल कई नावों पर लादकर पार पहुँचाया गया। वास्तव में नावों में हमारे सैनिक थे। बैलगाड़ी के चलानेवाले और नावों के माँझी मुक्तिवाहिनी के बहादुर युवा सैनिक थे। लेकिन यह सब बाद में मालूम हुआ।

सुबह अलसाये से उठे हम। शेष के लिए ब्रश फिराया था कि दौड़ते हुए कैप्टन भटनागर आये। जनरल नागरा ने बुलाया है, तुरन्त जैसे हों, वैसे चलिए, साबुन पोंछते हैं और जैसे-तैसे तैयार हो कर भागते हैं।

हेलिकॉप्टर तैयार खड़ा है। हमें उसी पर कहीं जाना है। जनरल नागरा वैसी ही गंभीर मुद्रा में। आज तो फ्लाइटिंग आफिसर वर्मा भी गम्भीर हैं। सब अन्दर बैठ जाते हैं। दरवाजा बन्द कर यात्रियों की गिनती होती है। विशाल डैने घूमते हैं। हेलिकॉप्टर ऊपर उठता है। हमने पता नहीं कितने मील आगे से ब्रह्मपुत्र पार की है। जनरल गम्भीर मुद्रा में बैठे कुछ कागजात देख रहे हैं। अब हम गाँवों, खेतों पर से उड़ रहे हैं। एक रेलवे लाइन नीचे दीखती है। क्या हम जमालपुर के बहुत पास हैं ?

अब एक सड़क है नीचे। और तिल के पीले फूलों का विशाल प्रसार। हेलिकॉप्टर दो बार काँपता है और यह क्या ? गोलों के फटने की आवाज ! तो क्या हेलिकॉप्टर में गोला लग गया। हम गोल शीशे के बाहर झाँकते हैं। तिल के पीले खेत भूकम्प में उठते-गिरते से लगते हैं। लेकिन हेलिकॉप्टर ठीक है। वर्मा ने हेलिकॉप्टर आसानी से उतार दिया। दरवाजा खुलता है। हम सब बाहर कूदते हैं और फिर धमाके !! आज बचना मुश्किल है। हम भागते हैं। हेलिकॉप्टर से कुछ दूर जाकर खेत में लेट जाते हैं, पीले फूलों के ऊपर। तो मौत यहाँ बदी थी !

लेकिन यह क्या ? जनरल खड़े हैं। हमें देखकर उठने का इशारा कर रहे हैं !

आखिर माजरा क्या है ? और हम उठकर जनरल की तरफ दौड़ते जाते हैं, वे उधर खेत पार पक्की सड़क की ओर बढ़ रहे हैं। मेरे पैर में कुछ उलझता है, मैं गिरते-गिरते बचता हूँ। मुड़कर देखता हूँ, एक लहलुहान मृत शरीर, और अब तो जिधर देखो, उधर वही दृश्य। खेत में, उधर पेड़ के नीचे, सड़क के किनारे-किनारे। सड़क पर पाकिस्तानी फौजी जीपों और ट्रकों का कारवाँ जैसे चलते-चलते अकस्मात् रुक गया हो ! एक ड्राइवर चक्के पर ही लुढ़क गया है; एक शरीर ट्रक से आधा झूल रहा है। पेड़ के नीचे चार बंगालियों की लाशें पड़ी हैं। कपड़े से ढँकी। एक बूढ़ा बंगाली अपनी गठरी के पास मरा पड़ा है। “हरामजादों ने जाते-जाते निहत्थे बंगालियों को मार डाला।” सड़क पर खड़े बलवीरसिंह मेरा हाथ पकड़कर सहारा देते हुए बताते हैं—“आधी रात के बाद हमारी टुकड़ी पर हमला बोल दिया था। हमसे नहीं चली, तो सड़क के दोनों ओर खेतों तक में सिविलियनों को मार डाला। खुद भी बहुत मारे गये—मरे और घायल 200 के करीब ! हमारे भी आठ-दस नौजवान गये। सुबह वायरलेस से जनरल को क्लेर ने बताया था। आप लोगों को बुलाया भी था।

“क्लेर !” जनरल आवाज लगाते हैं। सड़क के किनारे केले-बाँस के झुरमुट में से छड़ी पर चोट खाया पैर टिकाते हुए ब्रिगेडियर क्लेर आ रहे हैं धीरे-धीरे। जनरल आगे बढ़कर उन्हें गले लगाते हैं। माथा चूमते हैं।

लेकिन गोले फटने की आवाज आ रही है। जमालपुर से वे फायरिंग कर रहे हैं क्या ? फिर जनरल खड़े क्यों हैं, बेधड़क ? मेरा गला सूख कर चिपकता जा रहा है।

आधी रात का हमला

रह-रहकर भयानक विस्फोट हो रहे हैं, कभी-कभी एक साथ तीन-चार। हम सुन रहे हैं। लेकिन नहीं—शायद मैं गलत कह रहा हूँ। एक क्षण ऐसा आता है, जब हम सुनते नहीं, देखते नहीं, हम तो हक्के-बक्के खड़े रहते हैं। और आवाजें भयानक धमाके के साथ जाने कहाँ से आती हैं और दिमाग पर छप जाती हैं। और हम देखते नहीं, लेकिन अनेक बिम्ब विचित्र ढंग से चारों ओर हमला करते हुए आते हैं और चेतना में विचित्र ढंग से गड्मड्म होने लगते हैं। हेलिकॉप्टर के धीमे पड़ते डैनों पर दूर-दूर तक फैले तिलहन के पीले फूल फूले खेत झण्डे की तरह चक्कर काटने लगते हैं, धूल और रक्त में सनी पाकिस्तानी मृत सैनिकों की जर्द खाकी वर्दियों में लहलुहान चेहरे टँक जाते हैं। दोनों ओर के घने हरे कुंजों के बीच से गुजरती खूबसूरत साफ पक्की सड़क पर पेड़ के नीचे मरी पड़ी बंगाली सिविलियन स्त्री की गहरी नीली साड़ी स्याही बनकर फैलती चली जाती है, उस स्याही में दानों की तरह तैरने लगती हैं वे फौजी ट्रकों, जीपों, स्टेशन वैगनों की कतारें, जिन पर चढ़कर पाकिस्तानी सेना हमला करने आयी थी और जवाबी हमले के कारण सड़क पर छोड़ कर मरती-खपती भाग गयी है। उभर आता है चित्र ब्रिगेडियर क्लेर का कुंज में से निकलकर छड़ी लिये धीरे-धीरे आना, और फिर विस्फोट के धमाके सब कँपा देते हैं और सिर हेलिकॉप्टर के डैनों की तरह घूमने लग जाता है।

ब्रिगेडियर जल्दी-जल्दी बताते हैं कि तीन रात पहले वे अपनी टुकड़ियों के साथ इन गाँवों में आकर छिप कर बैठ गये थे। कई बार पाक सेना ने अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग हमला किया, आत्मसमर्पण के लिए साफ मना किया और चुनौती दी। पाकिस्तानी कमाण्डर लेफ्टि. कर्नल राजा सुलतान महमूद इधर तो चुनौती देता रहा। लेकिन कल रात को एक बजे के आस-पास उसने, अपने सैनिकों को ट्रकों, जीपों पर लादा और भागने के लिए आखिरी हमला बोल दिया उसकी योजना थी कि हमारी टुकड़ियों को मारता हुआ वह ढाका चला जाये। इस योजना का पता किसी को नहीं

था। इस सड़क के दोनों ओर तीन कुंजों से घिरे गाँव थे, जिनमें हमारी सेना छिपकर बैठी थी। पाकिस्तानी कमाण्डर को अन्दाज नहीं था कि भारतीय सेना जमालपुर के इतने पास है। बलबीर सिंह और दो सैनिक रात को उठकर सड़क पर आये तो अँधेरे में पाकिस्तानियों को देखकर समझे कि हमारे ही सैनिक हैं। बात भी की उनसे। असलियत पता लगते ही भागकर पोजीशन ली और फिर गोलियाँ चलनी शुरू हो गयीं। पहली बौछार में हमारे कई सैनिक खेत रहे, लेकिन फिर हमने जवाबी हमला शुरू किया और यहीं उनका कारवाँ रोक लिया। एक बजे रात से सुबह चार बजे तक वे नयी-नयी कुमुक और टुकड़ियाँ लेकर हमला करते रहे, लेकिन हमारे बहादुर जवानों ने उनकी एक नहीं चलने दी। 200 के करीब हताहत हुए। कुछ को हमने पकड़ लिया। यह जो कीचड़ पुती खूबसूरत-सी सफेद स्टेशन वैगन है, उसी में कमाण्डर सुलतान महमूद था। सखा घायल होकर आसपास के किसी गाँव में छिप गया है। जमालपुर में अभी काफी पाकिस्तानी फौज है, लेकिन वे सफेद झण्डा दिखा रहे हैं। यहाँ ये घमाके हम सुन रहे हैं, और वहाँ उधर एक डेढ़ मील आगे धुआँ उठ रहा है। पाकिस्तानी पचीस-तीस ट्रकों पर हथियार और गोला-बारूद ला रहे थे अपने साथ। उन ट्रकों में आग लग गयी है और वे छह घण्टों से जल रही हैं। उनमें लदे गोले और ग्रेनेड फट रहे हैं। अपने आगे दो ट्रकों में उन्होंने अल-बदर और रजाकार भर रखे थे। उन्होंने और रजाकारों ने भागते-भागते इन बेकसूर सिविलियनों को मार डाला है !

अब इस अराजक दृश्य के असम्बद्ध टुकड़े जुड़ते हैं और तस्वीर कुछ साफ होती है। तो जमालपुर हमने ले लिया ! धीरे-धीरे ले रहे हैं। उनकी कुछ टुकड़ियाँ अभी सक्रिय हैं। शेष आत्मसमर्पण कर रही हैं।

चलो जमालपुर के अन्दर चलेंगे अब। जनरल नागरा और ब्रिगेडियर क्लेर तय करते हैं। साधन दो ही हैं, हेलिकॉप्टर या पैदल। लेकिन नहीं, दुश्मन की एक छोड़ी हुई जीप सड़क पर तिरछी खड़ी है। ड्राइवर चाभी छोड़कर भागा है, उस जीप को क्लेर स्टार्ट करके देखते हैं। चल सकती है। वे व्हील पर हैं। जनरल नागरा उनके बगल में। उनका इशारा पाकर हम कूद कर जीप में बैठ जाते हैं। बलबीर सिंह तथा एक और मेजर अपनी गनं दायें-बायें फायरिंग पोजीशन में साध लेते हैं और अब हम सड़क पर जमालपुर की ओर जा रहे हैं। सड़क खाली नहीं है। दुश्मन की जीपें और ट्रकों, जिनमें वे भरकर जा रहे थे, सड़क के बीचोबीच अपनी-अपनी जगह रुकी हैं—कुछ के टायर गोलियों से फट गये हैं, कुछ के शीशे चूर-चूर हैं। कुछ गोलियों की दुतर्फा बौछार में ड्राइवर से सघन पाने के कारण कच्ची पट्टी पर उतर गयी हैं। कुछ सड़क पर तिरछी हो गयी हैं। पाकिस्तानी कमाण्डर सुलतान महमूद की विशेष खूबसूरत सफेद स्टेशन वैगन खेत में उतर गयी है, उसके दरवाजे खुले पड़े हैं। जीपों और ट्रकों के बीच-बीच में वे भागते हुए, अपनी बन्दूकें, पैकेट और बूट छोड़ गये हैं और सड़क के दोनों ओर घास और खेतों की ओर देखने की तो हमारी हिम्मत नहीं होती। जीप सड़क पर बिखरे हथियारों पर से उछलती जा रही है।

युद्ध यात्राएँ : 247

धुआँ और धमाके नजदीक आ रहे हैं। और अब सामने है हथियारों का जलता हुआ कारवाँ। उसमें से बड़े-बड़े गोले फटकर हर ओर उड़ रहे हैं, जलते-धधकते हुए ! दो हमारी ओर भी आते हैं। शूड। हम जीप में बैठे-बैठे ही सर झुका लेते हैं, तो कोई कहता है, “घबराओ मत, जब उस दिन निशाना सधी फायरिंग में से बच आये, तो आज तो अनाथ बेनिशाना फूट रहे हैं।” लेकिन जीप रुक जाती है। दायीं ओर टेलिफोन के खम्भे टेढ़े पड़ गये हैं और लम्बे-लम्बे टेलिफोन के तार बीच से टूट-टूट कर सड़क पर बिखर गये हैं। एक पहिए में तार उलझ गया है।

जमालपुर शहर में जाने की यहाँ से यही एक सड़क है और उस पर ये फूटते हुए ज्वालामुखी। और जाना तो है ही अन्दर। क्या पैदल जायें ? लेकिन सड़क पर गिरी हुई पेटियाँ और बारूद सुलग रही हैं। बड़े-बड़े काँच टूटे पड़े हैं। और मोर्तार के गोले गिरे हैं और हैंड ग्रेनेड। सड़क पर उतरकर हम पैदल जायेंगे कहाँ ! और अब हम योद्धा ब्रिगेडियर क्लेर की ड्राइविंग का चमत्कार देखते हैं। एक झटके के साथ जीप बढ़ी है और साँप की तरह बल खाती हुई टेढ़ी-मेढ़ी उन जलती ट्रकों, बिखरे ग्रेनेडों, टूटे तारों, फूटते गोलों के बीच से बिजली की तेजी से बढ़ रही है। मुझे याद है, थोड़ी देर को तो मैंने आँखें बन्द कर ली थीं। बायीं ओर एक कच्ची सड़क रेल लाइन के पास से जाती है। वहाँ थोड़ी दूर किनारे पर जीप खड़ी कर ली गयी है। यहाँ कारवाँ के बीचोबीच तोपें लादकर ले जायी जा रही थीं। जनरल और क्लेर उतरकर सहज भाव से तोपों की जाँच-पड़ताल कर रहे हैं। कुछ छोटी-छोटी खूबसूरत अण्डाकार चीजें सड़क पर बिखरी पड़ी हैं। मैं कुतूहल से देखता हूँ कि ब्रिगेडियर की आवाज सुनाई पड़ती है, “अगर जीते जी उड़ना चाहो, तो उन्हें जरा पैर से ठोकर दो। तुरन्त उड़ जाओगे। वे ग्रेनेड हैं।” मैं चौंक कर पीछे हट आता हूँ। जीप फिर आगे बढ़ती है। उसी आग और धुएँ के बीच से और जब हम रेल की क्रासिंग के पास पहुँचते हैं, तो देखते हैं, सड़क के नाम का अंग्रेजी बोर्ड लगा है, ‘कायदे मिल्लत रोड’ और कुछ दूर पर एक वीरान सूखा पार्क है, ‘कायदे आजम जिन्ना पार्क’ !

इन तमाम बिखरी पाकिस्तानी और बंगाली सिविलियन लाशों, धधकते गोलोंवाली सड़क का नाम और हो ही क्या सकता था ?

लाइनक्रॉस पर अब हम शहर की मुख्य सड़क पर प्रवेश करते हैं। सड़क बिल्कुल खाली। दोनों ओर के घर, दुकानें बन्द। खिड़कियाँ दरवाजे बन्द। एक अजीब-सी दहशत होती है। दुकानें खाली होतीं, तो शायद ऐसा न लगता, लेकिन अब हर कदम पर यह लगता है कि पता नहीं किस बन्द मकान में कौन छिपा हो। किस दुकान के तख्ते के पीछे से कौन बन्दूक की नली झाँक रही हो। कुछ देर पहले एक इमारत देखी थी, जहाँ पाकिस्तानी छिपे थे और आत्मसमर्पण करने के पहले उन्होंने काफी देर तक गोलियाँ चलायी थीं। स्कूल की सूनी इमारत, क्लास रूमों में हथियार भरे थे और बरामदों में बुलेट की पेटियों के थक्के के थक्के। बरामदे में एक मृत पाकिस्तानी

सिपाही पड़ा था, उस वरामदे का भयावना सूनापन जैसे पूरी सड़क पर छाया हुआ है। सड़क किनारे एक दूसरे वरामदे में दो व्यक्ति खड़े हैं। हमें सलाम करते हैं। एक नाटा आदमी सफेद कमीज और चारखाने की लुंगी में मुझे पास बुलाता है। कहता है कि चार पाकिस्तानी सिपाही इस सड़क पर घूम रहे थे। उन्होंने दो व्यक्तियों को इसी सड़क पर गोली मार दी। अब किसी दुकान के पीछे कहीं छिपे हैं। उन दो व्यक्तियों के शव इसी घर में पड़े हैं। उनमें से एक इसका ममेरा भाई है। जीप रुकी है। मैं दौड़कर आगेवालों को बताता हूँ। जवाब मिला—“कोई चिन्ता नहीं, अगर छिपे हैं, तो थोड़ी देर में पकड़ लिये जायेंगे !” (शाम को किसी ने भगोड़े अत्याचारी सिपाहियों की मनोवृत्ति बतायी कि वे भागते समय निहत्थों पर जुलूम करते हैं, लेकिन बाद में उनका अत्याचार उनके मन को खुद इतना भयभीत करता है कि वे इन्तजार करते हैं कि कब कोई उनसे हथियार रखवाकर उन्हें राहत दे !) अभी भी सड़कें सूनी हैं। इक्के-दुक्के लोग गलियों से झाँक रहे हैं।

सहसा यह तय होता है कि सबसे पहले ब्रह्मपुत्र के उस घाट पर चला जाये, जहाँ से हम पर फायरिंग की जा रही थी। और एकदम से वह घटना हमारे दिमागों में घूम जाती है। उस दिन यहाँ सब जगह पाकिस्तानी सैनिक सक्रिय रहे होंगे। शायद इसी सड़क पर से उस जीप पर लादकर रिकॉयललेस गन ले जायी गयी होगी। हाँ, यहीं से दायें मुड़कर वह घाट आता है।

यह रहा बिजलीघर और यह है बिजलीघर के बगलवाली ऊँची लाल इमारत, जिसे हमने दूरबीन से साफ देखा था। और यहाँ से इमारतों का सिलसिला खत्म और अब यह सड़क नीचे ब्रह्मपुत्र के किनारे उतर रही है। अरे, यही सड़क तो देखी हमने उस पार से ! हाँ, वह देखिए, घाट पर वह सिविलियन बस भी पंक्चर हुई खड़ी है, जिसके पीछे जीप को बैक करके वे लाये थे और फायरिंग शुरू की थी। हम ब्रह्मपुत्र के घाट पर जाते हैं। कुछ नावें खड़ी हैं। मैं सोचता हूँ, यही ब्रह्मपुत्र हमारी विजय का जलद्वार है। कितना खतरा झेला है, हमारी सेनाओं ने इसी जल पर सेतु-बन्धन के लिए ! मैं नीचे बालू पर उतरकर किनारे जाकर थोड़ा-सा पानी हाथ में लेकर मुँह पर छींटे देता हूँ। कुछ छींटे सर पर। कृतज्ञता व्यक्त कर रहा हूँ या गंगा-तटवासी होने के नाते आदत है, कह नहीं सकता। इतना जानता हूँ कि उस वक्त मन-ही-मन आशीर्वाद माँग रहा हूँ कि जैसे आज यह शान्ति, सचाई और स्वतन्त्रता की विजय की नदी यहाँ है—जमालपुर में, वैसी ही अपने उद्गम हिमालय से (गंगा से संयुक्त होकर) समुद्रपर्यन्त बनी रहे, भविष्य में भी।

अब हम सब ब्रह्मपुत्र तट पर फायरिंग के प्वाइण्ट से खड़े होकर उस किनारे का वह स्थल देख रहे हैं, जहाँ हमने आश्रय लिया था। साफ, बिना दूरबीन के दीख रहा है सब। वह कांक्रिट की टूटी जेटी, वे गड़े हुए बाँस, वे बालू पार के खेत, खेतों के पार का वह गाँव। कितना साफ देख रहा होगा दुश्मन हमें !

कहीं से गोलियों की आवाज आती है और फिर शोर। हम चौकन्ने होते हैं।

शोर धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है और निकट आ रहा है। सड़क पर दूर कुछ भागते हुए लोगों की झलक। और फिर ध्यान से देखा, लोग भागते हुए इधर आ रहे हैं। अरे, यह तो बाँगलादेश का ध्वज है। वे 'जय बाँगला' के नारे लगा रहे हैं। और अब आसपास के घरों की खिड़कियाँ खुलने लगी हैं। पीछे-पीछे दो-तीन युवक उछल-उछल कर बाँगला में घोषित कर रहे हैं कि पाकिस्तानियों ने आत्मसमर्पण कर दिया। जमालपुर स्वाधीन है, जय बाँगला ! घरों के दरवाजे भी खुलने लगे हैं और लोग निकल-निकलकर जुलूस में शामिल हो रहे हैं। वे दौड़ते हुए आते हैं और ब्रिगेडियर को बधाइयाँ देते हैं। मूर्च्छित जमालपुर सहसा जाग उठता है।

हम ब्रह्मपुत्र तट से लौटते हैं। अब सड़कों पर लोग निकल आये हैं। देखते-देखते कुछ चाय की दुकानों के तख्ते हट गये हैं और अंगीठी में कोयले सुलगाये जाने लगे हैं। हमें अजीब कुतूहल है कि पकड़े गये पाकिस्तानियों में से उनसे मिलें, जिन्होंने उस दिन हम पर फायरिंग की थी। रास्ते में पाकिस्तानी सिपाहियों की टुकड़ियाँ सफेद झण्डे लेकर दोनों हाथ उठाये निरस्त्र हमारे सैनिकों के पहरों में पी.टी. इन्स्टीट्यूट की ओर जा रही हैं। वहीं जनरल नागरा पूरी सैनिक विधि से समर्पण स्वीकार करेंगे। इन्स्टीट्यूट में ही पाकिस्तानियों का सैनिक हेडक्वार्टर था। अफसरों का विलास कक्ष भी।

छोटी-सी, दो तल्लों की, खूबसूरत इमारत, लेकिन आसपास बहुत बड़ा अहाता। उसी में बैरकें बनी हुई हैं। और यहाँ विध्वंस का पूरा दृश्य है। न केवल चारदीवारी जगह-जगह से टूट गयी है, बल्कि गेट के पास हमारी बमबारी से बहुत बड़ा क्रेटर बन गया है और मनों मिट्टी उछलकर चारों ओर टीले की तरह जम गयी है। इमारत की एक-एक खिड़की दरवाजा चूर-चूर हुआ पड़ा है। यहाँ तक कि अन्दर के सोफे, पलंग और आर्इने भी टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। बैरकों में कई जगह छत टूट गयी है। और अब हमें खयाल आता है कि पूरा शहर हम घूम आये, किसी सिविलियन इमारत पर खरोंच तक नहीं है। एक-एक दिन में इतनी बार बम बरसाने पर भी हमारे बहादुर बमवर्षकों का निशाना इतना अचूक था कि सिवा उस मिलिटरी हेडक्वार्टर के कहीं धब्बा भी नहीं था। इस इमारत के अहाते में न आकर पूरा शहर घूम आइए, आपको मालूम ही नहीं होगा कि यहाँ बमवर्षा हो चुकी है।

हेडक्वार्टर की इमारत का दृश्य अजीब था। चूर-चूर शीशा, फर्नीचर के टुकड़े, उखड़ा पलस्तर, दीवारों का मलबा—नीचे बरामदे में, कमरे में, छज्जे पर, फर्श के एक-एक इंच पर बिखरे हुए हैं। एक खूबसूरत लाल कालीन आधा लपेटा हुआ पड़ा है, कुर्सियों का बेंत कट गया है, गद्दे उधड़ गये हैं, ढाँचे पड़े हैं। एक कमरे में कोने की मेज पर फौजी फाइलें तितर-बितर पड़ी हैं, एक खुला हुआ पेन नीचे गिर गया है। अलमारियों के दरवाजे, अटैचियों के ढक्कन खुले पड़े हैं। मानो हड़बड़ी में भागते हुए ज्यों-का-त्यों छूट गया है। छज्जे पर एक बाँस में बँधी हुई एक फटी सफेद चादर झण्डे की तरह लहरा रही है। नीचे बरामदे के फर्श पर, सीढ़ियों पर, कच्ची जमीन पर,

कम्बलों पर, पाकिस्तानी घायल पड़े हैं और उन्हीं की बगल में घायल बंगाली। कैप्टन (डॉ.) त्रिपाठी अपने सहकारियों के साथ मौजूद हैं। इस वक्त उनके हाथ में दवा का बक्सा और कन्धे पर राइफल है। वे दौड़-दौड़कर जखम साफ कर रहे हैं, पट्टी बाँध रहे हैं, पाकिस्तानी घायलों के भी बंगाली सिविलियनों के भी। एक पाकिस्तानी घायल उठा कर लाया जाता है। एक दुकान के तख्ते के नीचे पड़ा था। कैप्टन त्रिपाठी दौड़कर उसकी जाँच करते हैं। पास खड़ा एक सहायक उनको दवाएँ और पट्टियाँ देता है, फिर एक गहरी साँस लेकर कहता है—“ये सब धरम उनको नहीं आता, जानते हैं साहब, सुबह हमारे दो जवान मरे नहीं थे, घायल हो गये थे। पाकिस्तानी भागते-भागते रुके। उन दोनों को संगीनों भोंक-भोंक कर मार डाला। अब देखिए, कैसे मुसट्री मार कर बैठे हैं।”

मैं देखता हूँ। धूप में जमीन पर सैकड़ों की तादाद में वे बैठे थे। वे, जिन्होंने गाँव जलाये थे, बलात्कार किये थे, इसी इन्स्टीट्यूट में हत्याएँ की थीं। कुछ सर झुकाये थे, कुछ कुतूहल से हमारी ओर देख रहे थे, कुछ डरे हुए—से उन बंगाली नागरिकों की ओर, जो अब घर से निकल आये थे और चारदीवारी के पास इकट्ठे हो रहे थे। उनका अफसर यहाँ था एक लम्बा, दुबला, कमउम्र लेफ्टिनेण्ट जैदी। आत्मसमर्पण की रस्म शुरू हुई। वे सब खड़े हो गये। जैदी अभी भी काफी धृष्टता और अशिष्टता से घूम रहा था। जनरल नागरा ने उससे कुछ पूछा, उसने मुँह फेर कर अपने किसी सिपाही से बात करनी शुरू की। मैंने पहली बार जनरल के सौम्य चेहरे पर गुस्सा देखा—“मैं तुमसे बात कर रहा हूँ। तुम्हें सीनियरों के सामने खड़ा होना नहीं आता? अटेंशन खड़े हो।” जैदी घूमकर अटेंशन खड़ा हो गया, लेकिन अविनय का भाव ज्यों-का-त्यों ! हमारी सेना के सीनियर आफिसर ले. कर्नल के. ले. एस. ब्रार ने जनरल नागरा को सैल्यूट किया और निवेदन किया कि 31 बलूच रेजिमेण्ट ने युद्ध में हमसे शिकस्त पायी है और वे सैनिक और अफसर सब आत्मसमर्पण करना चाहते हैं। जनरल नागरा ने स्वीकार किया। उनके हथियार उतरवाये और अपने संक्षिप्त भाषण में उन्हें आश्वासन दिया कि यदि वे अनुशासन मानेंगे, तो उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जायेगा। जेनेवा कन्वेंशन के अनुसार। किन्तु यदि वे कोई शरारत करेंगे तो भारतीय सेना को कड़ाई का व्यवहार भी आता है। भारतीय सेना उनके घायलों की चिकित्सा का इन्तजाम कर रही है और उनके आराम का खयाल रखेगी। उन्होंने हथियार रख दिये हैं और हथियारहीन दुश्मन से हम दुश्मन का-सा व्यवहार नहीं करते। उनको खाने-रहने की कोई तकलीफ नहीं होगी।

कैदियों में अजब-अजब मूर्तियाँ थीं। बड़ी मूँछों वाले, ढीले सलवार पहने अजीब कठोर चेहरे। लेकिन एक बहुत मोटे कैदी महोदय इस आश्वासन, खास तौर से खानेवाले आश्वासन पर इतने पुलकित हुए कि ताली बजाने लगे। जैदी ने डाँटा—‘नो क्लैपिंग’, तो इतने सहम गये कि ताली बजाने की मुद्रा में ही हाथ जहाँ का तहाँ जम गया। थोड़ी देर के बाद एक दूसरा अफसर, जो भाग गया था गिरफ्तार करके

लाया जाता है। अघेड़ पख्तून, मेजर फज्ले अकबर। जैदी की अपेक्षा अकबर ज्यादा अनुशासित लगता है। वह विभाजन पूर्व देहरादून की मिलिट्री एकेडेमी का पढ़ा हुआ है। भारतीय सेना के जो अफसर देहरादून एकेडेमी के हैं उनसे स्कूली दिनों की बात करता है। जैदी के व्यवहार के बारे में एक टिप्पणी यह है कि पाकिस्तान की विभाजनोत्तर पीढ़ी को भारत के प्रति घृणा पर ही पाला गया है, अतः उनमें भयानक असहिष्णुता है। अपने प्रति किये गये सहज मानवीय व्यवहार को वे सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझ पाते।

कुछ सुबह से अप्रत्याशित दृश्यों के बीच से गुजरने का बोझ, कुछ सुबह से सिर्फ एक प्याला चाय, कुछ खड़े-खड़े अब हम काफी थकान महसूस करने लगे हैं। लेकिन बैठें कहाँ ? उसी ध्वस्त इमारत के एक कमरे में टूटे शीशे और मलबे के ढेर के बीच एक कोने में दो सोफे खींच कर लाते हैं, कुछ अघट्टी कुर्सियाँ, और उन पर बैठकर राहत की साँस लेते हैं। जैदी भी उधर लाया जाता है और हमारे पास बैठा दिया जाता है। अब पराजय और आत्मसमर्पण का यथार्थ जैसे वह समझ रहा है। हम उससे बातें करने लगते हैं। मालूम होता है कि वह लाहौर का है। हमारा एक अफसर उससे पूछता है कि ब्रिगेडियर क्तेर ने सन्देश भेजा था कि व्यर्थ खून बहाने से क्या लाभ, चिड़ी भी भिजवायी थी, फिर उनके कमाण्डर ने व्यर्थ इतना खून-खराबा क्यों किया ? वह बताता है कि “कमाण्डर को उम्मीद नहीं थी कि भारतीय सेना जमालपुर के इतने नजदीक आकर पीछे चुपचाप बैठ गयी है। हाँ, आत्मसमर्पण करने के लिए जो चिड़ी आयी थी, उसे हमने जरूर मजाक में लिया। लेकिन सुलतान महमूद ने किसी को भी नहीं बताया था कि वे भागने का इन्तजाम कर रहे हैं। उन्होंने अपनी सफेद स्टेशन वैगन में बहुत-सा सामान चुपचाप भरवाया था। रात को साढ़े ग्यारह बजे अकस्मात हुक्म मिला कि जैसी हालत में हो वैसी ही हालत में ट्रकों और जीपों पर लद जाओ। जैदी बीमार था। उसको पहले से घायल पाक सिपाहियों के साथ रखा हुआ था। जाते समय उनको खबर भी नहीं दी गयी न कोई आदेश। जिन टुकड़ियों से सम्पर्क नहीं हो पाया, उनको भी सुबह तक नहीं मालूम था कि वास्तविक हालत क्या है !”

और अब फायरिंग की बात चलती है। तीन दिन पहले 8 तारीख को दिन में दस-साढ़े दस बजे उस किनारे पर हम लोगों पर फायरिंग किसने की थी जैदी पहले चुप रह जाता है, लेकिन फिर धीरे-धीरे विस्तार में बताता है कि उन्होंने जनरल को हेलिकॉप्टर से उतरते देखा था। यहाँ तक कि उनकी जीप पर लाल तिकोनी झण्डी देख कर वे समझ गये थे कि यह जनरल की जीप है। हमारी गतिविधियों को एक आब्जर्वेशन पोस्ट से देखकर सुलतान महमूद को सारी रिपोर्ट दी जा रही थी। लेकिन फायरिंग एक कम उम्र कप्तान ने की। कौन था वह ? अब जैदी चुप हो जाता है। लेकिन थोड़ी देर में वह उस रिकॉयल्लेसगन और मोर्टार की पूरी तफसील बताता है, वह कितने इंच की थी, कहाँ से लायी गयी, मोर्टार कहाँ से छोड़े जा रहे थे !

हमें लगता है कि वह कबूल नहीं कर रहा (शायद भयवश) उसे यह भी मालूम है कि वह रिकॉयललेस गन जमालपुर में ही कहीं जीप पर लदी पड़ी है। थोड़ी देर बाद कोई आकर बताता है कि सड़क पर वह जीप पर लदी रिकॉयललेस पड़ी है। जीप के टायर फट गये हैं। उसे उठवा कर यहीं लाया जायेगा, पर सफेद झण्डे को पीछे हटा कर आगे बाँगलादेश का ध्वज फहरा दिया गया है। मुक्तिवाहिनी के स्थानीय कैप्टन काजी जैनुल आबदीन झण्डा फहराते हैं और मुक्तिवाहिनी के साथ सैनिक कतार में खड़े होकर 'आमार सोनार बांगला' गा रहे हैं, अहाते में पाकिस्तानी युद्धबन्दी, कब्जे में किये गये अस्त्र-शस्त्र, टूटी दीवारों के मलबे, 31-बलूच रेजीमेण्ट के कागज-पत्तर बिखरे पड़े हैं। उन पर गूँजता हुआ 'आमार सोनार बाँगला' का स्वर कैसा लग रहा है ! पाकिस्तानी युद्ध और अत्याचार की कितनी पीड़ा उसमें घुली हुई है और भारतीय सैनिकों की वीरतापूर्ण शहादत !

एक नाटा-सा हँसमुख अघेड़ मुक्तिसैनिक, घुटनों तक लुंगी दोहरी लपेट सर पर लोहे का जालीदार टोप लगाये आता है। "हलो मुंशी", क्लेर पुकारते हैं। वह हँसता हुआ आधा उछलता हुआ आता है। जनरल और क्लेर उससे बड़े स्नेह से हाथ मिलाने हैं और हँस-हँस कर बातें कर रहे हैं। कौन है ये मुंशी साहब इस कदर महत्त्वपूर्ण ? मैं अपनी नोटबुक लेकर उनके पास जाता हूँ, तो बड़े प्रेम से हाथ मिलाने हैं और बाकी कुछ और बताने के बजाय अपना पूरा पता, जिला, गाँव, डाकखाना सब लिखा देते हैं और पूरा नाम—"मोहम्मद जहरूल हक और सुनिए साथ में 'मुंशी' जरूर लिखिएगा !" और उछलते हुए मेजर महेन्द्र से हाथ मिलाने चले जाते हैं।

बलबीर सिंह जीप लेकर वहाँ जा रहे हैं, जहाँ हमारा हेलिकॉप्टर खड़ा है। "11 बज गये हैं, यहाँ तो कुछ नहीं है। कम से कम शेरपुर में जाकर आप लोग कुछ खा-पी तो लीजिए।" हम वहाँ पहुँचते हैं। सड़क के इर्द-गिर्द अभी भी उसी दृश्य के अवशेष हैं। हेलिकॉप्टर तैयार है, पर वर्मा बताते हैं कि अभी तो घायलों को लाद कर शेरपुर ले जा रहे हैं। आधे घण्टे में लौट कर आयेँगे तब दूसरी ट्रिप में ले जायेंगे। यहाँ आते-आते गला बुरी तरह सूखने लगता है। अबू यूसुफ दीखते हैं। हम उनसे पूछते हैं कि गाँव में कहीं पानी पीने को मिल सकेगा ? इसी दायीं ओर वाले गाँव में भारतीय सेना की टुकड़ी ने छावनी डाली है, उनके पास पानी होगा। अब अबू यूसुफ बताते हैं कि किस प्रकार तीन दिन तक मुक्तिवाहिनी तथा आसपास के गाँववाले छिपा कर इनको पानी और रसद पहुँचाते रहे। हम जाकर छाँह में अपने सैनिकों के बीच बैठते हैं। पानी माँगने पर वे चाय बनाने का आदेश देते हैं और कुछ सूखी पूड़ियाँ, तीन दिन पहले की। भाजी खत्म है। रूखी पूड़ियाँ चाय के साथ क्या मजा देती हैं उस समय ! एकाध पर अचार का मसाला लगा रह गया है, उनके जायके का तो जवाब नहीं !

हेलिकॉप्टर पर भारतीय सेना के घायल जवान लाद दिये गये हैं। उनके साथी सैनिक उन्हें विदा देने हेलिकॉप्टर के इर्द-गिर्द जमा हैं। नारा लगता है—"बोलो छत्रपति

शिवाजी महाराज की जय !” अरे, यह हमारे महाराष्ट्र का नारा यहाँ कैसे ! मालूम होता है कि हम जिस कम्पनी में बैठे हैं, वह मराठा लाइट इन्फैंट्री है, और जो आस-पास बैठे हैं वे सभी पूना, सतारा, बम्बई के हैं। सचमुच यह आश्चर्य का दिन है एक गहरा सुखद आश्चर्य और अपने महाराष्ट्र की पलटन ने यह लड़ाई जीती है। आसपास के लोग यह जानकर कि हम ‘धर्मयुग’ के हैं, बेहद खातिर करते हैं—हम उनके घर के लोग हैं। वे अब सब काम छोड़कर जल्दी-जल्दी चिट्ठियाँ लिखते हैं कि हम बम्बई लौटकर इन्हें पहुँचा दें। पूना, सतारा, नासिक की चिट्ठियाँ तो डाक में छोड़ देंगे, लेकिन चेम्बूर और सायन की चिट्ठियाँ तो खुद जाकर दें—और लीजिए, कौन विश्वास करेगा कि बगल में बैठे साँवले चश्मा लगाये कैप्टन नम्बियार मेरे ही मुहल्ले के हैं, बान्द्रा पूर्व। इन दिनों ब्लैक आउट की चाँदनी में बम्बई कितना सुन्दर लगता होगा !

थोड़ी देर में लेफ्टि. कर्नल. के. एस. ब्रार आते हैं। चुस्त, अनुशासनप्रिय और अनुभवी। बिछे हुए पुआल पर हमारे साथ बैठ जाते हैं और युद्ध का विवरण हमें विस्तार में लिखवाते हैं :

“पाँच दिसंबर को सुबह बख्शीगंज पर हमने कब्जा किया। उसके बाद मराठा लाइट इन्फैंट्री की फर्स्ट बटालियन आगे बढ़ी। उसके साथ माउण्टेन बैटरी तथा 852 बैटरी भी थी। सारी पलटन मुख्य सड़क छोड़कर गाँवों और खेतों के रास्ते पैदल गयी, कहीं-कहीं बैलगाड़ी पर, 5 दिसम्बर की आधी रात ब्रह्मपुत्र पार कर हम जमालपुर की पाक फौजों के भी पीछे आकर बैठ गये। हमारे दो उद्देश्य थे, एक तो शत्रु का सम्बन्ध ढाका और टंगाइल की शत्रु छावनियों से काट देना और दूसरे उस पर पीछे से दबाव डालना।

“घेरे के दिनों में 7 तारीख, 8 तारीख और 9 तारीख को शत्रु से दो बार झड़प हुई और उसे हमने काफी नुकसान पहुँचाया। वास्तव में हम इस तरह छिपे थे और गाँवों के निवासी हमें इतना सहयोग दे रहे थे कि शत्रु को कभी अन्दाज ही नहीं लग पाया कि हम संख्या में कितने हैं।

“नौ तारीख की रात को शत्रु की सैनिक टुकड़ियाँ कई दिशाओं से जमालपुर से आयीं और इस क्षेत्र में घूमती रहीं, उनका उद्देश्य था कि हम उन पर फायर करें, तो उन्हें हमारी पोजीशन का पता लग जाये। लेकिन हम चुपचाप रहे। एक दिन पहले हम चुपचाप जमालपुर के पास तक जाकर उनके बंकरों तक को देख आये थे।

“तीन घण्टे की चुप्पी के बाद शत्रु ने तीन दिशाओं से हम पर हमला बोल दिया। पूरब से, पश्चिम से और उत्तर से, हमले में वे चीनियों की ‘ह्यूमन वेव टेकनीक’ का इस्तेमाल कर रहे थे। यानी लहर पर लहर, एक के बाद एक। हर लहर में 100 के करीब फौजी होते थे और एक के बाद एक पाँच लहरों में उन्होंने चढ़ाई की। भारी आर्टोमैटिक फायर तो कर ही रहे थे, भारी मोर्टार तोपें भी उन्होंने लगा दी थीं। लेकिन हर आक्रमण का जब हमने जवाब दिया, तो उनको भारी नुकसान उठाना पड़ा। कभी-कभी वे चिल्ला कर हमला करते थे, लेकिन दो बार चुपचाप सीधे बटालियन के

एफ. डी. एल. में आ गये। लेकिन हमारी बिल्कुल ठीक निशानेबाजी और दृढ़ निश्चय के आगे वे बेकाम सिद्ध हुए। हम अपनी-अपनी पोजीशन पर तब तक जमे रहे, जब तक हमने शत्रु के हमलों को नाकाम नहीं कर दिया।

“उसका आखिरी हमला आज 11 दिसम्बर को सुबह 4 बजे हुआ। इस ऐक्शन ने जीपों और ट्रकों पर चढ़ कर हमारी मोर्चेबन्दी को पार करना चाहा, लेकिन हमने उनको घेर लिया। उनके 60 अफसर और सिपाही उसी समय जिन्दा पकड़ लिये। बाकी और 200 ने हथियार रख दिये।

“आज के ऐक्शन में दुश्मन के 100 से अधिक लोग मारे गये। 40 सख्त घायल हुए और 350 के लगभग युद्धबन्दी बनाये गये। इस समय पाकिस्तान की 31 बलूच-रेजिमेंट का आज नाम निशान नहीं रहा। भारतीय सेना के 9 जवान शहीद हुए और 6 घायल, जिनमें एक अफसर भी है और एक जे. सी.।

“शस्त्रास्त्र, जो पकड़े गये उनकी गिनती अभी हो रही है। मोटे तौर पर छह पाउण्डन ऐण्टी टैंक तोपें—आधी दर्जन, एक सौ छह मि. ऐण्टी टैंक रिकॉयललेस गनें—आठ, और एक सौ इक्कीस मि. मोर्टार तोपें—तीन, पकड़ी गयी हैं, राइफलों और गोला-बारूद और जीपों की तो गिनती करना कठिन है।”

लेफ्ट. कर्नल ने पूरा विवरण समाप्त भी नहीं किया था कि फिर नारा लगा—‘छत्रपति शिवाजी महाराज की जय ! और उसके साथ ही गाँववालों का ‘जय बाँगला ! मालूम हुआ कि हमारी बहादुर जंगी पल्टन (मराठा लाइट इन्फैंट्री) जीत के बाद ठहरना नहीं चाहती। वह अब ढाका के रास्ते में मधुपुर और टंगाइल की ओर रवाना होने को तैयार है। मधुपुर के बाद टंगाइल। टंगाइल के बाद जयदेवपुर और फिर ढाका। तो आखिरकार ढाका के उत्तरी मोर्चे का रक्षाद्वार टूट ही गया।

हेलिकॉप्टर घायलों को शेरपुर पहुँचा कर वापस आ गया था और एम. एम. सिंह हमें बुलाने आ गये थे। लेकिन पहले हम ब्रिगेडियर क्लेर के पास जाते हैं। उनको व्यक्तिगत रूप से बधाई तो हमने अभी तक दी ही नहीं। सड़क पार सामनेवाले बाँस के एक झुरमुट में एक छोटी-सी झोंपड़ी में ब्रिगेडियर क्लेर का डेरा है। एक तख्त पर उनका बिस्तरा और बाँस के सहारे टँगे हुए कपड़े। दो बाल्टियों में गरम पानी मँगवाया है और अब नहाने जा रहे हैं। हँस कर स्वागत करते हैं—“मैंने साढ़े छह बजे ही वायरलेस पर कहलवाया था कि तुम लोगों को तुरन्त भेजें। आज तुम्हारे लिए कुछ मसाला मिलेगा। उम्मीद है कि मैंने निराश नहीं किया तुम लोगों को। बट इज वाज ए टफ फाइट।”

फिर वे इस मुठभेड़ के कुछ दिलचस्प पहलू बताते हैं :

“रात एक बजे पहली गोली चली और मेरे ट्रान्जिस्टर को भेदती निकल गयी। मैं तुरन्त उठा कि तब तक गोलियों की बौछार, अँधेरे में कुछ अन्दाज नहीं और बाँस की इस झोंपड़ी में कोई बचाव नहीं। यह देखो मेरी जर्किन। इसमें से होकर पाँच-छह गोलियाँ निकल गयीं, लेकिन बस ईश्वर की कृपा है कि मुझे कभी नहीं लगी। हाँ, एक

चीज और बच गई। मेरी स्कॉच। ट्रान्जिस्टर के पास ही रखी थी, लेकिन ज्यों की त्यों बच गयी।”

फिर थोड़ा गम्भीर होकर बताते हैं—“दुश्मन के काफी लोग मारे गये। ये सब बच सकते थे, लेकिन इनके अफसर ने इन्हें मरवा दिया। खुद भाग निकलने का कार्यक्रम बना रहा था और उन्हें खबर भी नहीं दी। मैंने पत्र भेजा कि आत्मसमर्पण कर दो व्यर्थ में सैनिकों की जान गँवाने से क्या लाभ, तो उसने चुनौती भरी चिट्ठी भेजी और साथ में लिफाफे में रख कर एक बुलेट। वह चिट्ठी देखोगे ?”

और वे लाकर वह चिट्ठी दिखाते हैं। अब मालूम होती है वह दिलचस्प घटना, कैसे चिट्ठी गयी और कौन जवाब लाया ? “तुम्हें याद है अभी वह ‘मुंशी’ मिला था मुक्तिवाहिनी का। बड़ा पक्का है। जितना बहादुर है उतना ही मसखरा भी !” और अब मुंशी साहब के कारनामे सुनिए। ब्रिगेडियर क्लेर की चिट्ठी जेब में रख कर उन्होंने अपने हाथ बँधवाये और जमालपुर के रेलवे क्रॉसिंग के पास जाकर लगे जोर-जोर से रोने-चीखने। हर साँस में मुक्तिवाहिनी को धारोधार गालियाँ—बंगाली-उर्दू दोनों भाषाओं में, पाकिस्तानी सैनिकों ने आकर इन्हें पकड़ा, तो बताया कि “मैं साइकल पर आ रहा था। पीछे मेरी गठरी बँधी थी। सड़क के दोनों ओर से उछल कर मुक्तिवाहिनीवालों ने पकड़ लिया। मेरी गठरी छीन ली, साइकल रख ली और मुझें बाँध कर यह खत दे कर मुझे बन्दूक से डरा-धमका कर यहाँ छोड़ गये। कहा कि इस चिट्ठी का जवाब लाओगे तो साइकल वापस दे देंगे। मर गये साहब। गरीब आदमी हम, मुक्तिवाहिनी को शैतान ले जाये ! उनकी बन्दूकों में कीड़े पड़ें।” सिपाहियों ने दो-एक घूँसे-लात आश्वासन के रूप में और दिये और इनकी आँख में पट्टी बाँध कर लेफ्टि. कर्नल राजा सुलतान महमूद के पास ले गये। उसने चिट्ठी पढ़ी, पहले संजीदा हुआ और फिर उसने दूसरे अफसरों को बुलाया और चिट्ठी पढ़-पढ़ कर फक्तियाँ कसता रहा। फिर इनका कुछ और लात-घूँसों से सत्कार हुआ और इनसे पूछा गया कि क्या तुम भी मुक्तिवाहिनी के हो, यहाँ और कौन-कौन हैं ! ‘मुंशी’ बार-बार सलाम बजा कर कमाण्डर राजा जनाब सुलतान महमूद बहादुर साहब की खिदमत में अपनी साइकल वापस दिलाने की अर्जी पेश करते रहे। अन्त में उसने खत का जवाब लिखा, लिफाफे में एक बुलेट रख कर इनसे कहा—“इण्डियन कमाण्डर से कहना, लड़ाई के मैदान में मुलाकात होगी !” और इन्हें विदा के समय एक प्याला चाय और धक्के दे कर बाहर कर दिया गया। आधे घण्टे में उछलते हुए ‘मुंशी’ राइफल से लैस अपने मुकाम पर प्रकट हो गये ! क्लेर उसके नाटक की याद कर हँस पड़ते हैं।

हेलिकॉप्टर तैयार है। लेकिन उसमें संगीन घायल भरे हुए हैं। फर्श पर, सीटों पर हम उन्हीं के बीच में किसी तरह खड़े हो जाते हैं। ज्यादातर पाकिस्तानी घायल हैं। दो बंगाली सिविलियन। एक बंगाली अधेड़ किसान रह-रह कर कराह रहा है—“अल्लाह ! अल्लाह ! उसे जिस पाकिस्तानी ने गोली मारी थी, क्या वह भी इन्हीं घायलों में है ! युद्ध भी कैसे विचित्र संयोग पेश करता है। घायल के रूप में दोनों

मरहमपट्टी के हकदार हैं, लेकिन चिकित्सा के बाद निहत्थों की हत्या करनेवाले क्या युद्ध-अपराधी के रूप में दण्ड पाने के हकदार नहीं ?

हम शेरपुर पहुँच रहे हैं। ब्रह्मपुत्र कितनी शान्त लग रही है। ओह आज तो नावें चल रही हैं। किनारे पर मेला जैसा लग रहा है। मोर्चे पर फतह से हमारा मन भी हल्का हो आया है। तीन दिन से किस कदर चिन्ता थी। पीले फूल भरे खेत इस समय कितने उल्लास भरे लग रहे हैं, जैसे वसन्त आ गया हो। “वीरों का कैसा हो वसन्त !” शायद ऐसा ही। सोनार बाँगला अपने पूरे सुनहरे जादू के साथ जाड़े की धूप में खिला हुआ है। लेकिन इन खेतों की मिट्टी अनन्त काल तक न भूल पायेगी कि इसमें बहादुर भारतीय सैनिक शहीदों का रक्त मिला हुआ है, वे जिन्होंने स्वतन्त्रता, मानवता और बन्धुत्व के मूल्यों की रक्षा के लिए अपनी जानें न्योछावर कर दीं, जिन्होंने शीतल हिम-इस्पाती मृत्यु झेली ताकि सोनार बाँगला में वसन्त आये और पीले फूल जाड़े की धूप में खिलें।

जमालपुर और तदुपरान्त

“अच्छा, आप सुलतान महमूद को जानते थे, यानी दोस्ती के स्तर तक ? कैसा था वह आदमी ?” मैंने पूछा और पूरी तल्लीनता से जवाब का इन्तजार करने लगा, धड़कते दिल से।

वह मुझे अच्छी तरह से याद है। जिन्दगी में कभी-कभी हालाँकि बहुत ऐसे क्षण आते हैं जब अकस्मात आपके सामने अपने ही मन का कोई आयाम सहसा नुमायाँ हो उठता है। आपको अचरज होता है कि अरे, सचमुच आप इसी भावना को तो इतने दिनों से जी रहे थे लेकिन आज तक उसे समझ नहीं पा रहे थे। प्यार के बारे में तो अमूमन ऐसा होता है, लेकिन घृणा के बारे में भी ऐसा होता है, कि उसके अनेक आयाम होते हैं, यह कभी किसी लेखक ने क्यों नहीं लिखा ? किसी ने यह क्यों नहीं लिखा कि परम घृणा भी हमें कहीं अपनी घृणा के लक्ष्य से बड़े रहस्यमय ढंग से जोड़ जाती है, वह जुड़ना प्यार के जुड़ने से अलग किस्म का हो, पर होता जरूर है।

लेकिन उस जुड़ने का आधार क्या होता है ? केवल कुतूहल ? केवल अपने शत्रु को और और जानने की उत्सुकता ? या केवल उसे ध्वस्त करने का आवेश ? आज सुबह ही उठकर देखा कि जमालपुर में पकड़े गये तमाम युद्धबन्दी यहाँ शेरपुर में एक इमारत में लाकर रखे गये हैं, और यह खबर फैलते ही न केवल शेरपुर वरन आसपास के तमाम गाँवों और खुद जमालपुर तक हजारों बंगाली बच्चे, जवान, बूढ़े चारों ओर इकट्ठा हो गये थे। कुछ एकटक इमारत की खिड़की दरवाजों की ओर देख रहे थे, उनकी एक झलक पाने के लिए उछल रहे थे। कुछ उधर देख भी नहीं रहे थे लेकिन इसी इमारत के आसपास घूम रहे थे। चुपचाप। कुछ उधर पीठ किए खड़े थे गोया उनकी शक्ल भी न देखना चाहते हों और उनके राक्षसी अत्याचारों की कथाएँ सुना रहे थे। उनमें से एक से पूछा कि “ये जो कल तक आगजनी, बलात्कार, लूटपाट करते थे अगर तुम इनसे बात करो तो क्या पूछो ?” “क्या पूछेगा सर ?” उसकी आँखें जल उठीं, “हमारा मामूँ का गाँव में ए लोग घुस गया, संपूर्ण गाँव में आग बाल कर

पोजीशन ले लिया। जो मानुष भागा उसे शूट नहीं किया। बेयोनेट भोंककर फिर अगुन में फेराय दिया। जीवितोई मानुष को, औरत लोग को, बच्चा लोग को मूड़ी समान भून दिया। ओई लोग है ए. अबी क्या पूछेगा। ओ तो राजा समान सकाल बिकाल नासता करके, चाय खा के धरती पर बैठा है, उनका अफसर खुरसी पर बैठा है। आगुन बाबा के बेयोनेट घोपा होय उसको तब हम पूछे। अबी क्या पूछेगा सर ?” एक क्षण उसकी जलती आँखें देखता हूँ, वह आँखें दूसरी तरफ कर लेता है फिर भी यह पहचानना कठिन नहीं है कि ये आँखें मामू की हत्या पर किस कदर रो चुकी हैं, एक बेबस गुस्से और मर्मान्तक पीड़ा से।

आखिर, अच्छे, सीधे-साधे-भले मानसों पर आगजनी, बलात्कार नरमेघ करनेवाले पिशाच कैसे पैदा हो जाते हैं। क्या होते हैं वे अन्दर से ? वह क्या चीज है जो उन्हें इतना धिनौना, इतना जघन्य, इतना बर्बर बना देती है। उनका दिमाग (या जो कुछ भी दिमाग की जगह पर होता हो) कैसे काम करता है ? उसे कैसे जाना जाय, अन्दर बहुत गहरे पैठ कर अन्तरंग में ?

तो क्या एक बहुत गहरी जिज्ञासा मुझे इनसे जोड़ रही है ? हो जिज्ञासा लेकिन उस जिज्ञासा में कहीं क्षमा नहीं है, शायद वही उस अत्याचारी के प्रति घृणा का ही एक आयाम है, ऐसा आयाम जिसे मैं अकस्मात् उस समय पहचानता हूँ जब जमालपुर कालेज के हाल में इकट्ठी भीड़ में वह युवक बंगाली सिविलियन अफसर मुझे बताता है कि वह सुलतान महमूद को जानता था और मैं उससे और अन्तरंग तक जानने के लिए व्यग्र हो उठता हूँ...

जनरल नागरा सुबह उठ कर तैयार हो गये थे और फिर जमालपुर पहुँचने के लिए हेलिकॉप्टर का इन्तजार कर रहे थे। हेलिकॉप्टर सुबह से दो ट्रिप कर चुका था। उधर से घायलों को लाद कर ला रहा था, पाँच-पाँच को एक ट्रिप में। ज्यादातर पाकिस्तानी घायल थे, कुछ भागते पाकिस्तानियों द्वारा शूट किये गये बंगाली ग्रामवासी थे, जिनमें से कुछ की हालत काफी संगीन थी। वहाँ एक अघेड़ सिख लेफ्टिनेण्ट कर्नल खड़े घायलों का चार्ज ले रहे थे, “ओहो, आप लोग यहाँ हैं”, हमें देखते ही परिचित आत्मीयता से आगे बढ़ आये : “कोई तकलीफ तो नहीं यहाँ। यहीं पीछे गर्ल्स स्कूल की इमारत में अस्थायी अस्पताल बना दिया है। हमारी मेडिकल यूनिट के डॉक्टर कल से रात दिन जाग कर डटे हैं काम में !” ओहो, ये तो लेफ्टि. कर्नल खुराना हैं जो उस दिन रात को बलाट के डाक बंगले में मिले थे। ये न होते तो शायद जाड़े की रात जीप में बिना कम्बल सोकर बितानी पड़ती। खुराना बताते हैं कि उनके अस्पताल में इतने पाकिस्तानी घायल भर गये हैं कि भारतीय फौजी डॉक्टर कह रहे हैं कि लगता है यह पाकिस्तानी अस्पताल है।

आज विजय की सुबह है लेकिन जनरल नागरा आगे की योजनाओं में व्यस्त हैं। हेलिकॉप्टर में भी कागजों और नक्शों में डूबे हैं। फ्लाईंग आफिसर वर्मा के ठहाके जरूर लौट आये हैं। आज हेलिकॉप्टर तिल के पीले फूल खेतों में नहीं उतरता। सीधे

उस इमारत के अहाते में जहाँ उनका हेडक्वार्टर था, आज तो तमाम अहाते में पूरे जमालपुर और आसपास के क्षेत्रों में बिखरे हुए पाकिस्तानी हथियार, तोपें, गोलाबारूद लाकर जमा किया गया है और इतना फैलाव है उनका कि हेलिकॉप्टर उतारने के लिए मुश्किल से जगह मिल रही है। गोलाबारूद के बक्सों के ढेर पर ढेर, राइफलों की बेअन्त कतारें, मोर्টার तोपें एक लाइन में लगी हुई। तरह-तरह की मशीनगनों, यह तो वे हैं जो अभी शहर में से लाकर रखी गयी हैं। खाइयों और बंकरो में कहाँ-कहाँ कितना अस्त्र-शस्त्र भरा पड़ा है उसका अभी कोई हिसाब नहीं। हर मिनट मुक्तिवाहिनी के संरक्षण में ग्रामीण लोग कोई न कोई हथियार लाद कर ला रहे हैं और लो अहाते की बाहरवाली सड़क पर हम एक बहुत ही भव्य दृश्य देखते हैं। कल सुबह जो सड़क सुनसान पड़ी थी आज वह ठसाठस भीड़ से भरी है और भीड़ तीन धाराओं में बह रही है। बायीं ओर मुक्तिवाहिनी की एक लम्बी पंक्ति झण्डे और राइफलें लिये आगे जा रही है। बिलकुल दायें का प्रवाह बिलकुल उल्टा है, लगभग 100-150 ग्रामवासी अपने कन्धों पर तोपों की नलियाँ, गोले, छोटी मशीनगनें, राइफलों के गट्ठर लादे एक लाइन में इस ओर चले आ रहे हैं, और इन दो धाराओं के मध्य में बीच सड़क में हैं धक्कामुक्की करते, कितने ही तमाशबीन नागरिक जो स्वतन्त्रता में साँस लेने निकले हैं, और कभी उस पंक्ति और कभी इस पंक्ति के साथ नारा लगाने लगते हैं। इस फैले अहाते में केवल पाकिस्तानी शस्त्र ला-लाकर लोग जमा नहीं कर रहे, इधर-उधर से रजाकारों को भी मुक्तिवाहिनी के लोग गिरफ्तार करके ला रहे हैं, और बीच-बीच में पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा कल घायल हुए ग्रामवासियों को भी इलाज के लिए। जगह-जगह भारतीय सेना के अफसर बहुत व्यस्त हैं, कुछ इस सारे सामान की गिनती करा कर चार्ज ले रहे हैं, कुछ सारे हेडक्वार्टर के कमरों की तलाशियाँ ले कर उनके कागज-पत्तर की जाँच कर रहे हैं। कुछ रजाकारों और युद्धबन्दियों की देखभाल कर रहे हैं। अभी तक जमालपुर के बड़े-बड़े बंकरो की ओर उनमें अस्त्र-शस्त्र की जाँच बाकी है। सहसा पास के एक बड़े बंकर के अन्दर कुछ हलचल होती है। एक जवान आकर बाहर बताता है कि बंकर अन्दर से बहुत गहरा है और सामने के अस्त्र-शस्त्रों के ढेर के पीछे उसने देखा कि एक बहुत खूबसूरत बिलकुल नयी वायरलेस जीप खड़ी है। और फिर तो कई लोग उत्साह में अन्दर दौड़ गये कि और क्षण भर में वह जीप ढकेल कर बाहर ले आयी गयी।

जनरल नागरा और ब्रिगेडियर क्लेर इस सारी हलचल से अलग एक ओर अपने सहायकों के साथ अब आगे बढ़ने की योजना बनाने में तल्लीन हैं। जमालपुर ले लेने के बाद अब ढाका तक सीधी सड़क है, किसी नदी को पार करने की झंझट नहीं है। बस, बीच में अभी तीन स्थानों पर दुश्मन की रक्षापंक्तियों को पार करना है। मधुपुर में उसके बाद टंगाइल में और अन्त में जयदेवपुर में। जयदेवपुर को पार किया कि ढाका के द्वार पर। लेकिन दो समस्याएँ और हैं। एक तो यह कि मैमनसिंह तथा अन्य स्थानों से जो पाक सेनाएँ भाग कर ढाका की ओर वापस जा रही हैं, वे अगर बीच

में कहीं एक स्थान पर इकट्ठी हो गयीं तो काफी सुदृढ़ मोर्चा बना लेंगी, और दूसरी समस्या यह है कि जब तक ब्रह्मपुत्र पर बड़ा पुल नहीं बन जाता तब तक हमारी पूरी सेना तो उसी ओर रहेगी। वह एक बार इस ओर अपने सारे भारी ट्रकों, तोपखाने और तमाम भारी अस्त्र-शस्त्र के साथ ब्रह्मपुत्र पार कर ले तब तो ढाका तक सीधी पक्की सड़क है ही। पता लगता है जनरल रात भर इन्हीं दोनों समस्याओं के समाधान में लगे रहे हैं और इसीलिए सुबह हेलिकॉप्टर तक में बैठकर उन्हीं कागजों में उलझे हुए थे।

और एक आंशिक हल शायद उन्होंने रात को ही निकाल लिया था, क्योंकि उस पर अमल सुबह से ही शुरू हो गया था। हमने हवाई जहाजों की घरघराहट सुनी। “क्या ये मधुपुर में सार्टीज के लिए जा रहे हैं ?” हमने किसी से पूछा, उत्तर मिला, “मधुपुर ? आप किस दुनिया में रह रहे हैं भाई साहब ? मधुपुर तो कल शाम को ही हमारी सेना ने ले लिया !” सुबह ही वे टुकड़ियाँ मधुपुर के लिए रवाना हो रही थीं, जब हम ले. कर्नल ब्रार से इस युद्ध की विस्तृत रिपोर्ट ले रहे थे। शाम तक वे वहाँ पहुँचीं और मधुपुर जीतकर अब टंगाइल की ओर बढ़ रही हैं। तब ये जहाज ? ये पैराट्रॉपर जहाज हैं। इनमें हमारे पैराट्रॉपर सैनिक हैं। इन्हें मैमनसिंह और मधुपुर, मधुपुर और टंगाइल तथा टंगाइल और जयदेवपुर के बीच में उतारा जा रहा है ताकि ये भागने वाली पाक सेनाओं को बीच में ही धर पकड़ें और उन्हें किसी एक बिन्दु पर इकट्ठा न होने दें और ढाका न पहुँचने दें। हर जगह भागती हुई बची-खुची पाकिस्तानी सेनाएँ अपने को आगे-पीछे दोनों ओर से घिरा हुआ पायेंगी। आगे से हमारी स्थल मार्ग से बढ़ती हुई टुकड़ियाँ उन पर आक्रमण करेंगी और पीछे से ये पैराशूट से उतारी हुई टुकड़ियाँ। और इस बीच में हमारी सेना के मुख्य बड़े स्तम्भ को ब्रह्मपुत्र को पार करा कर इधर लाने का संजाम किया जायेगा। और फिर सब मिलकर ढाका की ओर बढ़ेंगे। इस बीच में दायें और बायें से ढाका की ओर पहुँचती हुई सेना उन पर दबाव डालती रहेगी। शत्रु के सामने दक्षिण की ओर भागने के अलावा कोई चारा नहीं है। लेकिन दक्षिण की ओर हमारी नौसेना ने समुद्री घेराव कर रखा है और जनरल मानिक शा ने वह मर्यादा और सैनिक सम्मान भरा स्पष्ट सन्देश राव फरमान अली और जनरल नियाजी को भेजा है कि “स्थल, आकाश और समुद्र का रास्ता बन्द कर दिया गया है। भारत व्यर्थ का रक्तपात नहीं चाहता। पाकिस्तानी सेनाएँ वक्त रहते समर्पण कर दें अन्यथा...”

बाहर लोगों को समझ में नहीं आ रहा कि अब भी ढाका में पाकिस्तानी सेनाएँ समर्पण में देर क्यों लगा रही हैं ? लेकिन वास्तविक बात यह है कि अब भी मैमनसिंह, रंगपुर, दिनाजपुर, जमालपुर और टंगाइल से भाग कर पीछे हटनेवाली पाक सेनाओं का इन्तजार हो रहा है ताकि शायद ढाका में फिर जम कर अन्तिम बार मुकाबला करके तब तक विलम्ब करें जब तक पाकिस्तान के जंगखोर दोस्त उसके भाग निकलने का कोई साधन न जुटा लें। इसीलिए भारतीय सेना इन पीछे हटती शत्रु सेनाओं को ढाका

पहुँचने के पहले ही घेर ले और उन्हें हरा कर स्वयं उत्तर से भी ढाका पहुँच जाय तभी शत्रु की अन्तिम आशा समाप्त हो जायेगी और तभी ढाका का पतन होगा, यह बात यहाँ की सारी स्थिति देखकर ही समझ में आ जाती है।

अहाते में आज सब भारतीय सेना के अपरिचित अफसर और जवान दिख रहे हैं, ये उन टुकड़ियों के लोग हैं जो हमारे दख्खीगंज पहुँचने के पहले ही आगे बढ़ कर ब्रह्मपुत्र पार कर जमालपुर के पीछे आ डटे थे। मेजर एम. पी. सिंह, कैप्टन सी. आइजन, कैप्टन शशि हजरनवीस, कैप्टन एस. गोखले, कैप्टन एम. सी. श्राफ, कैप्टन ए. छिब्बर कितने ही लोग। उन्हीं में एक भव्य, लहीम शहीम लेकिन बहुत मृदुभाषी व्यक्तित्व है, मेजर मलहोत्रा, उनका स्टील का टोप, जंगल जर्किन और भरा गोल चेहरा। वे आकर बताते हैं कि बम्बई के प्रख्यात अभिनेता धर्मेन्द्र उनके चचेरे भाई हैं।

और सहसा मेरा ध्यान जाता है एक इमारत के पिछवाड़े लगे कागज के एक बहुत बड़े ढेर पर। फाइलें, किताबें, छपे हुए फार्म, पत्र व्यवहार पुराने पर्चे और रिसाले यह क्या है ? मालूम होता है पाकिस्तानी फौज के दफ्तर के सारे कागज-पत्र जाँचे जा रहे हैं, जाते हुए उन्होंने बहुत कुछ जलाया है और शेष बचे कागजों का यह ढेर इधर छोड़ गये हैं। मेरा कुतूहल जाग जाता है। मैं बमवर्षा से ध्वस्त खिड़कियों के पैसे नुकीले काँच के टुकड़ों, पलस्तर के टुकड़ों और फैले हुए मोर्टार शेलों और मशीनगन की गोलियों की. पेटियों पर धीरे-धीरे पाँव रखता उन कागजों की ढेरी के पास बैठ कर अभ्यस्त कबाड़ी की तरह उनकी जाँच करने लगता हूँ। हफ्तों बाद वह दुखभरा सुखद कार्य करना पड़ रहा है, जो वर्षों से रोज बम्बई में सम्पादक के रूप में करना पड़ता है यानी ढेरों ढेर अनुपयोगी कागजों में से छानबीन कर काम की चीज निकालना। स्वाभाविक है कि रंगीन कागज पहले ध्यान आकर्षित करते हैं। एक पूरा बण्डल है नीले चिकने कागजों पर छपे पाकिस्तान के फौजी अन्तर्देशीय पत्रों का। इन पर वे अपने परिवारवालों को क्या लिखते रहे होंगे ? क्या बाँगलादेश में वे क्या कर रहे हैं और किस परिस्थिति में अपने को पा रहे हैं इसका सच्चा हाल लिख पाते होंगे ? कुछ ही दिनों पहले ईद थी। कई ईद के रंगीन ग्रीटिंग कार्ड उर्दू में लिखे लिखाये पड़े हैं। एक ग्रीटिंग कार्ड किसी से पढ़वाता हूँ तो पता चलता है कि उसकी मझली बेटी ने भेजा है। माँ तथा दोनों बहनों की ओर से शुभकामनाएँ और जल्दी से हिन्दोस्तान को फतह कर घर लौटने का आग्रह। हिन्दोस्तान को फतह ? लेकिन जब ईद पड़ी थी तब तो हिन्दोस्तान से युद्ध भी नहीं शुरू हुआ था ? यहिया खाँ ने पाकिस्तान के लोगों को कैसे भ्रम में रख छोड़ा था। कई किताबें उठा कर देखता हूँ। 31 बलूच रेजिमेण्ट के अफसर क्या पढ़ते थे ? कुछ अंग्रेजी के सस्ते सेक्सी और जासूसी उपन्यास हैं, कुछ उर्दू की किताबें और बहुत-सी छिटपुट पत्रिकाएँ। कुछ चीनी कम्युनिज्म की प्रचार पत्रिकाएँ जो शायद मुफ्त आती रही होंगी, कुछ उर्दू के रिसाले जिनमें पाकिस्तानी फ़िल्मी तारिकाओं की भोंड़ी तस्वीरें छपी थीं। कहीं एक टाइम साप्ताहिक की बहुत

पुरानी प्रति भी दीखती है और एक जगह एक रंगीन टूरिस्ट पत्रिका किसी पूर्व यूरोपीय देश की।

और अब मैं कमरों के अन्दर उनकी खुली अस्त-व्यस्त अलमारियों और बरामदे में बिखरे हुए अधखुले सन्दूकों पर नजर डाल रहा हूँ और सहसा एक काठ के सन्दूक के खुले ढकने पर नजर जाती है। उसमें अन्दर की ओर पाकिस्तानी और कुछ विदेशी पत्रिकाओं से काट कर रूपसियों और पिनअप मॉडलों के उत्तेजक चित्र चिपकाए हुए हैं। सन्दूक में फौजी वर्दियों के बीच में कुछ उर्दू के लेबिलवाली दवा की शीशियाँ और पुड़ियाँ रखी हुई हैं। नीचे बिछा है एक कागज का पोस्टर जिस पर छपा है 'क्रश इण्डिया'। ये पोस्टर हमने जमालपुर की दीवारों पर भी कई जगह देखे हैं।

एक और बड़ा-सा कमरा है, बिना फर्नीचर का। एक खिड़की खुली है बाकी बन्द। वह कमरा शायद स्टोर रहा होगा क्योंकि एक ओर दो-तीन आटे की बोरियाँ रखी हैं, कुछ पाउडर मिल्क के पैकेट, एक कोने में फेंके गये सिगरेट के खाली पैकेट, बिखरी हुई दियासलाइयाँ और यह क्या है। एक मैली लाल रंग की फटी हुई सूती साड़ी—लगता है यह स्टोर का कमरा और किसी काम भी आता था क्योंकि एक कोने में कई ऐसी चीजें भी पड़ी हैं जिन्हें देख कर उबकाई आती है। उसके पास ही कई खाली बोतलें फर्श पर पड़ी हैं।

और झटके से दिमाग में घूम जाती हैं बाँगलादेश में जगह-जगह पर सुनी उनके पैशाचिक कृत्यों की लोमहर्षक गाथाएँ। कैसे उन्होंने गोद से बच्चों को छीन कर अलग फेंक दिया और असहाय चीखती माँ पर बलात्कार किया और चलते-चलते दोनों को संगीनों में भोंक दीं ? कैसे उनके बंकरों में स्त्रियाँ मिलीं जिन्हें वे पकड़ लाये थे ? उन्हें हफ्तों निर्वस्त्र रख कर उन्हीं से सफाई और पकाने का काम भी लेते थे और उन्हीं से अपनी जघन्य लिप्ता भी तृप्त करते थे। ऐसी अनेक स्त्रियों को जब भारतीय सेना ने मुक्त कराया तो पाया कि न केवल उनके शरीर पर स्थान-स्थान पर संगीनों में भोंकने या जलाने के दाग हैं वरन् उनकी संज्ञा शक्ति भी जाती रही है, वे विक्षिप्त हो चुकी हैं। दो-तीन दिन पहले शाम को शेरपुर के बाजार में घूमते-घूमते कितने ही लोग आकर सहसा हाथ पकड़ लेते थे और जो भयानक हादसे सुनाने लगते थे उनमें अनेक तो ऐसे अमानुषिक थे, इतने भयानक कि लिखना तो दूर उन्हें याद करके मन काँप जाता है। और फिर दिमाग के आगे घूम जाता है, उस दिन सुबह मुक्तिवाहिनी द्वारा पकड़ कर लाये गये उन रजाकारों का दृश्य—जो एक दिन पहले तक गाँवों से पकड़-पकड़ कर औरतें पहुँचाते थे इन वहशियों के पास जमालपुर में।

उस कमरे में मैं देर तक नहीं खड़ा रह पाता। जाने क्या है उस कमरे की हवा में कि साँस लेना तक दूभर लगता है। वह सवाल हजार गुना तीखा होकर फिर दिमाग में घुमड़ने लगता है। वह क्या है, वह क्या है, वह क्या है जिसने इनको इस कदर पाशविक बना दिया ?

और फिर यह कल्पना कि ये जो सत्ता और हथियार पाकर इस कदर अमानुषिक बन गये थे, अपने निजी जीवन में पिता भी थे, पति भी ! उनकी बेटी उन्हें त्योहार पर ग्रीटिंग भी भेजती थी और अनेक अपने घर परिवार की याद भी करते थे, लाहौर की, रावलपिंडी की, क्वेटा की, पेशावर की ! —काश कि इनकी विचार प्रक्रिया में पैठ कर जान पाता कि वह कौन-सा जहर था ? वे कौन-सा जहर पिला-पिलाकर पाले गये थे कि उनके अन्दर अन्तरात्मा नाम की कोई चीज नहीं बच रही थी ?

मेजर वामी और बलवीर सिंह एक जीप पर आ रहे थे। हमें देखते ही जीप रोक कर बिठा लिया। “चलो हम लोग जमालपुर महाविद्यालय चल रहे हैं, वहाँ जनरल और बिग्रेडियर का स्वागत करने के लिए एक जनसभा का आयोजन है। आप लोग वहाँ पहले पहुँच जायें तो स्थानीय लोगों से अनेक ‘स्टोरीज’ मिलेंगी।” हम वहाँ पहुँच गये हैं। हाल में मेजर कुर्सियाँ गुलदस्ते सजे हैं और लोग इकट्ठे हो रहे हैं। हमें देखते ही जय बाँगला, जय हिन्द के नारे लगते हैं और फिर अबू यूसुफ, स्थानीय सिविल-अफसरों से हमारा परिचय कराते हैं। पाकिस्तान स्टेट बैंक का मैनेजर, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट, सिविल जज, रेवन्यू और ट्रेजरी आफिसर यहाँ तक कि अपनी वर्दी पेटी से लैस शहर कोतवाल भी। उन्हीं में एक जवान छोटी-सी दाढ़ीवाला आफिसर है जो आकर हँसते हुए हमसे हाथ मिलाता है—“मुबारक हो ! सुना है उस दिन की फायरिंग में आप ही लोग फँस गये थे।” मालूम हुआ कि नदी किनारे अपने मकान की खिड़की से वह फायरिंग देख रहा था। और फिर तो परसों शाम तक के उनके राज के कितने ही किस्से। अब जमालपुर की हालत क्या है, इस युद्धग्रस्त नगर को सामान्य व्यवस्था में आने में कितनी देर लगेगी ? मालूम होता है कि भारतीय बमवर्षकों का निशाना इतना सच्चा था कि शहर का कोई नुकसान नहीं हुआ है। ट्रेजरी सुरक्षित बच गयी है और कल सुबह से ही मुक्तिवाहिनी का पहरा इतना कड़ा है कि लूटपाट, चोरी, दंगा-फसाद बिलकुल बन्द है। “लेकिन साहब वह छोटा मकान जो छावनी के पास तीन दिन पहले बम्बार्ड हुआ वह इस गरीब का है।” बलबीर सिंह प्रतिवाद करते हैं—लेकिन वह मकान तो सिविलियन नहीं था। उसमें पाकिस्तानी आर्मी थी—“आपकी खबर बिलकुल सही है।” वह जवान सिविलियन अफसर हँसकर कहता है—“पता नहीं आपके बम वर्षक जहाजों को जमालपुर के अन्दर की इतनी राई रती सही-सही खबर कैसे थी ? मकान मेरा था लेकिन मकान मुझसे छीन लिया था उन्होंने। उसमें भी 31-बलूच रेजिमेण्ट के ही लोग भरे थे। मैं तो खुद ही अर्ज कर रहा हूँ कि सिविलियन प्रापर्टी को कहीं कोई नुकसान नहीं पहुँचा। शहर के लोग तो इस मामले में इतने मुतमाइन थे कि अपने घरों में सारे मालमत्ता को ताला लगा कर गाँवों में चले गये थे। आज देखिए, इण्डियन आर्मी आ गयी है तो बर्तन, बिस्तरा भैंसगाड़ियों पर लाद कर लौट रहे हैं।” “आपको मकान का कुछ मुआविजा दिया उन्होंने ?” “जी हाँ, जान बख्शा दी और एक दिन एक माछली भी भेजा। वह कर्नल साहब सुलतान महमूद वैसे तो दीन ईमान का कायल था। कुरान शरीफ अपने साथ रखता था लेकिन 1000 रुपया रोज शहर से टैक्स

वसूलता था—पिछले एक महीने से रोज। लेकिन जिस दिन रुपया नहीं इकट्ठा हो पाता था उस दिन ये लोग हमको भेजते थे कि तुम्हीं जाकर कहो—मैं जाकर पहले उसको जोक वगैरह सुनाता था, माफ कीजिएगा साहब करना पड़ता था—इण्डिया का बुराई करता था फिर कहता था कि रुपये का इन्तजाम आज नहीं हुआ।” “और क्या वह औरतों वाली बात सही है ?” मैं पूछता हूँ। अब वह अचकचाकर चुप हो जाता है और एक दूसरा अघेड़ अफसर कहता है—“जितना आपने सुना है उससे भी ज्यादा हम लोग रोज दुआ करते थे कि रजाकार लोग दो औरत गाँव से लाकर उनको दे दें नहीं तो वो जमालपुर में दंगा मचायेगा। अप्रैल, मई में जमालपुर में बहुत आफत किया था—पाकिस्तानी आर्मी जन ने।” “यह जैदी कैसा था ?” लेफ्टिनेण्ट जैदी के बारे में मैं पूछता हूँ जो कल पकड़ा गया। मुझे बिल्कुल दूसरी रिपोर्ट मिलती है। जैदी तुनुकमिजाज जरूर है लेकिन सिविलियन लोगों के साथ उसने कोई बदसलूकी नहीं की। लेकिन मेजर फज्ले अकबर लोगों को सताता था। एक बार वह शायद ढाका को ट्रंक-कॉल करना चाह रहा था या कराची को। कई घण्टे तक काल नहीं मिल पायी तो टेलीफोन एक्सचेंज के दफ्तर में आया और आपरेटर्स को अपने आदमियों से बुरी तरह पिटवाया।

नारे बहुत जोर से लगने लगे हैं। कालेज के प्रांगण में मुक्तिवाहिनी और स्थानीय नागरिकों की इतनी भीड़ भर गयी है कि मेज लाकर बाहर लगा दी जाती है। जनरल आने वाले हैं। लोग तरह-तरह की मालाएँ ले कर खड़े हैं कि कौन सबसे पहले पहनाये। उनकी जीप आते ही तहलका मच जाता है और फिर वही स्वागत का मार्मिक दृश्य जो शेरपुर में देखा था। और सहसा एक और घटना घटती है। एक बूढ़ा जो सफेद माला लिये सफेद कुर्ता पाजामा पहने खड़ा था जनरल के पास आता है, जब से एक फोटो निकालता है—“जनरल साहब ! यह देखिए यह मेरा मिंटू है !” रूँधे गले से चीखता है—“मेरा मिंटू, मेरा बेटा, उसे इन काफिर पाकिस्तानियों ने मार डाला—मिंटू, मेरा मिंटू !” जनरल उसे गले से लगा कर सान्त्वना देते हैं तो वह रो पड़ता है—“मिंटू आज होता, आज मिंटू होता जनरल साहब, आज मिंटू होता तो...” और फिर उसका गला रूँध आता है। जनरल नागरा सारी भीड़ को छोड़कर उससे बहुत हमदर्दी से बातें करते हैं तो वह बताता है कि अप्रैल में इनका जुलूम मिंटू से बर्दाश्त नहीं हुआ तो वह भूटान भाग गया कि कहीं से हथियार लाये, मुक्तिवाहिनी बनाये। लेकिन हथियार नहीं मिला, लौट आया। उसका एक दोस्त था दीवान पाड़ा एस. डी. ओ. उसने दगा किया। पाकिस्तानी को सब बतला दिया। बस उन्होंने उसे 4 मई को बुला कर शूट कर दिया। “ये सफेद माला उसकी विधवा ने भेजा है जनरल साहब, ये माला नहीं है मिंटू की विधवा का अश्रुमाला है।” और माला पहना कर वह छाती पर हाथ रख कर ठण्डी साँस लेता है—“आज हमारा छाती जुड़ाया गया आज हमारा बेटा हमको मिल गया।” और वह ऊपर हाथ उठा-उठा कर जनरल नागरा को दुआएँ दे रहा है। बूढ़े का नाम है एम. यू. अहमद। मिंटू के तीन छोटे बच्चे हैं।

भीड़ का शोर, जयध्वनियाँ, नारे, सब पर मिंटू की तस्वीर छा गयी है—मिंटू होता, आज मिंटू होता...

ब्रह्मपुत्र के किनारे पर अकस्मात् हलचल हो उठी है। जनरल ने जनता से प्रार्थना की है कि हमारी कुछ टुकड़ियाँ और उनका सामान ब्रह्मपुत्र के इस पार आना जरूरी है और जमालपुर तथा आसपास जितने नाववाले हों तुरन्त घाट पर आ जायें। और तुरन्त उनको इस पार लाना शुरू कर दें। सेना सबको समुचित मेहनताना देगी लेकिन मेहनताने की उतनी बात नहीं। जनरल के एक वाक्य पर जाने कहाँ-कहाँ से नावें आकर इकट्ठा हो रही हैं। और कई दिनों बाद अकस्मात् मेजर बधवा हमें दीखते हैं। वही मुस्कान वही चुस्ती, वही घण्टियों की तरह टनटनाती आवाज। ब्रह्मपुत्र अब सेतु-बंधन के लिए उपलब्ध है और अब उनका काम शुरू हो रहा है। बेहद व्यस्त होने पर भी यह पूछना नहीं भूलते कि उनकी अनुपस्थिति में हमारे खाने-पीने, रहने-सोने का इन्तजाम तो ठीक रहा न ? मेजर बधवा कैप्टन त्रिपाठी से लेकर उच्चतम जनरल तक हमारी सेना में कितने प्यारे दिलवाले लोग हैं इसका अनुभव भी क्या कभी था हमें ?

जनरल को लेकर हेलिकॉप्टर कहीं जा रहा है, अतः हमें आदेश है कि हम थोड़ी देर घूमघाम कर आवश्यक चित्र लेकर आज नाव से ही ब्रह्मपुत्र पार कर शेरपुर लौटें। जीप पर लौटते हुए जनरल देखते हैं कि एक सिपाही रिक्शे पर कुछ जरूरी सामान लाद कर ला रहा है। वे तुरन्त जीप रुकवा कर उतरते हैं। सिपाही को ताकीद करते हैं कि कोई कितना ही कहे लेकिन हरेक को उसका मेहनताना या चीज की कीमत बिना दिये कुछ न लिया जाय। ये लोग इण्डियन आर्मी के लिए जान बिछाने को तैयार हैं। जब मुक्तिवाहिनी के सैनिक बंगाली में उन्हें बहुत-बहुत समझाते हैं तभी वे पैसा लेने को तैयार होते हैं। जिस स्कूल की इमारत में कल जमालपुर में आते ही गये थे, वहाँ सिख सैनिकों की एक टुकड़ी अस्त्र-शस्त्र बटोरकर उनकी गिनती कर रही है। जनरल नागरा फिर उतरते हैं और अपने सैनिकों के बीच जाकर उनकी बहादुरी के लिए उनको शाबाशी देते हैं। बंगाली जनता पर पाकिस्तानी पंजाबी सिपाही ने जो जुल्म किया, लेकिन भारतीय सिख सिपाही ने जितनी बहादुरी और मर्यादित व्यवहार बंगाल में किया उससे हर भारतीय का माथा ऊँचा है। उम्मीद है कि जल्दी हम ढाका पहुँचेंगे और ढाका को भी इस जालिम हुकूमत से आजाद करायेंगे। सिपाही जोश से नारा लगाते हैं—“जो बोले सो निहाल ! सत श्री अकाल !” और इस नारे के साथ ही सड़क पर खड़े मुक्तिवाहिनी के सैनिक नारा लगाते हैं, “जय बाँगला” और लीजिए उनका नायक दूसरा नारा लगाता है “जय पंजाब !” इस बार प्रत्युत्तर कुछ धीमा है, नायक अपनी गलती सुधारता है। “जय भारतेर पंजाब !” और गगनभेदी नारा उठता है, “जय भारतेर पंजाब !” मेजर बलबीर सिंह हमारी ओर देख कर मुस्कराने लगते हैं।

हम वापस उस इन्स्टीट्यूट के अहाते में पहुँचते हैं तो दो खबरें मिलती हैं। एक तो यह कि ले. कर्नल सुलतान महमूद पकड़ लिया गया है। जखमी है और मरहम पट्टी

के लिए उसे भेज दिया गया है। और दूसरी खबर और भी दिलचस्प है। वह रिकॉयललेस गन जिससे हम पर फायरिंग हुई थी ढूँढ़ ली गयी है और वह सामने खड़ी है। हम कुतूहलवश दौड़ कर जाते हैं। वैसी कीचड़ पुती हुई जीप पर चढ़ाई हुई वह गन। उसे देखते हैं। पास जाकर। मुझसे नहीं रहा जाता। उसको सूता हूँ। “ठण्डा लोहा। ठण्डा लोहा ! ठण्डा लोहा !! ठण्डा लोहा !! !” अपनी एक बहुत पुरानी कविता की पंक्ति इस वक्त क्यों याद आती है। तब क्या मालूम था कि जीवित मृत्यु का यह संस्पर्श, ठण्डे लोहे की यह सिहरन भरी छुवन ऐसी होगी। एक घातक पाकिस्तानी एण्टी-टैंक तोप के रूप में ?

बहुत उत्सुकता से देखता हूँ कि तोप कहाँ की है। मार्किंग से मालूम होता है कि तोप अमरीका की है। हाय ! सर्वशक्तिमान अणु गुण सम्पन्न अमेरिका की एक एण्टी-टैंक रिकॉयललेस गन एक हाड़-मांस के साधारण से पत्रकार को भी न मार सकी। शिकारी जब शेर को मारते हैं तो उसके साथ बन्दूक लेकर फोटो खिंचाते हैं। लेकिन अगर शेर जिन्दा बच जाये और बन्दूक के साथ अपनी फोटो खिंचाये तो कैसा लगे ? कुछ-कुछ वैसा ही लगता है मुझे, जब बालकृष्ण केमरा सम्हालते हैं तब !

ब्रह्मपुत्र पर सेतुबन्ध

नाव से शेरपुर वापस जाने के लिए हम ब्रह्मपुत्र घाट पर खड़े हैं। कल भी सुबह जमालपुर के पतन के तुरन्त बाद ब्रह्मपुत्र के इसी घाट पर आये थे, सुनसान घाट, जहाँ से हमने उस पार फायरिंग झेलने का स्थान देखा था, कैसी मौत की छाया उस समय पूरे ब्रह्मपुत्र पर छायी थी। आज आलम दूसरा है। रौनक है। जनरल नागरा के सुझाव के बाद जाने कहाँ-कहाँ से आकर नावें दोनों किनारों पर लग गयी हैं और जाने कहाँ-कहाँ से नावें चली आ रही हैं। लोग नावों पर आर-पार आ-जा रहे हैं। नागरिक, मुक्तिवाहिनी, भारतीय सेना। उस पार हमारी इंजीनियरिंग यूनिट की कितनी ही फौजी ट्रकों कतार बाँध कर आकर खड़ी हो गयी हैं जिनसे सामान उतारा जा रहा है।

हम एक छोटी-सी नाव पर बैठते हैं। पानी हरापन लिये नीला है। ब्रह्मपुत्र को गौहाटी के पास कामाख्या मन्दिर की पहाड़ी पर से सितम्बर में देखा था। विराट नद, मटमैला पानी, विस्तार इतना कि भय पैदा करे। लेकिन यहाँ ब्रह्मपुत्र ग्राम हरिणी की तरह है, पतली चंचल, धूप में कितनी सुहावनी लग रही है, चहल-पहल-भरी। कल तक जो दुर्भेद्य गुत्थी की तरह थी आज स्वागत की बाँहों की तरह फैली है।

हम उस किनारे पहुँचते हैं। ट्रकों पर से इंजीनियरिंग यूनिट का सामान उतर रहा है। इंजीनियरिंग यूनिट के तमाम वे चेहरे, जो तीन-चार दिन से अदृश्य थे फिर यहाँ दीख जाते हैं, मेजर पोंग्रे भी। बड़ी हार्दिकता से 'हेलो' कहकर अपने काम में लग जाते हैं। किसी को फुर्सत नहीं। कुछ पीछे की यूनिटों से ढोकर सामान ला रहे हैं, कुछ सामान उतरवा कर सहेज रहे हैं, कुछ आये हुए सामान को नदी किनारे पहुँचा रहे हैं, कुछ जमीन हमवार करवा रहे हैं, कुछ हमवार जमीन पर सामान से निर्माण प्रारम्भ कर चुके हैं। ब्रह्मपुत्र का सहज ग्राम-सौन्दर्य इस स्वातन्त्र सेतु अभियान के सैनिक रंग से मिल कर अजीब समों बाँध रहा है, हम ठिठकते हैं पर कोई सैनिक इंजीनियरिंग मित्र सलाह देता है कि अभी नहीं, शाम को इधर आइएगा, तब तक हम लोग कुछ काम कर लेंगे, तब देखिएगा यह नज्जारा !

दिन को शेरपुर पहुँचे हैं। आज हमारा गोविन्दचन्द्र इन्स्टीट्यूशन बिलकुल सूना हो गया है। यहाँ तक कि कैप्टन डॉ. त्रिपाठी तक का कमरा खाली है। वे घायलों की सुश्रूषा में व्यस्त हैं और शायद वहीं उन्होंने अपना डेरा जमा लिया है। इधर के कमरे में कुछ इंजीनियर टिके थे। उनके बिस्तरे भी बँधे हुए रखे हैं सिर्फ उनके दो बैटमैन बैठे हैं। बिस्तरे कल दोपहर से बँधे रखे हैं क्योंकि उनके अफसर जहाँ ड्यूटी पर गये थे वहाँ शायद रात भर काम में लगे रहे और अभी तक नहीं लौटे हैं।

शेरपुर अब छोड़ना होगा। जाने क्यों इस साफ सुथरे छोटे-से कस्बे से मोह होने लगा है। सितम्बर से अब तक कितनी जगह बाँगला देश में हो आये पर यह मोह या तो तेंतुलिया में हवलदार अब्दुलबारी की चौकी से हुआ था या शेरपुर से हो रहा है। यहाँ की साफ सुथरी सड़कें, यहाँ के बेहद ममता भरे लोग, स्वातन्त्र्य-विजय की सुबह का निर्बाध उत्साह, जनरल का उतरता हेलिकॉप्टर, जयघोष, ब्रह्मपुत्र के प्रथम दर्शन, फायरिंग की घटना, आर्टिलरी यूनिट के पास छाया में बैठकर चाय और ठहाके, सब मन में अजीब बिछोह की पीड़ा-सी जगा रहे हैं। खाने के बाद दोपहर का आराम छोड़ कर मैं उठ जाता हूँ और टहलता हुआ उधर चला जाता हूँ जहाँ जनरल नागरा का अस्थायी दफ्तर और मेस है। वहाँ अभी भी काफी चहल-पहल है। आफिसर्स मेस में कुछ अफसर बैठे हैं, जो चाय पर हमारा स्वागत करते हैं, लतीफेबाजियाँ होती हैं। ब्रह्मपुत्र का अवरोध सबके मन पर एक बोझ था जो उतर गया है। जमालपुर का मोर्चा सर हो गया, अब ढाका तक कोई बड़ा अवरोध नहीं।

पाकिस्तानी सैनिक कैदी पीछेवाली इमारत में है। उधर टहलता हुआ जाता हूँ। खिड़की पर जैदी खड़ा है। मुझे देखकर हँस कर अभिवादन करता है। कुछ कैदी नीचे उतर कर पहरों में कहीं जा रहे हैं। मैं देखता हूँ। वे ट्रक पर लद रहे हैं। बख्शीगंज में शत्रु के तमाम अस्त्र-शस्त्र का चार्ज जिन बार्डर सिक्कोरिटी फोर्स के लोगों के हाथ में था वे लोग यहाँ दीख रहे हैं। मालूम होता है कि वे युद्धबन्दियों को ले जाने के लिए आये हैं। उनके आफिसर के हाथ में ट्रान्जिस्टर है। एक परिचित-सी आवाज सुन पड़ती है। अरे ये तो इन्दिरा जी की आवाज है। मालूम हुआ कि आज ही उन्होंने रामलीला मैदान में एक महत्त्वपूर्ण भाषण दिया है। उसी की रेकार्डिंग प्रसारित हो रही है। जिन्होंने 12 दिसम्बर को दिया हुआ उनका रामलीला मैदान का भाषण सुना है वे उसकी तेजस्विता से परिचित हैं। लेकिन घर से हजारों मील दूर, युद्ध क्षेत्र के सबसे गहन स्थल पर सैनिकों के बीच, उनके साथ जीप के मडगार्ड पर बैठकर उस भाषण को सुनने का रोमांच कैसा रहा होगा इसकी कल्पना आप नहीं कर सकते। पाकिस्तानी, अमरीकी, चीनी फासिस्ट त्रिकोण के बावजूद अपने देश का स्वर इतना तेजस्वी है यह कितना-कितना बल दे जाता है वहाँ। एक नया अर्थ, एक नया उत्साह। उस

दिन शिलांग में आधी रात उनका भाषण सुना था, एक-एक वाक्य रुक-रुक कर बोलीं, लेकिन आज उनकी वाणी में निर्बाध प्रवाह है, चुनौती स्वीकारने का बल और गोरी सरकारों के षड्यन्त्र के समक्ष भारत की नियति को पहचानने और उसका साक्षात्कार करने का दृढ़ निश्चय।

भाषण खत्म हो गया है और जीप के बानेट पर मैं बैठा हुआ हूँ। हमारे सैनिकों की चहल-पहल, युद्धबन्दियों की आवाजाही, मेस के टेलीफोन पर अफसरों की चीख-चीख कर रीयर क्वार्टर्स से बातचीत, दो-दो तीन-तीन टनवाली फौजी ट्रकों की घरघराहट, इन तमाम आवाजों के बीच एक और आवाज है, धान की बालियों के बीच हँसिये की खप खप। इस सारे सैनिक दृश्य के बिलकुल बगल में खेत है और कहीं-कहीं तो खेत इनके बीच में चले आये हैं और खेतों के बीच में खली जगहों में फौजी ट्रक या तम्बू। लेकिन किसान निश्चिन्तता से छावनियों के बीच अपने खेत में पकी फसलें काटने में जुटे हुए हैं। ब्रह्मपुत्र के तट की यह मिट्टी कितनी उपजाऊ है। मैं उस साँवले से अर्धेड़ किसान और उसके दोनों सहायक छोकरों को देखता हूँ, दूर पर उनके घर की दो औरतें बालियाँ तोड़-तोड़ कर अलग रख रही हैं। सिंध, गंगा, ब्रह्मपुत्र ! संसार की सर्वप्रथम महान् संस्कृति की प्रवाह धाराएँ। हिमालय की पुत्रियाँ जाने किस प्रागैतिहासिक काल से चट्टानों से दुर्द्धर्ष संघर्ष करते हुए जो मिट्टी बहाकर लायी हैं उसी की परतों ने वह धरती बनायी है, जो संसार की महानतम सभ्यता की जननी बनी। जो जीवन इन नदियों की घाटी पर पनपा वह जीवन बहु आयामी था। उसने ज्योतिष गणना के सहारे आकाश को थाहा, नदियों, पर्वतों को एक नये आन्तरिक अर्थ दिये, वनों में बैठकर आरण्यकों की रचना की, समुद्रों को पार कर द्वीप द्वीपान्तर में जीवन के नये सांस्कृतिक आयामों का विस्तार किया। मनुष्य की आन्तरिकता की अभिव्यक्ति के हर माध्यम को पूर्णता तक पहुँचाया वह चाहे भाषा, व्याकरण और लिपि हो, चाहे स्वर, नाद और राग हो, चाहे रेखा, रंग और आकृति हो। जीवन जीने की पूरी पद्धति एक कलात्मक पूर्णता तक पहुँचा दी गयी। वेशभूषा हो या भवन निर्माण, छप्पन व्यंजनों का भोग हो या पान का बीड़ा सजाना, माला गूथना हो या केश सज्जा, ब्रह्मजीव का सम्बन्ध हो या नर नारी का प्रणय सम्बन्ध। और यह सारी जीवनोपलब्धि जिस एक आधार पर स्थित थी वह था यही सिन्ध, गंगा, ब्रह्मपुत्र की घाटी का सीधा-सादा किसान। और जब भी एक अपेक्षाकृत सभ्य सुसंस्कृत मानवीयता को प्रतिष्ठित करनेवाले समृद्ध क्षेत्र पर बर्बर, असंस्कृत मानवीयता से रहित लुटेरों ने हमला किया तब तब इसी किसान को सबसे भयानक दमन झेलना पड़ा। रौंदे हुए खेत, जले हुए गाँव, पोखरों में लाशें, भालों की या बेयोनेट की नोकों पर टँगे हुए बच्चे, बलात्कार से क्षत-विक्षत वधुएँ और कन्याएँ और सामूहिक कत्लेआम, हर बार अपेक्षाकृत बर्बर हमलावरों ने इसी किसान की छाती पर यह रक्त गाथा लिखी है। यही

नहीं इन किसानों को, शिल्पियों को, कामगारों को जो सभ्यता की नींव को पुख्ता करते हैं, उन्हें दोहरी यातना झेलनी पड़ी है। उत्पादित माल पर व्यापार द्वारा अधिकार करनेवालों ने उनका शोषण किया है और राजसत्ता जिनके हाथों में रही है उन्होंने इस शोषण को कानूनी संरक्षण दिया है। कभी-कभी धर्म के व्याख्याताओं ने भी दूसरों को ऊँचा और इन नींव के स्तम्भों को जाति या वर्ण के आधार पर नीचा बताकर इन्हें कमजोर किया है, सभ्यताओं को अन्दर से खोखला बनाया है।

और तभी इस असन्तुलन को दूर करने के लिए जो नये संतुलन की खोज हुई है उसे हमने कभी समाज सुधार, कभी राजनीतिक क्रान्ति की संज्ञा दी है। उन क्रान्तियों में अनुपयोगी लेकिन सत्ताधीश वर्ग को पराभूत कर उस वर्ग को पुनः प्रतिष्ठित करने की कोशिश की गयी, जो नींव का निर्माता है। उसे स्वतन्त्रता, समता, बन्धुत्व की शब्दावली दी गयी हो, या 'जाति पाँत पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई' से प्रतिष्ठित किया गया हो या व्यास की वाणी "नहि मानुषात् श्रेष्ठतरम् हि किञ्चित्" से व्यंजित किया गया हो। इसीलिए मनुष्य की गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने का हर संघर्ष मुझे महाभारत लगा है, जीवन को उसकी संपूर्ण विविधता में प्रस्तुत करता है यह युद्धक्षेत्र जो यहाँ नहीं, वह कहीं नहीं, "यन् नुन भारते, तन् नुन भारते।"

एशिया जो संसार की महानतम सभ्यताओं, संस्कृतियों और धर्मों की जन्मभूमि रहा है, आज औपनिवेशिक शोषण से मुक्त होकर अपनी ऐतिहासिक नियति के साक्षात्कार के द्वार पर खड़ा है। यह दीन हीन अधनंगा किसान, यह झूठे दम्भों का शिकार उच्च वर्ण, यह आशंका और अनिश्चयग्रस्त मध्य वर्ग, यह उपनिवेशवादियों के औद्योगिक क्रान्ति के आर्थिक शोषण का उत्तराधिकारी मूल्यभ्रष्ट व्यापारी, यह भटका हुआ आत्मविश्वास रहित झूठी आक्रामकता को रक्षा कवच की तरह ओढ़े बुद्धिजीवी, ये सब इतिहास के नये मोड़ पर अपनी नियति के साक्षात्कार के द्वार पर खड़े हैं। उस वज्र कपाट को तोड़कर एशिया के भव्यातीत की वर्तमान विसंगतियों का अतिक्रमण कर ये क्या अपनी नयी महान नियति का साक्षात्कार कर पायेंगे ?

धान की बालियों से उपजे इस दिवास्वप्न में मैं किस कदर खो गया रहा होऊँगा कि मुझे पता ही नहीं चला कि जनरल का हेलिकॉप्टर कब आया, कब उतरा और फ्लाईंग आफिसर वर्मा मेस से चाय का प्याला लेकर कब मेरे पास आकर खड़े हो गये। "क्या ऐश हो रहे हैं भारती साहब के, जीप का बानेट न हुआ गोया इनलोपिलो का सोफा हो गया ?" वह अपनी चिरपरिचित तर्ज में व्यंग्य कसते हैं, "आप यहाँ झख मार रहे हैं और वहाँ जनरल साहब मैमनसिंह में आप लोगों को बार-बार याद कर रहे थे।" "मैमनसिंह में ?" मैं पूछता हूँ।

हाँ, आपको मालूम नहीं ? आज हमने मैमनसिंह भी आजाद करा लिया। पाक आर्मी सुबह ही छोड़कर भाग गयी। खबर मिलते ही जनरल ने कहा हेलिकॉप्टर वहाँ

ले चलो। और वहाँ जाकर उतरते ही पूरे शहर में स्वागत हुआ। क्या खूबसूरत शहर है !

हम दौड़कर जनरल के पास जाते हैं, उन्हें बधाई देते हैं और उनके पूछने पर कि हम लोग साथ क्यों नहीं थे, हम उन्हें याद दिलाते हैं कि उन्हीं का आदेश था कि हम नाव से इधर आये। 'ओ यस, उस समय मैं तुम्हें नहीं ले जा सकता था क्योंकि मधुपुर और टंगाइल के बीच मुठभेड़ हुई थी। हमारे हेलिकॉप्टर पर जबर्दस्त फायरिंग की उन लोगों ने। क्यों वर्मा, विंग्स में कोई गोली बोली लगी क्या ? अरे कोई 'सूवनीर' नहीं लाये उनका !

“उनके कुछ घायल और कई कैदी भी लाये हैं।”

एम. एम. सिंह से पूरी घटना मालूम हुई। मधुपुर जीत कर हमारी सेनाएँ आगे बढ़ रही थीं। टंगाइल से चार मील पहले अकस्मात् मुठभेड़ हो गयी उस पाकिस्तानी सेना से जो मैमनसिंह छोड़कर ढाका लौट रही थी। उन्होंने हमारी टुकड़ियों पर हमला बोल दिया पर उन्हें नहीं मालूम था कि पीछे हमारी पैराटुपर टुकड़ियाँ भी हैं। दोनों ओर से जमकर लड़ाई हुई। उनके 30 के लगभग सैनिक मारे गये, हमारे भी 4, बाकी लोगों को हमने कैद कर लिया। उनके दो बन्दी अफसरों को जनरल हेलिकॉप्टर पर साथ ही लेते आये। कुछ उनके घायलों को भी।

पोखर से उड़ते जलपाँखियों की एक लम्बी टेढ़ी कतार ! दिन बड़ी खूबसूरती से ढल रहा है आज। खुला आसमान। सिर्फ दूर जमालपुर के आकाश पर एकाध पैराड्रापर हवाई जहाज काफी-काफी देर बाद दीख जाता है। शेरपुर बाजार में कहीं दूर पर लाउडस्पीकर लगा है जिस पर लड़के-लड़कियाँ मिल कर कोई बाँगला गीत गा रहे हैं। कतार की कतार सिविल ट्रकें सप्लाई लाद कर आ रही हैं। पते पूछ-पूछकर यथास्थान सामान पहुँचा रही हैं। ज्यादातर सामान पार उतारे जाने के लिए ब्रह्मपुत्र के किनारे जा रहा है। यहाँ से ब्रह्मपुत्र तक सारी सड़क कान्वायों से भरी है। अब हम घाट की रौनक देखने के लिए ब्रह्मपुत्र की ओर जा रहे हैं।

जहाँ हमारी आर्टिलरी यूनिट थी, वहाँ अब सेना के कोई लोग नहीं हैं। उस गाँव में ग्रामवासी अपने कामधाम में लगे हैं। उस दिन यहीं पर जीप खड़ी कर हम पैदल उतर कर मीलों चल कर ब्रह्मपुत्र पर गये थे। आज जीप छोड़ने की कोई जरूरत नहीं। वह रहा दायीं ओर वह बंकर और खाई, जिसमें खड़े होकर जमालपुर का सर्वेक्षण दूरबीन से किया गया था। यहाँ से जरा आगे बायीं ओर मुड़कर यह पक्की सड़क नदी के किनारे-किनारे जाती है। उस दिन हम लोग खेतों में से गाँव

में होते हुए गए थे। आज सड़क के किनारे-किनारे खेतों की तरफ ट्रकों की कतारें खड़ी हैं सामानों और सैनिकों से लदी। आज मीलों तक फैला हुआ यह दृश्य सचमुच अद्भुत है। एक ओर बालू खोद कर नीचे किनारे तक पहुँचाने वाली सड़क बना दी गयी है। आसपास किनारे-किनारे कितनी ही नावें। कुछ खड़ी हैं, कुछ उस पार जा रही हैं, कुछ उस पार से आ रही हैं, कुछ सामान और सवारी लाद रही हैं, कुछ उतार रही हैं। बड़े-बड़े रस्से, स्टील के तरह-तरह के वेड़े और पुल बनाने के समान, कुछ नावों को आपस में जोड़ कर उन पर लोहे की पटरियाँ लगा कर लदे लदाए ट्रक उतारने के वेड़े बनाये गये हैं, कुछ वेड़े ट्रक लाद कर बीच धार में जा रहे हैं, कुछ इधर ट्रक लाद रहे हैं, कुछ उधर ट्रक उतार रहे हैं। कुछ गीली बालू में फँसे ट्रकों को भीड़ धक्के लगा रही है। और इस तमाम भीड़भाड़ में हमारे इंजीनियर जीपों पर दौड़ लगा रहे हैं इधर से उस बिन्दु पर, उस बिन्दु से वापस इधर, पार उतरने के लिए मुक्तिवाहिनी के जल्ये श्री इन्तजार कर रहे हैं कुछ पैदल कुछ अपनी जीपों पर। और हमारी सेना की टुकड़ियाँ भी विशाल ट्रकों में भरी हुई। ट्रकें एक क्यू में लग गयी हैं पार उतरने के लिए और ट्रकों के नये-नये कान्वाय आते जा रहे हैं। कुछ सैनिक खड़ी ट्रकों में से पाँव सीधा करने के लिए उतर गये हैं, कुछ ट्रकों में ही बैठे गपशप कर रहे हैं। धूल, बालू, गर्द-गुबार का बड़ा-सा बादल इधर छा गया है। एक ट्रक विशेष आकर्षण का केन्द्र है क्योंकि उस पर बैठे सैनिकों के पास एक छोटा-सा प्यारा-सा पालतू हिरन का बच्चा है। उनका आग्रह है कि वे अपना यह पालतू हिरन अपने साथ ले जायेंगे। और लीजिए इधरवाली ट्रक में सिपाहियों के बीच हमारे पूर्व परिचित खुदादाद और खानअली बैठे हैं, नाक और माथे पर बदस्तूर पट्टियों का शृंगार किये हुए। हमें देखकर प्रसन्न मुद्रा में जोर-जोर से हाथ हिलाते हैं। कुछ कहना चाहते हैं लेकिन ट्रक रुकती नहीं।

डूबते सूरज की ढलती तिरछी सुनहरी धूप सारे दृश्य पर ढल रही है। एक अजीब परिपूर्णता का भाव। ब्रह्मपुत्र का युद्ध समाप्त हुआ। हमारी सेना पार उतर रही है। दो-तीन दिन में शायद बड़ा पुल भी हमारे इंजीनियर बना लें। ब्रिगेडियर क्लेयर टंगाइल रवाना हो चुके हैं।

मैं अपनी मृत्यु (या जीवन) के स्थल पर खड़ा हूँ। डूबते सूरज की धूप में बांस की लम्बी-लम्बी छायाधारियाँ मेरे चेहरे पर पड़ रही हैं। बाँसों के बीच से गोधूलि में वेड़ों पर पार उतरते ट्रकों की छायाकृतियाँ दीख रही हैं। एक दिन यहीं मेरे पाँवों के पास बहती ब्रह्मपुत्र की काली कीचड़ मिली बालू मोटार तोपों के गोले से फव्वारे की तरह उछल कर हजारों-लाखों बूँदों के रूप में देर तक गिरती थी, टप-टप-टप। और धीरे-धीरे धूप मुझे घुला देती है। मैं बिलकुल अकेला हूँ। अपनी ही नियति के समक्ष लेकिन धीरे-धीरे वह नियति हरेक से सम्पृक्त होकर एकाकार होने लगती है। यह मुक्ति-संग्राम, यह रक्त-मुक्ति में उभरता नया देश, यह करवट लेते हुए खेत, यह एक महान लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्राण हथेली पर रखकर जाते

हुए बहादुर सैनिक, ये नावों के बेड़े, ये क्षितिज पर कुछ बादल, और यह शान्त बहती नील सुनहरी ब्रह्मपुत्र। कहाँ है शून्य ? कहाँ है भीड़ का अकेलापन ? कहाँ है भय ? कहाँ है निरर्थकता, क्या किसी ऐसे ही क्षण में बाँगला देश की किसी नदी-सन्ध्या के क्षण में रवीन्द्र ने कहा था :

शून्यमने कोथाय ताकास
सकल बातास, सकल आकाश
ऐ पाखेर ऐ बांशिर सुरे
उठे शिहरि
ऐ बार मासिये दिते हवे आमार
एइतरि !

ऐसे शून्य भाव से क्या देख रहा है तू ?
क्या तूने सुना नहीं कि बाँसुरी बज रही है जिसके सुर से सारा
बातास सारा आकाश सिहर उठा है :
नहीं, इस बार मैं अपनी नौका धार में उतार ही दूँगा।

ढाका की मुक्ति-कथा : ब्रिगेडियर क्लेर के शब्दों में

ढाका की ओर भारतीय सेनाओं का बढ़ाव यद्यपि तीनों दिशाओं से हुआ था, किन्तु पूर्व और पश्चिम की ओर से आनेवाली सेनाओं का मुख्य कार्य दुश्मन को उलझाये रखना और भरमाना था कि न जाने किस दिशा से ढाका पर निर्णायक आक्रमण होगा। उन दोनों दिशाओं में बड़ी-बड़ी नदियों के कारण पूरा साज-सामान लेकर नये पुल बनाकर योजना के अनुसार ढाका पर अधिकार करने की जिम्मेदारी उत्तर से आनेवाली हमारी सेना पर ही थी। जमालपुर को जीतते समय हमने ब्रह्मपुत्र को पार कर लिया था। अब हमारी राह में कुछ छोटी-छोटी नदियाँ भर थीं जिन्हें पार करना अधिक कठिन न था।

बारह दिसम्बर को सुबह हम लोगों ने ढाका की ओर कूच किया जमालपुर से। टंगाइल के पास मैमनसिंह और जमालपुर के भागे हुए पाक फौजी जमा होकर अपने पुनर्गठन का प्रयास कर रहे थे। हमने उन्हें इसका मौका दिये बिना घेर लिया। जम कर लड़ाई हुई। करीब तीन सौ पाक सिपाही उस लड़ाई में मारे गये। हमने उनके हेवी मोर्टार्स और सारे वाहन पकड़ लिये। हम बिना रुके आगे बढ़ते रहे। पैराड्राप्सों के द्वारा हमने टंगाइल के पार करीब 600 जवान उतार दिये थे। शाम के चार बजे तक की फौज को साधारण नौकाओं से पार किया गया। इस काम में मुक्तिवाहिनी ने हमारी पूरी मदद की। हमारे यातायात के साधन पीछे छूट गये थे। कादिर सिद्दीकी के नेतृत्व में मुक्तिवाहिनी ने हमारे लिए उस इलाके के सारे वाहन जुटा दिये। 20 बसें थीं, बहुत से रिक्शे थे, बाद में बाकी लोग पैदल ही चले। रात के 8.30 बजे हम लोग कलियाकार पहुँचे। रास्ते में मिर्जापुर में एक हल्की-सी मुठभेड़ हुई, जिसमें सात पाकिस्तानी फौजी मारे गये।

दूसरे दिन 13 दिसम्बर को हमने फिर आगे बढ़ना शुरू किया। हमें पता चला कि कुछ दूर पर पाकिस्तानी अधिकारियों का पड़ाव है। हमने अचानक उन्हें घेर कर

चकित कर दिया। बिना लड़े ही उन लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया। मुझे यह जानकर बहुत ही खुशी हुई कि बन्दिनों में ब्रिगेडियर कादिर भी थे, जो मेरे विरुद्ध पाकिस्तानी फौजों का नेतृत्व कर रहे थे। उनके अलावा छह अफसर और 26 अन्य सैनिक थे। हम आगे बढ़ते गये, एक छोटी-सी तुरग नदी पड़ी। उस पार दुश्मन के टैंक थे, किंतु हम लोगों ने अपने रॉकेट-लांचरों के द्वारा उन्हें बेकार कर दिया। हमने ढाका को कई तरफ से घेरने की योजना बनायी और धीरे-धीरे अपना बढ़ाव जारी रखा।

इस बीच हम लोग दुश्मन के पास आत्मसमर्पण करने के सन्देश लगातार भेजते रहे। 14 और 15 को अपना शिकंजा हम मजबूत करते रहे। हमने मिर्जापुर पुल पर कब्जा कर लिया। अब हम लोग ढाका के मुफस्सिल में पहुँच चुके थे पर हम चाहते थे कि खून खराबा कम से कम हो। इसलिए दुश्मन का मनोबल तोड़ने के लिए हम लोगों ने ढाका की छावनी, हवाई अड्डे तथा गवर्नर हाउस पर बमबारी करनी शुरू की। मैं अपनी वायु सेना को बधाई देना चाहता हूँ। हमारे हवाबाजों ने बड़ी मुत्तैदी और सटीक निशानेबाजी का प्रमाण दिया। हमारे हवाई हमलों से घबरा कर न केवल गवर्नर डॉ. मलिक ने इस्तीफा दे दिया, बल्कि पाकिस्तानी फौज के बड़े अधिकारियों में भी निराशा व्याप गयी। वे भीतर-भीतर समझ गये थे कि लड़ाई में उनकी हार तो निश्चित है ही, युद्ध करने पर बड़ी संख्या में उनकी फौज को हताहत होना पड़ेगा। असल में हमने दुश्मन को पाँच भिन्न स्थानों से चॉप कर उसे बिलकुल बौखला दिया था। हमारी जितनी शक्ति थी, उससे कई गुना अधिक शक्तिशाली होने का आभास हमारी व्यूह रचना के कारण दुश्मन को होता रहा।

अपनी पूरी तैयारी कर लेने के बाद हमने 16 तारीख को दुश्मन को अल्टीमेटम भेजने का निश्चय किया। मेजर जनरल नागरा ब्रिगेडियर संत सिंह को लेकर मीरपुर पुल पर गये। वहाँ से उन्होंने अपने दो अफसरों के हाथ लेफ्टि. जनरल नियाजी के नाम पत्र भेजा, जिसका मजमून यही था कि मैं अपनी फौज के साथ यहाँ तक आ पहुँचा हूँ। यदि आप अपनी कुशल चाहते हैं तो आत्मसमर्पण कर दें। आत्मसमर्पण कर देने के बाद आपकी और आपकी पूरी सेना की सुरक्षा की जिम्मेदारी मैं लेता हूँ। हमारे दोनों अफसर सफेद झण्डा लेकर उस पार गये। उस ओर मेजर जनरल जमशेद ने उनका स्वागत किया। लेफ्टि. जनरल नियाजी ने आत्मसमर्पण करना स्वीकार कर लिया और मेजर जनरल जमशेद को हमसे मिलने भेजा। उनकी गाड़ी को आते देखकर हम समझ गये कि पाकिस्तानी फौज ने आत्मसमर्पण करना स्वीकार कर लिया है। मेजर जनरल नागरा मुझे और ब्रिगेडियर संत सिंह को लेकर उनका स्वागत करने के लिए पैदल आगे बढ़े। हम लोगों के पास कोई हथियार नहीं था। हमारे साथ मुक्तिसेना के हमारे सहयोगी कादिर सिद्दीकी भी थे।

हमने मेजर जनरल जमशेद की गाड़ी पर मेजर जनरल नागरा का झण्डा लगा दिया। ब्रिगेडियर संत सिंह ने स्टियरिंग अपने हाथ में ले लिया। दोनों तरफ पाकिस्तानी सिपाहियों की सशस्त्र कतारों के बीच से हमारी गाड़ी आगे बढ़ी। वे लोग भौचक्के से

हम लोगों को देखते रहे। आगे की ओर मेजर जनरल नागरा, मैं और ब्रिगेडियर संत सिंह थे। मेजर जनरल जमशेद के साथ मुक्ति योद्धाओं का नेता कादिर सिद्दीकी गौरव के साथ पीछे बैठा हुआ था।

हम उनके हेडक्वार्टर पहुँचे। लेफ्टि. जनरल नियाजी अपने रक्षा बंकर में छिपे हुए थे। उन्हें सम्वाद दिया गया। वे 11 बजकर 5 मिनट पर वहाँ पहुँचे। मेजर जनरल नागरा और लेफ्टि. जनरल नियाजी पूर्व परिचित थे। वे दोनों गले मिले। नियाजी की आँखों में आँसू भरे हुए थे। उन्होंने हम लोगों से और कादिर सिद्दीकी से हाथ मिलाया। पराजित पाकिस्तानी सेना के सर्वोच्च सेनापति से हाथ मिलाते समय कादिर सिद्दीकी ने मुक्तिसेना का प्रतिनिधित्व किया और इस प्रकार आत्मसमर्पण की पहली रसम पूरी हुई। फिर तो कलकत्ता से मेजर जनरल जैकब आये और चार बजे के करीब आत्मसमर्पण के पत्र पर विधिवत् हस्ताक्षर हुए।

इसी बीच आत्मसमर्पण की खबर ढाका में चारों ओर फैल गयी। जनता खुशी के मारे नाच उठी। हमें खबर लगी कि इण्टरकाण्टिनेण्टर होटल के इर्द-गिर्द बहुत भीड़ जमा हो गयी है। मेजर जनरल नागरा ने मुझे वहाँ भेजा। मेरा ड्राइवर पाकिस्तानी ही था। भीड़ ने उसे घेर लिया। पर मेरे कहने पर किसी ने उसे छुआ तक नहीं। असल में भीड़ खुशी मनानेवालों की थी, हमला करने का उसका इरादा कतई नहीं था। लोग मुझसे हाथ मिलाने के लिए, मुझसे गले मिलने के लिए बताव थे। उनका प्रेम ज्यादा उमड़ा तो उन्होंने मुझे कन्धों पर उठा लिया। 'जय बाँगला' 'जय हिन्द' के नारे गूँज रहे थे। यादगार के बतौर उन लोगों ने मुझसे मेरे फौजी अलंकरण माँगने शुरू किये और फिर तो जिसके हाथ में जो लगा, उसने वह ले लिया। मैंने दोनों हाथों से अपनी पगड़ी दबा रखी थी और कहता जा रहा था कि भाइयो इसको बख्श दो। पागलपन की सीमा तक पहुँचा हुआ इतना प्रेम, इतनी खुशी, इतना उत्साह इसके पहले मैंने कभी नहीं देखा था। ढाका की आजादी बाँगला देश के मुक्ति युद्ध की सबसे बड़ी घटना है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

बंगबन्धु की वापसी

ढाका-मुक्ति के चन्द घंटों के भीतर ही प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी ने भारत की ओर से एकपक्षीय युद्धविराम की घोषणा कर दी। अगले दिन ज. यहिया खाँ ने भी उसे मंजूर कर लिया। कोई विकल्प नहीं था। किन्तु इसी के साथ मनोनीत उपप्रधानमन्त्री जुल्फिकार अली भुट्टो को एक अत्यावश्यक सन्देश भेजकर जितनी जल्दी हो सके स्वदेश लौटने को कहा गया। भुट्टो उस वक्त न्यूयार्क में थे। सुरक्षा परिषद में पाकिस्तानी पक्ष की वकालत कर रहे थे। इधर पाकिस्तान के आन्तरिक रंगमंच में फौजी तानाशाहों के खिलाफ प्रदर्शन और जुलूसों का ताँता लग गया था। अतः पराजय के लिए जिम्मेदार फौज के बड़े आकाओं के खिलाफ छोटे अधिकारियों का आक्रोश कहीं सशस्त्र विद्रोह का विस्फोटक रूप न ले ले, इसके पहले ही भुट्टो को सत्ता सौंप देने का फैसला कर लिया गया। इसका आधार बनाया गया दिसम्बर, 1970 के वे चुनाव, जिनमें भुट्टो को प. पाकिस्तान में बहुमत मिला था।

नाटकीय हलचलों के साथ एक 'विजेता हीरो' की तरह भुट्टो साहब 20 दिसम्बर को इस्लामाबाद लौटे और चटापट राष्ट्रपति तथा मुख्य मार्शल लॉ प्रशासक पद की शपथ ग्रहण की। और इसी के साथ सत्ता की बागडोर एक विशुद्ध फौजी तानाशाह के हाथ से एक सिविलियन तानाशाह के हाथ में आ गयी।

बिखरे हुए देश को बटोरने के लिए भुट्टो ने सबसे पहली यही घोषणा की कि शेख मुजीब के साथ वार्ता की जायेगी। फलस्वरूप यहिया खाँ द्वारा दी गयी मौत की सजा को रद्द करके शेख को पश्चिमी पाकिस्तान में स्थित मियाँवाली जेल से निकाल कर रावलपिंडी के एक बँगले में रखा गया। किन्तु 'सुरक्षा की दृष्टि से' नजरबन्दी जारी रही। 26 दिसम्बर से 8 जनवरी तक के बीच का करीब एक पखवाड़ा बहुत ही नाटकीय बीता। अटकलों के तमाम उतार-चढ़ाव आये। भुट्टो ने घोषणा की कि शेख मुजीब को रिहा कर दिया जायेगा, किन्तु पाकिस्तानी जनता की राय ले कर ही। इस दौरान भुट्टो ने शेख से दो बार मुलाकात की। उन्हें यह समझाने के भरसक प्रयास किये कि प.

पाकिस्तान और बांग्ला देश के बीच कुछ-न-कुछ सम्बन्ध अवश्य रखा जाना चाहिए वह सम्बन्ध चाहे बहुत ढीला और नाममात्र का ही क्यों न हो। भुट्टो ने शेख को बार-बार समझाया कि उससे दोनों का हित है और पाकिस्तान की परिकल्पना को भी जिन्दा रखा जा सकेगा।

किन्तु 25 मार्च के बाद से बांग्ला देश पर ढाये गये जुल्मों से अनभिज्ञ होते हुए भी शेख ने कोई वायदा करने से इनकार कर दिया। उन्होंने भुट्टो को साफ बताया कि बिना अपने देशवासियों से मिले वे इस बारे में कुछ नहीं कह सकते। भुट्टो की स्थिति अब साँप-छट्कंदर वाली थी। भारी असमंजस। यही कि शेख की ढाका वापसी से नवोदित राज्य की नयी सरकार को बल मिलेगा। उसकी वैधता को भी। किन्तु सौदेबाजी के लालच में रोके रखना भी तो सम्भव नहीं। विश्व जनमत का सवाल था, घरेलू मोर्चे का सवाल था। कठिनाइयाँ बढ़ती ही जायेंगी। अतः भुट्टो ने अन्त में शेख को रिहा करने का ही फैसला किया। इसके पहले कराची की जनसभा में जनता की राय भी ली गयी।

आठ जनवरी का दिन इस नाटक का सबसे उलझन भरा दिन था। भारतीय समय के अनुसार करीब साढ़े तीन बजे तड़के भुट्टो ने शेख को रिहा कर दिया। साथ ही एक विशेष विमान से एक 'अज्ञात' स्थान को रवाना भी। रवानगी के वक्त भुट्टो भी हवाई अड्डे पर मौजूद थे। कूटनीतिक अंचलों के दोपहर बाद तक के कुछ घण्टे बहुत ही बेचैनी में बीते। अचानक खबर कौंधती है—मुजीब लन्दन में ! लोग आँखें फाड़े रह जाते हैं। शाम से पहले टेलिफोन पर श्रीमती गांधी से सम्पर्क, जो उस वक्त लखनऊ में थीं और ढाका लौटते वक्त दिल्ली में रुकने का निमन्त्रण स्वीकार !

नौ जनवरी, रविवार, को नयी दिल्ली ने शेख का बहुत ही भावभीना, उमड़ता हुआ हार्दिक स्वागत किया। पूर्ण राजकीय सम्मान के साथ 31 तोपों की सलामी से। श्रीमती गांधी के साथ एक संक्षिप्त वार्ता के बाद कुछ ही घण्टों में वे ढाका पहुँचे गये। नाचते-गाते, खुशी में पागल बांग्ला देशवासियों ने मौत के जबड़े से बचकर आये अपने नेता को सर-माथे पर उठा लिया। शेख मुजीब अभिभूत थे, अपने संग्राम की सफलता पर उत्फुल्ल भी, लेकिन उन्हें दूर पंजाब की एक जेल में रखा गया था। न अखबार, न रेडियो। उनके आह्वान के बाद उनकी अनुपस्थिति में आन्दोलन कैसे चला, कैसे भयंकर अत्याचार पाकिस्तान ने किये इसका उन्हें केवल हल्का आभास था। उसका विस्तृत हाल सुनकर शेख मुजीब उसी विशाल जनसमूह के स्वागत-समारोह में माथे पर हाथ रखकर फफक-फफककर रो पड़े। उसके बाद ढाका के रेसकोर्स मैदान में, जहाँ उन्होंने पहली बार स्वाधीन बांग्ला देश के लिए अहिंसक आन्दोलन का आह्वान किया था, वहीं मुक्ति के बाद उनका ऐतिहासिक भाषण हुआ। उन्होंने अपनी जनता को बधाई दी, मुक्तिवाहिनी के योद्धाओं को बधाई दी, मित्रवाहिनी (भारतीय सेना) के स्नेह और आभार और अन्त में स्पष्ट शब्दों में मुद्दों के सवाल का जवाब दिया। भुट्टो ने शेख मुजीब की रिहाई के बाद उनसे मुलाकात की और प्रस्ताव रखा कि पाकिस्तान

के टुकड़े न होने दें। बाँगला देश और पाकिस्तान में कुछ ऐसे विशेष सम्बन्ध सूत्र बने रहने दें कि पाकिस्तान की परिकल्पना नष्ट न हो।

ढाका में रेसकोर्स मैदान के अपने भाषण में शेख ने स्पष्ट कहा कि पाकिस्तान का हमारे लिए कोई विशेष अर्थ नहीं। वह भी अन्य विदेशी राष्ट्रों की तरह एक विदेशी राष्ट्र है। बाँगला देश पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्र है, जहाँ प्रजातान्त्रिक पद्धति चलेगी और धर्मनिरपेक्षता का पूरा पालन होगा।

मजहब के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा। बाँगला देश के जो भी हिन्दू या मुस्लिम शरणार्थी भारत में इस समय हैं, धीरे-धीरे वापस आयेंगे। इस्लाम के आधार पर दो विभिन्न भूभागों को एक शासन में रखकर इस्लामी राज्य बनाने की पाकिस्तान की कल्पना हमेशा के लिए दफन हो गयी।

सारे संसार में इसे एक ऐतिहासिक मोड़ माना गया और जब मित्रवाहिनी (भारतीय सेनाएँ) लौटने लगीं तो लोगों ने मुक्त प्रशंसाभाव से कहा कि यह भारत की ही गरिमा है कि जीते हुए प्रदेश पर कब्जा करने का लोभ न कर अपना रक्त बहाकर उन्हें स्वतन्त्रता प्रदान करे। पाकिस्तानी आक्रमण, अमेरिका के सातवें बेड़े की धमकी, चीन के षड्यन्त्र इन सबके समक्ष अडिग और दृढ़ संकल्प रहकर जो विजय हासिल की उससे विश्व इतिहास में इन्दिरा जी का एक अनूठा स्थान बना।

विश्व के अनेक प्रशासकों, राजनेताओं, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों, इतिहासकारों ने इन्दिरा जी की इस भूमिका का तरह-तरह से विश्लेषण किया, उन्हें अनेक अभिनन्दनात्मक संज्ञाएँ दीं। पर उस सारे शोर-शराबों में, मेरे मन में गूँजती रही एक अनसुनी-सी, काँपते बूढ़े स्वर में सुनी हुई एक कविता—वह कविता थी बाँगला देश की वरिष्ठतम कवयित्री बेगम सूफिया कमाल की। सारे नर-संहार के दौरान वे ढाका में ही रहीं, साहस से पाकिस्तानी हुक्मरानों का विरोध करती रहीं, कुछ दिन उन्हें नजरबन्द भी किया गया, पर वे न झुकीं न ढाका छोड़कर कहीं गयीं। जब हम मुक्तिवाहिनी के साथ घने जंगलों में छिपकर स्थापित किये गये कर्नल खालिद मुशर्रफ के सैनिक अस्पताल को देखने गये तो एक बीस-बाईस वर्ष की सौम्य, शान्त लड़की हमारे पास आई। मालूम हुआ वह प्रख्यात कवयित्री बेगम सूफिया कमाल की बेटी है। बाँस के स्ट्रेचर पर और नारियल के पत्तों के छाजन का वह अस्पताल—घायल मुक्ति सैनिकों के इलाज के लिए था। बेटी डॉक्टरों पढ़ रही थी माँ से इजाजत लेकर यहाँ आ गई थी बोली, “मैं बन्दूक तो नहीं उठा सकती पर जिन भाइयों ने बन्दूक उठाई उनकी परिचर्या तो कर सकती हूँ। मेरी माँ ने प्रेरणा दी, ‘जाओ बेटी’ और रो पड़ी।”

हम पूर्ण मुक्ति के बाद शेख मुजीब के लौट आने के बाद फिर एक बार आये हैं सबसे मिलने वे जो मुक्तिवाहिनी के दिनों में मिले थे—तभी बेगम सूफिया कमाल के दर्शन के लिए जाते हैं। उनकी बेटी से मिलने का हवाला देते हैं तो फिर गर्व से हँस पड़ती है और मुँह मोड़कर आँसू पोछने लगती है।

विष्णुकान्त शास्त्री से बाँगला में बात कर पुलकित हो उठती हैं, मुझसे इसी

टूटी-फूटी हिन्दी में ही बोलती हैं—“जैसा प्रकार हमारा बेटी तैसा प्रकार इन्दिरा गांधी भी। ओ हमारा बेटी भी है पर देश का माता भी है।” कविता-लेखन किया, उनका सम्मान में—और बूढ़े काँपते स्वरों में वे कविता सुनाती हैं—शब्द याद नहीं पर तात्पर्य याद है—“ओ बेटी, तुम हृदय से माता हो, तुमसे दूसरे का दुःख नहीं देखा जाता। अर्द्धरात्रि में खूँखार नर पशु घोंसलों में आग लगाने आये सोये विहग शिशुओं की गर्दन मरोड़ने लगे तब हे पक्षी माता तुम आकाश से उतरकर उन पर झपट पड़ीं। तुमने अपने विशाल डैने फैलाकर उनके शिशुओं को छिपा लिया, उन्हें आश्रय दिया, दाना-पानी दिया और हत्यारों को भगाकर प्राणिमात्र को अभय प्रदान किया और उन्हें फिर पंख देकर उड़ने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया। तुम जैसा और कौन होगा हे पक्षी-माता।”

वे बूढ़े काँपते स्वर आज भी गूँजते हैं। इन्दिरा जी की उस अनूठी ऐतिहासिक भूमिका को इस अनूठे काव्य-शब्द से अधिक और कौन व्याख्यायित कर सकता है—‘पक्षी माता।’

युद्धोपरान्त

न्यायसिद्ध

युद्धोपरान्त

बाँगला देश में भारतीय सेनाओं की पूर्ण विजय और पाकिस्तानी फौजों के बिना शर्त आत्मसमर्पण से पाकिस्तानी सेना ही नहीं बल्कि पाकिस्तानी जनता का आत्मबल बहुत गिरा हुआ था। पाकिस्तानी सरकार ने अपनी जनता को इस झूठे प्रचार से भरमाया हुआ था कि पाकिस्तान को युद्ध में सफलता मिल रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ में बचे-खुचे पाकिस्तान के महत्वाकांक्षी राजनेता शाहनवाज भुट्टो ने पूरे साढ़े तीन घण्टे का अत्यन्त भड़काऊ भाषण दिया था और घोषित किया था कि पाकिस्तान एक हजार वर्ष तक भारत से युद्ध करता रहेगा।

लेकिन जब ढाका में पाक सेनाओं ने आत्मसमर्पण कर दिया, श्रीमती गाँधी ने इकतरफा युद्धबन्दी घोषित कर दी और धमकी दी कि सिन्ध में जितना पाकिस्तानी भू-भाग भारतीय सेनाओं ने जीता है उसे खाली नहीं किया जायेगा, तब पाकिस्तानी जनता को असलियत का आभास होने लगा।

सोलह दिसम्बर, 1971 को आत्मसमर्पण के समय लगभग नब्बे हजार पाकिस्तानी सैनिक युद्धबन्दी बना लिये गये थे। और जब पराजित पाकिस्तानी सेनाएँ और युद्धबन्दी पाकिस्तान लौटने लगे और उन्होंने असली हाल बताया तो पाकिस्तान में भुट्टो के खिलाफ तीव्र असन्तोष भड़क उठा। पाकिस्तान के कुछ मित्र देश कोशिश करने लगे कि वे बीच में पड़कर पाकिस्तान की रही-सही इज्जत बचाएँ और उसे फिर अपनी अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति नियन्त्रण योजनाओं का मोहरा बनाएँ लेकिन इन्दिरा जी ने कड़ा रुख अपनाया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि यदि पाकिस्तान स्थायी शान्ति चाहता है तो बिचौलियों की शरण जाने के बजाय सीधे भारत से बातचीत करे। अन्त में कोई चारा न देखकर भुट्टो मजबूर हो गये और स्वयं भारत आकर बात करने की तजबीज पेश करने लगे।

इन्दिरा जी ने वार्ता का स्थान और तिथि निश्चित की—स्थान शिमला, जुलाई में भुट्टो आये। सारे संसार से पत्रकार, राजनीतिक पर्यवेक्षक, कूटनीतिज्ञ इस वार्ता

युद्ध यात्राएँ : 285

प्रकरण को प्रत्यक्ष देखने के लिए शिमला में एकत्र हो गये।

युद्ध समाप्ति के लगभग छह-सात महीने बाद, जुलाई, 1972 में यह वार्ता हुई। कई दिनों की लगातार बातचीत के बाद 3 जुलाई, 1972 को सुबह साढ़े ग्यारह बजे, राष्ट्रपति भुट्टो और प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी एक समझौते पर पहुँच सके और दोपहर 12 बजकर 40 मिनट पर दोनों ने शिमला समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये।

मुख्य मुद्दे यह थे कि दोनों देश हर प्रकार के विवाद को आपसी शान्तिपूर्ण बातचीत द्वारा निबटारेंगे। पश्चिमी सरहद पर अकस्मात् आक्रमण कर कश्मीर के छम्ब जौरियाँ तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में जो पाकिस्तानी सेनाएँ घुस आई हैं वे तुरन्त उस क्षेत्र को खाली करेंगी और सिन्ध के कुछ क्षेत्र (नगर पारकर आदि) पर भारतीय सेनाओं ने जवाबी कब्जा किया है, वे भी धीरे-धीरे खाली कर दिये जायेंगे।

इस प्रक्रिया में कुछ देर लगनी थी। वस्तुतः उस समय भारतीय सेनाएँ छावनियों में लौट चुकी थीं और पश्चिमी सरहदों और विजित क्षेत्रों की देखभाल कर रहे थे सी. आर. पी. एफ. (केन्द्रीय रिजर्व पुलिस फोर्स) तथा बी. एस. एफ. (सीमा सुरक्षा बल) के जवान।

बी. एस. एफ. के महानिदेशक थे रुस्तम जी। उन्होंने हमारी युद्ध यात्राएँ बड़े चाव से पढ़ी थीं। वे बम्बई आये हुए थे। उन्होंने आमन्त्रित किया कि हम पश्चिमी सरहदों को भी एक बार देख आयें। सारा प्रबन्ध बी. एस. एफ. की ओर से रहेगा।

इस यात्री का मन पुनः सन्नद्ध हो गया और शुरू हुई हमारी यात्रा राजस्थान के बाडमेर क्षेत्र से रेगिस्तान पार करते हुए, कच्छ का रन पार करते हुए पाकिस्तानी सिन्ध के नगर पारकर क्षेत्र से—और फिर कश्मीर की दुर्गम बीहड़ घाटियाँ—एक-दूसरे ही प्रकार का विचित्र रोमांचक अनुभव...

भरी दोपहर अंधियारा

ऐंड लिटिल टाउन,
ढाई स्ट्रीट्स फॉर एवर मोर
विल साइलेंट बी ;
ऐंड नॉट ए सोल टु टेल
व्हाई दाउ आर्ट डेसोलेट,
कैन एवर रिटर्न ।

—कीट्स : ओड ऑन ए ग्रीशन अर्न

और, छोटे कस्बे,
तेरी गलियाँ हमेशा के लिए रहेंगी खामोश ;
और एक भी आत्मा यह बताने के लिए कि तू कैसे उजड़ गया,
लौट नहीं पायेगी कभी भी ।

तेजी से गुजरते हुए घटनाक्रम का एक अकेला क्षण कवि के जादूभरे सृजनजाल में उलझकर अकस्मात् प्रवाह से अलग होकर अनन्तकाल के लिए स्थिर हो जाता है, शाश्वत हो जाता है ! और वह क्षण परम सत्य का क्षण बन जाता है, चरम सौन्दर्य का क्षण । एक कस्बे का सुनसान जनविहीन उजड़ापन कीट्स को दीखा, यूनान के एक पुराने पात्र पर अंकित ; या दीखा नहीं—दीखा तो वह जन समुदाय, जो घने कुंजों की छाया में ढोल, बाँसुरी, मंजीरा लेकर किसी अज्ञात देवमण्डप में बलिपूजा के लिए जा रहा था और उससे उसने कल्पित कीं, उस छोटे कस्बे की उजाड़ गलियाँ, जहाँ ये लोग अब कभी नहीं लौटेंगे, क्योंकि चित्रकार ने अनन्तकाल के लिए इन्हें इन रंगों-रेखाओं में बाँध दिया है । और ये हमेशा इसी तरह इन कुंजों की छाया में गाते-बजाते चलते रहेंगे । और इनकी यह यात्रा, उस कस्बे का सूनापन, इन ढोल-मंजीरों का अनंत मौन संगीत—यह सब सत्य का, सौन्दर्य का एक कालजयी क्षण है—क्योंकि इसी कविता में

युद्ध यात्राएँ : 287

अन्त में कवि कहता है, “सौन्दर्य सत्य है, सत्य सौन्दर्य ; हम संसार में सिर्फ यह जानते हैं और बस, यही जानना काफी है।”

काश ! कि यही जानना काफी होता !

खुशकिस्मत था कीट्स, जिसने यह कल्पित उजाड़ नगर कवि की आँखों से देखा। बदकिस्मत हूँ मैं, जिसने अपनी आँखों से एक दूसरा उजाड़ नगर देखा, एक विचित्र प्रेतनगर—नितान्त जनशून्य सूनी गलियाँ, उजड़े घर, बरबाद दुकानें—पूरा शहर साबितो-सालिम अच्छा-खासा लेकिन एक बाशिन्दा देहरी का दीप या मस्जिद पर चिराग जलाने के लिए बाकी नहीं। चूल्हों में अधजली लकड़ियाँ, अधखुले सन्दूकों से बाहर, बिखरे कपड़े, दुकानों में आधे भरे, आधे खाली डब्बे और बोरियाँ, दीवारों पर फड़फड़ाते कैलेण्डर—पूरे-का-पूरा शहर उजड़ेपन का एक खौफनाक मंजर। और यह भी कि भगदड़ कोई हजार सौ साल पहले की नहीं, सिर्फ चन्द हफ्ते पहले। अकस्मात्, एकाएक कुछ हुआ और लोग, जो जहाँ थे, भाग खड़े हुए। आँगन में फटी-लिथड़ी गुड़िया को उठाइए, तो लगता है, अभी-अभी वह दुधमुँही बच्ची रोती-चीखती माँ की उँगली थामे भाग रही है—इतनी ताजी है इस हादसे की छाप इस मुर्दा शहर पर—

“अभी-अभी मरा है यह शहर—जिसके दरवाजे पथरायी पुतलियों की तरह खुले पड़े हैं, जिसके आँगन निष्प्राण हथेलियों की तरह लुढ़क गये हैं।”

और मैं सर झुकाये, उदास, सहमा हुआ उन मुर्दा आँगनों में बेमतलब भटक रहा हूँ—न जाने किससे पूछता हुआ, “क्यों हुआ ? यह क्यों हुआ ? आखिर क्यों ?”

अंगस्त के आखिरी हफ्ते की दोपहर। जहाँ यह कस्बा बसा है (था), वहाँ थार का जानलेवा रेगिस्तान आकर समुद्र में घँस जाता है। सैकड़ों मील फैले कच्छ के रहस्यमय रन के धूप में काँपते हुए प्रसार, नमक की वजह से रुपहले। जहाँ तक नजर जाती है, नमकीन सूखी बालू-कीचड़। पलकों पर हवा में धुला नमक जलने लगता है। हाथ-पाँव नमक की वजह से फटने लगते हैं। और उसके बाद हैं ऊँची घास के समतल मैदान, मीलों फैले, और धोखा इतना कि जीप जरा दायें-बायें हुई कि घास के नीचे का अथाह नमकीन दलदल आपको जीप सहित निगल जाये। उन घास के मैदानों के पार अकस्मात् झुलसे हुए, विचित्र आंकार की शिलाओं वाले करोड़ों साल पुराने पर्वत की धूमिल रेखा। दलदल और समुद्र और रेत के बीच यह अकेला पहाड़ अजीब लगता है। और पर्वत के पार सहसा हरियाली। सुनहली-साँवली मिट्टी। मखमली

हरी घास। रेगिस्तान के बीच यह सहसा हरा सुकून। चारों ओर के खारी पानी के बीच यहाँ का पानी मीठा, अमृत।

यह सिन्ध-देश का मेरा प्रथम दर्शन है। अमर उडैरो का सिन्ध, राजा दाहिर का सिन्ध, शाह लतीफ का सिन्ध, शेख अयाज का सिन्ध, मेरा सिन्ध जिसके नाम पर मेरे वतन का नाम हिन्द, मेरी जवान का नाम हिंदी है। लेकिन मैं सांस्कृतिक इतिहास की भाषा बोलने की हिमाकत क्यों कर रहा हूँ। राजनीतिक भूगोल की भाषा में यह पाकिस्तान के सूबाएँ सिन्ध (भावी महाजिरिस्तान) का वह हिस्सा है, जहाँ हमारे सीमा सुरक्षा बल ने पाकिस्तानी रेंजर्स को दिसम्बर युद्ध में पीछे हटा दिया था। हम यहाँ वीरवाह होते हुए आये हैं। वीरवाह में जवानों ने बताया था कि नगरपारकर लेने के लिए उन्हें कोई खास युद्ध नहीं करना पड़ा। समस्या यही थी कि खौफनाक रन पार कैसे करें ? जीपें दलदल में धँसती थीं। पैदल चलने में नमक से बदन फटता था, छाले पड़ते थे। आखिरकार आसपास के गाँवों से सैकड़ों किसान अपने ट्रैक्टर ले आये और रातोंरात ट्रैक्टरों पर बैठकर सीमा सुरक्षा बल के जवान चल पड़े। शोर इतना था मानो टैंक आ रहे हों। वे नगरपारकर पहुँचे, तो पाकिस्तानी सेना भाग चुकी थी। उन्हें सपने में भी खयाल न था कि रन पर से भारतीय आ सकते हैं। शहर आबाद था। रातोंरात घर-आँगन में चिराग जल गये। दुकानों में लालटेनें टँग गयीं। शाही बाजार की रौनक दुबाला हो गयी।

“यह कस्बा सिन्ध के व्यापारियों की बहुत पुरानी मण्डी रही है। दिसम्बर युद्ध के बाद से तो व्यापार में इतनी बढ़ोतरी हुई, जितनी पाक शासन में बरसों में नहीं हुई। इतनी रौनक थी इस कस्बे में कि पाकिस्तानी इलाके से लोग इधर आने को ललक रहे थे—लेकिन अब देखिए चलकर शाही बाजार को।” सी. आर. पी. के श्री आंबेगाँवकर बबूल के कँटीले झाड़ों के बीच में से हमें शहर के अन्दर ले चलते हैं। हमारे साथी निर्देशक हैं डिप्टी कमाण्डेण्ट राजेंद्र सिंह—हँसमुख, पिलनसार साथी जो जोधपुर से बाड़मेर होते हुए रेगिस्तान की सैकड़ों मील धूल फाँककर जीप में साथ आये हैं। इस थार रेगिस्तान का यह नखलिस्तानी नगर तहसील का हेडक्वार्टर है। तहसील के विशाल सूने दफ्तर पर भारतीय ध्वज लहरा रहा है। अहाते से होते हुए उजड़े उदास मकानों के पिछवाड़े से पथरीली गलियों में होते हुए शाही बाजार पहुँचते हैं। तख्तों के फाटक खुले पड़े हैं। टीन के कनस्तर, खाली बोतलें, फूटे घड़े, फटी बहियाँ, कपड़ों की कतरनें, पिचकी लालटेनें, कालौच लगी ढिबरियाँ, तेल के पीपे, लाल मिर्चों की छोटी-छोटी ढेरियाँ, दीवारों पर पाकिस्तानी पत्रिकाओं से काटकर चिपकायी गयी सलवार-सुन्दरियों की तस्वीरें, उर्दू में मलेरिया मिटाओ के नारे, यूनानी दवाओं के कैलेण्डर, चीड़ के टूटे बक्से, तार में खोंसे पोस्टकार्डों और रसीदों की गड़ियाँ—और न आदमी, न आदम जात। सिर्फ हमारी कदमों की आहट से हम ही बार-बार चौंक उठते हैं।

अब बाजार खत्म। रहिवासी बस्ती शुरू। मकान के चारों ओर छाती भर ऊँची

दीवारों के बाड़े। यह क्या ? एक दीवार के पार एक खम्भे पर सीमेण्ट का गोल थाल-सा। मालूम हुआ यह कबूतर चौक है। दया-धरम वाले सिन्धी रेगिस्तानी शहर में कबूतरों के लिए इसमें दाना-पानी रखते थे। न वे रहे, न कबूतर। द्वार खोलकर हम अन्दर जाते हैं। बाजार का उजड़ापन फिर भी बाजार का होता है। घर-आँगन की बरबादी के बीच खड़े होकर मन पता नहीं कैसे दूसरे ढंग से पिरा उठता है। आँगन में एक गुड़िया, जिसका हाथ अलग हो गया है, प्लास्टिक की एक हरी चप्पल, एक कच्ची कढ़ाई का फटा लत्ता। दालान का दृश्य और भी दर्दनाक है। भागते-भागते टीन का जंग खाया अधखुला सन्दूक, जिसमें कुछ पुराने कागज और कपड़े, आसपास फटे-बिखरे पुराने कागजात का ढेर, नये कागजों पर अरबी लिपि में सिन्धी, कुछ बहुत पुराने कागजों पर मुण्डी देवनागरी लिपि।

दर्द की भाषा लिपि की अपेक्षा नहीं रखती। सीधे दिल को कचोट जाती है। यह खम्भे के पास पड़ी ओढ़नी किसकी होगी ? कैसे वह अपने सुहाग के आँगन को छोड़कर गयी होगी ? और यह पूजा की अँधेरी-सी कोठरी। क्या मनौतियाँ उसने माँगी होंगी ? उधर रसोईघर में सिल पर आधा पिसा मसाला सूख गया है। और यह क्या है ? एक पीढ़ा, उधर वह काठ का बड़ा पुतला उलटा पड़ा है। हम पुतले की टूटी भुजाएँ यथास्थान बिठाकर पीछे की कीलों पर उसे जमाते हैं। फिर भी वह डगमगा रहा है। खम्भे के सहारे पीढ़ा रखकर उसे टिका देते हैं। अब वह यहीं खड़ा काठ की आँखों से प्रतीक्षा करेगा इस घर-आँगन को छोड़कर जानेवालों की, जो अब कभी नहीं लौटेंगे—अगर रेगिस्तानी हवा ने उसे गिरा नहीं दिया होगा, तो अब भी वह उसी खम्भे से टिका वैसे ही खड़ा होगा। कम-से-कम उसके सिर पर छत तो है। जो इस घर को छोड़कर बाकी शहर के साथ भाग गये वे कहाँ होंगे, क्या ठिकाना ?

कैसा होता है पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने जमे-जमाये घर-आँगन की उष्ण-आत्मीयता से अकस्मात् दिन-दो दिन के अन्दर हमेशा-हमेशा के लिए उखड़ कर बूढ़े बाप, बीमार पत्नी, अबोध बच्चों सहित अकस्मात् बियावान में निरुद्देश्य एक बिस्तर, दो गठरियाँ लाद कर चल पड़ना ! अखबार में जो तस्वीर छपती है, जिसके परिचय में लिखा होता है 'शरणार्थी या विस्थापित' यह क्या कभी उस भयानक ट्रेजेडी का एक अंश भी बता पाती है, जो इनके जीवन में घटती है—जिसका थोड़ा अनुमान इस प्रेत-नगर के इस सूने-उजड़े आँगन में इस दोपहर को हो रहा है ?

“यहाँ कई मन्दिर भी हैं, सबसे सुन्दर मन्दिर है वह जैन मन्दिर।” कोई कहता है। हम उधर चल पड़ते हैं। उधर पथरीली गली थोड़े चढ़ाव पर है। पुराने बबूल की काँटेदार डालियों ने रास्ता रोक रखा है, पर हम आगे बढ़ते हैं। बाहर से भव्य दीख रहा है मन्दिर। अन्दर संगमरमर का तोरण और कंगूरों और दीवारों पर सुन्दर मूर्तियाँ। मुख्य मूर्ति तो 1947 में विभाजन के समय ही लूट ली गई थी, लेकिन बाहर की छोटी मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। बाहर के चबूतरे पर दायें कोने में मंडप के कंगूरे पर तीन जटाजूटधारी साधु वीतराग मुद्रा में बैठे हैं। कितने सजीव और कितने उदास !

नीचे प्रांगण में वायीं ओर लकड़ी के खम्भों और लकड़ी की शहतीरों का एक बहुत विशाल सभामंडप बना हुआ है । और हम आश्चर्य से देखते हैं, दीवारों पर रंग से अनेकानेक चित्र लिखे हुए हैं । पुराने रंग धुँधले पड़ने पर भी आकर्षित कर रहे हैं । विश्वामित्र-मेनका, गदा-सुमेरुधारी हनुमान, नाचते मोर, साधु को भोजन कराती सेठानी और मुरहठा बाँधे, अँगरेखे पर दुपट्टा डाले भक्तों को हाथ जोड़े खड़ा 'नगरपारकर ना बाणीया' (नगरपारकर का बनिया) ।

ऊपर की छत टूट गयी है और उससे कहीं-कहीं दीवार पर धूप झर रही है । अतीत उभर आया है । किसने बनवाये होंगे ये चित्र ? कितने वर्ष पहले ? सन् 47 तक यहाँ पूजा होती थी । साधु, मुनि, श्रावक आकर यहाँ टिकते थे । चौमासे में सभाएँ होती थीं । और फिर यह मन्दिर अँधेरा हो गया । कहाँ गये होंगे वे चित्रकार ? आजादी की रजत जयन्ती का समारोह हमने इस वर्ष मनाया । इन 25 वर्षों में उनकी तूलिका का क्या हुआ ? मालूम नहीं, पर ये मोर जाने कितने वर्षों पहले से इस दीवार पर यूँ ही पूँछ उठाये नाच रहे हैं, हनुमान उड़ रहे हैं, सेठानी पंखा झल रही है, साधु भोजन कर रहा है, बाणीया हाथ जोड़े खड़ा है—और अब दीवार टूटने लगी है । पलस्तर उखड़ने लगा है, एक दिन यह अररा कर गिर पड़ेगी । फिर पास के रेगिस्तान की रेत इसे ढंक लेगी । बबूल उग आयेंगे ।

लेकिन फिर भी यह रहेगी—अपनी ही मिट्टी में । पर उनका क्या होगा—वे बच्चे जो मोर की तरह आँगन में नाचते-कूदते थे, वह गृहवधू जो दुकान से आये पति को पंखा झलकर दालान में भोजन कराती थी, वह बूढ़ा पिता जो पूजा की कोठरी में भगवान के आगे हाथ जोड़कर खड़ा होता था—वे इस अपनी मिट्टी से उखड़कर कहाँ गये होंगे ?

पर यह नगर जो युद्ध में नहीं उजड़ा, जिस पर बम नहीं बरसे, जहाँ गोलियाँ नहीं चलीं, जो दिसम्बर '71 से जुलाई '72 तक इतना रौनक अफरोज हो गया था जितना विभाजन के बाद 25 वर्षों से कभी नहीं था, अकस्मात् उजड़ा क्यों ?

भूचाल आया ? महामारी फैली ? अकाल आया ? वज्रपात हुआ ? नहीं-नहीं, नहीं ! फिर हुआ क्या ?

हुआ—शिमला समझौता—और उसमें यह संकेत कि भारतीय सेनाएँ विजित क्षेत्र खाली कर देंगी । हमारे साथ एक युवा डॉक्टर है, गुजरात से, शायद अहमदाबाद का । विजय के बाद ही यहाँ पोस्ट हो गया था । वह उस दिन था जिस दिन यह हादसा हुआ । जिन दिनों शिमला वार्ता चल रही थी, यहाँ का हर नागरिक, दिन-रात कान

लगाये रेडियो सुनता रहता था। अत्याचारी पंजाबी हुक्कामों और यू.पी., पंजाब से आकर बसे महाजिरों के दोहरे आतंक में 25 साल से पिसते हुए पहली बार उसके चेहरे पर मुस्कराहट थी, सन्तोष था, आँगन में उजियाला था, दुकानों में रौनक थी। शाह लतीफ भिटाई के पद और शहीद भगत कँवराम के भजनों के रिकॉर्ड ग्रामोफोन पर बजते थे। गलियों के नुक्कड़ों पर अड्डे जमते थे। कहकहे लगते थे। उनको भारत के रक्षामंत्री के इन वक्तव्यों पर अटूट भरोसा था कि इस बार जिस भूमि पर कब्जा किया गया है, वह पूर्ण शान्ति-समाधान के बिना नहीं खाली की जायेगी।

तीन अगस्त '72 ! रेडियो पर समझौते की घोषणा आयी। विजित क्षेत्र से भारतीय सेनाएँ वापस लौटेंगी ! क्या ? लोगों को यकीन नहीं हुआ। कान लगाकर सुना, फिर अहमदाबाद लगाया, हैदराबाद (पाकिस्तान) से सिन्धी में सुना और बदहवास चेहरे, खौफ खायी आँखें, काँपते हाथ। कहकहे खामोश हो गये। दुकानें बन्द होने लगीं, लोग सर झुकाये अपने घरों में लौटने लगे। इतना विचित्र सन्नाटा मानो भरी दोपहर अँधियारा छा गया हो। फिर रात आयी। "इतनी खौफनाक थी वह रात भारती साहब कि आप समझ नहीं सकते। सब खामोश। बूढ़ों के खॉंसने या बच्चों के रोने तक की आवाज नहीं। सिर्फ नाले में एक बार गीदड़ चिल्लाये, फिर वे भी चुप हो गये ! "डॉक्टर बताता है, "मगर यह मानो आँधी के पहले का सन्नाटा था।"

और फिर दूसरे दिन सुबह दुकानें खुलीं। अँधाधुँध सामान बटोरकर बाकी फेंका जाने लगा। घर-घर में कोहराम। और फिर भगदड़ शुरू हुई। अगणित सिन्धी शरणार्थी भारत की ओर चल पड़े। कुछ बैलगाड़ियों पर, कुछ ऊँट पर, कुछ गधों पर और बाकी पैदल सिरों पर सामान लाद कर। बैलगाड़ियों का भाड़ा हवाई जहाज से बढ़ कर। लोग नये घर में आने पर पूजा करते हैं। एक बूढ़ी घर छोड़ कर जाते-जाते दरवाजा पूज रही थी। किस आशा में ? ऐसे क्षणों में जीवन में क्या कोई तर्क रह जाता है ?

पर ऐसे ही क्षणों में क्यों, व्यक्ति के जीवन में ही क्यों, क्या सामूहिक इतिहास की गति में कभी-कभी यह नहीं लगने लगता कि अब यहाँ कोई क्रम, कोई न्याय, कोई तर्क नहीं शेष रहा ? आम के पेड़ में आम, फलें इसमें एक कारण-कार्य का क्रम है, तर्क है; लेकिन आम के पेड़ में बबूल के तीखे काँटें फल आयें इसमें क्या तर्क शेष रहा ? आखिर सच्चे मन से शान्ति के लिए जो दो बन्धु देशों में समझौता हुआ, जिसका स्वागत सारे संसार ने किया, उससे यहाँ भय, अशान्ति, कातरता, भगदड़ क्यों उपजे ? इतिहास कभी-कभी अकारण किसी को क्यों पीस डालता है ? इसमें कोई भी तो तर्क नहीं मिल पाता। आखिर उनका क्या कसूर जो युद्ध की अमानवीय स्थिति को टालने के लिए शान्ति-सहयोग की घोषणा करते हैं ? और इनका भी क्या दोष, जो अपना रहा-सहा सम्मान अपना रहा-सहा अस्तित्व बचाने के लिए घर-बार से उखड़ कर आँधी में टूटे पत्तों की तरह उड़ने लगते हैं—बेसहारा, बेजुबान !

न्याय और अन्याय का युद्ध होगा, तो उसकी गाथाएँ स्वर्णाक्षरों में लिखी जायेंगी, शान्ति कायम हुई, तो शान्ति-निर्माताओं का जय-जयकार होगा, मानवता उन्हें कृतज्ञता

के हार पहनायेगी ; लेकिन ये जिन्होंने बैठे-बिठाये अकारण अपना घर-बार, अपनी जमीन, अपना आसमान, अपना सुख-चैन लुटा दिया, उनको इतिहास के भूल सुधार में भी कोई कभी याद करेगा क्या ?

कभी पढ़ा था कि अन्तिम सत्य को तर्क से नहीं पाया जा सकता । 'नैषा तर्केण मतिरापनेया', लेकिन तर्क से परे का यह सत्य, मैं कैसे मान लू बन्धु कीट्स कि, सुन्दर ही होता है । यह कटु यह चरम कचोटनेवाला तर्कहीन यथार्थ तुमने कभी देखा था क्या ? वह ग्रीक पात्र पर चित्रित मन्दिर की ओर जाते हुए नगरवासी और अपना घर-बार सदा के लिए छोड़ कर बबूल के काँटों और रन की नमकीन खूँखार रेत में भागने वाले अनिकेतन नगरपारकरवासी—क्या इनकी नियति एक-सी है ?

तुम कहते हो कि 'सौन्दर्य सत्य' है, सत्य सौन्दर्य, हम संसार में सिर्फ यही जानते हैं और वस, यही जानना काफी है ! काश कि यही जानना काफी होता और हम सिर्फ यही जानते ; लेकिन नहीं, असलियत जानना बहुत तकलीफदेह होता है और उससे ज्यादा तकलीफदेह होता है यह एहसास कि हम कुछ नहीं कर सकते—सिर्फ इतिहास में उजड़े-सूने आँगन को अपलक काठ की निगाहों से देखते रहें—उस काठ के पुतले की तरह जिसे हम उस आँगन में खम्भे के सहारे कील ठोक कर खड़ा कर आये हैं ।

एक दिन वह भी रेगिस्तानी हवा के झोंके से गिर जायेगा !

पश्चिमी सरहदों पर उनकी जिन्दगी

युद्ध कौशल, हथियारों की तफसील, सिक्योरिटी के कानून-कायदे, विभागों की आन्तरिक राजनीति—यह सब मेरी बुद्धि के परे है। फिर वह क्या है, जो मुझे बार-बार इन लोगों के बीच खींच ले जाता है। घर-परिवार से सैकड़ों मील दूर कीचड़, खाई, रेगिस्तान, तपती चट्टानों, बर्फानी ठण्डक में पड़े हुए इन जवानों के बीच। एक अजीब कशिश है उनकी जीवन-पद्धति में। वहाँ प्रकृति अपने मूल आदिम रूप में उजागर है। प्रकृति भी और मानव-प्रकृति भी। मानवीय शौर्य का चरम उत्कर्ष भी है, आदिम भय का गहरा अँधेरा भी। जीवन जीने की बलवती इच्छा भी और एक ललकार पर उसी जीवन को हँसते-हँसते दे डालने का अदम्य साहस भी। मौत से मुँह दर मुँह सामना—वह चरम क्षण जब कुछ नहीं रहता, कुछ भी नहीं सिवा चरम नग्न सत्य के !

उस युद्ध में से गुजरने के बाद वह चरम अनुभूति उन पर क्या छाप छोड़ गयी है, इसे मैं उनकी आँखों में उनके शब्दों में, उनके रहन-सहन में, उनके चलने और बन्दूक पकड़ने और रोटी के कौर तोड़ने के ढंग में खोजता हूँ—क्यों ? यह नहीं जानता ! यह जरूर है कि उनसे एक नाता जुड़ गया है। वे मुझ पर एक अधिकार मानने लगे हैं और इसका पता लगा इस बार, जब पश्चिमी सीमांत पर सीमा सुरक्षा बल का लेखा-जोखा लेने एक लम्बी यात्रा की—पश्चिमी सरहद के किनारे-किनारे—गुजरात-सिन्ध के बीच कच्छ के रन से प्रारम्भ कर राजस्थान के धधकते रेगिस्तान में से होते हुए धुर उत्तर कश्मीर की दुर्गम गुरेज घाटी के बर्फ लदे पहाड़ों में चौकियों पर तैनात जवानों के बीच !

जोधपुर से डिप्टी कमाण्डेण्ट राजेंद्र सिंह साथ थे। हँसमुख स्नेही युवक। रेगिस्तान के बीच 250 किलोमीटर जीप चला कर तपती दोपहर में बाड़मेर पहुँचे, तो (सी. ओ.) आर. पी. काश्यप ने एक सुखद आश्चर्य दिया। शामियाना लगा था और 15 बटालियन के जवान स्वागत के लिए अटेंशन में खड़े थे। मालूम हुआ, उन्होंने धर्मयुग में युद्ध-यात्रा पढ़ी थी और वे मिलने को उत्सुक थे। उनका स्नेह-पूर्ण उलाहना था कि कोई लेखक पश्चिमी मोर्चे पर क्यों नहीं आया। यहाँ भी उन्होंने दुश्मन के जबर्दस्त आक्रमण का

मुँहतोड़ जवाब दिया है। भाषण वगैरह के बाद उनसे बात हुई, तो मालूम हुआ उन जांबाज सैनिकों में एक कवि भी है—चैन सिंह। लड़ाई के तुरन्त बाद उसने अपनी बोली में कविता जोड़ी थी, उस भयानक मौत-भरे अनुभव के बाद जिसकी कलम जाग उठे, उससे हाथ मिलाकर मुझे जो सुख मिला है, वह क्या शब्दों में बँध सकता है। कितने टूटे-फूटे शब्द हों, कितनी कच्ची शैली हो, लेकिन ‘भोगे हुए यथार्थ’ का दावा करने वाले टी-हाउसी साहित्यिक काश एक दिन इस यथार्थ में जी पाते ? और अजब था कि चैन सिंह इससे अवगत ही नहीं था, मुझे एक बहुत बड़ा आदमी समझ कर जिस तरह साधारण सिपाही की तरह अटेंशन में खड़ा था, उस पर हँसूँ या रोऊँ—समझ नहीं पाया !

और लम्बे-तगड़े खुशमिजाज, 17 बटालियन के डिप्टी कमाण्डेण्ट कुलवन्त सिंह भाई जी ! तब हम गदरा रोड पहुँचे। उनके सैनिक भी स्वागत में खड़े थे। सूरज ढल रहा था और हम उन सैनिकों से बिना बात किये हुए ही मुनाबाओ और वहाँ से पाकिस्तान क्षेत्र के अधिकृत रेलवे स्टेशन खोखरा पार की ओर चल दिये। यह सारा क्षेत्र उन्होंने जीता था और हर स्थान की कठिनाइयाँ और अपनी बटालियन के रण-कौशल को समझाते वे चल रहे थे। और तब ज्ञात हुआ कि रेगिस्तान में युद्ध की कठिनाइयाँ क्या होती हैं। रेत में बिना सड़क के जीपें और ट्रकें कैसे घँसती हैं। पानी की एक-एक बोतल के सहारे कई-कई दिन काटने होते हैं। जिस अनजान शत्रु क्षेत्र में बढ़ते चले जा रहे हैं, वहाँ कहीं पानी होगा भी या प्यासे मरना पड़ेगा। मुनाबाओ के आगे एक ओर एक टीला दिखा कर राजेंद्र सिंह ने बताया कि दो सिविलियन यहीं कुछ दिन पहले मरे पाये गये थे। एक यहाँ गिर गया था एक मील भर आगे जाकर ! रेत पर लोहे के एक बोर्ड बिछा कर ट्रक चलने योग्य रास्ता बन पाता था और अगर पानी की एक ट्रक पर दुश्मन ने निशाना साध लिया, तो खेल खत्म !

खोखरा पार स्टेशन पर जीप चलाते भाई जी सीधे प्लेटफार्म पर ले गये। स्टेशन पर पानी की टंकी थी। विजय के बाद प्यास से व्याकुल सैनिक उधर बढ़े, पर डर था कि दुश्मन ने जाते हुए इसमें जहर न मिला दिया हो, वैसे अब पानी की टंकीवाले रेल के डिब्बे वहाँ खड़े थे और लोग कितने खुश नहा रहे थे, पानी भर रहे थे। टंकियों पर किसी ने उर्दू में एक शेर लिख दिया था :

गोपाल बलूच की है तुमसे ये सदा,
जी भर के पियो ऐ मेरे हमपेशा हमनवा !

भाई जी की बटालियन में अनेक सैनिकों को एवार्ड मिले थे। एक पुरस्कृत सैनिक था रसूल खाँ। शाम को खाने के समय भाई जी युद्ध के रणबाँकुरे नहीं, वरन् एक स्नेहशील मेजबान थे। कोई परम लखनवी क्या इतना ख्याल करेगा मेहमान का!

दूसरे दिन जब हम नगरपारकर की ओर चले, तो हमारी जीप के चक्के पर पिल्ले थे। युद्ध के भयानक दौर से गुजरने के बाद भी उनके साँवले चेहरे पर उजली हँसी फूटी पड़ती थी। रास्ते भर वे आबू के अपने ट्रेनिंग स्कूल की बातें इतनी ललक से करते रहे कि लगता था, वे अपने छात्र जीवन की उन्हीं मस्तिष्कों में अभी भी जीते हैं। युद्ध और विजय जैसे बीच का एक पीरियड था धण्टा बजा और वे पुनः वही बातूनी छात्र केरल के पिल्ले धाराप्रवाह हिन्दी बोल रहे थे। अंग्रेजी आपको सिपाही से अलग करती है, हिन्दी उससे अन्तरंगता से जोड़ देती है।

राजस्थान की सीमा पर पिल्ले रुक गये। गुजरात में हमें ले जाने के लिए ए.सी. रिडमल सिंह आये। अब सीन बदल रहा था, समुद्र नजदीक आ रहा था। रेगिस्तान दब रहा था। बबूलों की ही सही, पर हरियाली बढ़ रही थी और पहली बार जब कच्छ के रन का एक टुकड़ा देखा, तो जी पर दहशत-सी बैठने लगी। अनन्त क्षितिज तक केवल नमक ढकी सफेद बालू का रहस्यमय प्रसार। बीच-बीच में कहीं-कहीं टीले, झुरमुट, मकानों का आभास, लेकिन सब मृगजल—केवल छलना ! दूर कहीं पर दो सिविलियन गठरी लादे जा रहे थे और नमकीन बालू में उनकी बीस-बीस गज लम्बी दैत्याकार छायाएँ काँप रही थीं। आँखों में नमक की हवा जलन पैदा कर रही थी और हाथ-पाँव फटने लगे थे। दूर उस वीराने में एक ऊँट नमक पर तड़प रहा था। शायद मरने वाला था।

इस खूँखार रन में ये सीमा सुरक्षा बल के जवान अपनी-अपनी चौकियों पर बरसों गुजार देते हैं। रेगिस्तान भी रन के मुकाबले कितना सुविधाजनक है।

और इसी से लगा हुआ वीरवाह का इलाका। बबूल वनों के बीच एक टूटा पुराना कलात्मक जैन मन्दिर। दायीं ओर टीले पर ले. कर्नल काणे अपनी टुकड़ी के साथ इन्तजार कर रहे थे। काणे—मराठी मानस—खुशी हुई। पूना के निकले। उनके साथ थे डॉ. गुप्ता इलाहाबाद के—उनकी टुकड़ी ने किस्सा सुनाया इस भूभाग के युद्ध का। यहाँ की समस्या है साँप। तम्बू में, बंकर में, खाई में, पगडण्डी पर, झाड़ी में—हर जगह साँप और जहरीले काफी ! एक दुश्मन मारो बाद में, पहले 100 साँप मारो। एक-एक दिन में दो-दो सौ साँपों को झेलना पड़ा। चौबीस घण्टे दिन और रात, तम्बू में हों या बंकर में, वे इन्हीं साँपों के बीच जी रहे हैं किसी तरह !

और उसके बाद भी, शान्ति काल में भी, जो इस भूभाग में और भी जहरीले हैं, वे हैं इस पार से उस पार और उस पार से इस पार आने-जाने वाले डाकू और स्मगलर! सौराष्ट्र के मशहूर डाकू भूपत का यही कार्यक्षेत्र था और अब भी इधर डाकुओं की कमी नहीं। वे केवल लुटेरे नहीं। इस अर्द्ध सामन्तवादी क्षेत्र में उनकी एक पूरी मान्य परम्परा है। और इस वीराने में समुद्र की राह आ कर माल लादने और उतारनेवाले तस्करों की तो यह लीलाभूमि है। स्थल सेना तो तभी लड़ती है, जब युद्ध घोषित हो; लेकिन सीमा सुरक्षा बल के लोगों के लिए तो शान्ति काल में भी चैन नहीं।

और इन तमाम साँपों, डाकुओं, तस्करों और दुश्मनों के बीच वह जादू-भरी चाँदनी रात। इन्स्पेक्टर अमरसिंह, भव्य काया, नुकीली मुँहें हमारे सत्कार में तैनात थे। भाकासर के बाहर ब्राह्मण की ढाणी के पास एक टीले पर हम रात को रुके। राखी का दिन। पूरा चाँद—रेगिस्तान की पूर्णिमा जिसने देख ली, वह कभी भूल नहीं सकता। 'ये हवा ये रात, ये चाँदनी', बहुत याद आता था ये गीत अक्सर। लेकिन हवा, रात और चाँदनी क्या होती है, यह पहली बार राजस्थान में जाना।

सुबह आँख खुली, तो पलंग के पास, बरामदे में, झाड़ी में—मोर ही मोर। एक मोर आया, पास के बने बंकर की छत पर बैठ कर पिहकने लगा। कुएँ पर नीचे पीली ओढ़नियाँ, लाल घाघरे, छनकती चूड़ियाँ—पानी भर रही थीं—और मोर चारों ओर फुदक रहे थे।

युद्ध क्षेत्र कितना सुन्दर भी हो सकता है !

लेकिन चरम खतरा और चरम सौन्दर्य कैसे एक साथ साँप के जोड़े की तरह लिपटा रहता है, यह जाना कश्मीर की अत्यन्त दुर्गम गुरेज घाटी में।

सारे कश्मीर में बारिश हो रही थी। नदियाँ बढ़ आयी थीं, पहाड़ धसक रहे थे। गुरेज जाना, असम्भव। वहाँ तो पक्की सड़क भी नहीं। कच्चा रास्ता, भीग कर टूटते पहाड़। लेकिन हम चले। साथ थे (डी. सी.) एच. के. सिंह सहगल। हिम्मत बैधा रहे थे बराबर। बाँदीपुर में ही रुक कर मेजर रावला से सैंड मॉडेल पर उस दुर्गम रहस्यमय घाटी का पूरा नक्शा समझा। कहाँ पर पुरानी सीज फायर लाइन है, कहाँ पर नयी

सीजफायर लाइन है। हमें कहाँ चढ़ना है, कहाँ मुड़ना है सब ! मॉडेल पर ही उत्तुंग शिखर, गहरी घाटियाँ, खूँखार नाले देखकर मन एक बार तो हिचका, लेकिन फिर डबल ऊनी लवादे, दस्ताने और बर्फ में चलने वाले रबर बूट पहनकर चल ही पड़े। बरसात में कश्मीर कुछ ज्यादा ही खूबसूरत और ज्यादा ही उदास लग रहा था। सुनसान।

और फिर राजदान दर्रे के जरा पहले ट्रगबल पहुँच कर तो लगा कि इसके आगे शायद मनुष्यों की दुनिया खत्म हो गयी। एक पूरा कान्वाय रुका पड़ा था। आगे रास्ता चढ़ना नामुमकिन। कीचड़ इस कदर है कि वाहन फिसलकर हजारों फीट नीचे खड़्ड में गिर पड़ने का खतरा। पहाड़ों से बरसाती झरने सड़क पर गिर रहे हैं। हमने जीप लौटायी कि मनो कीचड़ पहिये में लिपटकर जीप पहाड़ के पेटे में। लेकिन हम चले। रास्ते में रंग-बिरंगे झण्डेवाली दरगाह, राजदान दर्रे के जरा पहले। वहाँ मनौती माने बिना कोई झाड़वर आगे नहीं बढ़ता। ऐन दर्रे पर 12,500 फीट की ऊँचाई पर जो चौकी थी, उसके बंकर में खाने का इन्तजाम था। दीवारों से रिसता पानी, फर्श पर कीचड़ उसी में तख्ते डालकर एक भीगी दरी। यही उनका बिस्तर, यही उनका बसेरा। इसी में वे बरसों रहते हैं। इसी में लकड़ियाँ सुलगाते हैं, खाना पकाते हैं, दुश्मन के हवाई हमलों से बचते हैं, उसका सामना करते हैं।

और अभी क्या ? जाड़े में इस बंकर की छत पर 20 फीट ऊँची बरफ जमती है। छत न धसक जाय या दरवाजा बरफ की चट्टानों से बन्द न हो जाय, इसलिए रात को बंकर में नहीं सोते। तब ? बस स्लीपिंग बैग में, खुले आसमान के नीचे, झरती बरफ में। सुबह उठकर अपनी छाती पर से बरफ का ढेर हटा कर निकलते हैं। और उस पर से यहाँ की हवा ! 60 किलोमीटर की रफ्तार से बहती है। रवायत है कि एक बार कुत्ता उड़ गया और लोलाब वैली में जाकर गिरा। टुकड़े-टुकड़े होकर। फिर यह खुला शिखर। जरा-सा बादल छाये कि तड़तड़ बिजलियाँ गिरनी शुरू होती हैं। बंकर में भी सुरक्षा नहीं। एक बार पास में गिरी और जमीन से होती हुई बंकर में। खेरियत कि एम्पूनिशन नहीं था, वरना विस्फोट ! यह जो ऊनी वाटरप्रूफ जैकेट पहने हैं आप इसके कालर में जो ताँबे का तार लगा है—बस उसी पर सीधे गिरती है।

और आप कल्पना करेंगे कि इस भयानक वीराने स्थान में हमारे सत्कार में खाने के बाद डब्बे के दूध से बनी खीर भी पेश की गयी। हम बाहर निकले, तो ठण्ड से फिर हाथ-पाँव बर्फ होने लगे थे और हवा के वेग से हम कभी दायें कभी बायें झूम रहे थे।

“पर यह जगह तो सरहद से दूर है, यहाँ चौकी क्यों रखी आपने ?”

“आपको मालूम नहीं ! सन् '47 और सन् '65 में पाकिस्तानी घुसपैठिये इसी रास्ते से छिप कर बाँदीपुर और श्रीनगर की ओर पहुँचे थे। अभी जहाँ जा रहे हैं, वहाँ से आगे कल वह मशहूर शैतानी नाला देखेंगे, जिसके किनारे-किनारे कवायली छुप कर आये थे !”

वास्तव में अब हम जिस इलाके से गुजर रहे हैं, वह कबायलियों की घुसपैठ का सब से गहरा शिकार रहा है। सीजफायर लाइन के उस पार पाक अधिकृत कश्मीर का एक कस्बा है मिनी मर्ग। वहाँ उनका बड़ा कैण्टोनमेण्ट है और घुसपैठियों के प्रशिक्षण का बड़ा केन्द्र। उसके और इस घाटी के बीच जो भयानक ऊँचाईवाला वीरान खूँखार पहाड़ी इलाका है। उस पर सीमा सुरक्षा बल के जवानों ने इस बार अद्भुत साहस की लड़ाई लड़ी और उन तमाम बिंदुओं पर कब्जा कर लिया, जहाँ से घुसपैठिये छिप कर गुरेज घाटी में और फिर इस दर्रे को पार कर बाँदीपुर और श्रीनगर जाते थे। और आप जानते हैं, यह दुस्साहसी युद्ध उन्होंने तब किया, जब इस जमीन का चप्पा बर्फ से ढँका हुआ था, जब इस घाटी के बाशिंदे भी छह महीने की लकड़ी और रसद का इन्तजार कर घर के अन्दर बैठ जाते हैं। इस अद्भुत साहसी टुकड़ी के नेता थे (ए. सी.) नौबहार चन्द। चलकर उन्हीं से इस युद्ध की कथा सुनी है। लेकिन पहले पहुँचें तो। रास्ता इतना बीहड़ है कि लौटना पड़ जाये, तो अचरज नहीं।

कंजरवन की वह शाम नहीं भूलेगी। तीन ओर भयानक ऊँचे पहाड़ों से घिरा वह छोटा-सा कस्बा, धुआँ खाये लकड़ी के काले पुराने मकान और हहराती हुई उजली किशनगंगा। पहाड़ों की ढाल पर उतरती गायें दूरी की वजह से चूहों की तरह लग रही थीं। चोटियों पर कहीं बरफ और उसी के बीच में डूबता सूरज और उतरता अँधेरा। अब उसी बारिश और कीचड़ की पहाड़ों घसकती सड़क पर अँधेरे में जीप चलाना था। जिस जगह पहुँचना था, वह अभी 40 मील दूर थी।

और जब वहाँ की टिमटिमाती रोशनियाँ दीखने लगीं, तभी वह हादसा हुआ। जीप सड़क से फिसली। बायीं ओर अँधेरे में गरज कर बहती हुई किशनगंगा और दायीं ओर दलदल। दलदल में जो जीप फँसी, तो फिर निकल ही न सकी।

ड्राइवर के साथ जीप वहीं छोड़कर हम पैदल चले। अभी चार मील चलना था। घुप अँधेरा, टार्च किसी के पास नहीं। अँधेरे में किशनगंगा ऐसी गरज रही थी कि लगता था अभी कगारे तोड़ कर सड़क, घाटी समेत हमें लील जायेगी किसी वक्त। पानी बरस रहा था। हाड़ काँप रहे थे और पैरों में टखने तक रबर के बूट, जिन पर सेरों कीचड़ लिपटा था। साथ के हवलदार ने दिलजमई के लिए किस्से सुनाने शुरू किये। पहले लद्दाख के, फिर इन्हीं जंगलों में बनी दरगाहों के रहस्यमय पीरों के। अँधेरे में पाँव बार-बार गलत पड़ता था और हम दलदल में गिर कर कीचड़ में लथपथ होकर उठते थे। “अरे साहब, सोचिए ऐसी ही हालत में हमें पचास-पचास मील मार्च करना पड़ता है अँधेरे में। और वह भी अपना सामान और रसद पीठ पर लाद कर।” हवलदार मुझे दिलासा देता है।

हम जब डेरे पर पहुँचे तब नाक-कान तक में कीचड़ भरा था। लेकिन ऑफिसर्स मेस में सभी हमारा बेताबी से इन्तजार कर रहे थे। सभी जवान अफसर, बेहद मस्त। “नहीं, कपड़े-वपड़े बदलना बाद में होगा पहले बुखारी में पाँव सँकिए और खाना खाइए।” मेज पर पत्रिकाएँ सजी थीं और हमारे सम्मान में ‘धर्मयुग’ भी, जो वहाँ नियमित आता है। हमारा कीचड़-सना भव्य व्यक्तित्व उन्हें बहुत सम्माननीय लग जाएगा, इसमें शक नहीं !

(सी. ओ.) कर्नल पठानिया कुछ अस्वस्थ थे, अतः नहीं आये थे। डी. सी. अशोक कुमार चुस्त गोरे-से डोगरा युवक सबसे परिचय करा रहे थे। साँवले-से मूँछोंवाले जिन सज्जन को मैंने दक्षिण भारतीय समझा था वे थे झीलेंवाले दुर्गम क्षेत्र के साहसी विजेता नौबहार चन्द। लेकिन उस समय तो हड़्डी-हड़्डी थकान से चूर थी।

“नहीं, जो क्षेत्र हमने जीता है, वहाँ तो आपका पहुँच पाना असम्भव है। जीप ? बस, जीप यहाँ खत्म। आगे तो बस पैदल। वैसे टट्टू जाते हैं, पर इस बरसात में ढलान पर टट्टू फिसल जाते हैं। आजकल तो वहाँ बस हेलिकॉप्टर से हम रसद और सामान गिरा आते हैं और सारे जवान वहाँ बैठे उस क्षेत्र की रक्षा कर रहे हैं। लेकिन एक दूसरे शिविर पर हम आपको ले चलेंगे। अगर आसमान खुला तो वहाँ से वह क्षेत्र दीख जायेगा। और हम जहाँ रात गुजारेंगे, उसके बिलकुल सामने पाकिस्तानी चौकी है।”

सुबह हो गयी थी और अशोक कुमार लान पर बैठे चाय के प्याले पर आगें का कार्यक्रम बना रहे थे। रात को इतनी खौफनाक दीखनेवाली घाटी, इस वक्त कितनी खूबसूरत लग रही थी। 8,000 फीट की ऊँचाई, तीन ओर पहाड़, नालों में बर्फ और किशनगंगा कितनी खूबसूरत ! जो गुलमर्ग की तारीफ करते हैं कभी जाकर यह घाटी देखें। फूल लदे हुए। घाटी में, ढलानों पर कितने रंग, कितने आकार ! और जब सुना कि यह सामनेवाला तिकोना लुभावना पहाड़ हब्बा खातून है तो मन रोमांचित हो आया।

गुलमर्ग की खोज भी तो इसी हब्बा खातून ने की थी। आपने कभी सुनी है कश्मीर की मीरा, इस अभागी कवयित्री महारानी हब्बा खातून की कथा। भक्ति के पदों में सराबोर, जंगल-जंगल भटकनेवाली यह कवयित्री महारानी अपने ससुरालवालों के सन्देशों से लांछित हो कर इसी पहाड़ पर इसी किशनगंगा में लुप्त हो गयी थी। तभी से इस पहाड़ का नाम हब्बा खातून है। लुप्त होने के पहले इसी किशनगंगा से उसने एक कलश जल भरा और सीधे शिखर तक चढ़ गयी। वहाँ वह जल छोड़ दिया कि यदि वह सती है तो यह जल बिना गँदला हुए गंगा में जा मिलेगा। जरा आगे हमने वह सोता देखा। आज भी वह जल दुग्ध धवल झर-झर करता हुआ किशनगंगा में मिल रहा है !

“और तब यहाँ सब बरफ जमा हुआ था। यह पूरी घाटी महीनों बरफ से दबी रहती है। और किशनगंगा के किनारे-किनारे मैं अपनी टुकड़ी लेकर गया था। हमारा सारा सामान, रसद, हथियार सब पीठ पर लदे थे।” नौबहार चन्द बतलाते हैं। हम अब दिन में अपनी यात्रा पर निकल पड़े हैं। हमारे साथ हैं सहगल, नौबहार चन्द और अशोक कुमार। “जाड़ों में हमें छह महीने के लिए सारा सामान स्टोर कर लेना पड़ता है। चौकी से बाँदीपुर

पहुँचने में 10 दिन लगते हैं। महीने-महीने भर डाक नहीं आती। कुछ चौकियाँ तो बिलकुल भगवान भरोसे छूट जाती हैं।" अशोक कुमार बता रहे हैं। "बहरहाल, आजकल तो अशोक शाम को पाँच वार डाक देखने जाते हैं।" नौबहार उन्हें छेड़ते हैं। अशोक कुमार की शादी होनेवाली थी। कई तो बरसों से घर ही नहीं जा पाये हैं।

चोरवन के किनारे की चौकी के इन्चार्ज सूबेदार खान ने आगे की यात्रा के लिए दो-तीन टट्टुओं का इन्तजाम कर रखा था। अचरज हुआ जब चाय के साथ खानसाहब ने पकौड़ियाँ दीं और हमने पाया कि पकौड़ियाँ कागज में नहीं, भोजपत्र में रखी हुई थीं। पास के जंगल से भोजपत्र ढेर के ढेर आते हैं।

और अब नाला पार कर चढ़ाई शुरू।

नाले पर चार इंच चौड़ी दो शहतीरें कुछ इंच के फासलों से रखी हैं। बस, यही पुल है। जरा पाँव काँपा कि गये। कोई बताता है कि यह साथ वाला कढ़ावर कश्मीरी जवान इसी पुल पर से कन्धों पर तोप लाद कर ले गया था।

बगल में मशहूर शैतानी नाला। ऊपर का बेहद घना जंगल पहले ही डाकुओं का अड्डा रहा है। घुसपैठिये इसी के किनारे इन्हीं जंगलों से आये थे ... एक अजब बात। हर पहाड़ की बायीं ढाल पर चीड़, देवदार के जंगल और दायीं ओर एक महकदार घास—जिससे अमृत-धारा बनती है। अब और भी तरह-तरह के फूल और जड़ी-बूटियाँ, पगडण्डी बेहद फिसलनवाली। टट्टू पर से सब उतार दिये गये। पैदल चलिए ... भयानक चट्टान और फिसलन। घुटने जवाब देने लग गये हैं। जंगली सेब के पेड़ के पास रुक कर थोड़ा आराम, फिर आगे।

अब भोजपत्र का जंगल शुरू ... 9000 फीट पर साँस उखड़ने लगी है। चेहरे पर जैसे खून जम रहा है। पर अभी तो वृक्ष हैं, ऑक्सीजन है। 10,000 फीट के बाद तो वृक्ष भी नहीं होंगे।

अब वृक्ष भी खत्म, मगर फूलों की बहार, पीले, बैंगनी, गुलाबी और कितने किसम के नीले और अब हर कदम रखने में लगता है फेफड़े फट जायेंगे। बीच में ट्रांजिट पोस्ट पर खाना आया है। परांठे, कड़म का साग, गुच्छी, लेकिन भूख गायब हो गयी है। और चढ़ाई। और लो बारिश शुरू ! ... 12,000 फीट की ऊँचाई पर एक चौकी पर पहुँचे तो लगा कि अब प्राण नहीं रहे। चाय बनी, चौकी के युवा अफसर नरेन्द्र सिंह चौहान के बंकर में हम बेहाल पड़े हैं कि देखा पहाड़ खोदकर बनाये गये ताख में कुछ किताबें। कुतूहलवश देखा। विवेकानन्द की पुस्तकों का सेट। चौधरी बताते हैं इन पुस्तकों से उन्हें युद्ध में साहस मिलता है और शान्ति में जीने की प्रेरणा। 12,000 फीट की ऊँचाई पर

युद्ध यात्राएँ : 301

इस चौकी के इन अनगढ़ बंकर में विवेकानन्द ! कौन अनुमान कर सकता था ?

और अभी करीब डेढ़-दो हजार फीट बाकी है। वह दीखती है चोटी पर वह चौकी जहाँ हमें जाना है। पर अभी कितने मील घूम कर। पाँव अब लगता है टूट कर गिर पड़ेंगे।

जितनी थकान, उतने फूल; जितने फूल, उतने रंग। थक्के के थक्के। फूलों के पहाड़। लेकिन होशियार ! फूलों के नीचे अब भी सुरंगें बिछी हो सकती हैं। बरसों पहले दुश्मन ने यहाँ माइनों बिछाई थीं। अभी भी कभी-कभी फूट पड़ती हैं। और अब बारिश फिर शुरू। कितने गहरे बादल।

अब थकान के मारे आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है। ऑक्सीजन हवा में खत्म हो चली है मानो। जी मितला रहा है। और सर्दी कि बला ! कदम-कदम पर थक कर कीचड़ में बैठ रहे हैं। कोई चारा नहीं। पेड़ की छाँव भी नहीं। टट्टू अलग चल रहे हैं। रह-रह कर फिसलते हुए। और अब मैं चल नहीं पा रहा। एक कुत्ती लगभग मुझे ऊपर खींच रहा है। मैं शिखर की चौकी पर कैसे पहुँचा, यह याद न करना ही बेहतर है।

स्पेशल बंकर नौबहार चन्द का जिसमें मैं थक कर पड़ा हूँ। भोजपत्र के तनों से छाया नीची छत, चूती हुई। दीवारें, फर्श सब जलमय। बिस्तरा ठण्डा और भीगा हुआ। बाहर तेज बारिश और अन्धड़। लगभग 14, 000 फीट की ऊँचाई। साँस ठहर नहीं रही है। इतनी थकान के बावजूद नींद नहीं आती। बुखारी सुलग रही है। और बेहद सर्दी के बाद पसीना-सा छूट रहा है। सुबह तक साथी उनियाल घबरा गये हैं। उन्हें लगता है मानो उन्हें हार्ट अटैक होने वाला है।

“साहब, पहले हम लोग घाटी में छह-सात दिन रहते हैं, फिर तीन दिन ठहर-ठहर कर यहाँ आते हैं पहली बार। आप एक दिन में आ गये।” चौकी के इन्चार्ज इन्स्पेक्टर राजवंत सिंह बताते हैं, “और यहाँ ये बेचारे जवान बारहों मास रहते हैं, सर्दियों में राजदान दर्रे से भी ज्यादा भयानक हाल होता है। ऑक्सीजन इतना कम है कि कुछ लोग तो अपना पौरुष खो देते हैं। कुछ इलाज से ठीक हो गये। कुछ नहीं भी हुए।”

उनियाल साहब शिवस्तुति पढ़ रहे हैं। दुबे काफी बहक रहे हैं। नौबहार रसिक आदमी हैं। सामने भीगी दीवार पर पत्रिकाओं से काट कर सिने तारिकाओं के चित्र चिपकाये हैं। बिकिनी में शर्मिला टैगोर भी है। मैं नमस्कार करता हूँ। बम्बई में तो बिकिनी ठीक, पर 15,000 फीट की इस हाड़ कँपानेवाली सर्दी में जो बिकिनी पहने उसे नमस्कार करना ही चाहिए।

रात करवटें बदलते कटती है। किसी को नींद नहीं। सुबह मुर्गी की कुड़कुड़ाने की आवाज कहीं बहुत नजदीक से सुन पड़ती है। थोड़ी देर बाद एक सैनिक आता है। मेरे

पैताने विस्तरा हटा कर तख्ता उलट कर हाथ डाल कर छह अंडे निकालता है। मैं हक्का-बक्का। मालूम हुआ कि मुर्गी के दड़बों पर विस्तर लगा था। मुर्गियाँ इसी तरह रखी जाती हैं यहाँ। आदमी की गर्मी से जिन्दा रहती हैं, वरना ठण्ड में मर जायँ।

उजाला फूट गया है। बाथरूम जाने में तीन जगह फिसला हूँ। पैर मन-मन भर के हैं। और जी बदस्तूर मितला रहा है। लेकिन बाहर ! आह ! क्या दृश्य है। बादल नीचे घाटियों में भर गये हैं। शिखर चमक रहे हैं। उन पर ताजा बर्फ गिरी है। और वह उधर है झीलोंवाला क्षेत्र जो नौबहार ने जीता था। उस वीराने में एक झील का नाम नौबहार झील रख दिया गया है। और वह सामने, वह नीचे, उधर दायें ये पाकिस्तानी चौकियाँ हैं। हम बाइनाक्यूलर से उनकी गतिविधि देख रहे हैं।

तीन दिन पहले हरी सलवार पहने कोई औरत घोड़े पर चढ़ कर उनकी चौकी में आयी थी। उसकी चर्चा सबकी जवान पर है। तीन दिन में वह एक रहस्यमय किम्बदन्ती बन गयी है।

और इस ऊँचाई पर रहस्यमय किम्बदन्तियों की कमी नहीं। वह भालू, जो आदमी की तरह कराहता है। वह पीर, जो अक्सर खड़े पहाड़ पर चढ़ता दीखता है। वह धुआँ...

उस और भी दुर्गम प्रदेश में जहाँ नौबहार की टुकड़ी लड़ी थी, और भी किम्बदन्तियाँ हैं। वहाँ शायद पहाड़ों में लोहा अधिक है। मूँछों और सर के बाल अक्सर खड़े हो जाते हैं, उनसे चिनगारियाँ-सी निकलती हैं। कोहरे में सिर के चारों ओर प्रभामण्डल-सा दीखने लगता है। और एक बार वे कुली के साथ जा रहे थे कि एक सफेद घोड़ा दीखा। इस ऊँचाई पर घोड़े नहीं होते। नौबहार ने देखा कि घोड़ा गायब हो गया। दूसरे मोड़ पर देखा कि वही घोड़ा सरपट दौड़ता जा रहा है। कुली बोला, "यह छलावा है। रास्ता बदल लीजिए। इधर से नहीं चलेंगे।" पता नहीं, इस ऊँचाई पर ये रहस्यमय घटनाएँ घटती हैं या ऊँचाई के प्रभाव से मन ही कुछ अजब ढंग से सोचने लगता है।

अब हम विदा हो रहे हैं। पास की ढलानों से 20-25 किस्म के फूल तोड़ कर लाये गये हैं। इन्स्पेक्टर राजवन्त अपने भाषण में बताते हैं कि "नीचे हेडक्वार्टर से महीनों पुराने धर्मयुग के अंक यहाँ आते हैं, जिन्हें ये जवान पूरे बरस बार-बार पढ़ते रहते हैं। धर्मयुग के लोग यहाँ आयेंगे यह तो कभी हम सोच नहीं सकते थे। हम कुछ खातिर नहीं कर सके।"

मुझे कैसा तो लगता है ! कानों पर यकीन नहीं होता।

चढ़ाई से उतार ज्यादा भयानक है। अब तो घुटने बिलकुल जवाब दे गये हैं। लेकिन अशोक और सहगल की फुर्ती अब भी बरकरार है। अब भोजपत्र के वन फिर आ गये हैं। अशोक चाकू निकाल कर चौखुटे निशान तनों में डाल कर भोजपत्र निकाल रहे हैं। अब

युद्ध यात्राएँ : 303

एक जगह सब बैठ गये हैं। फरमाइश है कि अशोक यहीं इसी भोजपत्र पर भावी पत्नी के नाम पत्र लिखें। नौबहार छेड़ते हुए फर्माते हैं—‘लिख दे पतरिया सँवरिया के नाम।’

और सहसा उनका ध्यान मेरी ओर जाता है। अशोक एक भोजपत्र पर कुछ लिखते हैं। बारी-बारी से उस पर सब हस्ताक्षर करते हैं। और फिर भोजपत्र मुझे दे दिया जाता है। इस यात्रा के स्मृति चिह्न के रूप में—लिखा है—‘मान गये डॉक्टर साहब हिम्मत आपकी। मेरा सलाम आपको।’

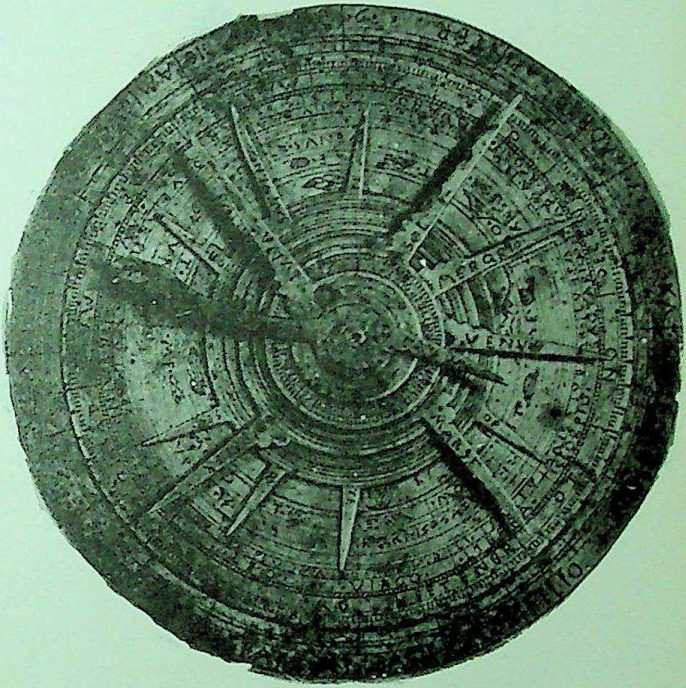
वह भोजपत्र मेरे लिए अब मूल्यवान धरोहर बन गया है।

दूसरे दिन सुबह जब नौबहार और अशोक मेरे कमरे में आते हैं तब मैं नौबहार से उनके युद्ध की पूरी कथा नोट करता हूँ। (वह कथा फिर कभी सुनाऊँगा विस्तार में) मगर वह दृश्य अद्भुत था। मैं बिस्तर से उठ नहीं सकता था। दोनों घुटने ठण्ड और थकान से जम गये थे और बिस्तर के पास कुर्सी पर बैठे नौबहार बता रहे थे कि कैसे वे और उनके जवान बर्फ में सैकड़ों मील चल कर गये और उन बियाबान ऊँचाइयों पर उन्होंने दुश्मन को मात दी।

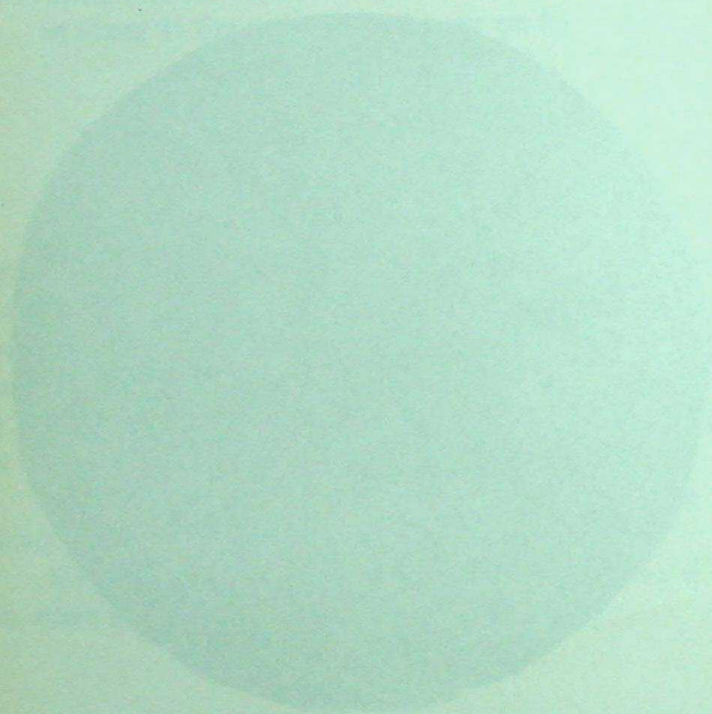
उनके घुटने फौलाद के थे क्या—मैं सोच रहा हूँ। वैसे ही घुटनों से वहाँ से श्रीनगर और श्रीनगर से दिल्ली, दिल्ली से बम्बई।

और बम्बई आने पर हफ्तों बाद अशोक का पत्र मिला। उसी वन में से लाये गये भोजपत्र पर। और एक बार फिर सारी यादें ताजा हो आयीं।

मैं जानता हूँ कि मैं फिर वहाँ पहुँचूँगा। इन सारे कष्टों के बावजूद। पता नहीं वह कौन-सी कशिश है जो मुझे बार-बार इनके बीच ले जाती है—इनके बीच जहाँ प्रकृति अपने आदिम रूप में उजागर है। प्रकृति भी, मानव प्रकृति भी। रंग-बिरंगें फूलों के गलीचे और उनके नीचे छिपी मुजस्सम मौत—माइंस ! और कोहरा और किम्वदन्तियाँ और आदिम भय और मनुष्य के व्यक्तित्व का श्रेष्ठतम गुण साहस। चुनौती देने और चुनौती स्वीकारने का बल !



चीन



चीन

अर्वाचीन : प्राचीन

□ मई 1978

महाराष्ट्र
संस्कृत : महाराष्ट्र

महाराष्ट्र

पेकिंग-परिदृश्य

करीब दो हजार साल पहले
अपना कोड़ा फटकारते हुए, वेइ का सम्राट वु
पूरब की ओर चियेशिह गया था घोड़े पर सवार
शेष बची है उसकी कविता
आज पतझड़ की बयार अब भी उसाँसे भर रही है
लेकिन दुनिया अब बदल गयी है।

(चेयरमैन माओ की एक कविता का अंश, 1954)

एक मेरा मन है, सम्राटों के सरपट दौड़ते घोड़ों की तरह नहीं, किसी अनाड़ी सवार के अड़ियल घोड़े की तरह, आगे बढ़ने के लिए संकेत दो, तो चार कदम पीछे हटने लगता है ! दिल्ली से अकस्मात् फोन पर सन्देश पाकर कि चीन जाना है, आगे की सोचने के बजाय लौटने लगा है। पीछे उन स्मृति-सन्दर्भों की ओर, जिनके मिलेजुले रंगों से एक चीन की तस्वीर मेरे मन में बनती-बिगड़ती रही है। बहुत बचपन में रेशमी कपड़ों की बड़ी-सी गठरी लादे एक बूढ़ा चीनी गली से धीरे-धीरे गुजरता है, (इलाहाबाद का वह चिरपरिचित परदेशी बाद में महादेवी जी के एक अत्यन्त भावभीने शब्दचित्र में अमर हो गया है, उसकी करुणा, उसका जीवन संघर्ष, उसका निर्वासन), एक युवा चीनी दंपति अतरसुड़का के पार्क के सामने रुकता है, गठरी खोलता है, कुछ तश्तरियाँ निकालता है, बाँस की लम्बी छड़ियाँ और फिर उन छड़ियों पर तश्तरियाँ हवा में नाचने लगती हैं। चीनी लड़की कलाबाजियाँ दिखाती हैं। कुछ देर बाद भीड़ में से बरसे पैसे बटोर कर वे चले जाते हैं कहीं और खेल दिखाने। ये बेचारे हजारों मील दूर से आये हैं।

“चीन विदेशियों के षड्यन्त्रों का शिकार है। डॉ. सनयात सेन एक नये चीन का निर्माण कर रहे हैं— भारत पूरे हृदय से चीन के साथ है”—आजादी के काफी पहले

नेहरू जी एक शाम को पुरुषोत्तमदास टण्डन पार्क में प्रयागवासियों को बताते हैं। और फिर उभरते हैं चीनी क्षितिज पर माओ-त्से-तुंग—उनके येनान प्रवास, उनकी ऐतिहासिक महायात्रा, उनके अनथक संघर्ष की जयगाथा। अब तक मैं मार्क्सवाद के ग्रन्थ छान चुका हूँ, प्रगतिशील लेखक संघ में शामिल होकर उसे छोड़ चुका हूँ। स्तालिन की नीतियों से मोहभंग हो चुका है, पर माओ की नीतियाँ, उनका मुहाविरा एशियाई लगता है, ज्यादा आत्मीय लगता है, बहुत उत्सुक हूँ नये चीन के बारे में जानने को। मेरे अग्रज बन्धु अमृतराय चीन से लौटे हैं, उनके मिण्टो रोडवाले मकान में उनके संस्मरण सुन रहा हूँ...

‘हिन्दी-चीनी भाई-भाई’ के नारों की गूँज मिट भी नहीं पाती कि दृश्य बदलता है। बंबई में हूँ और अकस्मात समाचार आता है कि सीमा पर युद्ध हो गया है, चीनी सेनाएँ आगे बढ़ रही हैं, तेजपुर खाली किया जा रहा है ! और फिर सब शान्त; और बीती घटनाओं के विश्लेषण। जनरल कौल की किताब, ब्रिगेडियर दलवी की किताब, मैक्सवेल की किताब और फिर घटनाचक्रों के अप्रत्याशित घुमाव, रूस और चीन में बढ़ते तनाव की खबरें; चीन के अन्दर ‘कल्चरल रेवोल्यूशन’ की अनेक घटनाएँ; विष्णुकांत शास्त्री और बालकृष्ण के साथ बाँगला देश की यात्रा के दौरान नक्सलवाड़ी के बाजार से लेकर मेघा नदी के तट तक अनेक नक्सलियों से भेंट और खुली बातचीत; मार्क्सवाद के नये चिन्तन-आयामों के प्रति जिज्ञासा, चे ग्वेवारा और रेजी देब्रे से लेकर यूरो कम्युनिज्म तक; फिर माओ के बाद की घटनाएँ, ‘गैंग ऑफ फोर’ का पतन और चियांग चिंग और उसके तीन साथियों के अजीब किस्से...चेयरमैन हुआ और तेंग सियाओ-पिंग...

सहसा दिल्ली से फोन कि चीन की सिनुआ संवाद समिति के आमन्त्रण पर भारत सरकार 5 पत्रकारों के प्रतिनिधिमण्डल को चीन भेज रही है। दस दिन के अन्दर जाना है। युद्ध के 16 वर्ष बाद पहली बार डेलीगेशन। अब अगर ये सारे स्मृति-सन्दर्भ एक साथ उभर आयें और कुतूहल, जिज्ञासा, आशंका और जाने कितनी भावनाएँ एक साथ टकराने लगें, तो अचरज क्या ? कैसा होगा चीन, कैसे होंगे वे लोग, क्या होगी उनकी जीवन-पद्धति, कैसे मिलेंगे वे, खुलेंगे या बन्द रहेंगे पहेली की तरह ? “पतझड़ की बयार अब भी उसाँसे भर रही है, लेकिन अब दुनिया बदल गयी है।”...

क्या सचमुच ? कैसी होगी वह बदली हुई दुनिया, या बच्चन जी की पंक्ति के अनुसार, “जग बदलेगा किन्तु न जीवन !” क्या उस जीवन के बारे में ज्ञान पाऊँगा, जो उस पद्धति के साँचे में कहीं अविरल रूप से प्रवाहित हो रहा है ? प्रश्न और प्रश्न और प्रश्न—

इथियोपियन एयरलाइन्स की साँवलो सुडौल विमान परिचारिका सुबह की चाय देते हुए पूछती है, ‘हाउ मैनी डेज इन चाइना ?’ (चीन में कितने दिन ?) ‘टूवेंटी वन डेज’ (इक्कीस दिन), मैं बताता हूँ। आश्चर्य से नेत्र विस्तारकर बोल उठती है : ‘टूवेंटी वन डेज ! टू मच, टू मच ! टेन डेज आर एनफ’ (बहुत हैं, बहुत हैं, दस दिन काफी

होंगे)।

लौटते वक्त मन इतना अभिभूत हो चुका था कि वह मिलती, तो कहता—“इक्कीस सौ साल का इतिहास सँजोये, इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ते चीन को समझने के लिए इक्कीस दिन तो क्या इक्कीस महीने भी कम हैं श्यामली ! हर दिखनेवाली सतह के पीछे कितनी परतें और हैं ? कितने बार पिघले होंगे पहाड़, कितना पानी बह गया होगा यांग्त्सी में—“करीब दो हजार साल पहले कोड़ा फटकारते हुए वेइ का सम्राट वु” और करीब दो हजार साल बाद मुस्कराते हुए चेयरमैन माओ का सौम्य चेहरा, और हर जगह बगल में वर्तमान चेयरमैन हुआ कुओ-फेंग का अपेक्षाकृत तरुण चेहरा—इन दोनों की विशालकाय तस्वीरों से पहली भेंट हुई पेकिंग हवाई अड्डे पर और फिर तो हर नगर चौक पर, हर सभाकक्ष में, हर रेलवे स्टेशन पर, हर सार्वजनिक इमारत पर, हर शिक्षा भवन पर, हर कारखाने पर, किसानों के घरों की दीवारों पर, डाक टिकटों पर, बच्चे-बच्चे की जुबान पर और माओ चेहरे को प्रत्यक्ष देखा पेकिंग की एक बरसाती सुबह हजारों के क्यू में लग कर पेकिंग के नगर चौक में चेयरमैन माओ की समाधि के अन्तर्कक्ष में अनन्त निद्रा में सोये, कैसा लगा उस समय ?”

लेकिन वह बात बाद में ! चेहरों की यादें तो अनगिनत हैं। ताचाई के बहुचर्चित ब्रिगेड के किसानों का चेहरा; छोटे-बड़े कारखानों के मेहनतकशों का चेहरा; ट्रेन में आधी रात साथ यात्रा करनेवाले चीनी सैनिक अफसरों का चेहरा; सीपी, जेड और हाथी दाँत की छोटी फैक्ट्रियों में नर्म अँगुलियों से पच्चीकारी करनेवाली शिल्पी लड़कियों का चेहरा; चिल्ड्रेंस पैलेस के भोले-भाले लेकिन जहीन बच्चों का चेहरा; रेवोल्युशनरी कमेटी के स्वागतोत्सुक उच्चाधिकारियों का चेहरा; फ्राइचिन और लिंग यिन के बौद्ध विहारों में अवलोकितेश्वर और शाक्य मुनि का चेहरा करीब दो हजार साल पहले लेकिन आइए बिलकुल आरंभ से शुरू करें—चीन जैसा मैंने देखा”

नींद 5 बजे सुबह उचट गयी। विमान काफी नीचे उतर आया था, क्योंकि हल्के बादलों के नीचे धरती दिखाई देने लगी थी। मैंने कुतूहल से देखा। लम्बे-लम्बे ज्यामिति के चौरस आयतों जैसे हरे खेत, बीच में मटमैली दूर तक जाती सड़कें, जिनके दोनों ओर पेड़, बीच में कहीं-कहीं नहरें, जिनमें खिलौने जैसी नावें। उड़ते हल्के बादलों के नीचे चीन की धरती का यह पहला दर्शन था। घड़ी देखी। तारीख 22 मई, 5 बज कर 16 मिनट। नीचे चीन की धरती पर इस वक्त सवा सात बजे होंगे। पेकिंग (नया उच्चारण बीजिंग या पेइचिंग) अब कुछ ही दूर है !

विमान अब रनवे पर दौड़ रहा है। मैं खिड़की से एक-एक भागते दृश्य को पकड़ने की चेष्टा कर रहा हूँ। चीन की धरती पर पहली बार उतरने का रोमांच। रनवे के दोनों ओर खाली जमीन खाली नहीं है। जोते-बोये, लहलहाते खेत हैं। बगल से एक ट्रैक्टर गुजरा। उस पर बैठे दोनों चीनी युवक किसान दोनों कानों में उँगलियाँ ठूँसे नागवारी की निगाह से विमान को देखते उल्टी दिशा में चले जाते हैं। चीन की धरती पर देखे। पहले दो चेहरे, मुँह खुला, कान बन्द, अपनी दिशा में ताबड़तोड़ बढ़ते हुए !

हवाई अड्डे की शानदार इमारत की पहली झलक। लाल झण्डों के नीचे दो विशालकाय चित्र। चेयरमैन माओ-त्से-तुंग तथा एक और अपेक्षाकृत तरुण चेहरा। इमारत ऊँचाई पर है। लम्बी-आड़ी सीढ़ियों पर चन्द चीनी मेजबानों के साथ भारतीय राजदूत श्री नारायणन्, उनकी पत्नी श्रीमती उषा नारायणन् तथा दूतावास के कुछ अन्य लोग। उनमें एक पहचाना चेहरा नजर आता है प्रमयेश रथ का। रथ सन् '76 में मॉरिशस में थे। अफ्रीकी एकता सम्मेलन तथा विश्व हिन्दी सम्मेलन दोनों यात्राओं में मोहन महर्षि और रथ के साथ मॉरिशस में कई दिलचस्प शामें बीती थीं। उतरते ही रथ गले लग जाते हैं—‘आपका पीछा चीन में भी नहीं छोड़ूँगा !

हमारी मेजबान चीनी सम्वाद समिति ‘सिनुआ’ की ओर से आये चीनी बन्धुओं से परिचय होता है। जब तक सामान विमान से उतरे तब तक इन्तजार के लिए दायीं ओर का विशाल राजकक्ष खोला जाता है। सागौन की लकड़ी का चिकना फर्श। बहुत खूबसूरत सोफा सेट और दूर दीवार पर ऊँचे लगे वही दो चित्र अन्दर भी। “यह चेयरमैन माओ के साथ कौन है ?” मैं पूछता हूँ। “वर्तमान चेयरमैन हुआ !” जवाब मिलता है। लेकिन बाहर देशी-विदेशी अखबारों में छपे चित्रों में तो वे काफी उम्रदराज मालूम देते हैं। शायद यह जवानी का चित्र हो। पता चलता है कि चीन में हर जगह छवियों में, चित्रों में, पोस्टरों पर उनका यही जवान चेहरा है। चीन अपने नये नेतृत्व की युवा छवि उभारना चाहता है। ‘समझने की कोशिश कीजिए।’

समझने की कोशिश करता हूँ। मसलन पेकिंग पेकिंग नहीं है बीजिंग है, बी ई आई जे आई एन जी, जैसा उनकी उस खूबसूरत दियासलाई पर लिखा है, जो हर अतिथि के सामने चुगत्ता सिगरेट के पैकेटों के साथ रख दी गयी है। यह सिगरेट हमारी महँगी-से-महँगी इण्डिया किंग से भी महँगी है। यह स्वागतकक्ष किसी भारतीय हवाई अड्डे के किसी स्वागतकक्ष से बड़ा और वैभवशाली है। ये रेशमी पर्दे...

सहसा विचारों का सिलसिला टूटता है, जब दूतावास की कुमारी नीलम धमीजा परिचय कराती है मा वै-कुओं से। अण्डाकार भोले-चेहरेवाले मा पास आकर शुद्ध हिन्दी में बोलते हैं, “आप यात्रा में थक गये होंगे। यह जूस पियें !” तुरन्त अजनबीपन की अचकचाहट दूर होने लगती है, हिन्दी भाषा पहली बार चीन से मन को जोड़ती है। पता चलता है कि मा कई वर्षों तक भारत में रहकर अभी इस जनवरी में चीन लौटे हैं। छुट्टी पर थे। हमारे प्रतिनिधिमण्डल का कार्यक्रम बनने पर बुला लिये गये हैं। पूरी यात्रा में साथ रहेंगे। भारत में कहाँ-कहाँ गये ? “आपके इलाहाबाद भी गया। संगम

भी देखा। वो प्रेमचन्द के लड़के हैं अमृतराय। उनसे भी मिला। पर मुझे सबसे अच्छा नगर लखनऊ लगा। लोग भी अच्छे हैं। लखनऊ के नवाब। हुक्का भी पिया।" मा बहुत मजेदार ढंग से हिन्दी बोलते हैं। कुछ पुरमजाक भी हैं। पट जायेगी। चलो, एक दोस्त बना।

दूसरे दोस्त बने सौरभ कुमार। भारतीय दूतावास के युवा सेकेण्ड सेक्रेटरी। घराना कानपुर की ओर का, पढ़े दिल्ली में, हांगकांग में चीनी सीखी और अब फरटि से चीनी बोलते हैं। शाम खाली थी। सौरभ आ गये और हम लोग अपने 14 मंजिला पेकिंग होटल से निकले, बाहर सड़क पर चहलकदमी के लिए। होटल के अहाते में खड़ी या आती-जाती कारों के अलावा सड़क पर कारें कहीं नहीं थीं। (व्यक्तिगत कार रखने की किसी को इजाजत नहीं। कार या तो सरकारी होती है, या पर्यटकों के लिए है, टैक्सियाँ या दूतावासों की—बस) केवल मिनी बसें, ट्रकें, ट्राली बसें, जिनमें लाउडस्पीकर लगे थे और लोग भरे थे, और साइकिलें, साइकिलें, साइकिलें, साइकिलें ? सभी की एक पोशाक : नीला या खाकी-हरा, या भूरा सूती बुशकोट, उसी रंग का पैंटनुमा पाजामा। बालों के ढंग से पहचानिए कौन स्त्री है, कौन पुरुष। अगर पहिरावे पर जायेंगे, तो धोखा खायेंगे। ओहदा कोई हो, वेतन कुछ हो, उम्र कुछ हो, वही बुशकोट, वही पाजामा। यह तो अच्छा लगा कि पोशाक से अमीरी झलकाने की गुंजाइश यहाँ नहीं, पर पोशाकों की एकरसता तो टूट सकती है। होटल के फाटकों पर चीनियों की भीड़ थी। वे हर आती-जाती कार और विदेशियों को कुतूहल से देख रहे थे। (पता चला ऐसे अनेक होटलों में, कर्मचारियों के अलावा अन्य चीनियों का प्रवेश मना है।) लेकिन अजीब बात, उन कुतूहल से देखते लोगों की ओर आप मैत्रीपूर्ण मुस्कान से देखें, 'हलो' कहें तो वे जवाब में मुस्काते नहीं, आँखें भी नहीं मिलाते, घबराकर मुँह फेर लेते हैं। फुटपाथ पर चलते बार-बार आजमाता हूँ, मगर हर मुस्कान रद्दी के टोकरे में फेंकनी पड़ती है। आपके देखते ही लोग सीधे सामने देखते हुए निकल जाते हैं। क्या यह अपरिचय केवल महानगरीय है ?

एक जगह कुछ हलचल दिखी। मैं थम गया। फुटपाथ पर एक कोई चिड़िया थी। दो-तीन लोग उसे पत्थर मार रहे थे और वह फुदक कर फिर दूर जा बैठती थी। दो-तीन लोग और इस अभियान में शामिल हुए और वह चिड़िया उड़ कर एक पेड़ की फुनगी पर जा बैठी। गौर से देखा गौरैया थी। पर अजीब बात। गौरैया ऐसे में जोर से चहचहाती है, डर से या गुस्से से। पर यह गौरैया फुनगी पर बेचैनी से फुदक तो रही थी, पर मजाल कि चोंच खुले और कोई आवाज निकले।

और तब सहसा खयाल आया कि इस विशाल चौड़ी सड़क के दोनों ओर पेड़ों की चार-चार कतारें हैं। लेकिन किसी चिड़िया का नाम निशान नहीं। हमारे यहाँ शाम होते चिड़िया आकाश से उतर कर अपने-अपने घोंसले में, अपनी-अपनी डालों पर लौटती है, उनकी चहचहाहट से पता चलता है कि अब शाम हुई ! यहाँ बिना चिड़ियों के शाम कैसे होती होगी ?

पर दायीं ओर के आकाश में कुछ काले-काले छोटे धब्बे तैर रहे थे। पुरानी इमारतों की रहिवासी अबाबीलें—मैंने पहचाना। पर वे आकाश के उतने ही टुकड़े में चक्कर काट रही थीं। सौरभ ने बताया—बायीं ओर वह मीलों के दायरे में फैला प्रख्यात वर्जित नगर है (फारबिडेन सिटी)। ये कंगूरेदार ढलवाँ लाल छाजनें चीन के पुराने राजवंशों के पुराने महलों की हैं। वहाँ अब कोई नहीं रहता। अब पर्यटकों के लिए खोल दिया गया है, वह रहस्यमय वर्जित नगर। अबाबीलें उतने ही आकाशखण्ड में उड़ रही हैं। जानती हों शायद कि वर्जित नगर के बाहर का महानगर उनके लिए वर्जित है। 'अनुशासन पशु पंछिहि चीहा'—कह गये तुलसीदास ! बाद में मालूम हुआ कि माओ कह गये थे कि पूरे चीन में चूहे और गौरैया का सफाया कर देना चाहिए। वे अन्न नष्ट करते हैं।

केवल पक्षियों के ही लिए आकाशखण्ड बँटा नहीं है, शाम को होटल के लाउन्ज में कई बार चीन आये हुए एक विदेशी यात्री से और भी बातें मालूम हुईं। होटल में अनेक मंजिलों पर अनेक स्वागतकक्ष और भोजकक्ष हैं। किस देश से कितनी मैत्री है, उसके आधार पर तय होता है, किस कक्ष के द्वार किस मंजिल पर किसके लिए खुलेंगे। दूतावासों की इमारतों का किराया और उनके चीनी कर्मचारियों का वेतन भी इसी आधार पर निर्धारित होता है कि कौन-सा देश कितना मित्र है। जो मित्र है, या जिनसे चीन मैत्री का इच्छुक है, उनसे उतनी ही बड़ी इमारत का कम किराया; जिनसे राम-रमौवल कुछ कम है, उनसे उतनी ही बड़ी इमारत का ज्यादा किराया। मैं तो गणित में सदा से ही कमजोर रहा हूँ, यह गणित भी नहीं समझ पाता।

खैर, आइए फुटपाथ पर लौटें। सड़क के दायीं ओर वर्जित नगर के महलों के कलात्मक फाटक हैं और सामने सड़क के बायीं ओर है तियेन अ मेन स्क्वायर ! नगर चौक पूरा उपनगर बस जाये इतना विराट प्रांगण—साफ चिकने पत्थरों का फर्श ! मैं तो गया नहीं, पर जॉर्ज वर्गीज मास्को हो आये हैं। बताते हैं कि रेड स्क्वायर इसके मुकाबले छोटा पड़ेगा। इसके एक कोने पर मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्तालिन के भव्य रंगीन चित्र लगे हैं। एक ओर म्यूजियम है, एक ओर विशाल इमारत पीपुल्स हाल की, जिस पर चेयरमैन माओ और चेयरमैन हुआ के विशाल चित्र। बीच में शहीद स्तम्भ और उसके पीछे वह सादे लेकिन बड़े प्रभावशाली स्थापत्य की नयी इमारत—माओ-स्मारक ! उसी में रखा है चेयरमैन माओ का रसायन-लेपित शव। दर्शन का समय निश्चित है। अब बन्द हो गया है। वैसे भी उसके लिए अनुमति-पत्र पहले से लेना होता है। जाने के पहले हम दर्शन करेंगे अवश्य।

यहाँ तियेन अ मेन स्क्वायर में अब भी भीड़ है। छाता गाड़े फोटोग्राफरों से बहुत-से लोग फोटो उतरवा रहे हैं। कुछ शहीद स्मारक के इर्द-गिर्द जमा हैं। कुछ यों ही टहल रहे हैं। एक ओर किसी अन्य नगर से आये स्कूली बच्चों की कतार खड़ी है। बच्चे यहाँ की रौनक हैं। उनकी रंग-बिरंगी पोशाकें, गदबदाये चेहरे, उनका शोर एकरसता को थोड़ा भंग करता है। चलो चिड़ियाँ न सही, बच्चे ही सही।

यही वह स्क्वायर है जहाँ जब चाउ एन-लाइ का शव लाकर रखा गया, तो तत्कालीन शासक चौकड़ी (गैंग ऑफ फोर) के आतंक की उपेक्षा कर विद्रोही भीड़ ने उन पर फूल चढ़ाये थे। यही वह स्क्वायर है, जहाँ इस बात की खबर पाकर कि चौकड़ी को परास्त कर दिया गया है, लाखों पेकिंगवासी सारी पंक्तिबद्धता त्याग कर गाते हुए, खुशियाँ मनाते हुए घिर आये थे। उस दिन किसी दुकान में चीनी मदिरा की कोई बोतल नहीं बची थी और इस स्क्वायर का आकाश स्वतःप्रेरित आतिशबाजियों से रंगारंग जगमगा उठा था।

रात के खाने पर पेकिंग में दस-बारह वर्षों से रहनेवाले कुछ विदेशी संवाददाताओं से अन्तरंग बातें हुई, यही उन्होंने बताया कि “सचमुच चाण्डाल चौकड़ी का शासनकाल बहुत अच्छेखाते का था। अभी भी सत्ताधिकार का आंतरिक तनाव है, तेंग सियाजो-पिंग अभी भी चुनौती के रूप में चुके नहीं हैं, लेकिन हुआ कुओ-तेंग के हाथ मजबूत हैं। हुआ अन्य लोगों की तुलना में अधिक सन्तुलित और समझदार हैं। हाँ, अभी इतने लोकप्रिय नहीं, पर हो जायेंगे। आप देखते नहीं, उनकी करुणाई-भरी तस्वीर हर जगह चेयरमैन माओ के साथ लगायी गयी है। एक बात और गौर कीजिएगा। माओ की तस्वीर के नीचे कोई परिचय नहीं। शायद आवश्यक नहीं। पर चेयरमैन हुआ की तस्वीर के नीचे हमेशा परिचय लिखा रहता है।”

“क्या लिखा रहता है ?”

“चीन में विशेषणों का खास महत्त्व है। माओ को हमेशा कहा जायेगा हमारे महान नेता (ग्रेट लीडर) चेयरमैन माओ। और हुआ को हमेशा कहा जायेगा हमारे बुद्धिमान नेता (वाइज लीडर) चेयरमैन हुआ। दोनों के विशेषण बँधे हुए हैं।” जवाब मिला। निर्धारित आकाश, निर्धारित विशेषण।

इस शाम के ये दोनों विदेशी पत्रकार साथी वर्षों से चीनी जीवन में काफी रस-बस गये हैं, पर फिर भी चीनी राजनीति को समझना उन्हें बहुत कठिन लगता है। वे क्या कहते हैं, उसके दूरगामी अभिप्राय क्या हैं, कितनी बड़ी और दूरगामी योजना का सूत्रपात कहाँ कितने साधारण-से बिंदु पर होता है, यह समझना काफी टेढ़ी खीर है। लेकिन इस समय चीन मैत्री चाहता है, इतना वे भी मानते हैं।

आज एक तिहाई दिन विमान में बीता, शेष दो तिहाई दिन पेकिंग में मन को जमा नहीं पाया है। यह भी कोई शाम हुई कि सबने 6 बजे शाम को खाना खा लिया, 8 बजे तक सारा शहर सुनसान। जिस बम्बई में रात को आठ बजे शाम शुरू होती है उसके रहनेवाले की हालत का अन्दाजा कीजिए। बेमतलब होटल के लाउन्ज में घूम

रहा हूँ। यह होटल चीन का सबसे पुराना, सबसे गौरवशाली होटल है। मूल इमारत की मरम्मत हो रही है। बीचवाला हिस्सा चीनी अतिथियों के लिए और यह हिस्सा विदेशी अतिथियों के लिए। लाउन्ज में चीनी कलाकृतियाँ लगी हैं और सामने बहुत बड़े लाल पट्टे पर सुनहरे अक्षरों में लिखा है—‘वी हैव फ्रेंड्स आल ओवर द वर्ल्ड’ (सारे संसार में हमारे मित्र हैं)। सोच रहा हूँ, अगर यह बात है तो चीनियों के लिए अलग, विदेशियों के लिए अलग खण्ड क्यों ? सड़क पर कोई मुस्कान का जवाब मुस्कान से क्यों नहीं देता ? हर देश के अन्तर्राष्ट्रीय होटलों की तरह यहाँ कोई स्टाल क्यों नहीं है, जहाँ दुनिया भर के प्रमुख अखबार मिल सकें ? मैत्री की आधारभूमि होती है, परिचय, जो धीरे-धीरे अन्तरंगता और अभय में बदलता है। यह पहला दिन तो अपरिचय का दिन रहा। देखें शेष 20 दिन में नया चीन परिचय, अन्तरंगता और अभय का रिश्ता कायम करता है या नहीं ?

इनका एक रिवाज बहुत अच्छा लगा। कमरे में जेस्मीन (बेला और चमेली) की महकवाली चाय का पैकेट रखा है, एक ढक्कनदार बड़ा प्याला रखा है और एक बड़े धर्मस में बेहद गरम पानी। जब मन हो, प्याले में चाय की थोड़ी-सी पत्ती डालें, ऊपर से गरम पानी डाल दें। रंग उतर आये, तो पी लें। न दूध की किल्लत, न चीनी की चखचख।

नींद सुबह साढ़े पाँच बजे खुल गयी है, बेड टी स्वयं बनाकर, प्याला हाथ में लेकर कमरे के सामने छज्जे पर खड़ा हो कर चीन की धरती पर पहला सूर्योदय देख रहा हूँ। सूरज काफी चढ़ आया है, पर कोहरा (या धुआँ, जो भी हो) के कारण मलिन है। ठीक सामने दूर पर किन्हीं कारखानों की तीन चिमनियाँ धुआँ उगल रही हैं।

पेड़ बहुत हैं, पर एक भी पक्षी का कलरव नहीं सुन पड़ता। सुनो भाई पेकिंग ! अगर तुम इसी तरह पक्षियों के उन्मुक्त कलरव से रहित सवेरा करते रहोगे, तो मेरा मन कैसे जुड़ायेगा। वहाँ भारत में तो मेरी किताबों के बीच गौरैया घोंसला बनाती हैं, छज्जे पर कौए धावा मारते हैं और खिड़की में कबूतर गुटरगूँ करते रहते हैं। यह भी कोई बात हुई कि चिड़ियाँ सिर्फ तुम्हारे होटल के कमरों में लगे कलात्मक चित्रों में दिखाई दें, क्योंकि ये तस्वीर की चिड़ियाँ अन्न नहीं खाती ?

हम अखबारी जीवों के लिए पहला कार्यक्रम बना चीन के सबसे बड़े दैनिक पत्र ‘रेन मिन रिवाओ’ (या पीपुल्स डेली) के कार्यालय में जा कर चीनी पत्रकारों से भेंट और उनसे खुली बातचीत। होटल से जरा ही दूर पिछवाड़े की सड़क पर जाना था। उनके अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के सम्पादक ने हमारा स्वागत किया—“हम अपने भारतीय

पत्रकार मित्रों का स्वागत करते हैं। भारत और चीन इन दोनों देशों की दोस्ती पुरानी है। कुछ वजहों से टूट गयी थी। लेकिन नयी जनता सरकार और उसके विदेशमन्त्री ने सभी पड़ोसी देशों के प्रति मैत्री का रुख अपनाया। यह अच्छा कदम है। हम भी यही चाहते हैं। पिछले दिन चीनी प्रतिनिधिमण्डल का भारत में बहुत प्रेम से स्वागत हुआ। हमारे पत्र ने उसका विस्तृत विवरण छापा। अब आप हमारे देश आये हैं। देखें कि चीनी लोग कैसे रहते हैं, और अपने लोगों को बतायें। यदि कोई आलोचना हो, तो वह भी हमें बतायें। हमें पूरी आशा है कि हमारी दोस्ती फिर परवान चढ़ेगी। हमारे सम्बन्ध जल्दी ही सामान्य हो जायेंगे।”

यह अखबार चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का केन्द्रीय मुखपत्र है। इसकी स्थापना जून, 1948 में हुई थी सेजुआन में। तब यह सेण्ट्रल कमेट्री का नहीं, केवल उत्तरी चीन की पार्टी का पत्र था। अब यह 60 लाख छपता है, सारे देश के 17 केन्द्रों से। मुख्य सम्पादक और सहकारी मुख्य सम्पादक की नियुक्ति पार्टी की सेण्ट्रल कमेट्री द्वारा होती है। उद्देश्य है, मार्क्सवादी पद्धति का प्रचार।

विचार-स्वातन्त्र्य के प्रश्न पर ज्ञात हुआ कि विचार-स्वातन्त्र्य है। किस प्रकार का ? इस प्रकार का कि यदि मार्क्सवाद की व्याख्या को लेकर सम्पादक और अन्य वरिष्ठ अधिकारियों या पत्रकारों में मतभेद हो, तो वे आपस में बहस करके एक नतीजे पर पहुँच सकते हैं, लेकिन वह बहस पाठकों के समक्ष नहीं रखी जाती ? जब पूछा गया, क्यों, तो उत्तर मिला, ऐसा मतभेद हममें होता ही नहीं। (अब इस जवाब से आप जो समझें, हे पाठकगण !)

विचार-स्वातन्त्र्य का दूसरा उदाहरण मिला कि पाठकों के खुले पत्र हम छापते हैं। उदाहरण के लिए एक पाठक ने शिकायत की कि विदेशी भाषा शिक्षण-संस्थान में एक ऐसे छात्र को भर्ती कर लिया गया, जिसके राजनीतिक विचार सन्दिग्ध-थे। फिर अनेक पाठकों के पत्र आये, तो पता चला कि उस संस्थान में बहुत गड़बड़ियाँ थीं। यह उदाहरण विचार-स्वातन्त्र्य का कैसे हुआ, जब यह हमारी अल्पबुद्धि नहीं समझ पायी, तो सीधे पूछा गया कि क्या आपके सम्पादकीय में व्यक्त विचारों से असहमति प्रकट करनेवाले पाठकीय पत्र आप छापते हैं। तो उत्तर मिला कि मैं अन्तर्राष्ट्रीय विषयों का सम्पादक हूँ, यह बात आपको आन्तरिक समस्याओं के सम्पादक बता सकेंगे।

पत्र में आउ पृष्ठ होते हैं। अच्छा लगा देखकर कि विज्ञापन होते ही नहीं, क्योंकि उस समाज-पद्धति में विज्ञापनों की कोई उपयोगिता ही नहीं। सम्पादकीय भी रोज आना जरूरी नहीं। जब उपयुक्त विषय और अवसर होता है तभी। कभी-कभी ‘रेड प्लैग’

या 'पीपुल्स डेली' एक दूसरे के सम्पादकीय उद्धृत भी करते हैं। इमर्जेन्सी में भारत के अखबारों ने जैसे पापड़ बेले, वैसा कुछ अनुभव 'पीपुल्स डेली' का भी हुआ चाण्डाल चौकड़ी के शासनकाल में। उसका दिलचस्प किस्सा सुनायें आपको।

सन् '74 के आसपास चाण्डाल चौकड़ी (चियांग चेंग, वांग हुग-वेन, चांग चुन-चियाओ, याओ वेन-युआन) ने इस अखबार पर कब्जा जमाने की साजिश की। इसमें खास पहल की, चौकड़ी के चौथे सदस्य याओ वेन-युआन ने। उसका खास आदमी लु यिंग प्रमुख सम्पादक बना कर भेज दिया गया। उस समय चाण्डाल चौकड़ी का असर सेण्ट्रल कमेटी पर भी बहुत था।

"फिर लु यिंग हटाया कैसे गया ?" जॉर्ज वर्गीज ने पूछा। उत्तर मिला कि हम लोगों ने अन्दर-ही-अन्दर खूब तैयारी की। पहले उसकी नीतियों के खिलाफ दीवारों पर बड़े-बड़े पोस्टर लगे। फिर सेण्ट्रल कमेटी ने भी कामगारों की मण्डलियाँ भेजीं। अन्त में तख्ता पलट गया। हु शि-वि, जिन्हें चाण्डाल चौकड़ी ने सजा दी थी, प्रमुख सम्पादक बनाये गये। येनान के समय से पुराने अनुभवी कामरेड हैं। दस विभागीय अध्यक्ष लु यिंग के साथ थे। उन्हें अब यहीं रख कर पुनर्शिक्षित किया जा रहा है। पुनर्शिक्षण की पद्धति क्या है ? उन्हें विभागीय अध्यक्ष पद से उतार कर प्रूफ रीडर बना दिया गया है। और प्रमुख सम्पादक लु यिंग का क्या हुआ ? हमने पूछा। "नहीं, न उसे मारा गया, न जेल भेजा गया। वह यहीं है। उसे काफी तनखाह मिलती है और यहीं काम करता है।"

"क्या काम करता है ?"

उत्तर मिला कि इसी इमारत के आँगन में झाड़ू लगाता है। "पर इसके लिए हम उसे तनखाह देते हैं।"

काफी मुदित भाव से मलकानी जी ने उत्कट इच्छा प्रकट की, इस झाड़ूधारी लु यिंग को देखने की। काफी देर बाद पता लगा कर बताया गया कि दो दिन से वह बीमार है, छुट्टी पर है।

एक अनुपम दृश्य से हम वंचित रह गये !

आज पूरा दिन था, जन-संचार माध्यमों का दिन। यहाँ से रेडियो पेकिंग का कार्यालय देखना है, उपप्रधान संचालक लु दुइंग से विशेष भेंट रखी गयी है, पर मेरा मन ज्यादा रमा उन चीनी बन्धुओं से बात करने में, जो रेडियो पेकिंग से हिन्दी, तमिल, बँगला और उर्दू में कार्यक्रम प्रसारित करते हैं। हिन्दी कार्यक्रम के निदेशक हैं सुन बाओ-कान। चेहरे पर एक अलग प्रकार का सौजन्य शिष्टाचार का भाव, जो एक भारतीय मन को सहज रूप में प्रिय लगेगा। जब मालूम हुआ कि उन्होंने पेकिंग में ही मेरे अग्रज मित्र डॉ. जगदीशचन्द्र जैन से हिन्दी सीखी है, उन्हीं के शिष्य रहे हैं; तब तो आत्मीयता का सूत्र जुड़ना स्वाभाविक था। मैं, सुन बाओ-कान तथा मा वै-कुआँ अपनी-अपनी चाय का प्याला ले कर अलग सोफे पर बैठ गये और एक छोटे पैमाने पर भारतीय-चीनी-हिन्दी सम्मेलन शुरू हो गया। सुन बाओ-कान अपने गुरु के पूरे

परिवार का हालचाल पूछते रहे। धर्मयुग वे चीन में भी नियमित मँगाते और पढ़ते हैं। उन्हीं से पता चला कि रेडियो पेंकिंग में, पेकिंग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में तथा चीन के विदेश मन्त्रालय की भारतीय डेस्क पर धर्मयुग मँगाया जाता है। भारतीय दूतावास में तो आता ही है।

सुन बाओ-कान से मिल कर सचमुच खुशी हुई। वे बाद में एक शाम को अपने कुछ हिन्दी जानने और बोलनेवाले युवा चीनी सहकारियों के साथ पेकिंग होटल में भी मिलने आये और बड़े प्रेम से हिन्दी के बारे में बातचीत करते रहे। उनको यह जानने की विशेष उत्सुकता थी कि उनके और उनके सहकारियों का हिन्दी उच्चारण कैसा है ? वे यह भी जानना चाहते थे, क्या 'लिंगुआफोन' जैसे किसी माध्यम से हिन्दी उच्चारण ठीक करने की व्यवस्था हो सकती है ? मैंने यह भी सुझाव दिया कि यदि अगले विश्व हिन्दी सम्मेलन में आ सकें, तो अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विरादरी से उनका परिचय हो जायेगा। उनका सम्पर्क इधर के हिन्दी साहित्य से भी कट-सा गया है। वे बहुत जानना चाह रहे थे कि इधर 15 वर्षों में हिन्दी के अच्छे कहानीकार कौन-कौन हैं, कौन-से अच्छे उपन्यास हिन्दी में आये हैं। पेकिंग से चलते समय मुझे एक बहुत सुन्दर पैकेट मिला। उसके अन्दर अंग्रेजी में अनूदित चीनी का एक प्रख्यात उपन्यास था, 'द ड्रीम्स आफ रेड मैन्शन' (लाल महल के स्वप्न)। यह सुन्दर उपहार सुन बाओ-कान ने रेडियो पेकिंग के हिन्दी विभाग की ओर से भेजा था।

चीन में अपने हिन्दी मित्रों की संख्या दोगुनी हुई—मा वै-कुआँ और अब सुन बाओ-कान।

और अब मिलना है अपने मेजबानों से। यानी सिनुआ सम्वाद समिति, जिसने इस आमन्त्रण का आयोजन किया है। येनान में जिस समय माओ के नेतृत्व में स्वायत्त साम्यवादी क्षेत्र बना था, उस समय 1937 में इस सम्वाद समिति की स्थापना हुई थी। उस समय दोहरा युद्ध चल रहा था। कुल बारह संवाददाता थे, जो युद्ध के मोर्चे से सम्वाद भेजा करते थे। आज वह चीन की राष्ट्रीय स्तर की सम्वाद समिति है। वहाँ दर्जनों टेलिप्रिण्टरों पर संसार भर की प्रमुख सम्वाद समितियों के समाचार आ रहे थे। बाद में मालूम हुआ कि वे अंग्रेजी में कोई दैनिक पत्र तो नहीं छापते, पर दुनिया भर की सम्वाद समितियों द्वारा भेजे गये इन समाचारों में से चुन कर एक साइक्लोस्टाइल बुलेटिन प्रतिदिन वितरित करते हैं। वे बुलेटिन हमें पेकिंग, नानकिंग, शंघाई, कैंटन हर जगह मिलती रहीं। जिन होटलों में विदेशी ठहरते हैं, वहाँ वे उपलब्ध रहती हैं। उन बुलेटिनों में कुछ ऐसे समाचार या वक्तव्य भी संकलित थे, जिनमें चीन की आलोचना

की गयी हो। इस यात्रा के दौरान इन बुलेटिनों में भारत के बारे में भी कई समाचार आये। अधिकतर या तो प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई से सम्बन्धित थे, या विदेशमन्त्री अटलबिहारी वाजपेयी से।

और इन्हीं टेलिप्रिण्टरों के बीच घूमते हुए पता चला कि चीनी टेलिप्रिण्टर उन्होंने कितनी मेहनत से बनाया है। चीनी लिपि में वर्णमाला नहीं है, अतः चीनी में संवाद भेजने में कितनी कठिनाई होती है। सुबह हम 'पीपुल्स डेली' के कम्पोजिंग विभाग में देख चुके थे कि ढाई हजार टाइप तो ऐसे हैं, जो उनके प्रतिदिन व्यवहार में आते हैं। विशेष टाइपों की संख्या तो न जाने कितनी होगी। इन्होंने रोमन लिपि को भी अपनाए के सुझाव पर विचार किया है। अपनी ध्वनियों के रोमनीकरण की नयी पद्धति भी बनायी है। लिपि के प्रश्न पर देश में खुली बहस भी हो रही है, लेकिन चीनियों की देशभक्ति और स्वाभिमान के समक्ष नतमस्तक होना पड़ता है कि इन तमाम बाधाओं के बावजूद उन्हें अपनी एक राष्ट्रभाषा स्वीकार करने और उसे सारे देश में लागू करने में रचनात्मक कठिनाई नहीं हुई। और यह भी नहीं कि चीन में भाषा वैविध्य न हो। उत्तर चीन के लोग क्वांगतुंग प्रान्त की भाषा बिल्कुल नहीं समझ पाते। कितनी ही भाषाएँ-उपभाषाएँ चीन में हैं, लेकिन उन्होंने पेकिंग के आसपास बोली जानेवाली भाषा को चीन की राष्ट्रभाषा (सम्पर्क भाषा नहीं) माना। सारे देश के प्राइमरी स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक में उसी को पढ़ाई का माध्यम बनाया, उच्चतम वैज्ञानिक शोध से लेकर उच्चतम राजकाज तक की भाषा बनाया और यह उनके राष्ट्रीय गौरव का प्रमाण है कि उनमें से अनेक उच्चाधिकारी अंग्रेजी, या फ्रेंच जानते हुए भी हम से जब औपचारिक ढंग से मिले, तो अपनी राष्ट्रभाषा में उन्होंने हमारा स्वागत किया, अपनी राष्ट्रभाषा में हमसे बातचीत की और दुभाषियों का प्रबन्ध हमेशा रहा, जो उनके उत्तर हमें अनूदित कर बताते रहे। (और एक हम हैं जहाँ आजादी के 30 वर्ष बाद भी भारतमाता के सपूत (?) अमरीका में अटलबिहारी जी के हिन्दी में बोलने पर एतराज करते हैं और अपने गोरे आकाओं, अन्नदाताओं की भाषा अंग्रेजी में बोलने का इस्तेमाल करते हैं। और विज्ञापनों के बल पर जीनेवाले यहाँ के वे क्षुद्र मनवाले अंग्रेजी दैनिक हैं, जो राष्ट्रभाषा के खिलाफ हर तरह का जहर उगल कर अपने बौद्धिक दीवालियेपन का सबूत देते रहते हैं ।)

सिनुआ सम्वाद समिति के उपसंचालक सिये वानचिंग ने काफी गर्मजोशी से स्वागत किया। यह भी कहा कि हम पत्रकार लोग राजनीतिज्ञों की तरह नहीं, वरन पत्रकारों की तरह खुलकर बातें करेंगे।

उन्होंने कुछ बातें सचमुच खुल कर कीं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि चीन विकासशील देश है। अनेक मामलों में हम पिछड़े हुए थे। चाण्डाल चौकड़ी (गैंग ऑफ फोर) की कठमुल्लेपन की नीतियों के कारण हम कई क्षेत्रों में और पिछड़ गये। हमारे यहाँ मुक्ति के बाद से इस्पात का और तेल का उत्पादन बढ़ा है, समाजवादी व्यवस्था के कारण। यह हमारी शक्ति है, लेकिन मैनेजमेण्ट में, आधुनिकीकरण के कई क्षेत्रों में हमारी कई कमियाँ हैं। कुछ हमें मालूम हैं, कुछ अपनी यात्रा के दौरान आप देखें, तो हमें बतायें।

आखिर 'गैंग ऑफ फोर' की नीति में दोष क्या था ? यह पूछने पर उन्होंने बताया कि वे मार्क्सवाद के नाम पर कठमुल्लावाद चला रहे थे। मसलन अगर इलेक्ट्रॉनिक्स का कारखाना है, तो उनका कहना था कि उसके विशेषज्ञ को लाल होना ज्यादा जरूरी है, चाहे वह विशेषज्ञ हो या नहीं ! अगर उसकी जगह अपने विषय के ज्ञाता इंजीनियर रखे जायें, तो वे कहते थे—हम पूँजीवाद को वापस ला रहे हैं, हम रिविजनिस्ट हैं। कितने ही वैज्ञानिकों, लेखकों, अध्यापकों, पत्रकारों, विशेषज्ञों को दक्षिणपन्थी कहकर दण्डित किया गया। उन्होंने सन् 70 से अपने ये गलत विचार फैलाने शुरू किये। चेयरमैन माओ को इसका आभास हो गया था। उन्होंने कहा था कि वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, बुद्धिजीवियों को श्रमजीवी वर्ग में गिनना चाहिए और उनकी रक्षा करनी चाहिए।

“माओ ने तो यह भी कहा था कि ‘सौ फूलों को खिलने दो, सौ विचारधाराओं को स्पर्धा करने दो’, लेकिन सांस्कृतिक क्रान्ति के बाद फिर यह नारा क्यों नहीं सुना गया ?” यह पूछने पर उत्तर मिला कि सांस्कृतिक क्रान्ति का नेतृत्व चियांग चिंग के हाथों में चला गया और वह यह विश्वास करती थी कि सब फूल चाहे मुरझा जायें, एक ही फूल खिले, जिसका नाम है चियांग चिंग ! उसने और उसके साथियों ने अखबार, रेडियो, सिनुआ सम्वाद समिति, सारे जन-सम्पर्क माध्यम अपने हाथ में कर लिये और देश को यह समझाना शुरू किया कि जो क्रान्ति लाये थे वे पुराने लोग अब पूँजीवाद पथिक (कैपिटलिस्ट) हो गये हैं। इस चाण्डाल चौकड़ी ने हर क्षेत्र में चीन की प्रगति को अवरुद्ध किया। अब हम फिर से उनकी तोड़-फोड़ का सुधार कर रहे हैं। प्रबन्ध और प्रशासन के क्षेत्र में तो स्थिति अब हमारे काबू में है, लेकिन सिद्धान्त और विचारों के क्षेत्र में अभी हमें संघर्ष करना पड़ रहा है, क्योंकि सारे जन सम्पर्क माध्यम उनके हाथ में हो जाने के कारण नयी पीढ़ी के दिमाग में ये कठमुल्ले विचार बहुत चतुराई से भर दिये गये थे।

“लेकिन उनकी इस कुटिल और कठमुल्ली नीति का पर्दा पहले फाश क्यों नहीं हुआ ? माओ की मृत्यु के बाद ही उन्हें हटाया जा सका। दस वर्ष तक वे मनमानी कैसे करते रहे, और वह भी माओ के जीते जी ?”

इस प्रश्न पर पहली बार हमने पाया कि स्पष्टभाषी सिये वान-चिंग का उत्तर कुछ स्पष्ट नहीं हो पाया, पर लोगों के बीच इस चौकड़ी का प्रभाव बना रहने के सिलसिले में उन्होंने कहा कि हमारे देश में कोई भी क्रान्ति के विरोध में कुछ नहीं

बोलना चाहेगा। बस यही बात उन्होंने पकड़ ली। उन्होंने जोरदार क्रान्तिकारी शब्दावली का गरमागरम प्रयोग किया। छद्म क्रान्तिकारी नारे लगाये और लोग उनका विरोध नहीं कर पाये कि कहीं उन्हें प्रतिक्रान्तिकारी न कह दिया जाये। पर क्रान्ति का नारा लगाते हुए, जनता की बात करते हुए भी वास्तव में वे क्रान्तिकारिता से कोसों दूर थे और सिर्फ अपने को सत्ता में प्रतिष्ठित कर, अपने गण को पद और प्रतिष्ठा बाँटने की साजिश कर रहे थे। ("जैसे भारत में 'समाजवाद' का नारा लगा कर, 'गरीबी हटाओ' का नारा लगा कर कुछ लोगों ने पूँजीवाद को और अपने को बढ़ाया" मेरी ओर झुक कर मा वै-कुआँ ने हिंदी में उदाहरण द्वारा स्थिति को स्पष्ट करने की कोशिश की।)

"आखिर फिर इस 10 वर्ष से अधिक चलनेवाली सांस्कृतिक क्रान्ति का सुफल क्या निकला?" इसका जवाब सिये वान-चिंग के पास तैयार था। तुरन्त बोले, "सुफल यह निकला कि इस चण्डाल चौकड़ी का छद्म उद्घाटित हो गया और हमने उन्हें हटा दिया!"

यह पहेली समझ में नहीं आयी। सांस्कृतिक क्रान्ति का ही फल यह था कि 'चाण्डाल चौकड़ी' सत्ता में आयी और उसी का सुफल यह था कि वह सत्ता से हटा दी गयी। कुछ और भी बातों का खुलासा नहीं हो पाया। मसलन चेयरमैन माओ के बावजूद इन्होंने अपना इतना प्रभाव कैसे बढ़ा लिया कि चेयरमैन के पूरे जीवनकाल में इनको नहीं हटाया जा सका। आज चीन आधुनिकीकरण की ओर बढ़ रहा है। यही वर्तमान उपप्रधानमन्त्री तेंग सियाओ-पिंग भी चाहते थे। तब उन्हें 1976 में हर पद से क्यों हटा दिया गया था? 'कल्चरल रेवोल्यूशन' का आखिर मकसद क्या था? विश्वविद्यालय 6 वर्षों तक बन्द रहे, इतिहास और भूगोल जैसे विषय स्कूली पाठ्यक्रम से हटा दिये गये। इनके तथा कई जगह विज्ञान और यान्त्रिकी के अध्यापकों को खलिहानों में अनाज के बोरे ढोने के लिए भेज दिया गया। अच्छे साहित्य, अच्छे शिल्प अच्छी कला को वर्जित करार दिया गया। अब इन तमाम दोषों का सुधार किया जा रहा है। यह तो ठीक, पर सांस्कृतिक क्रान्ति की कोख से इस चाण्डाल चौकड़ी नामक चतुर्मुख दैत्य का जन्म और विकास हुआ क्यों? इसके बीज उसी में नहीं थे तो कहाँ थे?

पर छोड़िए, हमारी बातें एक और दिलचस्प दिशा में मुड़ गयी हैं चीन-अमरीका-रूस का त्रिकोणात्मक तनाव, और उस सन्दर्भ में चीन की वैदेशिक नीति का व्यापक रूप। सिये वान-चिंग बताते हैं कि चेयरमैन माओ और प्रीमियर चाउ एन-लाइ ने जो शान्तिपूर्ण

सहअस्तित्व के सिद्धान्त दिये थे, उसके आधार पर वे सभी देशों से मित्रता चाहते हैं, लेकिन तीसरी दुनिया के प्रति उनका विशेष झुकाव है।

उनके वर्गीकरण के अनुसार दो महाशक्तियाँ अमरीका और रूस—दुनिया नम्बर एक हैं, उन दोनों के खेमों में जो देश हैं वे दुनिया नम्बर दो और बाकी सारे विकासशील देश एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के वे हैं तीसरी दुनिया। भारत और चीन उसी तीसरी दुनिया में आते हैं। चीन सबसे दोस्ती चाहता है, पर उपनिवेशवाद और समाजवादी उपनिवेशवाद के विरुद्ध है। यह दूसरी संज्ञा यानी 'सोशल इंपीरियलिस्ट' क्या है ? यह पूछने पर ज्ञात हुआ कि समाजवाद के अन्तर्गत एक समाजवादी देश दूसरे समाजवादी देश का शोषण नहीं कर सकता। उसकी राष्ट्रीय सार्वभौमता की उपेक्षा कर, अपनी सेनाएँ उस देश में नहीं भेज सकता। लेकिन उनके मतानुसार रूस पूर्व यूरोपीय देशों का शोषण करता है, उसने चेकोस्लोवाकिया का सैनिक दमन किया, उसकी सेनाएँ पूर्व यूरोप के देशों में हैं, मंगोलिया में हैं, यह कैसा समाजवाद है ?

पर रूस से इन देशों की सैनिक-सन्धि है। यह ध्यान दिलाने पर सिये वान-चिंग ने कहा—“वारसा पैक्ट तो बहाना है, दरअसल वे साम्राज्य फैलाना चाहते हैं। उस्सुरी नदी पर जो घटनाएँ हुई, इनके बारे में उनका बयान भी गलत है। और उनका पछतावा भी सच्चे दिल से नहीं है। नाटो पैक्ट पहले आक्रामक रहा होगा, लेकिन अब तो यह प्रतिरक्षात्मक है वारसा पैक्ट के समक्ष। वैसे हम ऐसे तमाम सैनिक ‘ब्लाकों’ के विरुद्ध हैं।”

“लेकिन ऐसा तो नहीं कि रूस और चीन में यह दरार अमरीका ने पैदा करायी हो ?” इस आशंका का वे प्रबल प्रतिवाद करते हैं। उनके अनुसार, रूस और चीन में पहले मार्क्सवाद को लेकर सैद्धान्तिक मतभेद बढ़े, फिर हमारे व्यापार और हमारी नौसेना पर उन्होंने चुपके से पूरा कब्जा जमाना चाहा। बहाना सहयोग का था, इरादा नियन्त्रण का। हमारे लाखों आदमी आजादी के लिए मरे, हम सब क्यों किसी के गुलाम बनें ? रूस की स्वार्थपरता तो सन '60 में ही नुमायाँ हो गयी थी, निक्सन तो उसके 10 वर्ष बाद सन् 70 में आये !

जब चीन में हमारे मुख्य मेजबान सिनुआ के उपसंचालक होने के नाते उन्होंने अन्त में फिर मैत्री की शुभकामना की, तो यह सवाल उठना स्वाभाविक था कि जिस सीमा समस्या के कारण गतिरोध आया, वह तो सुलझना जरूरी है। तो उन्होंने कहा, “हम कूटनीतिज्ञ नहीं हैं, अतः उस क्षेत्र की बात नहीं कर सकते। हम तो पत्रकार के रूप में अपने बन्धु पत्रकारों से बात कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि जो झगड़े के बिन्दु हैं वे शान्तिपूर्ण बातचीत से निबटाये जायें। आखिरकार हम दोनों देश एक ही औपनिवेशिक शोषण के शिकार रहे हैं। और मैत्री तो बढ़ेगी ही। हमारा डेलीगेशन आपके यहाँ गया, आप हमारे आमन्त्रण पर यहाँ आये, यही सद्भाव मैत्री का आधार बन सकता है। आप हमारी समाज पद्धति को देखें, शायद कई चीजें आपको पसन्द आयें। कई दिशाओं में आप हमसे आगे हो सकते हैं, वहाँ हम आपसे सीख सकते हैं।

चेयरमैन माओ ने कहा था—हर देश में कुछ अच्छा है। कुछ बुरा है। जहाँ जो अच्छा है वह हमें निस्संकोच ग्रहण करना चाहिए।”

हमारे सूचना मन्त्री श्री लालकृष्ण आडवाणी जी ने दिल्ली में प्रतिनिधिमण्डल को विदा-भोज देते समय भारतीय कला और संस्कृति के कुछ श्रेष्ठ प्रकाशन दिये थे, अपनी आमन्त्रणदाता सिनुआ सम्वाद समिति को उपहार देने के लिए। हमारी ओर से श्री जॉर्ज वर्गीज ने वह उपहार—मंजूषा सियें वान-चिंग को भेंट दी। उनकी छायाकार ने, जो छोटी-सी चीनी युवती पत्रकार थीं, तुरन्त सोफे पर खड़े होकर खटाखट हमारे चित्र लिये। चीनी कैमरे में हमारा पहला चित्र। वह सोफे पर खड़े होकर कैमरे को अपने सर से भी ऊपर उठाये थी। डर लगा कि कहीं सिर्फ हमारी खोपड़ियों के ही चित्र न आयें, मगर साहब, आशंका गलत थी। चित्र बिलकुल ठीक-ठाक आये। हम सब ज्यों-के-त्यों उसमें मौजूद थे।

अब यह कुछ मेरी आँखों का भ्रम है, या दिन भर हुई भारत-चीन मैत्री की बातों का असर है कि होटल लौटने पर मैं फिर चाय का प्याला हाथ में ले छज्जे पर खड़ा होता हूँ, तो लगता है अरे, दिल्ली और पेकिंग का आकाश आज कितना समान दिख रहा है। कभी राजस्थान-हरियाणा की ओर से दिल्ली में धूल की आँधी आयी हो, तो आपने देखा होगा कि आकाश बिलकुल गुम पीला-सा हो जाता है, मकानों की छतें भी उस पीले धुँधलके में ओझल होने लगती हैं। वैसा ही बिलकुल लग रहा है पेकिंग का आसमान—पीला, धुँधला, खामोश। पेकिंग से पहचान बन रही है, अपनापन कायम हो रहा है। पता चला कि यह पेकिंग में भी होता है। मंगोलिया के रेगिस्तानों से पीली आँधी यहाँ अक्सर आती है। पहले तो बहुत धूल भी आती थी। अब जब से रास्ते में जंगल लगा दिये गये हैं और पेकिंग में भी पेड़ों की चार-चार कतारें लगा दी गयी हैं, तब से धूल कम हो गयी है। पर यह पीला धुँधलका आँधी के साथ अक्सर आ जाता है। कल तक बारिश जरूर होगी और बारिश होते ही पेकिंग मई में भी बहुत ठण्डा हो जाता है।

पीले आसमान को छज्जे पर छोड़कर हम नीचे एक विशिष्ट स्वागतकक्ष में आ जाते हैं, जहाँ सिनुआ के अध्यक्ष श्री सिन तावो ने हमारे सम्मान में प्रथम राजकीय भोज दिया है। भोज का समय ठीक साढ़े छह बजे शाम। हम पाँचों के अतिरिक्त दूतावास से श्री सौरभ कुमार भी आमन्त्रित हैं, चीनी अतिथियों में सिये वान-चिंग के अतिरिक्त श्री कुंग हैं, जो पहले कभी दिल्ली में सिनुआ के संवाददाता रह चुके हैं और हमारे तीनों दिल्लीवाले साथियों के पूर्व परिचित हैं चांग चिये हैं, सिनुआ के संवाददाता

के रूप में पहले ग्रीस में रह चुके हैं। श्री चांग चाओ-जुंग हैं, सिनुआ के अंग्रेजी दुभाषिये और श्री मा वै-कुआँ हैं, मेरे हिन्दी-ज्ञाता दोस्त। कुछ और भी हैं, शायद सिनुआ के ही लोग।

सिन ताओ लम्बे-ऊँचे-गोरे, सुदर्शन व्यक्ति हैं। पहले विदेश मन्त्रालय में थे, पेरिस में चीन के राजदूत, उन दिनों जब फ्रांस और चीन के सम्बन्ध काफी प्रगाढ़ हुए थे। चाण्डाल चौकड़ी जमाने में सिन ताओ भी मुसीबत में आ गये थे, अब पुनर्प्रतिष्ठित हैं और कूटनीति में बड़े बन्धन होने के कारण पत्रकारिता में आ गये हैं, सम्वाद समिति के अध्यक्ष। सवालियों के जवाब देने में अभी भी कूटनीतिक कौशल झलक जाता है।

एक गोलमेज पर सजी दर्जनों प्लेटें। चीनी अतिथि-सत्कार के लिए मशहूर हैं। क्या शानदार डिनर था ? कम-से-कम 15 बार नयी भोजन सामग्रियों के परोसे आये। मगर इतना समझ लें कि भारत में जो कुछ हम चीनी रेस्तराओं में खाते हैं वे असली चीनी व्यंजन नहीं ! समूचे चीन में सिर्फ कैटन में उन चीजों से मिलती-जुलती चीजें हमें मिलीं, बाकी हर जगह चीनी खाना कुछ और ही था। मिर्च-मसाला भी केवल कुछ क्षेत्रों में चलता है, बाकी जगह काफी सादगी। शाकाहारी के नाते हर परोसे में मेरे और वयोवृद्ध शिवरामन जी के हिस्से तो तरह-तरह की उबली, भुनी सब्जियाँ ही आती थीं, या फिर तली मूँगफलियाँ, कमल गट्टे और इन पर उनकी टोस्ट प्रस्तावित करने की विशेष चीनी मदिरा 'मोताई'। इस कदर तेज कि माथा घूम जाये !

हँसमुख, हाजिर-जवाब सिन ताओ सवाल-जवाब के बीच में भारत-चीन मैत्री, हमारे स्वास्थ्य, विश्व शान्ति वगैरह के लिए टोस्ट प्रस्तावित कर रहे थे और हर टोस्ट के साथ वे 'मोताई' उठाते थे और 'गैबे' करते थे। 'गैबे' चीनी भाषा में कहते हैं एक ही घूँट में समूचा प्याला खाली कर देना।

मेरे बगल में कुंग बैठे थे। मेज पर उनके नाम के साथ मेरे नाम का कार्ड चीनी में लिखा रखा था। मैंने मा वै-कुआँ से कहा कि इसका हर अक्षर ज्यों-का-त्यों देवनागरी में करें, तो मालूम हुआ कि लिखा है—ता लान बेई अर पा ला ती, इसे उच्चरित करेंगे धरमवीर भारती।

सवाल-जवाब के दौरान सिन ताओ संसार भर के मार्क्सवादियों के अनेक खेमों में बँट जाने की बात कर रहे थे, मैंने पूछा, "आप तो फ्रांस में बहुत रहे हैं। माओ के बाद मार्क्सवाद के विकास में दो संज्ञाएँ बहुचर्चित हैं चे ग्वेवारा और यूरो कम्युनिज्म। आपका इनके बारे में क्या मत है ?"

यूरो कम्युनिज्म को तो सिन ताओ ने खास महत्त्व नहीं दिया, लेकिन चे ग्वेवारा के नाम पर उनकी आँखें चमक उठीं, "क्या आप उन्हें जानते थे ?" सिन ताओ ने पूछा। "नहीं, पर उनके बारे में पढ़ा बहुत है। उनके त्याग और उनकी बहादुरी का प्रशंसक भी रहा हूँ।" "पर उतना काफी नहीं है, बिना जनता के सहयोग के क्या होगा ?" सिन ताओ ने कहा, "मैं तब अल्जीरिया में राजदूत था और ये

कुंग वहीं संवाददाता थे। उन दिनों चे ग्वेवारा हमारे अच्छे मित्र बन गये थे। मैं और कुंग दोनों अपने कैशोर्य काल में गुरिल्ला रह चुके हैं। जब चे ने अपनी योजना हमें बतायी, तो हमने उनसे कहा कि गुरिल्ला अभियान तभी चल पाता है जब बहुसंख्यक जनता गुपचुप आपका साथ दे। चे अपनी गलत नीतियों के शिकार हो गये ?”

फिर मैंने कम्बोडिया के भूतपूर्व शासक प्रिन्स नरोत्तम सिंहानुक की खैरियत के बारे में पूछा, तो सिन ताओ ने बताया कि पिछले ही सप्ताह उन्होंने सेण्ट्रल कमेटी की मार्फत दो पत्र भेजे हैं। वे ठीक हैं, कम्बोडिया में ही हैं।

कुंग सहसा खड़े हो गये, “मैं यांग्त्सी और गंगा और पंचशील के नाम टोस्ट प्रस्तावित करता हूँ !” सब खड़े हो गये और मोताई के प्याले आपस में खनक उठे। कुछ के हाथ में आरेंज जूस भी थे।

यांग्त्सी और गंगा ! यांग्त्सी के निकट ही था यांगचऊ, जहाँ सिल्क बनता था, जहाँ से सिल्क मार्ग शुरू होता था, वहाँ से नौकाएँ सिल्क लादकर समुद्रों को पार करके भारत तक पहुँचती थीं। चीन के सिल्क को चीनांशुक कहते थे और वह पूजा में पहना जाता था। कुछ नौकाएँ गंगा के रास्ते वाराणसी तक आती थीं और वाराणसी में सिल्क की सबसे बड़ी हाट थी। उन नौकाओं के लिए कार्तिक में वाराणसी में आकाशदीप जलते थे। आज तक जलते हैं। रास्ते में भागलपुर था, उस समय के प्रख्यात समुद्री नाविक चाँद सौदागर की मंडी जहाँ आज भी सिल्क बनता है। कुंग ने बताया कि हमारे यात्रा कार्यक्रम में यांगचऊ भी है, सिल्क की नगरी ! वहाँ एक विशाल मन्दिर भी है। सि चि अ मो नी का ! सि चि अ मो नी कौन ? मालूम हुआ कि वही जिन्हें हम शाक्य मुनि कहते हैं !

इस पुराने तीर्थ यांगचऊ के साथ आपको कुछ दूसरे स्थानों की भी तीर्थ यात्रा करायेंगे। मसलन फाहचिन का प्राचीन मन्दिर। हैंगचाऊ का पगोड़ा, लिंगयिन का विहार, लेकिन थोड़ा धीरज धरें। पहले हम चल रहे हैं एक-दूसरे किस्म के तीर्थ स्थल, वह जहाँ सचमुच एक नये जीवन का निर्माण हुआ है। किसी विशेषज्ञ की योजना द्वारा नहीं, किसी विदेशी सहायता द्वारा नहीं, किसी प्रान्तीय या केंद्रीय सरकार द्वारा नहीं, केवल गाँव के किसानों की अपनी सहज बुद्धि अपने दृढ़ संकल्प, अपने खुरदरे हाथों की मेहनत, अपने सामाजिक सहयोग द्वारा, अपने गाँव की कंकड़ीली मिट्टी, अपने पहाड़ के पत्थरों, अपने बरसाती नालों के पानी, अपनी पहाड़ियों में पाये जानेवाले कोयले और चूने से ! वह भी उन किसानों द्वारा, जो सामन्ती सूबेदारों, बड़े जमींदारों और विदेशी

आक्रमणकारियों की तिहरी लूट-खसोट और दरिन्दगी के शिकार थे !

पेकिंग के दक्षिण में होपेई प्रान्त है। वही जहाँ के तमाम सारे चैना दाँत बनाने वाले, भुखमरी और अकाल से त्रस्त होकर भारत भाग आये थे और भारत के कस्बे-कस्बे में आपको जो दाँतों के चीनी डॉक्टर मिलते हैं वे अधिकतर उसी प्रान्त के हैं। उस प्रान्त के अब समृद्ध कोयला क्षेत्रों से गुजर कर ट्रेन उस क्षेत्र में पहुँचती है, जहाँ हरे-भरे पहाड़ हैं और खूब पानी है, और झरने ऐसे झरते हैं मानो विलकुल ट्रेन की खिड़की भिगो देंगे। और फिर शांसी प्रान्त में हम प्रवेश करते हैं। दृश्य बदल जाता है, ऊबड़-खाबड़ पहाड़, खिसकती मिट्टी के, पेड़ कहीं-कहीं, वह भी नाटे कुबड़े प्यासे, धूल भरी सड़कें, इन्हीं में एक बड़ी पहाड़ी है, जिसे व्याघ्रमुख पहाड़ी कहा जाता रहा है (टाइगर माउथ हिल), क्योंकि उसकी शक्ल बैठे हुए बाघ के मुँह जैसी है। इसी पहाड़ी की सूखी वीरान घाटियों की ढलानों पर जगह-जगह आपको मनुष्य के द्वारा खोदी गयी कोठरी के बराबर की गुफाएँ मिलेंगी। कच्ची, कुछ पक्की, कुछ जिनमें लकड़ी के दरवाजे लगे हैं, कुछ जिनमें दरवाजा भी नहीं है, चटाई टाँगकर पर्दा कर लिया जाता रहा होगा। ये उन गरीब गाँववालों के घर हैं, जो कभी इनमें रहा करते थे।

ऐसी ही कच्ची गुफा-गृहस्थियों का एक गाँव हुआ करता था ताचाई। सामन्ती सूबेदार कभी टैक्स वसूल करने आता था, तो ये अपनी गठरी-मुठरी लेकर गुफाएँ छोड़कर भागते थे, बूढ़े माँ-बाप और पाँच-छह किलबिलाते बच्चों के साथ, गिरते-पड़ते। इन्हें घेरकर, पकड़कर लाया जाता था और एक बड़े विलो वृक्ष के नीचे तने से बाँधकर उन्हें कोड़े मारे जाते थे। कभी-कभी जमींदार उनमें से किसी का टैक्स अपने पास से चुकाता था, तो उसे बेगारी करने के लिए एक प्याला भात और नमकीन शोरवे की कीमत पर जिन्दगी भर के लिए बँधुआ मजदूर बना लेता था। उसकी पत्नी या लड़की जो भी जवान हुई वह हरम में दाखिल हो जाती थी। और जो इन दोनों संकटों से बच जाते थे, उनके लिए मौजूद थे जापानी हमलावर ! 5 कि. मी. दूर काउण्टी का मुख्यालय सियान शहर था, जहाँ उनकी छावनी थी। वे कभी-कभी गोल बाँधकर आते थे, इन गाँवों को लूटने !

इनके अलावा कुछ और प्राकृतिक वरदान भी थे। कई साल ऐसा होता था कि बारिश नहीं होती थी और फसल सूखकर धूल हो जाती थी। कई बार पहाड़ों से बारिश का इतना पानी आता था कि खेत-फसल मेंड़ समेत बह जाते थे। 1920 के अकाल में बीस किसान परिवार शहरों में जाकर अपने बच्चे बेच आये थे। उन्हीं में एक

बच्चा संयोग से गाँव में छूट गया था। उसका नाम था चैन युंग-कुइ। 30 किलोमीटर दूर शिहशन गाँव में उसके पैदा होने के 6 साल बाद उसका गरीब बाप काम की तलाश में ताचाई आ गया था। चैन युंग-कुइ के तीन चाचा थे। एक को जापानी पकड़ ले गये थे, एक बैँधुआ मजदूर हो गया था, एक भीख माँगते-माँगते हांग हो के किनारे कहीं मर-खप गया था। कुछ दिन ताचाई में बीते कि 1920 का भयंकर अकाल आया। परिवार को जिन्दा रखने का कोई और उपाय न मिलने पर उसके पिता ने अपनी पत्नी, अपनी लड़की और अपने बड़े लड़के को बेच दिया। चैन युंग-कुइ आठ साल का था। उसका कोई खरीदार भी नहीं मिला।

परिवार को बेचकर पिता आठ बरस के बच्चे को लेकर फिर अपनी जन्मभूमि शिहशन गया। जब चैन युंग-कुइ सो रहा था, तो वह चुपके-से उठा। पत्नी, लड़की और लड़के को बेचने के दुःख में अपने पुरखों की कब्र के पास पुराने पेड़ की डाल से फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। आठ बरस का अनाथ चैन युंग-कुइ फिर भीख माँगता ताचाई लौट आया। भेड़ें चरायीं, बैँधुआ मजदूर बना, फिर भागा, खान मजदूर बना, सेवइयों की दुकान में काम किया और हारकर फिर ताचाई लौट आया।

वह 20 साल का था, जब उसके गाँव में कुछ अजनबी लोग आये। ये कुछ नयी तरह के लोग थे। ये माओ-त्से-तुंग का नाम लेते थे और कहते थे कि ताचाई के गरीब किसानों को आजाद करायेंगे। उन्हें दोहरी गुलामी से आजाद होना है। एक ओर गाँव के जमींदार से और दूसरी ओर उन जापानी हमलावरों से, जिनका अड्डा 5 कि. मी. दूर सियान में है। गाँव के अनेक किसानों ने उनसे विनती की कि गाँव से चले जाओ, वरना इसी बड़े विलो के पेड़ की डाल से तुम्हें वे लोग लटका देंगे। लेकिन चैन युंग-कुइ सोचता रहा। आगे बढ़कर वह उनके पास गया। उन्हें मक्का के दाने पानी में भिगो कर खाने को दिये और एक पहाड़ी की पुरानी उजड़ी गुफा में घास बिछाकर उनके सोने का इन्तजाम किया।

‘मैं और मेरे कुछ जवान साथी तुम्हारा साथ देंगे ! उसने उन्हें आश्वासन दिया। जापानी छावनी पर हमले की योजना बनने लगी। उस दिन से न केवल चैन युंग-कुइ ने एक नया मोड़ लिया, बल्कि पूरे ताचाई क्षेत्र के भाग्य ने एक नया मोड़ लेना शुरू किया। उपनिवेशवादी हमलावरों के खिलाफ गुरिल्ला संगठन गाँव में बनना शुरू हो गया। वे माओ के भेजे कम्युनिस्ट युवक इन्हीं की गुफाओं में रहते थे। इन्हीं के खेतों में दिन भर काम करते थे। इन्हीं का-सा मक्का-जुआर का खाना खाते थे। (आप जानते हैं यह कौन-से वर्ष की बात है ? सन् 1942 की। वही वर्ष जब हमारे बापू ने उपनिवेशवादियों को ललकारा था ‘भारत छोड़ो’। भारत का छात्र वर्ग और किसान-मजदूर जयप्रकाश और लोहिया के नेतृत्व में विद्रोह कर उठा था और हमारे भारत के कम्युनिस्ट उस जनान्दोलन से मुँह चुरा कर अंग्रेज सरकार का समर्थन कर सुख-सुविधाएँ बटोर रहे थे) इन्हीं किसानों के बीच किसानों की तरह रहकर न केवल वे उपनिवेशवादियों से लड़ते रहे, वरन् उन्होंने इनकी जमीन के मसले सुलझाये, इनके जोतने, बोने, खेत

बनाने, सिंचाई करने, फसल काटने और घर बनाने के तरीकों में सुधार लाने की कोशिश की। इन सब कामों में स्थानीय नेतृत्व सँभाला चैन युंग-कुइ ने। जो बच्चा आठ साल की उम्र में अनाथ होकर ताचाई में बँधुआ मजदूर की तरह आया था, उसने धीरे-धीरे किसानों को संगठित किया, अत्याचारी बड़े जमींदारों का आतंक खत्म किया, एक कम्यून बनाया और तीन वर्ष के अन्दर अगस्त 1945 में पैकिंग के भी पहले ताचाई ने अपने को मुक्त क्षेत्र घोषित कर दिया। मुक्ति का यह समारोह मनाया गया उसी बड़े विलो वृक्ष के नीचे, जहाँ कभी कोड़े बरसते थे किसानों पर।

लेकिन कथा यहाँ समाप्त नहीं होती। यहाँ से एक नया मोड़ शुरू होता है। आजादी का आना काफी नहीं, जब तक उस आजादी का आर्थिक आधार मजबूत न हो, जब तक शोषण न खत्म हो, जब तक उत्पादन न बढ़े, जब तक सबके जीवन में खुशहाली न आये। और यह सब कोई दूसरा करने नहीं आयेगा। यही पहाड़ी जमीन, यही पानी, यही लोग, यहीं के उपलब्ध साधनों से यह कर सकें, तब तो कुछ बात है।

कैसा अजीब है कि ग्राम स्वराज्य का, आत्म-निर्भरता का जो स्वप्न हमारे गांधी जी ने कभी देखा था, उस स्वप्न को माओ की प्रेरणा से मार्क्सवादी मुहाविरों में पूरा कर रहे थे ताचाई के चीनी किसान। आजाद होने के दो वर्ष बाद सन् 1947 में फिर उसी विलो वृक्ष के नीचे सब किसान चैन युंग-कुइ के नेतृत्व में एकत्र हुए। भूमि सुधार कार्यक्रम की घोषणा की गयी। जमींदारों का दबदबा खत्म कर भूमि बाँट दी गयी। छह साल बाद 1953 में फिर वहीं इकट्ठे होकर उन्होंने घोषणा की कि वे कृषि उत्पादन सहकारी संघ बनायेंगे और सामूहिक खेती करेंगे। 1958 में बाकायदा चैन युंग-कुइ के नेतृत्व में पीपुल्स कम्यून बना और उस बड़े विलो वृक्ष का नाम आनन्द वृक्ष रख दिया गया।

लेकिन यह तो निजाम बदलने के बाद कमोवेश चीन में हर जगह हुआ, फिर इसमें ऐसी क्या खास बात थी कि चैयरमैन माओ ने कहा कि 'खेती में ताचाई को आदर्श मानो ! और उनका यह वाक्य रेडियो पर, टी. वी. पर पोस्टरों में, अखबारों में, सभाओं में गूँज उठा। सारे संसार से कृषि-विशेषज्ञ आते हैं इस ताचाई क्षेत्र को देखने, लेकिन क्यों ?

इसकी वजह है वह चमत्कार, जो इस ताचाई उत्पादन ब्रिगेड के लोगों ने अपने संकल्प, अपनी सूझबूझ से, बिना किसी की बाहरी मदद लिये, अपने पहाड़ी ग्रामीण

क्षेत्र में ही उपलब्ध साधनों से किया। आठ साल का वह अनाथ बच्चा, जिसकी माँ, बहन और भाई बेच दिये गये थे, जिसका पिता आत्महत्या कर चुका था, वह चेन युंग-कुई आज चीन का उपप्रधानमन्त्री है। कृषि और सिंचाई का केन्द्रीय मन्त्री, सारे चीन की खेती का जिम्मेदार, लेकिन अब भी बुवाई या कटाई के वक्त वह अपने गाँव ताचाई आता है, उसी तरह सब साथी किसानों के साथ बुवाई-कटाई करता है ! आज एक पुराने कारखाने की इमारत को ताचाई का अतिथिगृह बना दिया गया है, जहाँ न केवल सारे चीन, वरन् देश-विदेश के लोग आते हैं, ठहरते हैं और किसानों की इस आत्मनिर्भरता के संकल्प-चमत्कार को देखते हैं।

इसी अतिथिगृह के एक स्वागतकक्ष में दिन भर ताचाई के खेतों में घूमने और सियान काउण्टी में कृषि का म्यूजियम देखने के बाद हम बैठे हैं। मेजबान हैं ब्रिगेड के डिप्टी लीडर। खुरदुरे हाथोंवाले कुशल किसान। इस साल ताचाई में सूखा पड़ा है। लोग कन्धों पर लाद-लादकर खेतों के हर पौधे को पानी पहुँचाने में व्यस्त हैं। वे दिन भर पानी का इन्तजाम देखकर खुद कीचड़-काँदों से जूझकर इस समय हमारे स्वागत के लिए आये हैं। (ब्रिगेड की कमेटी में 15 सदस्य हैं, चुनाव द्वारा एक लीडर, दो डिप्टी लीडर।)

उनके साथ हम एक बार देखने जाते हैं कि किस प्रकार पहाड़ों को काटकर खेत बनाये गये, पानी नीचे से ऊपर ले जाकर इकट्ठा किया गया। फिर उस पानी को नालियों, पाइपों और सुरंगों और पुलों द्वारा इस पहाड़ी से उस पहाड़ी तक इस प्रकार फैलाया गया कि हर खेत तक पहुँच सके, किस प्रकार सीढ़ीनुमा खेतों की मेड़ों को ऐसा आकार दिया गया कि बरसात में बह न जाये, किस प्रकार दो पूरी की पूरी पहाड़ियाँ काटकर समतल कर दी गयीं। एक खेत का मैदान बनाने के लिए और एक नाले को पाटकर खेती के लिए नयी जमीन निकालने के लिए और यह सब काम इन्हीं किसानों ने अपने हाथ से किया है। फुरसत के वक्त में, बिना बुलडोजर और डाइनामाइट इस्तेमाल किये, अपनी देखरेख में। वे गर्व से बताते हैं कि इसके लिए उन्होंने एक भी पैसे की मदद सरकार से नहीं ली। यहाँ तक कि खाद भी यहीं बनायी और पहाड़ियों में एक खास प्रकार का कोयला मिला, जिसे चूल्हे के लिए भी इस्तेमाल किया और चूना बनाने के लिए भी। सीमेण्ट का इस्तेमाल न कर उसी चूने से उन्होंने अपने रहने के घर और खेतों की मेड़ें और छोटे बाँध भी बनाये। हम उनमें से एक-दो घरों में भी गये। साफ-सुथरी तीन कोठरियाँ एक परिवार के लिए। कोठरी अन्दर ईंटों का ही चौतरा-सा, जिसमें नीचे चीजें रखने के लिए खाने बने थे और ऊपर सोने के लिए गद्दा। कहीं-कहीं सिलाई की मशीन भी फूलदार कपड़े से ढकी हुई। खुद वही नीला कोट और पाजामा, मगर सिलाई की मशीन या रेडियो बहुत फैशनेबुल कपड़े की पोशाकें पहने। हर परिवार को जरूरत के मुताबिक दो से पाँच कोठरियाँ मिल सकती हैं। किराया है प्रति कोठरी 5 युआन साल भर का, यानी करीब प्रति कोठरी करीब 20 रुपये साल। रसोई, स्नानगृह,

शौचालय सबका एक साथ है, अलग-अलग नहीं ! मरम्मत-पुतार्ई मुफ्त ।

बताया गया कि 1963 में शताब्दी की सबसे भयंकर बाढ़ आयी। करीब 97 प्रतिशत मकान बह गये। प्रान्त की सरकार ने चार गुना मदद मंजूर की, लेकिन ताचाई के स्वाभिमानी किसानों ने मदद नहीं ली। दिन में खेतों से बाढ़ का पानी उलीचा, टूटी मेड़ें बनायीं, पौधे जमाये और रात को मकान बनाने में जुटे। फिर ताचाई को बनाकर खड़ा कर दिया। उसके बाद ही चेयरमैन माओ ने राष्ट्र को आह्वान दिया था कि 'खेती में ताचाई को आदर्श मानो !

अब सारे उत्पादन (अनाज, फल, मुर्गी, गोश्त) से जितनी आमदनी होती है, उसका 60 प्रतिशत ब्रिगेड रखता है। राजकीय कर चुकाने के लिए और विकास कार्यों (अस्पताल, स्कूल, लाइब्रेरी, सभागृह, अतिथि-सत्कार, संगीत-नाटक-मंडल, स्थानीय रेडियो, नहर, सिंचाई आदि) के लिए तथा शेष 40 प्रतिशत 470 परिवारों में बाँट दिया जाता है। इनका अपना स्कूल है मिडिल कक्षाओं तक। अधिकतर लड़के पढ़ाई पूरी कर यहीं काम करना पसन्द करते हैं। अगर किसी में कोई विशेषता हुई तभी उसे आगे विश्वविद्यालय में भेजने के लिए चुना जाता है। सांस्कृतिक क्रान्ति के बाद से कुल चार लड़के यहाँ से विश्वविद्यालय में गये हैं। बूढ़े माँ-बाप अपने बच्चों के साथ रहते हैं।

ताचाई घूमघामकर वापस हम डिनर टेबल पर बैठे हैं। खाना सादी पद्धति से पकाया गया है, पर समाजपद्धति चाहे पूँजीवादी हो या साम्यवादी, बड़े शहर के मुकाबले गाँव-गाँव के खाने में एक हरेपन की सोंधी लज्जत होती ही है। और वह हमारा मेजबान डिप्टी लीडर कामरेड किसी भी गाँव के चौधरी की तरह हर नया व्यंजन आने पर बताता है कि ताचाई के मशरूम, ताचाई की गोभी, ताचाई की मूँगफलियाँ, ताचाई की पातगोभी, ताचाई के टमाटर सभी जगहों से अच्छे हैं, ऐसा स्वाद और कहीं नहीं मिलेगा ! उसके कथन में स्थानीय अभिमान के अलावा इतनी विशेषता और है कि उसके विचार में इन सब्जियों का उत्पादन, इनका आकार और इनका स्वाद इसीलिए बढ़ा, क्योंकि ताचाई के लोगों ने पूरी निष्ठा के साथ चेयरमैन माओ के सिद्धान्तों और चेन युंग-कुइ के नेतृत्व का पालन किया। दुष्ट 'गैंग ऑफ फोर' ने यहाँ भी दखलन्दाजी करने की कोशिश की, लेकिन यहाँ के लोग बहकावे में नहीं आये। चिढ़कर चियांग चिंग ने कहना शुरू किया कि ताचाई को आदर्श न मानकर एक-दूसरे ब्रिगेड को आदर्श मानो, जिसे उसका संरक्षण प्राप्त था। लेकिन ताचाई के लोग इससे भी नहीं विचलित हुए।

इस पर उन्होंने टोस्ट प्रस्तावित किया। हमने उनके मोताई के छोटे प्याले के प्रत्युत्तर में जूस का गिलास उठाया। कारण पूछने पर हमने बताया कि, 'भाई, आपकी मोताई बहुत तेज होती है, वोदका की तरह ! तो उन्होंने उसी स्वाभिमान के साथ प्रतिवाद करते हुए हमारे कथन की गलतियों को सुधारा—पहली बात, ताचाई हर क्षेत्र में आत्मनिर्भर है। यह हमारी अपनी ताचाई की मदिरा है। रूस की वोदका क्या खाकर

इसका मुकाबला करेगी ? उसमें केवल 60 प्रतिशत एल्कोहल होता है, इसमें 61 प्रतिशत है !

ब्रिगेड-जीवन के कुछ और पहलू अगले दिन देखने को मिले। पास ही में एक और पहाड़ी इलाका है। वहाँ ऊँची-नीची पहाड़ियाँ हैं और उनके बीच बहते नाले हैं। वे नाले भी ऐसे, जो ज्यादातर बरसात में चलते हैं। बाकी साल सूखे रहते हैं। उन नालों ने पहाड़ों को ऐसी सीधी खड़ी कटान में, ऊबड़-खाबड़ काट दिया है कि न उनमें सीढ़ीदार खेत बन सकते हैं, न सिंचाई की वैसी व्यवस्था हो सकती है, जैसी ताचाई में है। यह क्षेत्र शिहपेंग ब्रिगेड के अन्तर्गत है। और जब हमने घूम-फिरकर देखा, तो वास्तव में यहाँ ताचाई के मुकाबले कुछ विपन्नता थी।

सामान्यतया किसी भी विकासशील देश में यही होता कि इस विपन्न क्षेत्र के किसान या तो शहरों के कारखानों में मजदूरी करने चले जाते, या दूसरे क्षेत्रों के सम्पन्न फार्मों के खेतिहर मजदूर बन जाते। लेकिन हर अविकसित क्षेत्र को स्वयं उसी के साधनों से विकसित किया जाये, उसे यथासम्भव परजीवी न बनाया जाये, यह चेयरमैन माओ की नीति रही है। इस ब्रिगेड ने खेती के लिए अधिक जमीन उपलब्ध करने और उनकी सिंचाई की व्यवस्था करने के लिए एक दूसरा ही तरीका अपनाया।

ताचाई में पहाड़ों के ऊपर से नालियाँ काटकर पानी हर जगह ले जाया गया। वहाँ पहाड़ी की तलहटी में बहनेवाले नालों का नये ढंग का उपयोग किया। पत्थर तो पहाड़ों में हैं ही, एक खास किस्म का मुलायम पत्थर कोयला भी यहाँ मिलता ही है, जिसे सूखी पत्तियों के ढेर के साथ जलाकर ये चूना बना लेते हैं। जिन दिनों नाले सूखे रहते हैं, उन दिनों इन्होंने इन नालों को पक्की सुरंगों में बदलना शुरू कर दिया। नालों की तलहटी को समतल कर उनका ढाल ठीक कर पहले उनकी तलहटी को पत्थर और चूने से पक्का कर दिया। फिर उनके दोनों ओर सीधी दीवारें खड़ी कर दीं। अब छत कैसे बने ? कौंकरीट के लिए तो जरूरत होगी सीमेंट और लोहे की। इस ब्रिगेड के पास इतना पैसा कहाँ कि सीमेंट और लोहा खरीदे, वह भी एक-दो नहीं, मीलें लम्बे, दर्जनों नालों के लिए। अतः उन्होंने दूसरा ढंग तय किया। जैसे पुराने फाटकों में पत्थर या ईंटों को जोड़जोड़कर ऊपर गोल महराब बना देते थे, वैसी ही मेहराबदार गोल छत उन्होंने इन सुरंगों की बना दी। एक मुख्य सुरंग बड़े नाले की, और दायें-बायें से बहकर आने वाले सहायक नालों पर सुरंगें बनाकर इस मुख्य सुरंग में मिलाते गये। जब सुरंगों की छतें पक्की हो गयीं, तब उन्होंने पहाड़ों के मिट्टी वाले हिस्सों को काटकर नाले की कटान से बनी घाटियाँ भरकर समतल कर दी और वह सारा हिस्सा खेती लायक जमीन बन गया। अब ऊपर खेत हैं, नीचे सुरंगों में पानी बह रहा है, उसे जगह-जगह पम्प से ऊपर लाकर ऊँचे तालाब बना लिये गये हैं, जिनमें पानी इकट्ठा कर लिया जाता है और साल भर सिंचाई हो सकती है।

ये सुरंगें बनायीं किसने ? इनका यही कहना है कि इनमें इन्होंने बाहरी मदद नहीं ली। इस ब्रिगेड के किसान जाड़े और वसन्त के मौसम में खाली रहते हैं। उन्हीं

दिनों वे इन सुरंगों की चिनाई करते हैं।

मुझे दो-एक बार लगा कि इस प्रकार के वक्तव्यों में कहीं-कहीं शायद अतिशयोक्ति हो। इतनी लम्बी सुरंगों का यह जटिल जाल बिना कुशल इंजीनियरों की पूरी योजना के बन ही नहीं सकता। सिर्फ पत्थर, गारा और चूना रखकर एक-दूसरे पर चिनाई कर देने से तो सुरंग नहीं बन जाती। सुरंग कितनी चौड़ी हो, दीवारें कितनी ऊँची हों, मेहराबों की गोलाई कितनी हो कि वे ऊपर की सारी मिट्टी, खेत और फसल का बोझ सँभाल सकें। कहाँ पर मुख्य सुरंग में दरवाजा फोड़कर सहायक सुरंगें मिलायी जायें, तलहटी का ढाल कैसे निर्धारित किया जाये कि मुख्य नाले और सहायक नालों का सारा पानी किसी एक बिन्दु पर ज्यादा दबाव न डाले, इन सबके लिए इंजीनियरों के पूरे सर्वेक्षण, बारीक दृष्टि और वास्तुकार की पूरी देखभाल की जरूरत अनिवार्य है। लेकिन इस शिह पेंग ब्रिगेड के डिप्टी लीडर का दावा है कि यह केवल किसानों की ही करामात है ! अगर वे किसान ऐसे ही करामाती हैं, तो अभी तक क्या करते रहे ? जवाब मिला कि उन्हें सही 'राजनीतिक नेतृत्व' नहीं मिला था।

ऐसे मौकों पर इनके ब्रिगेड या कम्पून के लीडरों, या रेवोल्यूशनरी कमेटी के चेयरमैन या वाइस चेयरमैन से जो बातचीत होती है वह सचमुच दिलचस्प होती है। आप पूछेंगे कि, "जब चाण्डाल चौकड़ी माओ के सारे सिद्धान्तों को समूल नष्ट कर रही थी, तो 10 साल तक चेयरमैन ने इनको बर्दाश्त क्यों किया ?" उत्तर मिलेगा, "चेयरमैन माओ की दृष्टि इनके बारे में सदा बहुत स्पष्ट रही।"

आप पूछेंगे, "इन किसानों में से किसी एक प्रतिभाशाली सूझबूझ वाले किसान को इन सुरंगों के बनाने का विचार आया होगा ? उसका नाम क्या है, वह कहाँ है ?" उत्तर मिलेगा, "हमारा ब्रिगेड सामूहिक विचार करता है, सही राजनीतिक नेतृत्व के कारण ऐसे विचार आते हैं।" अन्त में आप प्रश्न पूछने की निष्फल प्रक्रिया से विरत होकर सामने रखी चमेली-बेले की महकवाली चाय पीना ज्यादा श्रेयस्कर समझने लगेंगे।

कुछ ऐसा ही एक अवसर ताचाई ब्रिगेड में भी कल आया। ऊपर एक पहाड़ी पर एक इमारत बन रही थी। काफी मजदूर (यानी कम-से-कम 20-25 लोग) उसमें लगे थे। इस वर्ष सूखे की स्थिति है, अतः सब किसान नीचे से पानी कन्धों पर ढो-ढोकर खेतों को सींचने में लगे हैं। तब फिर इस इमारत में काम करनेवाले कौन हैं ? जब मैंने यह पूछा, तो डिप्टी लीडर ने बताया, हमारे किसान ही इमारतें बनाते हैं। थोड़ी देर बाद दूसरे दुभाषिये के माध्यम से मैंने एक-दूसरे व्यक्ति से जब यही सवाल पूछा, तो उसने उत्तर दिया कि यह इमारत स्टेड की हाउसिंग मिनिस्ट्री बनवा रही है।

लेकिन इन छोटी-मोटी खामियों को नजरअन्दाज कर यह तो मानना ही पड़ेगा कि उन्होंने खेती के बारे में जो दृष्टिकोण अपनाया, जिस प्रकार हर क्षेत्र को स्वावलम्बी और स्वतः परिपूर्ण बनाने की चेष्टा की, भूमि की समस्या को सुलझाया, सिंचाई के साधन उपलब्ध किये, किसानों का शोषण करने वाले महाजन-व्यापारी वर्ग को, बिचौलिये वर्ग को निरर्थक बनाया, अपने ही क्षेत्र के पत्थर, कोयला, चूना, सूखी पत्तियों और

गोबर का उपयोग उत्पादन बढ़ाने और निर्माण करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया, वह सचमुच प्रशंसनीय है।

हमारे राष्ट्रपिता गांधी जी ने चीन से बहुत पहले हमारे सामने 'हिन्द स्वराज' का यह नक्शा रखा था, पर हमारे दक्षिणपन्थी और वामपन्थी और दोनों के मध्यमपन्थी, या मध्य से जरा बायीं ओर के पन्थी—सभी नेताओं के मन तो हैरो, ईटन, ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स या हारवर्ड और मास्को से आक्रान्त थे। बापू की किसाननुमा बातों का चर्खा हमें बड़ी मशीनों के सामने पुराणपन्थी लगता था, वरना 1947 से ही क्या हम इस दिशा में बहुत कुछ नहीं कर सकते थे। भारत की मिट्टी, भारत की नदियाँ, भारत के स्थानीय खनिज, भारत के बिना किसी 'राजनीतिक नेतृत्व' के बार-बार उपनिवेशवाद से लोहा लेने वाले खामोश लेकिन बहादुर किसान—इन सबमें कौन-सी समृद्धि-सम्भावनाएँ नहीं थीं, या अब नहीं हैं ? पर हम क्यों अभी तक भूमि की समस्या नहीं सुलझा पाये ? क्यों किसानों के खुरदुरे मेहनती हाथों को भविष्य का एक सही नक्शा नहीं दे पाये ? क्यों उनके सीने पर बैठे महाजन-बिचौलियों और अर्द्धसामन्ती शोषकों को निरस्त नहीं कर पाये ?

हर क्षेत्र में हमारे यहाँ जो भी उपलब्ध है, यहाँ तक कि हमारा हजारों वर्ष पुराना आजमाया खेती का अनुभव या गाँव की जड़ी-बूटियाँ, उन सबको हेय दृष्टि से देखकर कुछ पश्चिमी चमक-दमक लादने को विकास मानना कितना गलत था, इसे आज हम महसूस कर रहे हैं। चीन में उनकी दृष्टि ज्यादा व्यावहारिक रही। चीनी चिकित्सापद्धति के जो मलहम, दवाएँ काढ़े पुराने समय से गाँवों में चले आ रहे हैं वही ज्यादातर सजे रखे हैं इस शिह पेंग ब्रिगेड की डिस्पेन्सरी में, जिसमें हम घूमते-घामते अकस्मात् पहुँच गये हैं। 40 प्रतिशत पश्चिमी पद्धति की दवाएँ, 60 प्रतिशत पुरानी चीनी दवाएँ !

और यह जो वैसा ही सादा नीला बुशकोट और नीला पेंगट पहने सीधी-सी गाँव की लड़की खड़ी है, यह है इस ब्रिगेड की 'बेयरफुट डॉक्टर' (नंगे पाँव डॉक्टरनी) यह शब्द 'बेयरफुट डॉक्टर' इतना प्रयोग में आता रहा है कि बरबस मेरी निगाह उसके पाँवों की ओर चली जाती है। नहीं, नंगे पाँव नहीं, वह नाइलान के मोजे और सैण्डल पहने है !

फिर बेयरफुट डॉक्टर क्यों ?

असल में इस शब्द का एक इतिहास है। दक्षिण चीन में जब पहली बार कम्यून

स्थापित हुए उस समय न अस्पताल थे, न बाहरी दवाओं का कोई इन्तजाम ! कुछ थोड़े से गाँव-गाँव के चीनी वैद्य थे, जो माओ के साथ थे। वे जब भारी बरसात में देहातों में मरीज देखने जाते थे, तो उन्हें धान के पानी भरे खेतों में गुजरना होता था। अगर जूते भीग गये तो क्या होगा ? वे नंगे पाँव ही खेतों में से देहातों में जाया करते थे। बाकी सारे समय कम्यून में किसानों के साथ खेती-बारी में हाथ बँटाते थे। उन्हीं का नाम 'बेयरफुट डॉक्टर' पड़ गया।

जब चीन को माओ ने पूरी तरह आजाद करा लिया तब उनके सामने इतने बड़े विस्तृत देश के कोने-कोने में स्वास्थ्य सेवा पहुँचाने की समस्या थी। और माओ ने तय किया कि गाँवों के स्तर पर वे चीनी जड़ी-बूटियों, दवाओं और बेयरफुट डॉक्टरों की व्यवस्था को बनाये रखेंगे व्यापक स्तर पर, विशेष स्तर पर, आधुनिक चिकित्सा का विकास सुविधानुसार होता रहेगा।

सो नाइलान के मोजे और सैण्डल पहने शिह पेंग ब्रिगेड की बेयरफुट डॉक्टरनी हमारे सामने खड़ी है। बेयरफुट डॉक्टरों और उसके दवाखाने के बारे में हमारी जिज्ञासाओं से थोड़ी चकित-सी। वह इस ब्रिगेड की लड़की नहीं है। पड़ोस के ब्रिगेड की है छन सुइन। $4+5=9$ दर्जा पास किया था कि इस पद के लिए चुन ली गयी। दो साल पहले यहाँ जो बेयरफुट डॉक्टर था, वह मेडिकल कॉलेज में प्रवेश के लिए चुनकर शहर चला गया, तो इस ब्रिगेड ने छन सुइन को चुना। कम्यून के दवाखाने में छह महीने छन सुइन ने ट्रेनिंग ली, साधारण रोगों के लक्षण, कुछ विदेशी और बाकी देशी दवाओं के गुण मात्रा, थोड़ी-सी एक्यूपंकचर, कुछ प्रसव-सम्बन्धी देखभाल और परिवार नियोजन की विधियाँ ! अब दो साल से यहाँ है। रोग कम हैं, क्योंकि खुली हवा है, मेहनत है, भरपेट खाना है। फिर भी सुबह कुछ रोगी आते हैं और प्रसव वगैरह के लिए कभी-कभी जाना पड़ता है। बाकी समय में और ब्रिगेड सदस्यों की तरह खेत में काम करती है। डॉक्टरी के काम के लिए 7 वर्क प्वाइण्ट और खेती के लिए 7 वर्क प्वाइण्ट मिलते हैं। (यहाँ तनखाहें नहीं हैं, वर्क प्वाइण्ट के हिसाब से मेहनताना मिलता है। 10 वर्क प्वाइण्ट के लिए 1.3 युआन, लगभग 5 रुपये मिलते हैं।)

लेकिन रोचक बात यह है कि जितनी देर के काम के लिए औरतों को 7 वर्क प्वाइण्ट मिलते हैं, उतने ही के लिए ब्रिगेड के सेक्रेटरी चांग (जो हमारे साथ हैं) तथा अन्य पुरुषों को 10 वर्क प्वाइण्ट मिलते हैं। उनका कहना है कि उतनी कड़ी मशक्कत नहीं कर पातीं स्त्रियाँ अधिकतर दोपहर के बाद काम पर जाती हैं, क्योंकि सुबह आधे दिन वे बच्चों की देखभाल, घर की सफाई और चौका-चूल्हा करती हैं। शहर के कारखानों में मातृत्व काल की छुट्टी तनखाह सहित मिलती है, पर गाँवों में खेती में उसका प्रावधान नहीं है। छन सुइन हम लोगों के जाने के बाद खाना खायेगी और फिर खेतों पर जायेगी। आजकल सूखा से विशेष युद्ध चल रहा है, तो बाँस की बहँगी पर दो-दो बाल्टी पानी लटकाकर पहाड़ी के खेत सींचेगी !

छन सुइन के जिम्मे परिवार नियोजन का काम भी है। ब्रिगेड ने तय किया

है कि 1000 में प्रति वर्ष दस से अधिक बच्चे न हों। अधिकतर दम्पति 5 वर्ष के अन्तराल पर बच्चे चाहते हैं। पहले पुत्र पाने की आकांक्षा बहुत हुआ करती थी, अब लड़का और लड़की का भेद मिटने लगा है। यूँ भी परिवार नियोजन की दृष्टि से शहरों में शादी की न्यूनतम उम्र लड़कों के लिए शहरों में 28 वर्ष और गाँवों में 25 तथा लड़कियों के लिए शहरों में 25 और गाँवों में 23 वर्ष है। प्रतिवर्ष लगभग कितने बच्चे हों इसे ब्रिगेड तय करता है, (यह वाक्य शायद आपको चौंका जाये। मैं भी चौंक गया था, जब ब्रिगेड के सेक्रेटरी ने यह कहा, लेकिन शायद उनका मतलब यही था कि ब्रिगेड यह तय करता है कि आबादी की बढ़ोतरी की गति कितनी हो और सदस्य दम्पतियों से कहता होगा कि यथासम्भव उसका पालन करें)।

कुल मिलाकर यह शिह पेंग ब्रिगेड का गाँव कुछ ज्यादा स्वाभाविक गाँव जैसा लगा। ताचाई में हर चीज बहुत साफ-सुथरी, करीने से सजी-सजायी है, मानो हर वक्त किसी भी आने वाले दर्शक के लिए शोकेस में तैयार, यहाँ वह बात नहीं। एक इमारत के पीछे के अहाते में बच्चों का स्कूल है। बच्चे गाँव के बच्चों जैसे ही लग रहे हैं। चीख-चीखकर पहाड़ा पढ़ते हुए। अहाते में एक अखरोट का पेड़ है, जिसके नीचे एक गधा बँधा है। उसके दोनों कान में रिबन बँधे हैं और गले में कागज का बड़ा-सा फूल लटका हुआ है। ब्रिगेड के घरों में कोठरियाँ वैसी ही हैं, पर हमें जो ताचाई में दिखाई गई थीं, वह बिल्कुल साफ-सुथरी, यहाँ कोठरियों के आगे पड़ी चिकों में कुछ फटी हुई भी थीं। कुछ कोठरियों के आगे बर्तन बिखरे थे। कुछ के आगे दूटे घड़ों में मिट्टी जमाकर फूल-पत्ती लगायी गयी थी। सड़क पार कुछ पुराने किस्म के चीनी घर थे। यानी ऊँची दीवार, एक कंगूरेदार दरवाजा, अन्दर आँगन में एक चबूतरे पर दो-चार फूल-पौधों के गमले और अन्दर औरतें बैठकर सब्जी काटती हुई। एक अलसाई दोपहरी का-सा वातावरण और बसों के चलने पर उड़ती धूल। डी. एच. लारेंस ने कहा है कि बहुत साफ-सुथरे शहर से आपकी आत्मीयता नहीं स्थापित हो पाती। ताचाई की उपलब्धियाँ बहुत प्रभावित करती हैं, पर शिह पेंग ब्रिगेड की यह बस्ती कुछ ज्यादा अपनेपन का आभास देती है।

वहीं एक फाटक के पास बड़ा-सा बोर्ड लगा था। उस बोर्ड पर रंग-बिरंगी खड़िया से चीनी में कुछ लिखावटें थीं, कुछ फूल-पत्ती, चिड़ियाँ, सूरज वगैरह बने थे। यह रिवाज यहाँ हर जगह है। स्कूलों में, प्रेसों में, कारखानों में, बाजारों में ये ब्लैक बोर्ड लगे होते हैं, जिन पर लोग रंग-बिरंगी तस्वीरें बना जाते हैं और कुछ लिख जाते हैं—कभी कोई विचार, कभी कोई सूचना, कभी कोई शिकायत।

चांग चिये ने सहसा उस बोर्ड के पास रुककर कहा, “मिस्टर भारती, आप कई दिन से ढूँढ़ रहे थे। लीजिए इस बोर्ड पर एक कविता लिखी है।” मालूम हुआ स्थानीय मिडिल स्कूल के किसी युवा कवि की कविता है। चांग ने उसका अर्थ अंग्रेजी में बताया। हिन्दी में वह कविता पेश है :

शिह पेंग के लोगों की
 बस एक तमन्ना है
 सारी बाधाओं को
 कुचलेंगे पैर से
 खेती का करेंगे
 आधुनिकीकरण
 बनायेंगे तसवीर नयी,
 लोहे के बैलों से !

यह आखिरी पंक्ति का अर्थ समझ में मेरे नहीं आया। पता चला, लोहे के बैलों से तात्पर्य है ट्रैक्टरों से।

पास ही सियान काउण्टी मुख्यालय से कुछ दूर लोहे के बैलों के सींग-पूँछ दुरुस्त करने का एक छोटा-सा कारखाना है। इन्होंने कृषि का आधार मजबूत करने के बाद मशीनीकरण की प्रक्रिया को भी विकेंद्रित कर कैसे छोटे उद्योग द्वारा खेती के कम्पूनों में बाँटे हैं, इसका पहला परिचय इस कारखाने में मिलता है। दिल्ली या बम्बई के किसी बड़े गैरेज के आकार का कारखाना। बस, ज्यादा बड़ा नहीं। ट्रैक्टर बनते नहीं; किसी बड़े केन्द्रीय कारखाने से ट्रैक्टर के पुर्जे ढाँचा, वगैरह आते हैं। यहाँ वे जोड़ लिये जाते हैं। कुछ एकाध मोटी-मोटी चीजें यहीं ढालकर जोड़ ली जाती हैं। इससे बड़े औद्योगिक क्षेत्रों का बोझ हल्का होता है और जिन-जिन कम्पूनों में ये ट्रैक्टर 'असेंबल' करने की छोटी फैक्टरियाँ कायम होती हैं, वहाँ तमाम अतिरिक्त लोगों को काम मिल जाता है। फिर ये केवल ट्रैक्टर ही असेंबल नहीं करते। निराई की, धान रोपने की कटाई की तथा खेती-बारी की और मशीनी जरूरतों की छोटी-छोटी चीजें भी बनाते हैं, जिनकी खपत उसी काउण्टी के कई कम्पूनों में होती है। अपनी स्थानीय जरूरतों के मुताबिक वे उनमें थोड़ी-बहुत रद्दोबदल भी कर लेते हैं। काउण्टी ने अपने-अपने कम्पूनों की जरूरतें पूरी करने के लिए और भी दो-तीन छोटे-छोटे कारखाने खोले हैं। मसलन बिजली के सामान के, लोहे के बर्तनों के। इन कारखानों में लड़कियाँ और औरतें भी काफी संख्या में काम करती दीखीं। इन कामगारों को भी आसपास के ब्रिगेडों से ही चुना जाता है और स्थानीय स्तर पर ही प्रशिक्षण दिया जाता है।

इस छोटे कारखाने के वेतनमान क्या हैं, यह तो जल्दी में हम नहीं पूछ पाये, लेकिन पेकिंग से लगभग 150 कि. मी. दूर, पहाड़ों के बीच में इनका एक बहुत बड़ा पेद्रो केमिकल प्लांट काम्प्लेक्स है। एक बादलों वाली ठण्डी सुबह हम वहाँ गये थे। पहाड़ों के बीच 16-17 कि. मी. के दायरे में फैला इनका प्लांट, सहायक प्लांट, मजदूरों की बस्तियाँ और उपनगर, बाजार और बीच-बीच में तरकारियाँ, फल आदि उपजाने की छोटी-छोटी सहकारी खेतियाँ ! इनकी जन-संपर्क अधिकारी एक महिला थी, जो बड़ी उत्साही लगती थी, लेकिन बिल्कुल ऐसे बोलती थी जैसे रेडियो सीलोन

पर अमीन सयानी चीनी बोल रहे हों। उसने बताया कि यह सांस्कृतिक क्रान्ति के जमाने में शुरू किया गया था। 1968 में अब पूरा हो गया। हर कारखाने का एक उत्पादन-लक्ष्य रखा जाता है। और उसे उस साल के अन्दर पूरा करना पड़ता है। चेयरमैन माओ का कहना था कि “क्रान्ति के साथ-साथ उत्पादन।” उत्पादन अगर नहीं बढ़ता, तो क्रान्ति सफल नहीं हो सकती। साल भर का उत्पादन लक्ष्य हमने पाँच महीनों में ही पूरा कर लिया है, वह बताती है।

“यहाँ क्या ट्रेड यूनियन नहीं हैं ?” किसी ने पूछा तो पता चला कि ट्रेड यूनियन हैं। उनका काम है मजदूरों की समस्याओं का अध्ययन करना, उनकी शिक्षा, रहन-सहन, मनोरंजन वगैरह का इन्तजाम करना, और इन्हें बराबर यह समझाते रहना कि देश के लिए क्रान्ति कितनी जरूरी है, क्रान्ति के लिए उत्पादन कितना जरूरी है, उत्पादन के लिए मेहनत से काम करना कितना जरूरी है।

“हड़तालें कभी नहीं होतीं ?”

नहीं, वैसे चीन के सविधान में हड़ताल करने का अधिकार तो है, पर होती नहीं।”

जरूर बहुत ऊँचे वेतनमान होंगे, उत्पादन बढ़ने पर खासा-अच्छा बोनस मिलता होगा ! पता चला कारखाने में आठ वेतन-स्तर पद्धति है। यानी सारे काम करनेवालों को आठ स्तरों में बाँटा गया है और हर स्तर के लिए एक निश्चित वेतन है। वेतन में प्रति वर्ष तरक्की वगैरह नहीं है। जिसका जो वेतन है, वह है। हाँ, किसी विशेष स्थिति में किसी को ऊपरवाले वेतन स्तर में लिया जा सकता है। पर ऐसा बहुत कम होता है। वेतन स्तरों में निम्नतम स्तर है 40 युआन प्रतिमाह अर्थात् लगभग 200 रुपये और उच्चतम स्तर है 108 युआन अर्थात् लगभग साढ़े पाँच सौ रुपये ! इंजीनियर का वेतन स्तर अलग है। लगभग 180 युआन अर्थात् लगभग 900 रुपये। कामगारों के घर गैस, बिजली, फर्नीचर वगैरह के लिए वेतन का लगभग 2 प्रतिशत देना पड़ता है और बच्चों की शिक्षा के लिए फीस केवल नाम मात्र की है। बोनस नाम की कोई चीज नहीं है। हाँ, इधर कुछ दिनों से मजदूरों को कुछ वैयक्तिक प्रोत्साहन देने की जरूरत महसूस होने लगी है, अतः जिनकी विशेष अच्छी रिपोर्ट होती है, उसे कुछ अतिरिक्त राशि वर्ष के अन्त में दे देते हैं।

“और जो इससे निरुत्साहित होकर काम न करें ?”

उन्हें ट्रेड यूनियन और रेवोल्यूशनरी कमेटी शिक्षा देती है, लेकिन वे काम क्यों नहीं करेंगे। यह तो उन्हीं का राज्य है। चेयरमैन माओ ने कहा था, “हमारा राज्य जनता के जनवादी अधिनायकत्व वाला राज्य है, जिसका नेतृत्व मजदूर वर्ग के हाथ में है और जो मजदूर किसान संश्रय पर आधारित है।”

“तो यदि मजदूर मिलकर यह तय करें कि उत्पादन लक्ष्य से बहुत अधिक उत्पादन करने पर उन्हें बोनस मिले तो मिलेगा ?”

“नहीं, ये चीजें स्टेट तय करती है !”

वेतनमान के स्थायी होने का एक और पक्ष है। जबकि लगभग सारे संसार में

मुद्रास्फीति या अनेकानेक दूसरे कारणों से चीजों की कीमतें बढ़ती गयी हैं, चीन ने पिछले कई वर्षों से अपनी अर्थनीति को इस तरह संचालित किया है कि वहाँ कीमतें विलकुल नहीं बढ़ीं। ऐसा उनका दावा है। एक स्थानीय जानकारी के अनुसार आजकल पेकिंग में खाने-पीने की चीजों के दाम लगभग इस प्रकार हैं : आटा ढाई रुपये किलो, चावल (अच्छा) ढाई रुपये किलो, हरी शाक-सब्जी लगभग ढाई रुपये किलो (जाड़े में बहुत महँगी हो जाती है, गर्मियों में और सस्ती), आलू लगभग डेढ़ रुपये किलो, प्याज ढाई रुपये किलो, दूध लगभग सवा दो रुपये लीटर, शक्कर लगभग साढ़े सात रुपये किलो, अंडे लगभग चार रुपये के आधा किलो। (चीन में चाय हमेशा बिना दूध और बिना शक्कर के पी जाती है, लेकिन यह मत सोच लीजिएगा कि शक्कर सबसे महँगी है, इसलिए। बिना शक्कर के चाय पीने का उनका तरीका हजारों वर्ष से चला आ रहा है।) अंडों को तोलकर बेचनेवाली पद्धति तो चीन की विशेषता लगी ही, पर सबसे चमत्कृत हुआ मैं जब मैंने थुज का दाम पूछा। थुज मुझे बहुत प्यारे लगते हैं। एक मेरा बहुत प्यारा पालतू थुज पिछले साल मर गया तब से अभी तक उसके दुःख से उबर नहीं पाया हूँ। शंघाई की पाओ शान काउण्टी के पेंग पु कम्पून में मैंने खूब मोटे-ताजे, बड़ी विल्ली के आकार के थुज देखे। काश, एक थुज पालने के लिए यहाँ से ले जा सकता। दाम पूछा, तो पता चला ब्रिगेड के सदस्यों को पाँच रुपये किलो के हिसाब से देते हैं। हम अतिथि हैं, हमको भी इसी भाव में दे देंगे। पालतू जानवर भी तोलकर ? खैर, मैं उस 3 किलो के मोटे-ताजे थुज को खरीद लाता, मगर एयर इण्डिया बम्बई तक किराया चार्ज कर लेगी, यह सोचकर इरादा छोड़ दिया। थुज आप जानते हैं, क्या होता है ? वही अपना खरगोश। उसे चीनी में थुज कहते हैं !

अब जब आपने ताचाई और शिह पेंग के विग्रेडों का हाल सुना, तो शंघाई के इस पेंग पु कम्पून का भी हाल सुना दें। पहले दोनों ब्रिगेड तो शहरों से दूर, शुद्ध देहाती क्षेत्र के नितान्त अविकसित क्षेत्र के ब्रिगेड थे, जिन्होंने धूल-मिट्टी में से हरियाली का निर्माण किया और भूमि, पानी, श्रम की समस्या हल की, लेकिन यह कम्पून चीन के सबसे बड़े और सबसे आधुनिक नगर शंघाई के एक उपनगर का खेती कम्पून है और आज शंघाई नगर की हरी सब्जियों की आवश्यकता की पूर्ति करने का सबसे बड़ा सप्लाई केन्द्र है। हमने जितने ब्रिगेड या कम्पून देखे उन सबसे ज्यादा समृद्ध और आधुनिक लगा। लोगों में पेकिंग की तरह अपरिचय का संकोच नहीं, पोशाकों और रंगों की एकरसता नहीं। न केवल यहाँ वरन् पूरे शंघाई में कुछ रंगीन कपड़े, कुछ बुशर्ट पैण्ट या टाप और बेल वाटम भी दिखाई पड़ते हैं, लोग मुस्कानों का जवाब मुस्कानों से देते हैं और दुकानों में अकेले भी चले जाइये बिना दुभापिये के, तो भी हर तरह से आपकी सहायता करते हैं।

दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता हर जगह शहर की खाली जमीनों में या उपनगरों में आपने छोटे-छोटे साग-सब्जियों के खेत देखे होंगे। कुछ ऐसे ही छोटे-छोटे खेत इस पेंग पु क्षेत्र में थे। शंघाई की मुक्ति के बाद इन्होंने उन तमाम खेतों को मिलाकर नयी

व्यवस्था लागू करनी शुरू की। सन् 53 में सामूहिक खेती शुरू की, 56 में कृषि कोआपरेटिव बनायी, 58 में ग्यारह सहकारी समितियों ने मिलकर यह कम्पून बनाया। फिर उन्होंने साग-सब्जी की ओर विशेष ध्यान दिया, जिसकी खपत शंघाई महानगर में आसानी से होती थी। आज उस कम्पून में साग-सब्जी ढोने के लिए 43 ट्रक हैं, 140 ट्रेक्टर हैं। सिंचाई के, दवा छिड़कने के तथा अन्य उपयोग के लगभग 800 पम्प हैं और 8 छोटे-छोटे कारखाने हैं, जो खेत-खलिहान और आबादी के उपयोग की छोटी-छोटी चीजें बनाते हैं। एक अस्पताल है, 53 बेयरफुट डॉक्टर हैं, पुस्तकालय है, हर यूनिट के पास एक टी. वी. सेट है।

प्रशासन-प्रबन्ध ऐसा है कि कम्पून के स्तर पर रेवोल्यूशनरी कमेटी प्रशासन करती है। 21 सदस्य होते हैं। ज्यादातर कम्पुनिस्ट पार्टी के सदस्य, पर गैर सदस्य भी चुने जा सकते हैं। दो-तिहाई सदस्य प्रोडक्शन यूनिट या ब्रिगेड से चुने जाते हैं। फिर कम्पून की रेवोल्यूशनरी कमेटी अपने प्रतिनिधि काउण्टी में भेजती है, और सभी काउण्टियों के प्रतिनिधि शंघाई महानगर की रेवोल्यूशनरी कमेटी में जाते हैं।

लेकिन जब एक दिन पहले हम शंघाई की एक कामगार कॉलोनी में गये थे, तो वहाँ बुढ़ऊ वांग ने कुछ और ही बताया था। उनके अनुसार गली में कमेटी तो उन घरों के निवासियों द्वारा चुनी जाती है, पर मुहल्ले की रेवोल्यूशनरी कमेटी, जो बेसिक यूनिट है, उसकी नियुक्ति सरकार द्वारा होती है और उसमें पार्टी के ही सदस्य होते हैं।

ये बुढ़ऊ वांग भी मजेदार जीव मिले थे। शंघाई की वह कॉलोनी कामगारों के लिए बनायी गयी है। (डॉक्टर, अध्यापक तथा सरकारी नौकर भी वहाँ रहते हुए मिले) हम जब देखने गये, तो पहले तो रेवोल्यूशनरी कमेटी की एक अघेड़ दुबली-सी महिला हमें सब बताती रही, बुढ़ऊ चुपचाप पीछे बैठे रहे। लेकिन ज्यों ही हम घूमकर देखने के लिए बाहर निकले, तो बुढ़ऊ सबको ढकेलकर आगे आ गये और उसके बाद नेतृत्व का सूत्र उन्होंने समभाल लिया। दो-एक और बूढ़ों ने देखादेखी इतिहास बताना शुरू किया, पर वांग ने उन्हें डाँटकर चुप करा दिया। पोपले, कुछ-कुछ गंजे, दुबले, लम्बे, चुस्त। जब यह कॉलोनी झोंपड़पट्टी थी तबसे वे क्रान्तिकारी कार्यकर्ता रहे हैं। पार्टी के पुराने सदस्य। उम्र पूछने पर बोले, "ज्यादा नहीं, यही 78 बरस होगी।"

रेलवे लाइन के किनारे की यह झोंपड़पट्टी जापानी आक्रमण के दिनों में ध्वस्त हो चुकी थी। कुछ किसान बसे थे, वे लूटे-मारे गये। जो बचे, वे भूखों मरते थे। नाम था इसका फैन कुआ लेन यानी विलायती तरबूजों की गली। 1945 में फूस की झोंपड़ियाँ थीं और पुरखे कहते थे, हम तो गरीब लोग हैं, हमारी रजाई है आकाश, हमारा बिस्तर है धरती, हवा झाड़ू लगाती है, चाँद दिया जलाता है। बुढ़ऊ अपने गाँव से भीख माँगते-माँगते आये थे और हाथ रिकशा चलाते थे। सन् 1937 में। तब जवानी थी। इसी नीची जमीन में पानी भी भर जाता था तब भी एक नींद सो ही लेते थे। मई, '49 में शंघाई मुक्त हुआ तब माओ की सेना ने इनको काम दिया। दाम स्थिर हुए,

तो कुछ पैसे बचे। पैसे बचे, तो 1952 में खपरैल के मकान बने, सरकारी बिजली पानी मिला। 1965 में अब ये पक्के फ्लैट बन गये। लगभग 1800 फ्लैटों में 7500 लोग रहते हैं। बाकी लोग काम पर जाते हैं। जो औरतें काम पर नहीं जातीं, घर-बार देखती हैं, उनके लिए पास में दो छोटे कारखाने खोल दिये गये हैं। चार कमरों में जहाँ वे कैमरे और बिजली के सामानों की बड़ी फैक्ट्रियों के लिए तार लपेटने या छोटे पुरजे बनाने का काम करती हैं। जो 200 रिटायर्ड बूढ़े-बुढ़ियाँ हैं, वे मुहल्ले भर के बच्चों की देखभाल करते हैं।

बुढ़ऊ वांग बड़ी जिद कर अपने घर ले ही गये। दो कमरों का फ्लैट। एक में उनकी लड़कियाँ मुहल्ले की और लड़कियों के साथ टी.वी.पर फिल्म देख रही थीं। उस फिल्म में एक युवक हीरोनुमा बैरा होटल की मेज पर बैठी एक लड़की के इर्द-गिर्द कुछ गाकर नाच-नाच कर खाना परोस रहा था, बिलकुल बतर्ज बम्बईया फिल्म। बुढ़ऊ के कमरे में दो घड़ियाँ रखी थीं। पूछा, एक ही कमरे में दो घड़ियाँ क्यों ? बुढ़ऊ बोले, एक वक्त देखने के लिए और दूसरी अभिनय करके बताया, 'टि र्र्र्र्र,' यानी अलार्म बजाने के लिए ! वांग के सपूत और पुत्रवधू उसी इमारत में दूसरे फ्लैट में रहते हैं। पूछा, "आपका कहना मानता है लड़का ?" तपाक से बोले बुढ़ऊ, "मेरा लड़का क्या, पड़ोसियों के लड़के भी मेरा कहना मानते हैं !" पूछा, "बहू आपने अपनी पसन्द से चुनी ! या लड़के ने अपनी पसन्द से ?" तो बुढ़ऊ पहले बोले, "लड़का क्या ? मैंने अपनी पसन्द से चुनी है !" इस पर साथवाली रेवोल्यूशनरी कमेटी की स्त्री ने उनसे चीनी में कुछ कहा। फिर और लोगों ने भी। काफी बहस-मुवाहसे के बाद बुढ़ऊ इतना संशोधन करने के लिए राजी हुए कि "लड़की का परिचय, तो मैंने ही लड़के से कराया था। हाँ, बाद में पसन्द उसने खुद की।"

फैन कुआ लेन का यह बूढ़ा 1937 में यहाँ भीख माँगते आया था, ताचाई के चेन युंग-कुइ बाप की आत्महत्या के बाद भीख माँगते ताचाई आये थे। आज चाहे ताचाई ब्रिगेड हो, या यह हाउसिंग कॉलोनी, जिन्दगी बदल गयी है बकौल माओ की कविता के "दुनिया बदल गयी है !" एक नया निर्माण हुआ है !

कितना अलग है यह रास्ता निर्माण का, उन राजवंशों के निर्माण-विलास से, जो 20वीं शताब्दी के आरम्भ तक चीन पर राज कर रहे थे। एक उपनगर यह है, एक पेकिंग के उपनगर में समर पैलेस है अन्तिम डोवागर रानी का। बेहद सुन्दर ! तीनों ओर ऊँची पहाड़ियों के बीच एक बहुत बड़ी पानी की झील, मीठे पानी की पहाड़ियों पर सुन्दर राजमहल, भव्य पगोडा, पुराने पत्थरों और फलों के बगीचे, झील के किनारे-किनारे डेढ़

कि.मी. लम्बा चित्रित बरामदा, झील में एक संगमरमर की नौका, जिस पर रानी दिन का भोजन करती थी, बीच में संगमरमर के पुल और मण्डप। अभी बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बनवाये इस सुन्दरी जलविहार की अजीब कहानी है। अंग्रेज, फ्रेंच, रूसी, पुर्तगाली सभी की शक्ति बढ़ती जा रही थी। सभी मन्त्रियों ने सलाह दी कि चीन के पास नौसेना नहीं है, इसलिए हम उनसे टक्कर नहीं ले पाते। नौसेना बनाने के लिए रुपयों की जरूरत है ! सारे देश में चन्दा उगाहा गया और कई अरब रुपये रानी को अर्पित किये गये। जनता को बताया गया कि नौसेना बन रही है। लेकिन चुपचाप इस झील, इन राजमहलों, इन संगमरमर के पुलों, इन कमलकुंजों का निर्माण होता रहा उसी रुपये से ! जब भेद खुला और भयानक आलोचना देश भर में होने लगी तो रानी ने कहा—“यह नौसेना के लिए ही है। यह मैंने नकली समुद्र बनवाया है। यही नमूने के युद्धपोत समुद्री युद्ध सीखेंगे और मैं खुद इस संगमरमर की नौका पर बैठकर उसे देखूँगी।” और यह तमाशा चलता रहा और एक दिन आठ विदेशी सेनाएँ आयीं और समर पैलेस तक का खजाना लूट कर चलती बनीं। मोती, पन्ना, जेड, सोना, जेवरात अशर्कियाँ, सिल्क और जाने क्या-क्या, जिसे रानी ने सारे देश को बिना बताये छिपा रखा था !

राजाओं के महलों के उस नगर-खण्ड का नाम ‘वर्जित नगर’ ठीक ही था। सौन्दर्य-विलास के स्वप्न वहाँ तिलिस्म में कैद कर रख दिये गये थे और साधारण जनता का वहाँ जाना वर्जित था। माओ ने वह तिलिस्म तोड़ा और जनसाधारण को वे स्वप्न बाँट दिये। पहले केवल सामन्त स्वप्न देखते थे, राजा या रानियाँ या करोड़पती स्वप्न देखते थे, आज एक साधारण-से-साधारण किसान स्वप्न देखता है कि उसके पास कम-से-कम एक साइकिल हो, एक सिलाई की मशीन हो, एक रेडियो हो, ऐसा क्वांग चाऊ के एक कन्पून से सुनने को मिला। लेकिन—

और यह लेकिन एक बड़ा अहम लेकिन है। लेकिन क्या ये स्वप्न यहीं रुकेंगे ? क्या कभी किसी के स्वप्न किसी एक बिन्दु पर कोई रोक पाया है ? और फिर स्वप्न केवल रेडियो के बाद, फ्रिज के, कार के, बैंक बैलेंस के ही नहीं होते। स्वप्न एक नयी विचार पद्धति के भी होते हैं। स्वप्न जीवन सौन्दर्य की एक नयी कल्पना के भी होते हैं। स्वप्न स्वाधीनता के, वैविध्य के, रसास्वाद के, गहन अनुभूतियों के नये आयामों के भी होते हैं ! और जरूरी नहीं कि समूह मिलकर वे स्वप्न देखें। एक अतिशय संवेदनशील व्यक्ति भी वे स्वप्न देख सकता है, फिर उस स्वप्न को देखकर उसे चरितार्थ करने के लिए अकेले ही सही, चतुर्दिक परिवेश से जूझ भी सकता है। कोई भी व्यवस्था यह कैसे कह सकती है कि स्वप्न इतना ही देखें। इससे अधिक नहीं, स्वप्न इस रंग का ही देखो, इससे अलग नहीं !

माओ के बहुत पुराने साथी, उत्कृष्ट कवि कुओ मो-जो अभी-अभी 86 वर्ष की आयु पूरी कर दिवंगत हुए हैं। हम लोग वहाँ थे चीन में तब वे अपने जीवन की अन्तिम कान्फ्रेंस, चीनी वैज्ञानिकों की कान्फ्रेंस में भाषण दे रहे थे। चीन की विज्ञान

अकादमी के अध्यक्ष के रूप में। कुओ मो-जो के प्रिय कवि थे तीसरी शताब्दी ईसवी पूर्व के महान कवि चु युआन ! उनके परिचय में कुओ मो-जो ने लिखा है कि "वे राजा के एक सम्प्रान्त सलाहकार थे। उनकी हर सलाह ठुकरा दी गयी। उसी निराशा में उन्होंने अपनी सर्वश्रेष्ठ कविताएँ लिखीं। पर जब चारों ओर असफलता नजर आयी, तो हुनान प्रान्त की मिलो नदी में डूबकर उन्होंने आत्महत्या कर ली। वे असफल राजनीतिज्ञ थे, लेकिन महान सफल कवि !" (लि साओ एंड अदर पोएम्स ऑफ चु-युआन; भूमिका, कुओ मो-जो, पेकिंग, 1953)

हर सफल, समृद्ध, निर्माण-संतान सभ्यता में कुछ आवाजें होती हैं, उदास, कभी-कभी असफल, जो व्यवस्था-निर्देशित आवाजों से कुछ अलग होती हैं, पर वे सभ्यता को और कुछ दे जाती हैं। एक गहराई का तत्त्व, एक नये सौन्दर्य का आभास ? कवीर जैसी आवाज, या घनानन्द जैसी आवाज ? वे आवाजें जुलाहे की भी हो सकती हैं, किसान की भी !

अभी तक हम जो भी आवाजें सुनते रहे, वे सामूहिकता की आवाजें थीं। प्यारी लगीं वे भी, पर कहीं कुछ और सुनने की प्यास बनी रही। बड़ी शिद्दत से इसका अहसास हुआ एक दिन। एक देहाती होटल की एक शाम। खाना तो छह बजे ही खत्म हो गया था। अनमना-सा अपने कमरे की खिड़की के सामने खड़ा था। सामने की पहाड़ी पर एक कच्ची गुफा थी। कभी ये लोग इन्हीं में रहते थे। आज उन्होंने दुनिया बदल ली है। पर चारों ओर इस शाम को, हर देहाती शाम को इतनी खामोशी क्यों रहती है ? हसरत से अँधेरे में धुँधलाते हुए धान के खेतों की ओर देखा, गाँव के घरों की ओर देखा। कहीं से कुछ सुनाई पड़े।

कौन है जिसे ऐसी खाली-खाली शाम परदेश में अपने वचपन का गाँव न याद आये। मैं खड़ा-खड़ा याद कर रहा हूँ अपने उस गाँव रुदौली की, जहाँ हीरो वहन और रुपत जीजा के यहाँ या पद्मा जिज्जी के यहाँ जाकर ठहरता था। हमारे अलावा बस्ती के सारे घर कच्चे थे। दरवाजों पर फटे-टाट के पर्दे, लेकिन शाम होते ही कभी ढोलक दनकती थी और सोहर सुन पड़ते थे, कभी माधो चौधरी बैल हँकाते हुए खेत से चैती गाते गुजर जाते थे, और कुछ नहीं तो अजहर इक्केवाला कोई सस्ती गजल गाता हुआ इक्का खड़खड़ाते आ निकलता था। वहाँ गरीबी भी गाती रहती थी। यहाँ समृद्धि भी इतनी खामोश क्यों है ?

"यहाँ कभी लोग गाते नहीं ?" मैंने बाद में एक चीनी साथी से पूछा।

"गाते हैं ! ब्रिगेड का एक आर्केस्ट्रा है, जब रेवोल्यूशनरी कमेटी सम्मेलन बुलाती है तो..."

"नहीं मेरा वह मतलब नहीं। यूँ ही अकेले कभी शाम को, उदासी में या मस्ती में ?"

"अकेले, अकेले क्यों गायेंगे ? उदासी किस बात की ?"

"अच्छा छोड़िये अकेले न सही। मिलकर फसल काटते समय, या बुवाई के

समय। कमेटी के कहने पर नहीं, यूँ ही अपने मन से !”

“फसल काटते समय ? बुवाई के समय ? वह काम का वक्त होता है कि गाने का ?”

मैं चुप हो गया। शायद इस बन्धु को मालूम न हो। कलाकारों, लेखकों से मिलूँगा, तो पूछूँगा, इस तमाम बाहरी निर्माण के बावजूद कभी अन्दर की कोई अकुलाहट सालती है क्या ? अन्दर कोई प्रश्नचिह्न कुरेदता है क्या ? तब क्या लिखते हो ? कीन-सा चित्र बनाते हो ? और नानकिंग के कला विश्वविद्यालय में जब यह प्रश्न पूछा, तो वे लोग मुस्कराये बोले—“लगता है आपने हमारे प्रख्यात आधुनिक चित्रकार छन ता-यु के मुर्गेवाली घटना नहीं सुनी ?”

मुसीबत एक मुर्गे की

कला विश्वविद्यालय की बात शुरू करते ही ध्यान में आती हैं चार चीजें : नानचिंग के चिनार, नानचिंग के चम्पा, नानचिंग का चंग और नानचिंग के चाउ एन लाइ। मध्यकाल में नानचिंग (नानकिंग) राजधानी न केवल क्यांगसू प्रान्त की वरन् पूरे दक्षिणी चीन की थी। सर्वप्रथम मिंग राजा की समाधि भी यहीं है। बाकी राजाओं ने पेकिंग के पास पहाड़ियों में अपनी समाधियाँ बनवाई (दस-पन्द्रह कि.मी. के दायरों में बनी ये भूमिगत समाधियाँ भी अद्भुत हैं, उनका हाल आगे सुनियेगा। उसके बाद डॉ. सन यात-सेन के जमाने से मिलीजुली सरकार की राजधानी भी नानकिंग ही रही और इस सरकार के जमाने में चाउ एन-लाई का कार्यक्षेत्र यही रहा। चाउ एन-लाइ का वह घर, उस वक्त के उनके चित्र, उनकी मेज, उनका पुराने ढंग का फोन, उनका जंग खाया टाइपराइटर, उनका सादा पलंग सब अभी तक सुरक्षित हैं। अब वहाँ देश-विदेश के दर्शक आते रहते हैं। चाउ एन-लाई कला-रसिक थे, आधुनिक दुनिया के जो सम्पर्क में थे। नानचिंग को कला की गतिविधियों का केन्द्र बनाने में उन्होंने ने पहल की थी। उसी जमाने में क्रान्ति के पहले ही यहाँ सड़कों पर चिनार की चार-चार कतारें रोपी गयी थीं। और अब यह हरा-भरा शीतल छायादार शहर यांग्त्सी के तट पर हरे कुंज जैसा लगता है। चिनार के पंचकोने पत्तों के रंग से ज्यादा गाढ़ा रंग है चम्पा के पत्तों का और भीनी तेज खट-मिठ्टी खुशबूदार चम्पा के फूल छोटे शतदल श्वेत कमल जितने बड़े हैं।

चाउ एन-लाइ, चिनार और चम्पा के बाद चंग है। वह दो सहारों पर टिका हुआ कई तारोंवाला चपटा बाजा, जिसे वह संगीत की छात्रा हमें सुनाती है। पहली धुन है एक नया लोक संगीत चेयरमैन माओ की प्रशंसा का। और दूसरा है यहाँ का परम्परागत लोकगीत शाम को माझियों का गीत ! यह यांग्त्सी के मुहाने पर फैला प्रान्त क्यांगसू बड़ी झीलों और सहायक नदियों का जल-प्रदेश है। यहाँ वे ताचाई के किसानों की तरह खामोश नहीं, गरीब-से-गरीब माझी भी नदी के पाट को गीत और बाजों से गुँजाये रखता था। पहले 'कल्चरल रेवोल्यूशन' के जमाने में

और फिर 'गैंग आफ फोर' की हुकूमत में रुदियों से चले आये उनके इन गीतों पर बन्दिशें लगा दी गयी थीं। इन गीतों को 'सामान्तकालीन, हासोन्मुख जन-विरोधी गायन' बताकर इनके गाने वालों की नावें जब्त कर लीं, उन्हें सजाएँ दीं, तो इस प्रदेश की जनता 'गैंग आफ फोर' के खिलाफ हो गयी। अब वे मुक्त हैं ये गीत गाने को !

दसों उँगलियों में मिजराबें पहने उस लड़की की उँगलियाँ थिरक उठती हैं और चंग झंकृत हो उठता है। पहले धीमी गति है, बड़े मृदुल स्वर हैं, कुछ उदास, कुछ टूट-बिखर कर फैलते हुए। यह संगीत का पहला खण्ड है जब शाम धीरे-धीरे उतर रही है। नदी का पाट बुँधलाने लगा है, लहरों में मछलियाँ अलसाने लगी हैं, घर याद आने लगा है। दूसरे खण्ड में सहसा गति तेज हो जाती है, अब नाव के चप्पू जल्दी-जल्दी चलते हैं, नाव के तेज बढ़ने से शान्त नदी का जल खलबलाता है, मछलियाँ डर कर भागती हैं। और अब गाँव आया है, "नदिया किनारे मोरा गाँव" नाव किनारे लगती है, माझी उतरता है। घर आ गया। संगीत धीमा होकर रुक जाता है।

संगीत विभाग से कला विभाग कुछ दूर पर है। हम मोटरों में चल पड़ते हैं। पर चंग की वह धुन हमारे मन में गूँजती हुई छूट गयी है यह नदी बहती रही है। हजारों साल से, कोई राजा आये, कोई जाये। यह लोक-संगीत गूँजता रहेगा, कोई आये, कोई जाये।

अब हम बैठे हैं चित्रकला विभाग के स्वागतकक्ष में। विश्वविद्यालय की रेवोल्यूशनरी कमेटी के चेयरमैन फेंग जा-यु चमेली की चाय से हमारा स्वागत करते हैं। साथ में हैं चित्रकला विभाग के उपाध्यक्ष, वृद्ध सम्भ्रान्त चित्रकार शे हाइ-येन और एक महिला कलाकार। वे बताते हैं कि यह कला विश्वविद्यालय क्रान्ति के कुछ ही वर्षों बाद 1952 में कायम हुआ। दो खण्ड हैं—संगीत का और चित्रकला का चित्रकला में परम्परागत चीनी चित्रांकन तथा दृश्यांकन (लैंड स्केप) पहले सिखाये जाते थे। अब पोस्टर बनाना और सज्जात्मक डिजाइनें बनाना भी सिखाया जाता है। चार वर्ष का पाठ्यक्रम है। कुल 450 विद्यार्थी हैं। शिक्षण के दौरान विद्यार्थी बाहर भी जाते हैं। कुछ तो सांस्कृतिक संस्थानों, सरकारी कार्यालयों, बड़े अतिथिगृहों और होटलों के लिए चित्र बनाने और कुछ कारखानों वगैरह में डिजाइन तैयार करने। लेकिन उनके लिए आवश्यक है, वर्ष में एक बार देहातों में किसानों के बीच जाकर रहना। उस समय वे आधे दिन खेतों में, या छोटे कारखानों में उन्हीं किसानों या मजदूरों के साथ शारीरिक मेहनत-मजदूरी करते हैं और बाकी आधे दिन अपना काम करते हैं। अपना काम यानी उनके जीवन को जैसे देखा, या समझा है, उसको स्वयं या रंग-रेखाओं में उतारना; उनमें से जिन किसान या मजदूर के बच्चों में कलात्मक रुचि हो, उन्हें संगीत या चित्रकला का बुनियादी शिक्षण देना। बाद में उन्हीं बच्चों में से हम अपने विश्वविद्यालय के लिए विद्यार्थी चुनते हैं। इन विद्यार्थियों

के देहात-प्रवास का खर्चा प्रान्तीय सरकार देती है, पर वहाँ इनके कार्य-कलाप की व्यवस्था वे कम्पून करते हैं, जिनके ये अतिथि होते हैं।

हम चित्रकक्ष में जाते हैं। कुछ तो पोस्टरनुमा राजनीतिक चित्र हैं, कुछ उस यांगत्सी के नये पुल के चित्र हैं, जिस पर न केवल नानचिंगवासियों को, वरन पूरे चीन को गर्व है। (पहले पेकिंग से आने वाली रेल यांगत्सी के उस पार से जहाज पर लदकर इस तट पर नानचिंग आया करती थी। माओ की प्रेरणा से यह पुल बनना शुरू हुआ, रूसी इंजीनियरों द्वारा। 1960 में विवाद होने पर न केवल रूसियों ने अघूरा काम छोड़ दिया, वरन वे अपना इस्पात तक लादकर वापस ले गये। उत्तरी चीन की एक कम्पनी ने दिन रात लगकर साल भर में वह विशेष इस्पात तैयार किया। वह पुल पूरा हुआ, पूरी तरह चीनी इंजीनियरों और चीनी इस्पात से) उस पुल के, कुछ क्यांगसू प्रान्त के खेतों-खलिहानों-कारखानों के नये निर्माण के चित्र हैं। यथार्थवादी पद्धति के, राजनीतिक पोस्टरों के कुछ संशोधित संस्करण !

लेकिन असली चित्र उधर हैं। विषय तो वही परम्परागत हैं, पहाड़, फूल, पक्षी, झरने, लेकिन शैलियों में काफी ताजगी है। एक चित्र है शान्त जल, पुरइन के पते और इनमें खेलती दो पंखदार फाइटर मछलियाँ। कुछ क्षण को बाँध लेता है मुझे। प्रशंसा करता हूँ तो कला विभाग के वयोवृद्ध उपाध्यक्ष शे हाइ-येन कृतकृत्य हो उठते हैं। ज्ञात हुआ कि चित्र उन्हीं का बनाया हुआ है, उनके अपने अत्यन्त प्रिय चित्रों में से एक। वे कहीं से ढूँढ़कर उसकी एक मुद्रित प्रति मुझे देते हैं, स्नेह सहित हस्ताक्षर कर के।

दूसरा चित्र भी है काफी बड़ा-सा। न केवल आकर्षित करता है, वरन् मन में पता नहीं क्यों, थोड़ी विद्रोही अभिमान जैसी भावना जगाता है। चेरी की फूल लदी डालियों के बीच शान से कलगी उठाये, पूँछ उठाये लाल आँखों से सिंहावलोकन करता हुआ मुर्गा। चित्र बहुत सशक्त है। अन्दर से कहीं मन को हिला डालता है। किसका है, पूछने पर ज्ञात हुआ, यही हैं इस विभाग के अध्यक्ष, श्रेष्ठतम आधुनिक चीनी चित्रकार छन ता-यु का मुर्गा, जिसके कारण न केवल उन पर, वरन् सारे चीन के चित्रकारों पर मुसीबत आ गयी थी।

कथा यह है श्रोतावृंद कि छन ता-यू बहुत वर्षों पहले से प्रतिष्ठित चित्रकार रहे हैं। चाउ एन-लाइ उनकी कला के प्रशंसक थे। एक बार यह तय हुआ कि नयी विदेश निर्यात नीति के अनुसार चित्र और शिल्पकृतियाँ निर्यात की जायें, क्योंकि विदेशी मुद्रा की चीन को सख्त जरूरत थी। तो चाउ ने कहा कि चीनी चित्रकारों

को चाहिए कि अपनी क्लासिकल शैली को पुनः अपनायें और उसी शैली में चित्र बनायें। अनेक चित्रकारों ने चित्र बनाकर अपने संकलन उन्हें दिखाये। उनमें से चाउ को छन ता-यु के मुर्गों की सीरीज बहुत पसन्द आयी और न केवल निर्यात के लिए, वरन् कुछ बड़े राजकीय भवनों के स्वागतकक्षों, विदेशों में चीनी दूतावासों आदि के लिए भी इस सीरीज के चित्र छन ता-यु ने बनाये। उनकी बड़ी प्रशंसा हुई। उस समय तो 'गैंग आफ फोर' ने भी इन्हें स्वीकार किया, लेकिन साल भर के अन्दर उन्होंने अपना बयान बदल दिया। इन मुर्गों की निन्दा शुरू हुई। इसे 'काली कला' और इसके चित्रकार को काला चित्रकार कहा और बोले कि चाउ एन-लाइ क्रान्ति की भावना को समाप्त करने के लिए इस 'काली कला' को बढ़ावा दे रहे हैं। यह तो निहायत क्रान्ति-विरोधी, व्यक्तिपरक, जन-विरोधी, पूँजीवादी एजेण्ट मुर्गा है। देखिए न किस तरह जन साधारण से कटा हुआ, घमण्ड से गर्दन ताने हुए खड़ा है। इसकी आँखें घृणा से लाल हैं। यह समाजवाद को घृणा से देख रहा है। समाजवाद पर आक्रमण करने के लिए पूँछ ऐसे उठाये है, गोया मुर्ग की पूँछ न हो कर शेर की पूँछ हो।

बस फिर क्या था ? सारे चीन में बहस उठ खड़ी हुई। शंघाई 'गैंग आफ फोर' का अड्डा था। वहाँ के सारे तथाकथित क्रान्तिकारी समीक्षक छन ता-यु पर टूट पड़े। न केवल छन ता-यु, वरन् चीन के अनेक प्रतिभाशाली आधुनिक चित्रकारों पर काले कलाकार होने का, पूँजीवादी एजेण्ट होने का, क्रान्ति-विरोधी होने का आरोप लगाया जाने लगा। हमारे वर्तमान उपाध्यक्ष इन बेचारे शे हाइ-येन को भी 'कैपिटलिस्ट रोडर' करार दिया गया।

“तो फिर ये लोग बचे कैसे ?”

“बचे इस तरह कि क्यांगसू प्रान्त के कम्युनिस्ट नेताओं ने, छात्रों ने, अध्यापकों ने शंघाईवालों का विरोध किया और नानचिंग के अपने चित्रकारों का समर्थन किया। असल में, हम नानचिंगवाले कोई शंघाईवालों से डरते थोड़े ही थे। उन्होंने हमारे चित्रकार को अपमानित किया, हमारे नेता चाउ एन-लाइ को अपमानित किया, तो हमने भी मुँहतोड़ जवाब दिया। 'कल्चरल रेवोल्यूशन' के समय से ही यह झगड़ा खुलकर सामने आ गया था। उन्होंने शंघाई में जो चित्र छापे, उनमें माओ के बगल से चाउ एन-लाइ को हटा दिया। जब अखबार आया और उसमें हमने उनकी यह करतूत देखी, तो हमने भी कहा कि हम भी इसका जवाब देंगे। एक ट्रेन उस समय शंघाई जाने को तैयार खड़ी थी। वह ट्रेन रोक ली गयी, हमने उस पूरी ट्रेन पर चाउ एन-लाइ के पोस्टर लगाये उस पर पेंट और ब्रुश से चाउ एन-लाइ के समर्थन के नारे लिखे, इंजिन पर चाउ एन-लाइ का बड़ा-सा चित्र लगाया और फिर ट्रेन को शंघाई रवाना कर दिया।”

“लेकिन यह तो अजीब कमजोरी है इस पद्धति की। जिसके हाथ में भी सत्ता है, वह बिलकुल गैर कलात्मक, गैर साहित्यिक कारणों से किसी भी कृति को अपने

ऊलजलूल तर्कों से जन-विरोधी, क्रान्ति-विरोधी, पूँजीवाद समर्थक कहना शुरू कर दे। संवेदनशील लेखक या कलाकार तो इस प्रचार के समक्ष टूट जायेगा।”

“हाँ, टूट तो जायेगा ! छन ता-यु पर भी बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। अभी तक मानसिक रूप से पूर्णतः सन्तुलित नहीं हो पाये। आज आप लोगों के आने की खबर सुनकर उत्साहित हुए आने को, लेकिन फिर नहीं आ पाये। पर आप यह भी सोचिये कि अब उनको सम्मान देने की पूरी कोशिश हो रही है। अभी कुछ ही दिनों पहले पेकिंग टेलिविजन पर छन ता-यु के जीवन और उनके चित्रों पर पूरा फीचर दिखाया गया था। और फिर यह भी सोचिये कि ये शघाईवाले ‘गैंग आफ फोर’ के तथाकथित क्रान्तिकारी कोई क्रान्तिकारी थोड़े ही थे। ये तो सत्ता के भूखे षड्यन्त्रकारी थे, जो आक्रामक मार्क्सवादी शब्दावली अपना कर, सबको गलियाँ देकर अपने को क्रान्तिकारी साबित करना चाह रहे थे। ऐसे शब्दों के सूरमा, तो हर जगह होते हैं, पर हमारे क्यांग-सू के कम्युनिस्ट पार्टी के नेता तो छन ता-यु के पक्ष में ही रहे !”

“अगर ये नेता भी वैसे ही होते, तो इस कलाकार का क्या होता ?”

“लेकिन नेता ही नहीं, जनता भी छन ता-यु के पक्ष में थी।” इस बार वृद्ध उपाध्यक्ष चित्रकार शे हाइ येन बोले; “उन्हीं दिनों मैं बाल कटवाने हज्जाम की दुकान पर गया, तो वहाँ इन्हीं मुर्गों को लेकर जोरदार बहस हो रही थी। यहाँ तक कि हज्जाम भी बोला कि ‘गैंग आफ फोर’ कौन होता है, यह तय करने वाला कि मुर्गों की पूँछ नीची हो कि ऊँची ? अरे चारों चाण्डाल चौकड़ी मिलकर जोर लगा दें, तब भी हमारे मुर्गों की पूँछ नीची नहीं कर सकते !”

(नानचिंग लगा तो अपने निराले तेवर वाला शहर, इसमें शक नहीं। अब यही देखिए कि पेकिंग में, शंघाई में, कैंटन में हर जगह सड़क पर ट्राफिक कन्ट्रोल के लिए चौराहों पर पुलिस लाउड स्पीकरों से आदेश देती है, पर यहाँ नानचिंग में उन्होंने अपना पुराना तरीका कायम रखा है। पुलिस वाला रेलवे गार्ड की तरह हाथ में हरी-लाल झण्डी लेकर खड़ा होता है। और झण्डी हिला-हिलाकर चलने या रुकने का संकेत देता है।)

‘कल्चरल रेवोल्यूशन’ के जमाने के अनेक हंगामों की खुली आलोचना हमने यहीं सुनी। “1966 में लिन पियाओ ने यह सब शुरू किया था। बाद में ‘गैंग आफ फोर’ ने यही दोहराया। दोनों एक ही धैली के चट्टे-बट्टे थे। तीन वर्ष 1966 से 1969 तक तो इस विश्वविद्यालय में छात्र भर्ती ही नहीं हुए। सारे देश में यही हाल हुआ। हम स्पष्टतः मानते हैं कि स्कूलों का बन्द होना, छात्रों का बाहर जाना गलत हुआ। उससे शिक्षा

में व्यवधान हुआ। फिर 'गैंग आफ फोर' ने तो कठमुल्लेपन की हद कर दी। सुंग वंश के समय से हमारी चित्रकला में प्रकृति का चित्रण होता रहा। हमारे प्रकृति चित्र बहुत ऊँचे स्तर पर पहुँच चुके थे और बहुत लोकप्रिय थे, लेकिन चीनी चित्रों की एक राष्ट्रीय प्रदर्शनी हुई, उसमें से चाण्डाल चौकड़ी ने अनेक प्रकृति चित्र हटवा दिये यह कह कर कि ये बूर्जुवा अभिरुचि दर्शाते हैं। चेरमैन माओ ने कहा था कि अतीत से छान कर जो कुछ अच्छा है, सब ले लो। पर चाण्डाल चौकड़ी ने सारे पुराने शास्त्रीय गीत, संगीत, पाश्चात्य संगीत, पुराने लोकगीत सब बन्द करवा दिये। उन दिनों हमारे छात्रों का स्तर बहुत गिर गया था। असल में 'कल्चरल रेवोल्यूशन' वाले हर चीज पर सन्देह करते थे। हर चीज पर प्रश्नचिह्न लगाते थे। हर चीज को नकारते थे, सिवा माओ के लेकिन अन्तिम विश्लेषण करें, तो पायेंगे कि माओ का नाम लेकर उन्होंने माओ को ही नकार दिया था। लेकिन 'कल्चरल रेवोल्यूशन' से एक लाभ जरूर हुआ। कलाकार जनता के अधिक निकट जाने लगे और जनसाधारण और कलाकार में आपसी समझ विकसित होने लगी।" रेवोल्यूशनरी कमेटी के अध्यक्ष फेंग जा-यु बड़े विश्वास से बोल रहे थे—“हमारे संस्कृति मन्त्री ने अभी-अभी कहा है कि हमारा अधिकाधिक उद्देश्य होना चाहिए कि अधिक-से-अधिक कलाकार (संगीतज्ञ, चित्रकार, शिल्पकार) सामने आयें और जनसेवा में संलग्न हों अर्थात् हमारी जनता की क्रान्तिकारी चेतना और उनकी क्रान्तिकारी उपलब्धियों को अभिव्यक्ति में प्राचीन और लोकप्रिय कला-रूपों को भी पूरी निष्ठा देनी चाहिए, क्योंकि वे देश की धाती हैं।”

“लेकिन एक बात पूछूँ ?” मैंने कहा, “आप पहाड़, फूल और पक्षी चित्रित करते हैं। क्रान्ति हो, या न हो, फूल तो वही फूल रहेगा। उसमें क्या फर्क पड़ता है ?”

“पड़ता है।” इस बार वे महिला, जो चुप बैठी थीं, बोलीं, “देखिये, हमारे उपाध्यक्ष हैं चेन से-फो। वे कमल के फूल चित्रित करते हैं। पहले मुरझाये हुए रहते थे। ‘कल्चरल रेवोल्यूशन’ के बाद से उनके कमल खूब ताजे और खिले हुए होने लगे हैं।”

“पर क्यों क्रान्ति के बाद अब फूलों को मुरझाया हुआ चित्रित करना वर्जित है ?” मैंने फिर बात बढ़ा दी।

“नहीं, आप कमल के मुरझाये फूल भी चित्रित कर सकते हैं। पर फिर कमल के बीज भी दिखाइए, ताकि निराशा पैदा न करें चित्र।”

“पर निराशा का भी स्थान तो हो सकता है। मान लिया कि देश में पुल बन रहे हैं, बाँध बन रहे हैं, चतुर्दिक जीवन बदल रहा है, पर किसी का पिता मर गया, या चित्रकार की प्रियतमा पत्नी मर गयी, तो क्या वह निराशा में मुरझायी हुई डाल नहीं बना सकता ?”

कुछ क्षण वे खामोश रहीं। फिर बोलीं, “बना सकता है। कला में वैविध्य को प्रश्रय मिलना चाहिए।”

“और कला में रोमांटिसिज्म ? आप उसे मानती हैं या नहीं ?”

“अवश्य !” इस बार वे पूरे विश्वास से बोलीं, “वह तो कला का आवश्यक अंग

है। हर क्रान्तिकारी भावना में रोमांटिसिज्म तो अनिवार्यतः रहता ही है। उसके बिना क्रान्ति कैसे होगी ?”

उन्होंने यह बात विलकुल सच कही थी। रोमांटिसिज्म में जो एक कैशोर्य की, स्वप्न देखनेवाली, चरम भावनात्मक उवाल की वैयक्तिक अन्तरंगता होती है वह हर क्रान्तिकारी की मानसिकता का अनिवार्य अंग होती है। खुद माओ-त्से-तुंग की पुरानी कविताओं में इसकी छटा मिलती है। 1925 की उनकी एक कविता है चांगशा। उसकी कुछ पंक्तियाँ पेश हैं :

जवान थे हम, सहपाठी
जिन्दगी की भरपूर खिलान के मौसम में,
छात्रकाल के उत्साह में
हर बन्धन तोड़ फेंकते थे
अपने पहाड़ अपनी नदियों की ओर संकेत कर
अपने लोगों के मन में अपने शब्दों से आग धधकाते हुए”

बायरन या शैली की रूमानियत याद नहीं आती आपको ये पंक्तियाँ पढ़कर ?

नानचिंग में देखे गये कुछ चित्रों के अलावा बाकी हर जगह हमें चीन की परम्परागत क्लासिक शैली की अनुकरणात्मक कृतियाँ ही अधिक मिलीं; या फिर राजनीतिक-आर्थिक सन्दर्भ की पोस्टर कला। व्यक्तिगत अन्तरंगता, भावनात्मक विस्फोट, सृजनात्मक मौलिकता का अस्मितापूर्ण तेवर केवल अपवाद रूप में कहीं-कहीं हंगरी, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, पोलैंड, पूर्वी जर्मनी आदि छोटे यूरोपीय कम्युनिस्ट देशों में जो चित्रकला में आधुनिक मानसिकता और शैली के नवीनतम प्रयोग मिलते हैं, उसका अभाव दिखा। इतना अवश्य है कि चाण्डाल चौकड़ी के अपदस्थ होने के बाद उनके कला-संसार में अत्यधिक सक्रियता आयी है और लोग राहत की साँस लेने लगे हैं। फिर भी प्रधानता या तो राजनैतिक पोस्टर कला की है, या क्लासिकल शैली के पहाड़, नदी, फूल चिड़ियाँ, नावें, जंगल, उनके परम्परागत राष्ट्रीय विषय।

इसके शायद कई कारण हैं। एक तो चीनी कला संसार पुराने ‘फार्म’ से बहुत ज्यादा बँधा हुआ होता है। माओ की हर कविता किसी पुराने ‘फार्म’ में बँधी है और हर कविता के साथ इसका संकेत है। कुओ मो-जो हजारों वर्ष पुराने कवि चु युआन का अनुसरण करते हैं। उनके लिए यह सारी प्राचीन कविता, चित्र, शिल्प सामन्तवादी या प्रतिक्रियावादी मान कर त्यज्य नहीं है, वह सामान्य जन का सृजन हो, या किसी सामन्त का। (चु युआन भी राजा के सलाहकार सामन्त थे)। वह सब उनकी राष्ट्रीय धाती है। दूसरे, 1960 में रूस से सम्बन्ध टूट जाने के बाद उनकी राष्ट्रीय भावना में एक जोरदार उफान आया। ‘कल्चरल रेवोल्यूशन’ के कठमुल्ले मार्क्सवाद के मुकाबले राष्ट्रीय निर्माण के सर्वसंग्राहक उदारतावाद को प्रश्रय

देने का एक कारण यह भी है। और तीसरा कारण खासा दिलचस्प है। वह यह कि विश्व के बाजार में चीन अभी भी अपने मध्यकालीन क्लासिकल कला-शिल्प के द्वारा जाना जाता है और वहाँ अभी भी उसी की खपत है। आखिर चाउ एन-लाइ ने निर्यात के लिए ही तो आधुनिक चित्रकारों को क्लासिकल शैली अपनाने के लिए कहा था। उनके शिल्प-निर्माण केन्द्रों में भी क्लासिकल शैली इसीलिए छापी हुई है। उन्होंने अधिक उत्पादन के लिए सामूहिक संगठन का सिद्धान्त वहाँ भी लागू किया है, और इसमें कोई सन्देह नहीं, इससे उनके शिल्प-उत्पादन को नया जीवन मिला है।

हमने कैटन और यांगचऊ में उनकी दो शिल्प फैक्टरियाँ देखीं। कैटन (असली नाम क्वांगचऊ) पेकिंग, नानचिंग, शंघाई, तीनों से अलग किस्म का शहर। लगभग अपने कलकत्ते जैसा। वैसी ही भीड़-भाड़, वैसी ही मकानों की शैलियाँ, वैसा ही उमस-भरा मौसम। यहाँ तक कि पहली बार चीन में लड़कियों के कटे-छँटे केशों के बजाय बंगालिनी जैसे लम्बे केश, जिन्हें कुछ चोटियों में गूँथकर और कुछ यों ही खुले लहराते हुए साइकिलों पर घूमती हुई। पतली सड़कों में से, पुराने मकानों के बीच एक मकान। उसके पुराने जीने से चढ़कर हम ऊपर गये। दो-तीन मंजिलों में उन्होंने हाथी दाँत के शिल्प की एक फैक्टरी बिठायी हुई है।

यह शिल्प कैटन का सदियों पुराना शिल्प है। लगभग मरता जा रहा था। थोड़े-से शिल्पी बचे थे। वे भी अपने लड़के के अलावा किसी को, यहाँ तक कि अपनी लड़की तक को इसका रहस्य नहीं बताते थे। लड़की ब्याहकर दूसरे घर जायेगी, तो यह हुनर दूसरे परिवार को मालूम हो जायेगा। भुक्ति के बाद इस मरणोन्मुख शिल्प को पुनर्जीवित किया गया। शिल्पकारों को सामूहिक सहकारिता में संगठित किया गया। नये-नये प्रशिक्षार्थी (जिनमें अब लड़कियाँ भी हैं) भर्ती किये गये। शिल्पियों को कुछ नये प्रकार के उपकरण दिये गये। मसलन, बिजली से चलने वाली बारीक छेनियाँ, नये किस्म के बिजली के छोटे-छोटे खराद।

सबसे बारीक शिल्प था उस ग्लोब का, जिसमें 14 गोल छेद आर-पार करके गोले को अन्दर-ही-अन्दर इस तरह तराशा जाता है कि गोले के अन्दर 32 जालीदार गोले एक दूसरे के अन्दर बनते चले गये। पूछने पर मालूम हुआ कि यह विदेश में होने वाली किसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के लिए तैयार हुआ है। शेष कृतियाँ वही पुराने विषयों की थीं—हाथी, मोर, सिंह, ड्रेगन, फीनिक्स पक्षी, पगोड़ा, या मिंग काल की पलंगों पर अघलेटी राज-कन्याएँ, लटकती दाढ़ी मूँछों वाले सामन्त, या उड़ती अयालों और तनी पूँछ वाले घोड़े। कुछ चेयरमैन माओ या चेयरमैन हुआ की शिल्प आकृतियाँ भी थीं, पर ज्यादा नहीं ! कोई भी ऐसा शिल्पखण्ड नहीं, जिसमें मौलिकता का आभास हो, या किसी उस्ताद शिल्पी के हाथों का स्पर्श दीख पड़े।

एक बूढ़े उस्ताद शिल्पी से भेंट हुई यांगचऊ की पच्चीकारी की बड़ी-सी फैक्टरी में। सीपी, जेड, संगमरमर, रंग-बिरंगे बहुमूल्य पत्थर, हाथी दाँत, लाख और धातुओं

की खुशनुमा सुन्दर उभरी हुई दृश्यावली बनाकर उसे लकड़ी में जड़ देना, यह यांगचऊ का 2400 वर्ष पुराना प्रख्यात शिल्प मिंग वंश से प्रारम्भ हुआ था। पेकिंग को जाने वाली ग्रांड कनाल (बड़ी नहर) भी यहीं से शुरू होती है (जो चीन का प्रख्यात आन्तरिक जलमार्ग है) और प्रख्यात मध्यकालीन सिल्क मार्ग भी यहीं से शुरू होता था। गली-कूचे तक में पगोड़ों से भरा यह प्राचीन नगर कुछ-कुछ वाराणसी की छटा देता है।

जापानी आक्रमण, गृहयुद्ध, मुक्ति संग्राम इस सारी राजनीतिक उथल-पुथल में इस पूरे नगर में इस शिल्प की कुल तीन दूकानें रह गयी थीं। और केवल 12 मिस्त्री। वे सब भी लगभग भूखों मरते थे। लेकिन किसी भी सामयिक दबाव में अपनी कला का स्तर गिराने को तैयार नहीं होते थे। अन्त में 1955 में मुक्ति के कई वर्षों बाद, बचे-खुचे 16 कलाकारों को लेकर सहकारी समिति संगठित की। उसने अब विकसित होकर इस बड़ी फैक्टरी का रूप ले लिया है। अब इसमें 700 शिल्पी कामगार हैं। अधिकतर युवा कामगार, क्रान्ति के बाद के।

क्रान्ति-पूर्व के 54 बरस की उम्रवाले शिल्पी कोंग एक खिड़की के पास अपनी मेज पर बैठे जेड और सीपी के पत्थरों पर आकृतियाँ बना रहे थे। हम लोगों की उपस्थिति और सारी हलचल से बिलकुल देखबर। हम लोग उनके पास ले जाये गये। यह जान कर कि हम लोग भारत से आये हैं, शायद बचपन के बौद्ध संस्कारों के कारण, विशेष पुलकित हो उठे। अपने कैशोर्य और युवावस्था में क्रान्ति के पहले के जमाने में शिल्पियों की गरीबी और संघर्ष की कई कथाएँ सुनायीं। इस शिल्प में उनके गुरु थे प्रख्यात शिल्पी शि, जो कभी-कभी केवल एक प्याला चावल खाकर दिन भर इस वारीक काम में लगे रहते थे। उनकी आँखों की ज्योति मन्द हो गयी। समय के पहले बूढ़े हो गये और 52-53 वर्ष की उम्र में कोंग को अपनी छेनी और पुराने चित्र-संकलन सौंप कर चल बसे।

कोंग स्वयं अपनी उम्र से ज्यादा वृद्ध लग रहे थे। उनकी मेज पर मिंग वंश के भित्तिचित्रों आदि के बड़े-बड़े एलबम रखे थे। वे उन्हीं में से डिज़ाइन छाँटकर उन्हें पुनर्संयोजित करते हैं। तीस प्रतिशत अनुकरण और लगभग सत्तर प्रतिशत अपनी योजना ! उनके आजकल 11 शिष्य हैं।

इस फैक्टरी में भी वेतन के अलग-अलग ग्रेड हैं। कम-से-कम 35 युआन अर्थात् लगभग 175 रुपए और अधिक से अधिक 85 युआन अर्थात् लगभग सवा चार सौ रुपये ! कोंग का वेतन है 78 युआन। इस फैक्टरी की रेवोल्यूशनरी कमेटी की महिला प्रवक्ता ने बताया कि यह वेतनमान श्रम मन्त्रालय तय करता है। चीन में अलग-अलग क्षेत्रों में, अलग-अलग उत्पादन क्षेत्रों में अलग-अलग वेतनमान हैं। इनके निर्धारण के दो आधार हैं। एक ताँ उत्पादित वस्तु का मूल्य कितना अधिक मिल सकता है, दूसरे उस स्थान का रहन-सहन का स्तर पहले से कैसा है ? इस फैक्टरी में उत्पादित शिल्पकृतियों का मूल्य कैसे तय होता है, यह पूछने पर ज्ञात हुआ कि लागत का खर्च + मजदूरी, कलात्मक स्तर, 10 प्रतिशत से

15 प्रतिशत तक लाभ—इनको जोड़कर मूल्य तय किया जाता है।

उन छोटी-बड़ी शिल्पकृतियों के मूल्य बहुत अधिक थे। पूछा कि इतने मूल्य की कलाकृतियाँ खरीद सके, ऐसा वर्ग चीन में तो रहा नहीं, तो इन्हें खरीदता कौन है ? मालूम हुआ कि 50 से अधिक देशों में इस प्रकार की कलाकृतियों की माँग है, जिन देशों में अत्यधिक सम्पन्न वर्ग है, जो इन्हें खरीद सके। इस विदेशी बाजार को और बढ़ाने की कोशिश जारी है।

“इसके अर्थ यह हुए कि यह बहुमूल्य शिल्प सारे संसार के गैर साम्यवादी देशों के सम्पन्न वर्ग के संरक्षण के कारण पनप रहा है। लेकिन अगर मार्क्स की कल्पना के अनुसार विश्व क्रान्ति हो जाये और सारी दुनिया के समृद्ध वर्ग नष्ट हो जायें, तो इस शिल्प का क्या होगा ?”

इस प्रश्न पर उनमें कुछ आपस में बातचीत हुई, फिर उनका उत्तर दुभाषिये ने अनूदित किया—“हम मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अनुसार, महान नेता चेयरमैन माओ और बुद्धिमान नेता चेयरमैन हुआ के निर्देशों पर चलकर प्रगति कर रहे हैं !”

“लेकिन मार्क्स ने कहा था कि उत्पादन के साधनों पर मजदूरों का कब्जा होने के बाद कला-संस्कृति की उच्चतम कृतियों के आस्वादन पर भी मजदूरों का हक होगा। पर यहाँ तो उत्पादन के साधनों पर देशी सरकार का और उत्पादित कृतियों पर विदेशी समृद्ध वर्ग का आधिपत्य है ?”

इसका उत्तर नहीं मिला। केवल यह ज्ञात हुआ कि श्रम मन्त्रालय इस बात का पूरा प्रयास कर रहा है कि शिल्पी कामगारों का वेतन बढ़े और अच्छे तथा अधिक कलात्मक उत्पादन के लिए बोनस देने की भी बात हम सोच रहे हैं। उनके व्यक्तिगत कौशल को अधिक सम्मान मिले, इसका प्रयास करेंगे।

अपने पुराने इतिहास और परम्परागत कला-संसार की ओर लौटने का कारण केवल व्यावसायिक ही नहीं है। राष्ट्रीय स्वाभिमान का पुनर्जागरण तो है ही, ऐसा लगता है कि ‘गैंग आफ फोर’ के पतन के बाद लोगों में जीवन की एकरसता भंग कर कुछ रंगों और आकारों के वैविध्य तथा रसात्मकता और सौन्दर्य के प्रति लालसा बढ़ने लगी है।

इसी वर्ष ‘रेन मिन रिबाओ’ (पीपुल्स डेली) के 5 अप्रैल के अंक में एक लेख छपा, जिसकी बहुत चर्चा हुई। उसमें यह माँग की गयी थी कि पोशाकों, खाद्य व्यंजनों, बाल काटने की तर्जों तथा फोटो खींचने के तरीकों में एक स्वस्थ वैविध्य आना चाहिए। यह भी सुना कि शंघाई के हज्जामों ने एक सभा करके यह कहा कि उनकी परम्परागत चीनी केश-कर्तन कला में बहुत वैविध्य है। बारह प्रकार के चेहरों के लिए 12 प्रकार के बाल काटने की शैलियाँ हैं। लेकिन ‘गैंग आफ फोर’ ने उन पर बन्दिश लगाकर एक महान जन-विरोधी कुकृत्य किया है, जिसका परिहार होना चाहिए। उसी लेख का उद्धरण : “हम ऐश्वर्य-प्रदर्शन और बर्बादी के पक्ष में नहीं हैं, लेकिन रेस्तराँ और होटलों को चाहिए कि स्वादिष्ट व्यंजनों की संख्या

बढ़ायेँ। हमें भड़कीली पोशाकों का विरोध करना चाहिए, लेकिन नयी फैशन की सादी और प्रभावशाली नयी डिजाइनें निकालनी चाहिए। हमें वालों की आवारा शैली नहीं चाहिए, पर स्वस्थ, सुन्दर लगनेवाली, कम परवाह से ही ठीक रहनेवाली बाल काटने की शैलियाँ अपनानी चाहिए। हम भोंड़े तरीके से फोटो खींचना उचित नहीं समझते, लेकिन अब किसानों, कामगारों के चित्र खींचने में विविध कला-शैलियाँ अपनानी चाहिए।”

अखबार के अलावा दूसरे जनसम्पर्क माध्यमों से भी इस रसात्मक वैविध्य की माँग उठने लगी है। चेंग तु बडयो से 14 अप्रैल को सेजुआन प्रान्त में हुई एक लम्बी कान्फ्रेंस की रिपोर्ट प्रसारित हुई। उसमें पुस्तक प्रकाशन की समस्या पर लम्बी बातचीत हुई थी। उनका कहना था “सौ फूलों को खिलने दो, सौ विचारधाराओं को टकराने दो के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए प्राचीन वस्तुओं को अवसर मिलना चाहिए कि वे नवीन की सेवा कर सकें” और तमाम प्रकार की वे पुस्तकें प्रकाशित की जानी चाहिए, जो तीनों क्रान्तिकारी आन्दोलनों की चेतना को प्रतिबिम्बित करती हैं।”

फिलहाल नवीन की सेवा में प्राचीन वस्तुओं के उपयोग का काफी बोलबाला है। इस समय वहाँ सबसे तेजी से बिकनेवाली पुस्तक है, एक दो-सौ वर्ष पहले लिखा गया उपन्यास ‘लाल हवेली के सपने’ (द ड्रीम आफ रेड मेशंस)। यह उपन्यास चिंग वंश के काल में लिखा गया था और इसमें और भी पहले यानी 14वीं शताब्दी के मिंग वंश के समय का कथानक है। नानचिंग (जिसका नाम उस समय चिनलिंग था) के चार प्रमुख सामन्ती घराने थे : चिया, शिह, वांग और शेह। ये चार घराने ऊँचे नौकरशाहों, बड़े जमींदारों, सामन्तों के घराने थे। कैसे उन्होंने प्रजा का उत्पीड़न किया, उसका यह मध्यकालीन किस्सा शैली का उपन्यास आज सबसे ज्यादा लोकप्रिय है।

फिल्मों का निर्माण कार्य ‘गैंग आफ फोर’ के जमाने में लगभग ठप्प पड़ गया था। अब कुछ पुरानी लोकप्रिय फिल्में फिर दिखायी जाने लगी हैं, जिनमें एक बहुत ही रोचक फिल्म देखने का अवसर मिला—वानरराज स्वर्ग में। ये वानरराज भी एक बहुत पुरानी मध्यकालीन कथा के नायक हैं। किसी चीनी बौद्ध भिक्षु के साथ तीन बन्दर भी भारत गये थे, बौद्ध तीर्थों की यात्रा के लिए। लौटकर उनमें से वानरराज ने काफी मौलिक कारनामे दिखाये। किस प्रकार स्वर्ग के अनुशासन को भंग किया, उनकी वाटिका उजाड़ी, उनके भोज समारोह में आमन्त्रित न होने पर उसका विध्वंस किया, यह सब बड़े मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। लगता है किसी समय अपने हनुमान जी की कुछ कथाएँ पहुँची हैं और चीनी बौद्ध चेतना में उनका यह रूपान्तरण हो गया है। मध्यकालीन किस्सा ‘वानरराज’ और उस पर आधारित फिल्मों की लोकप्रियता दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है।

रंगमंच में भी इस वैविध्य की माँग बढ़ी है। चांडाल चौकड़ी की चियांग चिंग

माओ से विवाह करने के पूर्व शंघाई आपेरा की नटी थी। उसने 'गैंग ऑफ फोर' के प्रभावकाल में सारे आपेरा सामाजिक-राजनीतिक विषयक हों, यह आदेश दिया था। अनेक लोकप्रिय आपेरा बन्द हो गये थे। अब फिर वे तेजी से वैविध्य की ओर लौटे हैं चेयरमैन माओ के साहित्य और कला पर येनान मंच से दिये गये भाषण के प्रकाशन की तीसवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में मार्च, 78 में महीने भर का हुपेह कला समारोह मनाया गया, जिसमें "कुल जमा सौ प्रयोगात्मक नाटक प्रदर्शित किये गये सृजनात्मक कला के स्तर के" (बुहान रेडियो प्रसारण, 3 अप्रैल) उसमें पेकिंग आपेरा हान आपेरा, चू आपेरा, नृत्य नाटिकाएँ और नाट्यकृतियाँ सभी को सम्मिलित होने का अवसर दिया गया।

लेकिन शंघाई में हमने पेकिंग आपेरा शैली का जो आपेरा देखा 'लाल लालटेन' (द रेड लैंटर्न), वह अगर एक नमूना माना जाए, तो मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि बम्बई के कलात्मक हिन्दी-मराठी रंगमंच की तो बात दूर, योगेन्द्र देसाई के हिन्दी या गुजराती के आपेरा या 'जसमा ओडन' जैसे हिन्दी के गीत-नृत्य प्रधान नाटक उस आपेरा से कहीं अधिक समृद्ध होते हैं कलात्मक दृष्टि से। यह बात दूसरी है कि वह आपेरा था पेकिंग स्कूल का, खेला जा रहा था शंघाई में, प्रस्तुत कर रही थी नानचिंग के किसी उपनगरीय कम्यून की कोई रंगमंच मण्डली। विषय वस्तु में कोई मार्क्सवादी सैद्धान्तिक पेंच नहीं था, सीधी-सादी देशभक्तिपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी। बाक्सर विद्रोह के समय की, जब अँग्रेज पुर्तगाली आदि उपनिवेशवादी शक्तियाँ चीन की महारानी को पराभूत किये हुए थीं। और चीनी जनता पर अत्याचार कर रहे थे। उस समय चीनी वीरांगनाओं ने एक गुप्त क्रान्तिकारी संस्था बनायी थी 'लाल लालटेन', और बहादुरी से लड़ी थीं। चूँकि बाक्सर विद्रोह के काफी वर्ष पहले 1857 में भारत में भी उससे बड़ा विद्रोह हुआ था और नानाजी की बेटी मैनावती और झाँसी की रानी ने उसमें वीरगति पाई थी, अतः यह आपेरा हमें बेगाना नहीं लगा। यह अवश्य है। अँग्रेजों के अत्याचार से पीड़ित हम एशियाई देशों की ऐतिहासिक अनुभूतियाँ समान हैं, वरना कार्ल मार्क्स के हिसाब से तो सौदागर उपनिवेशवादी यूरोपीय मध्यकालीन एशियाई सामन्तों से अधिक प्रगतिशील थे। अनेक यूरोपीय मार्क्सवादियों ने इसीलिए हमारे एशियाई राष्ट्रीय संग्रामों की प्रवृत्ति को समझा ही नहीं। भारत में भी जिन तथाकथित वामपन्थियों ने उन यूरोपीय मार्क्सवादियों का पिछलग्गूपन अख्तियार किया, वे भी भारतीय जनान्दोलन की प्रकृति को नहीं समझ पाये, न सन् 42 में, न सन् 74 में !

चीन में साहित्य सृजन और मार्क्सवाद की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी पद्धति को लेकर उस प्रकार के गहन सैद्धान्तिक विवेचन नहीं हो पाये हैं, जैसे किसी जमाने में क्रिस्टोफर काडवेल ने ब्रिटेन में, या जॉर्ज लुकाच ने हंगरी में किये थे। केवल माओ और कुओ मो-जो के नाम लिये जा सकते हैं, (क्योंकि ल्युशाओ-चि को अब अस्वीकृत किया जा चुका है)। लेकिन साहित्य में, जो कुछ नव आर्थिक निर्माण हो रहा है उसकी रिपोर्टिंग कैसे, किस नजरिये से हो, इस पर अधिक बल दिया गया, सैद्धान्तिक विवेचन या कोई चीनी मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र या समीक्षाशास्त्र के विकास पर कम। जब माओ ने घोषित किया था कि 'सौ विचारधाराओं को टकराने दो, सौ फूलों को खिलने दो,' यदि वह वातावरण सचमुच बना रहता, तो हो सकता है उस विचारों की टकराहट में से कुछ ऐसे चिन्तन पनपते, जो केवल सतही तत्कालीन राजनीति की आवश्यकता पूरी करने वाले न होकर गहरे और अपेक्षाकृत स्थायी मूल्य के होते, लेकिन उसके पहले ही 'कल्चरल रेवोल्यूशन' को 'गैंग ऑफ फोर' ने सत्ता हथियाने के लिए अवांछित दिशा में मोड़ दिया। चियांग चिंग ने सबसे पहला काम यही किया। सन् 1949 (चीनी मुक्ति वर्ष) से 1966 तक लिखे गये सारे 17 वर्ष के साहित्य को (यानि माओ और कुओ मो-जो द्वारा समर्थित और प्रोत्साहित को भी) प्रतिक्रियावादी, क्रान्ति-विरोधी बताकर उसे रद्दी के टोकरे में फेंकने की सलाह दी। (देखिए पेकिंग रिव्यू : 28 अप्रैल, 78)

जब 1966 में माओ ने सांस्कृतिक क्रान्ति की घोषणा की, उसी गहमागहमी में चियांग चिंग ने अपना पासा फेंका। पार्टी सेण्ट्रल कमिटी के सैनिक कमीशन का अध्यक्ष लिन पियाओ उस समय पूर्वी चीन के सूचाऊ नगर की सैनिक छावनी में था। उसने तुरन्त सैनिकों के बीच एक फोरम आयोजित कर चियांग चिंग को बोलने के लिए आमन्त्रित किया। चीन के कला और साहित्य में जन मुक्ति सेना की यह सांस्कृतिक मण्डली अत्यन्त प्रभावशाली रही है। साहित्य का यह फौजी नेतृत्व हमें अटपटा लंगता है, पर वहाँ यह था। उस फोरम से चियांग चिंग ने घोषित किया कि मुक्ति वर्ष से आज तक सारे सत्रह वर्षों का साहित्य जन-विरोधी तानाशाही का गुलाम था और अब हमें उस तानाशाही पर प्रोलेतेरियत तानाशाही का तेवर दिखाना है।

उसके बाद चाण्डाल चौकड़ी के दूसरे सदस्य चांग चुंग-चियाओ तथा लिन पियाओ के साथी चेन पो-ता ने दो और चौंकाने वाली घोषणाएँ कीं। एक तो यह कि इन 17 वर्षों के जन-विरोधी, प्रतिक्रियावादी साहित्य की जड़ उस वामपक्षी प्रगतिशील आन्दोलन में हैं जो मुक्ति के बहुत पहले सन् 35 के आसपास चला था, और दूसरी जोरदार स्थापना यह थी कि 100 वर्ष पहले 1871 में जब युजीन पोतिये ने फ्रेंच राज्य क्रान्ति का गीत 'द इण्टर-नेशनल' लिखा था तब से कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन सांस्कृतिक क्षेत्र में आया ही नहीं सन् 60 तक, जब चियांग चिंग ने पेकिंग आपेरा में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये।

उसके बाद तो जो हुआ वह विचित्र था। मुक्ति के बाद कम्युनिस्ट चीन में लिखा

गया अधिकांश साहित्य 'जहरीला घास-फूस' करार दिया गया। नाटक, आपेरा, चित्र लोकगीत सब पर बन्धन लग गये। सिवाय चियांग चिंग के द्वारा निर्देशित 'क्रान्तिकारी शैली' के बाकी सारी शैलियाँ प्रतिक्रियावादी करार दी गयीं और कितने ही कलाकारों, लेखकों, अभिनेताओं, चित्रकारों को भयानक प्रतारणा का शिकार होना पड़ा; अनेक को जेल में बन्द कर दिया गया।

प्रख्यात नाटककार तु सुआन चाण्डाल चौकड़ी के गढ़ शंघाई में ही थे और उन्हें भी जेल में डाल दिया गया था। वे दो-ढाई साल तक जेल में रहे। अब फिर उनके नाटक मंच पर प्रस्तुत होने लगे हैं। 'नदी किनारे के फूल' उनका एक नाटक आजकल खेला जा रहा है। दूसरा नाटक लिख रहे हैं किसी ऐतिहासिक कथानक को लेकर।

शंघाई में उनसे मिलने का प्रबन्ध हमारे मेजबानों ने किया। शंघाई की एक मध्यमवर्गीय बस्ती में ग्राउण्ड फ्लोर पर उनका छोटा-सा फ्लैट, अलमारी में किताबें, मेजों पर पत्र-पत्रिकाएँ और दीवार पर पुरानी चीनी कैलिग्राफी। पिछवाड़े एक बरामदा, जिसके आगे एक छोटा-सा हरा-भरा आँगन, उसमें दो प्यारी सफेद चीनी बिल्लियाँ धूप सेंक रही थीं। तु सुआन अपनी उम्र 65 वर्ष से काफी छोटे लगते हैं। पहली बार किसी चीनी को हमने पाइप पीते देखा (बुद्धिजीवियों की अदा) और पहली बार दुभाषियों की मदद से हम सीधे उनसे बात कर रहे थे, किसी रेवोल्यूशनरी कमेटी का कोई अधिकारी नहीं था। सन् 50 में कभी वे किन्हीं भारतीय लेखकों से मिले थे। 28 वर्ष बाद अब भारतीय पत्रकार और लेखक उनसे मिलने आये हैं, इस बात से वे थोड़े भावुक हो उठे थे और समझ नहीं पा रहे थे कि पहले चाय पेश करें, या सवालों के जवाब दें, या अपनी बिल्ली को सँभालें, जो बहुत बेतकल्लुफी से मेरी कुर्सी पर आकर जम गयी थी।

उनसे चीन में लेखकीय स्थिति पर अनेक बातें मालूम हुईं। चीनी लेखक संघ उनका संगठन है। तुसुआन उसे स्वतन्त्र संगठन बता रहे थे, लेकिन जब उसके विस्तार में गये, तो लगा कमोबेश वह सरकारी ही है। उसकी दो प्रकार की सदस्यता होती है। शाखा सदस्यता और अखिल राष्ट्रीय सदस्यता। जिस लेखक ने दो से अधिक महत्वपूर्ण पुस्तकें तैयार की हों और चीनी लेखक संघ के दो सदस्य जिसकी सदस्यता के प्रस्ताव का समर्थन करें, वह अखिल राष्ट्रीय सदस्य बन सकता है। एक पुस्तक लिखी हो, वह दो सदस्यों के समर्थन से शाखा का सदस्य बन सकता है। दोनों ही प्रकार की सदस्यताओं की अन्तिम मंजूरी पार्टी के सेक्रेटेरियट से लेनी पड़ती है, अगर उनकी अनुमति नहीं है, तो वह सदस्य नहीं बन सकता। किन लोगों की सदस्यता पर रोक लगती है, यह पूछने पर बताया कि जो अपराधी हों, या राजनीतिक अपराधी हों, राजनीतिक अपराधी किसे माना जायेगा, इसे पूछना बेकार था। फिर भी पूछा कि जो पार्टी की नीति को न माने क्या वह राजनीतिक अपराधी है? उत्तर मिला, "हमारे यहाँ सेंसरशिप नहीं है, लेखन की स्वतन्त्रता है। छपने की कसौटी यह है कि जो लेखन पार्टी नेतृत्व और

समाजवाद के विरुद्ध नहीं हो, वह छप सकता है।”

प्रश्न—लेकिन यह तय कौन करता है कि यह लेखन समाजवाद के विरुद्ध है, या नहीं ?

उत्तर—इस पर जनता चाहे, तो खुली बहस कर सकती है।

प्रश्न—लेकिन जब वह छपेगा ही नहीं, तो जनता उस पर बहस कैसे करेगी ?

उत्तर—हमारा समाज समाजवादी है। जनता इसे आदर्श पद्धति मानती है। अतः वैसा साहित्य छापता ही नहीं, जो समाजवाद-विरोधी हो। कभी-कभी कुछ सम्पादक नासमझी में ऐसा साहित्य छाप देते हैं बिना समझे कि वह समाजवाद-विरोधी है, तो जनता उसका विरोध करती है।

प्रश्न—लेकिन मेरा प्रश्न तो लेखन और चिन्तन की आजादी को लेकर था। चिन्तन की आजादी का एक पक्ष यह भी है कि लेखक तत्कालीन व्यवस्था, या सत्ता से मतभेद रख सकता है और उसे स्वतन्त्रता से व्यक्त कर सकता है। यदि व्यवस्था से मतभेद नहीं व्यक्त कर सकता, तो आप कैसे कहते हैं कि लेखक को स्वतन्त्रता है ?

उत्तर—सौ वर्ष बाद हमारे यहाँ आजादी आयी है। हमारे यहाँ कोई क्रान्ति के खिलाफ नहीं है, समाजवाद के खिलाफ नहीं है।

प्रश्न—कोई लेखक समाजवाद के आदर्श में विश्वास करता हो, लेकिन उसे लगे कि समाजवाद का नाम लेकर भी शासक दल समाजवाद के विपरीत चल रहा है, तो क्या उसे यहाँ यह कहने और लिखने की आजादी है ?

उत्तर—ऐसी कोई स्थिति आज नहीं है। वैसे हमारी पार्टी इस बात को प्रोत्साहित करती है कि नीतियों को लागू करने में अगर कोई गलती हो, तो उस पर जनता, या लेखक अपने विचार व्यक्त करें।

प्रश्न—अर्थात् नीतियाँ कैसे लागू की जा रही हैं, इस पर विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता है, लेकिन नीति पर विचार व्यक्त करने की स्वाधीनता नहीं ?

उत्तर—हमारी पार्टी और सरकार की नीति जनता के हित में होती है। जनता की राय लेकर नीति बनायी जाती है।

प्रश्न—फिर भी अगर कोई लेखक सरकार का विरोध करे, तो उसे क्या सजा दी जाती है ?

उत्तर—हमारा एक लेखक शाजिन था। उसने सरकार का विरोध किया। पर उसे जेल नहीं भेजा गया। सिर्फ उसकी कृतियाँ प्रकाशित करनी बन्द कर दी गयीं।

प्रश्न—अगर लेखक की कृतियाँ प्रकाशित होनी बन्द हो जायें, तो वह क्या करे ?

उत्तर—कोई और काम कर सकता है। मसलन कारखाने में, या जो भी काम उसे आता हो। यों भी चीन में लेखक को रायल्टी नहीं मिलती। जो चीनी लेखक संघ का मान्य सदस्य होता है, उसे तनखाह मिलती है।

जार्ज वर्गीज ने पूछा कि चीन में नये लेखक कैसे प्रकाश में आते हैं ? उनका

प्रकाशन कैसे होता है ? तु सुआन ने बताया कि समाजवादी व्यवस्था में जो भी युवा लेखक जो भी चाहे लिख-लिखाकर लेखक बन जाये, यह सम्भव नहीं होता। उनको प्रोलेतेरियत संस्कार मिलने चाहिए। अगर कोई युवा लेखक प्रकाशित होना चाहे, तो वह अपना लेखन चीनी लेखक संघ को भेजे। जो चुना जायेगा उसे हम कारखानों और खेती के कम्प्यूनों में भेजते हैं। वह पहले उनके बीच में रहकर, उनके साथ काम करके वहाँ के जीवन की रिपोर्ट लिखे। अगर वह रिपोर्ट ठीक होगी, तो उसे पुराने प्रतिष्ठित लेखकों के साथ लिखने का प्रशिक्षण लेना पड़ेगा। तब यदि वह कोई ठीक-ठाक चीज लिखेगा तो वह छपेगा।

एक दूसरे सवाल के उत्तर में उन्होंने बताया कि हमारे यहाँ अब शैली की स्वतन्त्रता है। यानी क्रान्तिकारी रोमांटिसिज्म, क्रान्तिकारी यथार्थवाद, शुद्ध रोमांटिसिज्म, प्रकृतिवाद (नेचुरलिज्म), विश्लेषणात्मक यथार्थवाद किसी भी शैली में लेखक लिख सकता है। जहाँ तक नाटक का सवाल है, चीनी परम्परा में नाटकों की कई धाराएँ रहीं हैं, हम उन्हें भी अपना सकते हैं। कुछ ने ब्रेख्त का प्रभाव भी लिया है। यह पूछने पर कि क्या समसामयिक वामपंथी नाटककार ज्यापाल सार्त्र, आर्थर मिलर, आयनेस्को आदि का कोई प्रभाव है, तो ज्ञात हुआ कि उनकी कोई चर्चा चीन में नहीं है। तु सुआन के अनुसार महान नेता चेयरमैन माओ ने उन्हें कलम दी थी, चाण्डाल चौकड़ी ने उनकी कलम छीन ली, बुद्धिमान नेता चेयरमैन हुआ ने उनकी कलम उन्हें फिर वापस दे दी है।

के.आर. मलकानी ने पूछा कि जब चाण्डाल चौकड़ी ने आपकी कलम छीनी तब क्या चीनी लेखक संघ ने कोई प्रतिवाद किया ?

“कैसे करता ? सन् 1967 में चाण्डाल चौकड़ी ने आते ही चीनी लेखक संघ को भंग कर दिया।” तु सुआन ने कहा।

“तो लेखकों के वेतन का क्या हुआ ?” मलकानी ने फिर पूछा।

“वेतन क्या मिलता ? हाँ, कुछ जीवनयापन के लिए न्यूनतम भत्ता मिलता रहा। वह भी उन्हें जो जेल नहीं भेजे गये। मुझे तो बिना किसी मुकदमे के जेल भेज दिया गया था।” तु सुआन उदासी से हँस कर बोले।

उन्होंने एक और दिलचस्प बात बतायी। 1949 से 1967 तक का सारा साहित्य जन-विरोधी घोषित कर दिया गया। उनकी बिक्री रोक दी गयी। पर वह दुकानों में, प्रकाशनगृहों में, गोदामों में भरा रखा था। क्या किया जाये इसका ? जला दें इसे ? यह पूछने पर चियांग चिंग ने कहा, यह सारा लेखन तो दो कौड़ी का है, लेकिन जिस कागज पर छपा है वह क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग की मेहनत-मशक्कत का उत्पादन है। उसे जलाने से क्रान्तिकारी सम्पत्ति का नुकसान होगा। अतः वह हजारों टन साहित्य फिर कागज की मिलों में भेजा गया। उसे पानी में उबालकर लुगदी बनायी गयी उसका फिर सारा सादा कोरा छपाई का कागज बनाया गया। इस पर ‘गैंग आफ फोर’ के नारे पोस्टर और वक्तव्य छापे गये।

तु सुआन मानते हैं कि सांस्कृतिक क्रान्ति से साहित्य का बड़ा नुकसान हुआ, पर एक बहुत बड़ा फायदा हुआ। लेखकों का ध्यान जनता पर केन्द्रित हो गया है। अपने लिए वे कहते हैं कि उन्हें ठीक प्रशिक्षण मिल गया है, अपनी कृतियाँ वे जनता के समक्ष रखते हैं और उनकी प्रतिक्रिया से अपने साहित्य की सफलता-असफलता नापते हैं।

चाण्डाल चौकड़ी के शासनकाल के दुर्दान्त अनुभव के बाद उन्होंने एक वाक्यांश ईजाद किया है—घोर वामपक्षी शब्दावली में लिपटा दक्षिणवाद। जहाँ बहुत तीखी आक्रामक वामपक्षी शब्दावली व्यवहृत की जाये, तो वे चौंकते हैं और कहते हैं कि “इसे जाँच लें। शायद यह अपने अन्तर्निहित स्वार्थी जन-विरोधी प्रतिक्रियावाद को छिपाने के लिए इतनी आक्रामक शब्दावली का व्यवहार कर रहा है।” चाण्डाल चौकड़ी और लिन पियाओ द्वारा गढ़ा हुआ तथाकथित आरोप वस्तुतः छद्मवेशधारी वामपक्षिता है, “उसका बाहरी मुखौटा वाम है, पर अपने सारतत्व में वह दक्षिणपन्थी है।” (पेकिंग रिव्यू : 28 अप्रैल, 1978) ऐसी छद्मवेशी आक्रामक शब्दावली वाली वामपक्षिता के मूल में जनता का हित न होकर कुछ व्यक्तियों का कुण्ठित अहं होता है। कहते हैं, चियांग चिंग से जब माओ ने विवाह किया था तब पार्टी ने इसका विरोध किया था। यह भी सुना जाता है कि उस समय यह शर्तें रखी गयी थीं कि चियांग चिंग राजनीति में भाग नहीं ले सकेगी। हो सकता है, इसका बदला चियांग चिंग ने लिया हो, इस आक्रामक वामपक्षी शब्दावली द्वारा मुक्ति के बाद के 17 वर्षों के सारे साहित्य और रंगमंच को कूड़ा करार देकर। चाण्डाल चौकड़ी का आदेश हुआ कि केवल चियांग चिंग के लिखे राजनीतिक प्रचारात्मक आपेरा खेले जायें। अनेक चीनी बुद्धिजीवियों का कहना है कि वे आपेरा भी उसके लिखे नहीं होते थे। अपने चापलूस लेखकों से लिखवाकर, उन पर अपना नाम देकर वह उनका भी शोषण करती थी।

इस छद्म वाम आक्रामकता से पुराना लेखन तो संकटग्रस्त हो ही गया। नया लेखन भी प्राणहीन हो गया, क्योंकि सारी ज्वलन्त आवेशमयी शब्दावली नकली थी। हम जिन दिनों वहाँ थे, उन्हीं दिनों (30 मई को) चीनी भाषा और साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान 83 वर्षीय चाह शेंग-ताओ ने साहित्यिक भाषा पर इस ‘आक्रामक वामपक्षिता’ द्वारा लाये गये संकट के सम्बन्ध में एक वक्तव्य जारी किया था। उन्होंने कहा, “चाण्डाल चौकड़ी का लेखन कैसा था ? वे झूठ बोलते थे, लोगों के कानों में बँधी-बँधायी शब्दावली उँडेलते थे और यथार्थ के ठोस चित्रण के बजाए राजनीतिक शब्दाडम्बर पेश करते थे।” ऐसा वे अज्ञानवश

नहीं करते थे, बल्कि इसलिए करते थे कि जनमत बनाकर वे पार्टी और राजसत्ता पर कब्जा कर लें। लेखन की परिष्कृत शैली, यानी तथ्यों का आदर करना और उन तथ्यों से सत्य खोज निकालना, इस शैली के प्रति उन्होंने बलात्कार कर उसे भ्रष्ट कर दिया।”

लेकिन इसका कारण केवल चाण्डाल चौकड़ी ही को माना जाये क्या ? जब तक यह आग्रह रहेगा कि आर्थिक उत्पादन की तरह सांस्कृतिक उत्पादन के क्षेत्र में भी ‘राजनीति की अगुआई’ हो और राजनीति की अगुआई के अर्थ होंगे सत्तारूढ़ दल की नीति को आँख मूँद कर स्वीकार करना, तब तक क्या यह स्थिति बार-बार लौटने की सम्भावना नहीं उठती रहेगी ? अतः सत्तारूढ़ राजनीति की भी आलोचना करने की स्वाधीनता लेखक और चिन्तक को होनी ही चाहिए। अन्यथा जन-विरोधी शक्तियाँ बार-बार पनप सकती हैं। यह स्वाधीनता है क्या ?

“हमारे विदेशी मित्रों के लिए यह प्रश्न पूछना स्वाभाविक है !” शान्त और गम्भीर स्वर में वयोवृद्ध प्रोफेसर चिसियेन-लिन ने इसका उत्तर दिया था। पेकिंग विश्वविद्यालय के पूर्वी भाषा विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर चि अभी पिछले मार्च में भारत आये थे। 7000 विद्यार्थियों और 2,800 अध्यापकों वाला पेकिंग विश्वविद्यालय शांत हरा-भरा कलात्मक परिसरवाला क्षेत्र है। स्वागतकक्ष बाँसों के झुमुट में घुमावदार सीढ़ियों के बाद, काफी सुन्दर कक्ष है। हम विशेषतः प्रो. चि तथा हिन्दी और उर्दू विभाग के अध्यक्षों से मिलने गये थे। यह विश्वविद्यालय भी चाण्डाल चौकड़ी की क्रान्तिकारिता (?) का शिकार हो चुका था। वे बुद्धिजीवियों को बर्जुआ मानते थे, प्रोलेतेरियत का शत्रु, अतः अध्यापकों को शारीरिक, मेहनत-मजदूरी में लगाया गया। छात्रों को अपने राजनीतिक प्रचार में, परीक्षाएँ व्यर्थ मानकर बन्द कर दी गयीं। छह वर्ष तक यही हुआ। अब स्थिति सुधर गयी है, परीक्षाएँ फिर होने लगी हैं। छात्र अपने शारीरिक, मानसिक और शैक्षणिक योग्यता के आधार पर भर्ती किये जाते हैं। वह किस वर्ग से आया है, यह भी देखते हैं, पर उस पर ज्यादा बल नहीं देते। उसमें साम्यवादी दल के प्रति निष्ठा, देश-प्रेम, अनुशासन पालन, शारीरिक श्रम की क्षमता और पढ़ने की लगन होनी चाहिए। ये सारा परिचय दे रहा था यूनिवर्सिटी की रेवोल्यूशनरी कमेटी का प्रतिनिधि। सभी अध्यापक चुप बैठे थे।

जब यह सवाल उठाया गया कि विश्वविद्यालय की गरिमा के अनुरूप यहाँ बौद्धिक स्वतन्त्रता है, या नहीं, तब प्रोफेसर चि ने उत्तर दिया, “हमारे विदेशी मित्रों के लिए यह प्रश्न पूछना स्वाभाविक है।” वे शान्त गम्भीर स्वर में बोले। “कम्युनिज्म के बारे में बातें उठायी जा सकती हैं। हम यह नहीं कहते कि सारे देश में कोई ऐसा नहीं है, जो कम्युनिज्म से असहमत न हो, लेकिन हमारे छात्रों और अध्यापकों का अधिकांश वर्ग कम्युनिज्म को मानता है। मैं स्वयं पुरानी पीढ़ी का बुद्धिजीवी हूँ। प्रारम्भ में कम्युनिज्म के बारे में कुछ नहीं जानता था। लेकिन सतत अध्ययन और अभ्यास से

अब मैं मानता हूँ कि कम्युनिज्म हमारे लिए एकमात्र मार्ग है। आपके देश का राष्ट्रीय वाक्य है 'सत्यमेव जयते' ! मैं नहीं जानता आपका सत्य क्या है। मेरा सत्य कम्युनिज्म है ?"

उनकी निष्ठा के प्रति आदर व्यक्त करते हुए भी मैंने पूछा, "लेकिन प्रोफेसर चि, हमारे यहाँ यह भी कहा गया है कि 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना' और 'स्वधर्म निधनम् श्रेय' और हरेक के अपने स्वधर्म के लिए आदर भी रहता है।"

"अवश्य।" वे बोले।

"तो क्या मैं सम्माननीय विद्वान प्रो. चि की कक्षा में भर्ती हो कर उनके विचारों का विरोध कर सकता हूँ ?"

"अवश्य, स्वागत है।" वे हँसते हुए स्नेहभाव से बोले।

लेकिन के. आर. मलकानी का सवाल जरा टेढ़ा था। वे बोले, "प्रोफेसर साहब, कम्युनिज्म आपका सत्य है, माना, पर कौन-सा कम्युनिज्म ? आज तो दुनिया में अनेक प्रकार के कम्युनिज्म हैं।—रूसी, चीनी, युगोस्लावी यूरो-कम्युनिज्म !"

"हाँ यह है, हर देश का कम्युनिज्म उसका अपना सत्य है।" प्रोफेसर बोले।

"अच्छा तो क्या सत्य राष्ट्र की सीमाओं में बँधा होता है ?" मलकानी ने पूछा। इस सवाल पर प्रोफेसर की तर्क-शृंखला जरा गड़बड़ा गयी। बोले, "नहीं वैसे तो सत्य सार्वभौमिक होता है, पर अब राष्ट्रीय है।"

"इसका उत्तर मैं दूँ क्या ?" मेज के दायाँ ओर से शुद्ध हिन्दी में एक आवाज सुनाई दी। वे थे ल्यू को-लान हिन्दी उपविभाग के अध्यक्ष। उनके उत्तर उन्हीं की भाषा में ज्यों के त्यों, "शिक्षा संस्था में समस्या उठती है कि लाल और विशेषज्ञ इनमें कैसे अन्तर मानें ? यह एक प्रश्न है। पर इसका मापदण्ड होता है। हम अपनी जनता की सेवा, अपने देश और अपनी समाज-व्यवस्था का समर्थन करते हैं, या नहीं। खास पहलू यह है कि जनता की सेवा करने के लिए उत्सुक हैं, या नहीं ? उस पर डटे रहते हैं या नहीं ? हरेक की काविलियत अलग होती है। लेकिन अगर जन सेवा की भावना हो, इरादा हो तो वे लाल हैं और ऐसे लोग फिर अपनी लगन से योग्यता बढ़ा सकते हैं। अतः हम अपने विद्यार्थियों से माँग करते हैं कि वे देश के भविष्य का ध्यान रखेंगे और जनता की सेवा के लिए अपनी योग्यता बढ़ायेंगे।"

ऐसे सधे हुए स्वर में इतनी टकसाली हिन्दी बोली ल्यू को-लान ने कि एक क्षण के लिए मेरा ध्यान बहस से हट कर उनकी हिन्दी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया।

जॉर्ज वर्गीज ने पूछा, "यह ठीक है पर एक प्रश्न है। चीन को आज टेक्नोलॉजी में विशेषज्ञों की जरूरत है। आपने चाण्डाल चौकड़ी को इसीलिए अस्वीकृत किया कि वे लाल होने पर बल देते थे। विशेषज्ञ होने पर नहीं।"

"जिसमें योग्यता नहीं वह लाल नहीं है, बेकार है। हमारे दृष्टात्मक तर्क के

अनुसार जनसेवा और विशेषज्ञता एक दूसरे के पूरक हैं। जनता के मतलब भी केवल चीन की जनता नहीं, सारे संसार की जनता की सेवा।”

वर्गीज ने फिर सवाल पूछा, “रूस में स्तालिन के जमाने में लाइसेंको लाल थे, पर उनका ज्ञान कम था। लेकिन उनकी बात ही मानी गयी, तो उससे रूस का विज्ञान दस वर्ष पीछे चला गया।”

“माओ यही मानते थे,” ल्यू को-लान बोले, “पर ‘गैंग आफ फोर’ ने सब गड़बड़ कर दिया। आपका कहना ठीक है, केवल लाल कहने से कुछ नहीं होगा, आपको अपना काम आना ही चाहिए। आपको लेख लिखना न आये, पर आप लाल हैं, तो उससे पत्रकारिता कैसे होगी? हमारे यहाँ ‘गैंग आफ फोर’ ने यही किया। उसे कुछ भी न आये, पर वह बड़ी-बड़ी बातें कह सके, तो वह योग्य है। ऐसे विद्यार्थी, ऐसे शिक्षक, जो कागज कोरा रखें, पर खूब गालियाँ दे सकें, तो वे वीर व्यक्ति माने जाते थे। हमारे खयाल में जनता की सेवा और योग्यता का सन्तुलन होना चाहिए। हो सकता है, किसी का विचार पिछड़ा हुआ हो, पर यह शिक्षा संस्था है। हमारा काम है कि उसके विचारों का विकास करें।”

बातें खत्म हुईं, ल्यू को-लान ने बताया कि हिन्दी उप-विभाग में 13 अध्यापक हैं। इस वर्ष विद्यार्थी नहीं हैं। अध्यापक हिन्दी चीनी कोश बनाने में लगे हैं। वैसे औसतन 20 विद्यार्थी रहते हैं।

अब हम अलग-अलग गुटों में बँट गये। मेरे साथ बैठे थे अपने दो विद्यार्थियों के साथ उर्दू विभाग के अध्यक्ष ली च्यू-हुआ। उनका कहना था कि उर्दू के अभ्यास के लिए वे अपने छात्रों को दिल्ली रेडियो सुनने का परामर्श देते हैं। लाहौर रेडियो पर तो उर्दू में पंजाबी असर बहुत आ गया है। बातें भारत में उर्दू साहित्यिकों के बारे में होती हैं। मैं उन्हें स्व. कृष्णचंदर, राजिंदर सिंह बेदी और इस्मत आपा के हालचाल सुनाता हूँ और वे चीन आने वाले पाकिस्तानी साहित्यकारों के। बात घूम कर मेरे प्रिय कवि स्व. इब्न इंशा पर आ जाती है। इब्न इंशा काफी दिनों चीन रह कर गये थे। मुझे बाँसों के झुरमुट के हरियालेपन से घिरे उस स्वागतकक्ष में इब्न इंशा की एक पवित्र याद आती है—“दीवानों की-सी न बात करे तो और करे दीवाना क्या ?” यह दीवानापन तो आखिर खरे लेखक और कलाकार का स्वधर्म है। कोई भी व्यवस्था हो, कर ही गुजरेगा। और नहीं, तो दीवानेपन में मुर्गे की पूँछ ही ऊँची हो जायेगी। फिर चाहे उस पर जो भी बावेला मचना हो मचे।

आर्थिक उत्पादन की तरह सांस्कृतिक उत्पादन (यानी कला, साहित्य, शिक्षा) में

भी 'राजनीति की अगुवाई' ही स्वीकारनी चाहिए यह अगर मान भी लें, तो इसका क्या ठिकाना कि 'राजनीति' उस विशेष क्षण में जनता की सेवा कर रही है, या अपनी सेवा ? दोनों ही हालतों में वह मार्क्स के उद्धरण दे सकती है, चाहे मुर्गे की पूँछ वह ऊँची कराना चाहे, या नीची ?

ऐसे हालत में तो फिर अपना वह हजारों साल पुराना वाक्य ही ठीक लगता है जो प्रो. चि. ने याद दिलाया था। यानी 'सत्यमेव जयते'। अपने सत्य पर भरोसा करो। पूरा वाक्य है 'सत्यमेव जयते नानृतम, मा भः' सत्य ही जीतता है, झूठ नहीं, डरो मत। सत्य राजनीति से बड़ा है, राजनीति और साहित्य दोनों को सत्य की ही अगुवाई स्वीकारनी पड़ेगी, तभी हम सत्ता लोलुपता के पाखण्ड से बच सकेंगे।

चीन : सामयिक और समयातीत

आप कोई हों, कहीं के हों, किसी भी विचारधारा के हों, लेकिन कभी-न-कभी आपके जीवन में एक ऐसा क्षण आता ही है, जब कुछ अजीब-से अनुभव के दबाव में आप में एक विलक्षण दृष्टि जागती है। आप सारी सामयिकता के परे कुछ ऐसा देखने लगते हैं, जो समयातीत है, जो इतिहास के किसी क्षण में घटा है, पर गुजरते इतिहास के साथ गुजर नहीं गया, वहीं रुक गया है, पत्थरों में बस गया है, जंगलों में छिप गया है, वीरानों में गूँज रहा है। कोई समयातीत विन्दु, जिसके इर्द-गिर्द शताब्दियाँ अभी तक घूम रही हैं, हजारों साल पहले के अनजाने चेहरे, अनजानी पगचापें, अनदेखे युद्ध और अनबूझे प्रश्न ! चीन की बड़ी दीवार एक ऐसा ही विचित्र अनुभव है !

पेकिंग ही काफी ठण्डा है, कहीं बादल आ गये, तो एकदम हवा में ठिठुरन आने लगती है। फिर यह तो पेकिंग से काफी उत्तर, ऊँचे पहाड़ों के बीच का बियाबान इलाका। बादल, झींसी और ठण्डे सूनोपन की लम्बी देहाती सड़कों से होते हुए हम यहाँ आ गये हैं, जहाँ कभी चीन की उत्तरी सुरक्षा सीमा थी। पहाड़ों तक आते-आते बादल सड़कों पर तैरने लगे थे, घाटियों में घिर रहे थे, शिखर दीखने बन्द हो गये थे, सिर्फ बादल और उनके पार झलकते जंगलों की हल्की हरियाली आभा।

और उनके बीच सहसा दीख पड़ी वह विराट दीवार, नीचे घाटी में स्थित दीवार के मुख्य फाटक से दायीं ओर, बायीं ओर पाता पर्वतमाला की खड़ी ढलानों पर उठती, फिर कोहरे और बादल में छिप जाती, फिर दूर किसी ढलान पर उतरती, फिर दायें या बायें बल खाती, फिर ऊपर उठती, शिखरों को कोहरे के बावजूद रौंदती, दोनों क्षितिजों के आरपार, जहाँ तक पृथ्वी दीखती है, मोटे-पथरीले अजगर की तरह दोनों ओर रेंगती हुई ! जानते हैं, कितनी दूर तक ? पूरे छह हजार किलोमीटर ! छह मीटर ऊँची और पूरी छह मीटर चौड़ी, जिस पर कभी चार घुड़सवार एक साथ अगल-बगल दौड़ा करते थे। सिलेटी रंग के चौकोर बड़े पत्थरों का ठोस पहाड़ी अजगर, छह हजार किलोमीटर लम्बा !

ठण्ड थी, या सीधी खड़ी चढ़ाई, या बौछार में भीगे हजारों साल पुराने चिकने पत्थरों की फिसलन, या कोहरा; दायीं ओर थोड़ी दूर चढ़ने पर न केवल हाँफने लगा हूँ, वरन सर में जैसे हल्का-हल्का चक्कर-सा आने लगा है। पत्थर के कंगूरों को मजबूती से पकड़ कर खड़ा हो गया हूँ और अनमनी दृष्टि से देखता हूँ—दीवार के उस पार के सुनसान जंगलोंवाली खौफनाक गहरी घाटियाँ, ऊँचे उठते बादलों के पार जाते ऊबड़-खाबड़ शिखर, अँधेरे खड्ड और परत-दर-परत चट्टानी शृंखलाएँ ! और लगता है इनके पीछे से अभी दीख पड़ेंगे धुँधलके कोहरे में से आगे बढ़ते हुए हजारों बर्बर घुड़सवार, तलवारें ताने, बल्लम उठाये, युद्ध का चीत्कार करते हुए हमलावर ! और यहीं कहीं, जहाँ मैं खड़ा हूँ उसके पास से ढाल ताने हुए योद्धा सरपट बढ़ते जायेंगे ऊपरवाली पहरा चौकी पर। फिर अकस्मात् असंख्य धनुषों की टंकार होगी और तीरों की एक इस्पाती बौछार इन सुदूर बियाबान घाटियों को छीलती हुई निकल जायेगी !

तीन हजार वर्षों में क्या नहीं देखा होगा इस दीवार ने ? कैसे युद्ध हुए होंगे ? तांग वंश के शासनकाल में एक प्रख्यात कवि लि हुआ ने इसी दीवार के आसपास हुए एक युद्ध के बारे में लिखा है—“युद्धस्थल में झण्डे ही झण्डे फहरा रहे थे, और नदी के किनारे-किनारे तम्बू-ही-तम्बू ! ताजे गोश्त में घँसते हुए तीर, हमारे नाक, कान, मुँह में घँसती धूल और रेत, पहाड़ी नदी की आवाज खो गयी युद्ध की हुंकारों और कराहों में, और फिर धूल की आँधी के बाद गिरने लगी बर्फ, घुटनों-घुटनों तक बर्फ, हमारी दाढ़ी से झूलती टपकती बर्फ, गिद्ध तक छिप गये गुफाओं में, ठण्ड से जम गये हमारे घोड़े, खाल अपने-आप फटने लगी, उँगलियाँ गल-गल कर गिरने लगीं, हम हार गये, लाशों से पट गया सारा क्षेत्र, बड़ी दीवार के पास के नाले भर गये गाढ़े खून से, फूटे हुए नक्कारे, टूटे हुए धनुष, मूठों के पास से टूटी हुई तलवारें; चिड़ियाँ खामोश हो गयीं, पहाड़ियाँ सड़म गयी और सारी रात सिर्फ ठण्डी बर्फानी हवा चलती रही। साँय-साँय !” (पीस थू द एजेज पृ. 53, पेकिंग 1954)

वह बर्फानी हवा आज भी चल रही है। मैं सफारी के गले तक का बटन बन्द कर लेता हूँ और धीरे-धीरे चिकने, गीले, फिसलन-भरे पत्थरों पर सावधानी से एक-एक पाँव जमा कर चढ़ने लगता हूँ। चढ़ाव की ओर पहरे की कम-से-कम दो चौकियों तक तो चढ़ना ही है। कैसा अजीब है कि जो चारों ओर जीवित है, वह कम सामयिक है—ये सैकड़ों चढ़ते-उतरते विदेशी यात्री, ये विदेश में बसे देश घूमने आये चीनियों की रंग-बिरंगी पोशाकें। ये खाकी वर्दी पर लाल कॉलर लगाये चीन की फौज (पी.एल.ए.) के जवान सैनिक, ये नीचे किसी सरकारी इमारत पर फहराता लाल झण्डा ! ये सब मानो स्वप्न है, अवास्तविक है, सामयिक है, तात्कालिक है—वास्तविक है वह समयातीत इतिहास, जो इन पत्थरों की दरारों में कहीं जम गया है, इन घाटियों में कहीं गूँज रहा है, वह समयातीत भय और असुरक्षा, जिसने न जाने कब किन सम्राटों को मजबूर किया होगा इस अजीब-सी कल्पना के लिए,

पहाड़ों के आरपार छह हजार किलोमीटर की यह दैत्याकार दीवार !

खड़ी चढ़ान पर दूसरी चौकी तक किसी तरह चढ़ता हूँ कि फिर हिम्मत छूट जाती है ! ठीक ऊपर जरा घूम कर है तीसरी चौकी, जहाँ अनेक सैरबीन गये हैं। वह चौकी और रास्ता इस वक्त बादलों से ढँके हैं, वस, उन बादलों में से वहाँ पहुँचने वालों की आवाजें आ रही हैं। मैं दूसरी चौकी छत पर खड़ा हूँ। ठण्ड में काँपता हुआ और पास से गुजरते सफेद कोहरे की एक लहर को अपने छाते की नोक में लपेटने की नाकाम कोशिश करता हुआ। लौटने को मुड़ता हूँ, तो कुंग कहते हैं—“यहीं से लौटेंगे ? निक्सन भी इससे कुछ आगे तक गये थे। उसे अब सब लोग निक्सन प्वाइण्ट कहते हैं ?” नहीं, निक्सन से बदाबदी करने का कोई उत्साह नहीं है मुझमें। निक्सन माओ के स्नेहपात्र रहे हों, मैं तो उन पत्रकारों का मदाह हूँ, जिन्होंने निक्सन के भ्रष्टाचार का रहस्योद्घाटन किया ! पर जीवन के अन्तिम काल में इस महान एशियाई क्रान्तिकारी नेता को हो क्या गया था ? बाँगला देश की मुक्तिवाहिनी के बहादुरों के बजाय अत्याचारी यहिया खाँ और भुट्टो से दोस्ती, निक्सन के प्रति इतनी ममता कि पदच्युत होने पर भी उसे सप्रेम आमन्त्रण और शानदार आदर-सत्कार !

पर अब भी, नीचे आकर भी, मिनी बस में बैठकर शीशा चढ़ा कर भी सर धोड़ा-धोड़ा घूम रहा है और मैं विश्व राजनीति के अनसुलझे रहस्यों पर बिलकुल विचार करने की स्थिति में नहीं हूँ। सर घूमता है और किन्हीं समयातीत युद्धों की भयावनी आवाजें लौटती हुई भागती हुई मिनी बस में भी मेरा पीछा कर रही हैं ! बार-बार सोचता हूँ किन्होंने, क्यों, कैसे बनवायी होगी यह दीवार ?

कहते हैं, कभी उत्तर में और पश्चिम में आठ अलग-अलग राज्य थे। उनके शासकों ने उत्तरी सीमाओं पर अपनी-अपनी अलग-अलग आठ दीवारें बनवायी थीं, क्योंकि इन अपेक्षाकृत सभ्य और समृद्ध राज्यों पर उत्तर से बर्बर लुटेरी जातियों के दल बार-बार हमला करते थे। जब चिन वंश का राज्य हुआ, तो चिन वंश के एक सम्राट ने तमाम राज्यों को जीत कर इस देश को एक साम्राज्य में गूँथा, इन आठ दीवारों को एक साथ जोड़कर एक बड़ी हजारों कि. मी. लम्बी दीवार बनवायी, कुछ हिस्सों में पक्की कुछ में कच्ची ! (300 वर्ष पहले मिंग सम्राटों ने इसकी मरम्मत करा कर इसे वर्तमान रूप दिया !)

अजीब था वह सम्राट भी ! बहादुर, स्वप्नदर्शी, जिद्दी और परले सिरे का अहंकारी ! कभी कैशोर्य में उसके बारे में पण्डित नेहरू की पुस्तक ‘विश्व इतिहास की झलक’ (पहला खण्ड, 26 वाँ अध्याय) में पढ़ा था। उसका नाम था वेंग चिंग, लेकिन वह अपने इस नाम को भुला देना चाहता था। उसने अपना नाम रखा ‘शिंह ह्वांग-ति’ यानी ‘प्रथम सम्राट’ ! वैसे उसके पहले भी अनेक राजवंश हो ही चुके थे और स्वयं वह चिन वंश का चौथा सम्राट था, लेकिन उसकी महत्वाकांक्षा इतनी सर्वग्रासी थी कि वह काल को, इतिहास को अपने हिसाब से चलाना चाहता था।

उसका कहना था कि इतिहास शुरू होता है उससे ! उसके पहले का सारा इतिहास भुला दिया जाये, वह सर्वप्रथम सम्राट माना जाये, इतिहास उससे शुरू हो और जब तक इतिहास रहे, तब तक उसी का वंश चलता रहे। और इसीलिए अपने वंश के राज्य की सुरक्षा के लिए उसने करोड़ों प्रजाजनों को लगाया इस दीवार के उठवाने में। भविष्य की रक्षा तो यों सोच ली गयी, पर अब अतीत से छुटकारा कैसे मिले ? उसने हुक्म दिया कि वैद्यक और विज्ञान की कुछ किताबें छोड़कर वे सारी पुस्तकें जला दी जायें, जिनमें अतीत काल का जिक्र हो। उसका खास क्रोध कन्फ्यूशियस पर था। कन्फ्यूशियस उससे पहले हुआ था और उसका ऐसा दबदबा विद्वानों और सामान्यजनों पर बैठा हुआ था कि हर उलझन में वे कन्फ्यूशियस की उक्तियों का सहारा लेते थे। उसने हुक्म जारी किया कि “जो लोग पुराने जमाने का हवाला देकर वर्तमान काल को नीचा साबित करने की कोशिश करेंगे, वे अपने रिश्तेदारों समेत कत्ल कर दिये जायेंगे।” उसने केवल कहा नहीं, कर दिखाया। सैकड़ों विद्वान कत्ल किये गये, कन्फ्यूशियस के खास अनुयायियों को जिन्दा दफना दिया गया और जो हजारों विद्वान बचे उनकी किताबें जलवा दी गयीं और उन्हें ज्यादा मुफीद कामों में लगा दिया गया, यानी चट्टानें काटना, पत्थर ढोना, घोड़ों की देखभाल करना और थके हुए सैनिकों के बदन पर मालिश करना !

इस तरह वह अन्दर से कहीं बेहद भयभीत, असुरक्षित बहादुर सत्ता-पिपासु सम्राट हर तरफ से सुरक्षित हो गया। दीवार बनवाकर अपने भविष्य की, अपने वंश की सुरक्षा कर ली, कन्फ्यूशियस और पुराने साहित्य को नष्ट कर अपने को इतिहास का सर्वप्रथम सम्राट घोषित करवा लिया ! उसने न केवल चीन को जीता, बल्कि अनाम को जीत कर साम्राज्य भी फैलाना शुरू किया। दीवार उसके समयातीत भय का सबसे बड़ा स्मारक है। नेहरू जी ने पता नहीं, इससे कैसे यह नतीजा निकाला कि “चीनियों ने अपनी हिफाजत के लिए एक बड़ी सेना बराबर कायम रखने के बजाय इस बड़ी दीवार पर रुपया लगाना ज्यादा पसन्द किया। इससे यह पता लगता है कि चीनी लोग शान्ति पसन्द करते थे और इतनी शक्ति के होते हुए भी सैनिक कीर्ति के लोलुप नहीं थे।” (विश्व इतिहास की झलक. पृ. 107)।

लेकिन स्वयं चीनी कवियों का बयान कुछ और ही है। अपनी उसी कविता में तांग वंशकालीन लि हुआ कहता है, “चिन वंश के आते ही सारी बात बदल गयी। शिंह हांग ति (प्रथम सम्राट) की सत्ता की भूख ने जो अभियान शुरू किये उसने प्रजाजनों का जीवन सोखना शुरू किया, बनवायी उसने बड़ी दीवार जिसने खींची खून की बेअन्त लकीरें धरती पर !”

अगली ही पंक्तियों में लि हुआ बताता है कि सम्राटों की इस सत्ता-लिप्सा के लिए प्रजाओं को क्या खोना पड़ा, वह जो सबसे महत्वपूर्ण है, यानी आदमी का आदमी बनकर जीने का सहज अधिकार—“जब मैं सोचता हूँ, कैसे लोग प्यार करते हैं अपने बच्चों को, चिपकाते हैं छाती से, संभाल कर प्यार से उठाते हैं गोद में ... कैसे भाई

पलते और बड़े होते हैं मानो एक ही शरीर के अंग हों, कैसे परिणय-बन्धन में बँध कर पति प्यार करता है अपनी पत्नी को—और फिर बना दिये जाते हैं वे बलि के बकरे, अकारण युद्धों में ... कैसा घृणास्पद है यह ?”

क्या हर सामयिक आवरण को चीरकर इतिहास का यह समयातीत भय जकड़ लेता है हर तानाशाह को ? क्या इसी भय के प्रभाव में अपनी वंश-परम्परा या अपनी विचार-परम्परा को प्रथम और अन्तिम बनाने के मोह में लिखित इतिहासों को जलाया जाता है, पुस्तकों पर बन्दिशें लगायी जाती हैं, आदमी से आदमी की तरह जीने का अधिकार छीन लिया जाता है, विचारकों को शत्रु नम्बर एक घोषित किया जाता है, और यह अन्दर से भयभीत बाहर से साहसी अधिनायक इतना अहंकारी हो उठता है कि मानने लगता है और मनवाना चाहता है कि वही इतिहास का आदि बिन्दु है और उसका ही वंश इतिहास का सम्पूर्ण दायरा !

इस अहं-स्फीति का अन्त क्या हुआ ? शिह ह्वांग ति के साथ ही चिन वंश खत्म हो गया। उसके बाद एक कदम भी नहीं चल सका। (उसके शासन काल में लोगों ने कन्फ्यूशियस के ग्रन्थ गुफाओं में छिपा दिये थे, या घड़ों में बन्द कर जमीन में गाड़ दिये थे। उसके मरते ही कन्फ्यूशियस के ग्रन्थ फिर से निकल आये, कन्फ्यूशियस खुद कबीर की तरह कोई अक्खड़, क्रान्तिकारी विचारक नहीं था, लेकिन शायद प्रथम सम्राट का गुस्सा उस पर विशेष था, क्योंकि उसके कारण लोग चाउ वंश के उस सामन्त को नहीं भूल पाते थे, जिसका जिक्र बार-बार कन्फ्यूशियस के लेखन में आता है। प्रथम सम्राट की मृत्यु के बाद कन्फ्यूशियस हजारों साल तक चीनी मानस पर छाये रहे, जब तक कि अभी ‘सांस्कृतिक क्रान्ति’ के दौरान पुनः माओ के जीवन काल में उनके विरुद्ध अभियान शुरू नहीं हुआ ! उस अभियान की बात फिर कभी !)

पहाड़, घाटियाँ, बादल, जंगल के बीच-बीच छितरे गाँव पीछे छूट गये हैं और अब हमारी मिनी बस हरे-भरे खेतों के बीच से एक विशाल मैदान पर से गुजर रही है। तीनों ओर बहुत दूर पर पहाड़ियों की नीली धुँधली शृंखलाएँ दीख रही हैं। “यही वे पहाड़ियाँ हैं,” हमें बताया जाता है, “जहाँ मिंग वंश के राजाओं ने अपनी समाधियाँ बनायी हैं। प्रथम मिंग सम्राट ने अपनी समाधि नानचिंग (नानकिंग) में बनवायी थी, लेकिन बाकी 13 समाधियाँ यहाँ हैं। किम्बदन्ती है कि हरेक के साथ अथाह खजाना दफन किया गया था ताकि स्वर्ग में उन्हें कभी दौलत की कमी न रहे। कुछ की खुदाई शुरू हुई है। हम जहाँ चल रहे हैं, वहाँ खुदाई पूरी होकर उसका पुनरुद्धार कर दिया गया है !” मेरे

हिन्दीज्ञाता मित्र मा वै-कुआँ को 'रेस्टोरेशन' का हिन्दी पर्याय याद करने में कठिनाई होती है, कई बार पुनर-पुनर बोलने के बाद अकस्मात उन्हें पुनरुद्धार याद आता है और वे अपनी सफलता पर प्रसन्न हो उठते हैं।

ये समाधियाँ भी अजीब हैं। अगर आपने देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास पढ़े हों, तो उनमें वर्णित तिलिस्मों के आधार पर इनकी कल्पना करना आसान हो सकता है। सोचिए पचासों कि. मी. तक फैला निचाट वियावान, न आदमी, न आदमजात ! बस, सड़क के किनारे पत्थर का एक बहुत बड़ा कलात्मक तोरणद्वार बना है, और कुछ नहीं। वहीं से गाड़ी मोड़िए। आपको लगेगा कि पक्की सड़क के किनारे-किनारे उसी फाटक से शुरू होकर एक कच्ची सड़क चली आ रही है, जो जगह-जगह घास में छिप जाती है, कहीं-कहीं उसी पर छोटे-छोटे पत्थर के पुराने पुल। डेढ़ किलोमीटर चलने के बाद फिर एक और बड़ा फाटक मिलता है और उस फाटक से वह कच्ची सड़क विलकुल स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि अब उसके दोनों ओर बहुत पुराने पेड़ों की कतारें हैं और सहसा आप चौंक उठते हैं कि कच्ची सड़क के दोनों ओर पेड़ की छाया में दो सफेद रंग के बड़े-बड़े ऊँट बैठे हैं। पास जाने पर पायेंगे कि पत्थर के ऊँट हैं और अब यह शृंखला शुरू हो जाती है। कच्ची सड़क के दोनों ओर पत्थर के विशालकाय जानवर हैं, दो कूबड़वाले ऊँट, सजे-सजाये घोड़े, कद्दावर बैल, बड़े सींगोंवाले बकरे, सूंड झुलाते हाथी, और बीच-बीच में मनुष्य मूर्तियाँ भी हैं। लम्बे चोगे पहने, कुछ तलवारें हाथ में लिये, कुछ किताबें हाथ में लिये, कुछ हाथ में पिटारे धामे हुए। और मूर्तियों का यह सिलसिला मीलों तक चला जाता है। मालूम हुआ कि ये सब राजा के स्वर्ग निवास के दौरान उनकी सेवा के लिए तैनात कर दिये गये हैं। ऊँट, हाथी, घोड़ा, मन्त्री, कोषाध्यक्ष और दरबारी विद्वान ! कई किलोमीटर तक इन वफादार सेवकों के दर्शन करने के बाद अन्त में आप एक सुन्दर बगीचे में पहुँचते हैं, जहाँ एक विशालकाय कछुआ अपनी पीठ पर एक स्तम्भ धारण किये शान्तिपूर्वक बैठा है। गाड़ी वहीं रोक कर उतर जाइए। अब पहले एक बहुत विशाल फाटक है, फिर बड़ा-सा पत्थर का आँगन, फिर सीढ़ियाँ, फिर एक बहुत बड़ा-सा पत्थर का मंडप, थोड़ी ऊँचाई पर, लेकिन यह भी समाधि नहीं है। अभी आगे चलिए, एक बड़े बगीचे के बाद फिर एक मंडप है। पर यह समाधि नहीं, यह मण्डप तो इसका सूचक है कि यहाँ जमीन में सैकड़ों मीटर नीचे सम्राट-सम्राज्ञी विश्राम कर रहे हैं। नहीं, कब्र में नहीं, विशाल ताबूतों में। पर उन तक कैसे पहुँचें ? सामने देखिए एक करीब 15 मीटर चौड़ी सुरंग का द्वार दीखेगा। उसमें चलिए। एक फर्लांग चलने के बाद फिर सीढ़ियाँ मिलेंगी। अब उन सीढ़ियों से तीन मंजिल नीचे उतर जाइए। अब आप एक विशालकाय बहुत ऊँची छतवाले जमींदोज हाल में पहुँचते हैं। यह हाल इतना बड़ा है कि इसमें छोटे-छोटे पाँच मकान समा जायें। वहाँ पहले दो विशालकाय दीप-मंजूपाएँ

मिलेंगी। पहले कभी इनमें कई मन तेल डाल कर रोशनी की जाती थी। उसके बाद एक पत्थर का सिंहासन मिलेगा, बहुत ऊँचा छत को छूता हुआ। फिर आगे चलिए। यहाँ दोनों ताबूत रखे हैं, जिनमें सम्राट और सम्राज्ञी के अस्थि-शेष शव चलिए। यहाँ दोनों ताबूत रखे हैं, जिनमें सम्राट और सम्राज्ञी के अस्थि-शेष शव आराम फरमा रहे हैं। ताबूतों का आकार इतना बड़ा है, जितने में एक छोटी बस समा जाये ! कितने बड़े रहे होंगे सम्राट, सम्राज्ञी ? साधारण मनुष्य जितने ही न ? फिर इतना बड़ा ताबूत ? क्या ताबूत के बड़े होने से मरनेवाले का कद बढ़ जाता है ? इस अजीब तिलिस्म से गुजरकर सिर्फ एक पंक्ति याद आती है पंत जी की—“हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन !”

इनके साथ खजाने दफन किये जाते थे, सोने के वर्तन, आभूषण, जिरह बख्तर, जड़ाऊ तलवारें, ढालें ! उन सबकी नुमायश ऊपर एक हाल में है, जहाँ माओ के दो उद्धरण भी हैं इन सामन्ती शोषकों के बारे में। मिट्टी की मूर्तियों से बनी एक झाँकी भी है, जिसमें दिखाया गया है कि जिस विशाल क्षेत्र में यह समाधि बनी है उसके पास के किसानों ने किसी समय मिंग राजाओं के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। विद्रोही किसानों के तेवर, लगान न देनेवाले एक गरीब किसान का सर काटते हुए फौजी अफसर, एक वृद्ध की फरियाद पर घमण्ड से मुँह फेर कर उपेक्षा करता हुआ सामन्त ! लेकिन इस प्रकार के विद्रोह केवल कभी-कभी होते थे। शेष समय तो राजा जो करता है वही श्रेष्ठ है, वही स्वर्ग से भी हम पर राज करता रहे, अतः लाखों मजदूर ये समाधियाँ, ये मूर्तियाँ, ये सुरंगें बनाते थे और जब बना चुकते थे, तब उनका इस क्षेत्र में प्रवेश करना वर्जित हो जाता था। इस क्षेत्र में केवल कुछ पुरोहित रहते थे। उस पहले फाटक के बाद ही अगर कहीं कोई दिखाई पड़ा, तो उसका सर उसी वक्त बिना पूछताछ के धड़ से उतार दिया जाता था। समाधि बनाते समय किसी सुस्ती या गलती पर, जिनका सर कलम किया जाता था, उनकी गिनती नहीं कर रहा हूँ !

इस प्रकार यह भव्य इतिहास रहा है उन वीर, विश्वविजयी अहं-केन्द्रित, सम्राटों का जो कहीं अन्दर से सदैव भयभीत रहे, कभी मानवीय हमलावरों से, कभी दैवी मृत्यु से। और जब भी भयभीत हुए तभी उन्होंने कुछ बनवाना शुरू किया, चाहे वह बड़ी दीवार हो, तिलिस्मी समाधियाँ हों, सुरंगें हों या वर्जित नगर के आलीशान महल हों। वर्जित नगर जब घूमने गये थे, तो बताया गया था कि वह 14वीं शताब्दी में बनना शुरू हुआ। 11 लाख मजदूरों ने 24 साल में पूरा किया। पहले मिंग, फिर तेंग वंश के राजा वहाँ रहे। (अन्तिम सम्राज्ञी ने कैसे ग्रीष्म प्रासाद बनवाया, राज्य के कोष से अपनी सनक

पूरी करने के लिए, वह कथा आप पहली ही किस्त में पढ़ चुके हैं) दीवाने आम, फिर शान्ति सौमनस्य प्रासाद, फिर परीक्षा-प्रासाद, जनानखाना, सुहागकक्ष, और सबके चारों ओर छह मीटर चौड़ी दीवार और उसके चारों ओर खाई। यानी जिस प्रजा को वे अपनी सन्तान कहते हैं उन्हीं से बधाव के लिए छह मीटर चौड़ी दीवार, राजधानी के ठीक बीचोबीच ! इन हर काल में पैदा होनेवाले भयभीत यशस्वियों के बारे में लि हुआ के पूर्ववर्ती कवि लि पड़ ने लिखा था :

एक राजवंश को पछाड़ कर
 इस विजेता ने अपना सिक्का चलाया
 सब ओर समुद्रों को छूनेवाला साम्राज्य
 सात लाख युद्धबन्दी लाया वह पकड़ कर
 उनसे बनवाये अपने बागीचे, अपने महल,
 फिर आशा करता रहा कि कोई जादू का रसायन
 खा कर हो जायेगा वह अमर
 इसके लिए भेजे उसने युवा अन्वेषक
 पूर्वी द्वीपों के मृत्युंजयों के पास रहस्य का पता लगाने !
 फिर पर्वत की चोटी पर खड़ा हो कर
 इन्तजार करता रहा कि
 वे कब लौटेंगे
 और कुल मिला कर इस सबका
 फल ?
 एक जड़ाऊ ताबूत
 जिसमें थोड़ी-सी ठण्डी मुर्दा अस्थियाँ !

(पीस थू एजेज, पृ. 50)

यों यह बताने की जरूरत नहीं कि यह सारा तामझाम होता था इसलिए कि प्रजाओं का दयालु पिता, या दयालु माता प्रजाओं के लिए अनिवार्य है। बिना उसके प्रजाएँ अनाथ हो जायेंगी, उन्हें विदेशी राक्षस खा जायेंगे।

अन्दर से भयभीत होता है, क्या वह भय पैदा करके ही अपने टिकने का आधार बनाता है ?

सच बताऊँ, एक जगह तो ऐसा लगा कि वह भय मुझे भी आक्रान्त कर लेगा। वर्जित

चीन : 373

नगर के महल देखे थे जिस दिन, उसी दिन गये थे, पेकिंग के एक भूमिगत तहखाने में, जो उन्होंने न्यूक्लीय आक्रमण के विरुद्ध बनाये हैं। उन्हें बिना देखे मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि उसी आधुनिक, व्यस्त, शानशौकतवाली राजधानी के नीचे एक ऐसी समान्तर दुनिया भी हो सकती है, अँधेरी, खुफिया और खौफ पैदा करनेवाली। वह सुरंग पतली, नीची, घुटी-घुटी, मीलों जानेवाली। और उसके दोनों ओर तहखाने, रसोई के लिए, खाने के, लोगों के रहने और सोने के लिए, उसी में एक रेडियो केन्द्र भी जहाँ से सुरंगों में छिपानेवाले हजारों लोगों को आवश्यक निर्देश दिये जा सकें। दफ्तर भी और रेवोल्यूशनरी कमेटी के मन्त्रणा कक्ष भी। अन्न इकट्ठा करने के भण्डार भी और घायलों की चिकित्सा के लिए प्राथमिक सहायता केन्द्र भी। बिजली के जेनरेटर भी और यह सब जमीन के बहुत नीचे। पेकिंग के बीचोबीच। और, ऐसा एक नहीं, हजारों सुरंगी तहखाने जो आपस में नीचे-ही-नीचे एक दूसरे से जमींदोज सुरंगों द्वारा जुड़े हैं। कहते हैं, हर मुहल्ले, हर कारखाने, हर दफ्तर के नीचे ऐसे ही न्यूक्लीय सुरक्षा तहखाने हैं। न्यूक्लीय आक्रमण होने पर सारा पेकिंग नीचे जा सकता है। वहाँ इतने अन्न और ओषधि तथा अन्य चीजों की व्यवस्था है कि दो महीने तक वे अन्दर-ही-अन्दर रह कर प्रतिरोध कर सकते हैं !

इन सुरंगों में बिजली के एक पीले बल्ब की हल्की रोशनी और नीम अँधेरे और घुप खामोशी में अपनी ही लम्बी प्रेत छायाएँ, अपनी ही पग चापें, दीवारों, छतों से टकराती अपनी ही आवाजें भयावनी लगती थीं।

यह न्यूक्लीय हवाई आक्रमण-शरण स्थल पेकिंग की एक फैक्टरी का था, जिसमें 2500 मजदूर काम करते हैं। इस शेल्टर के अधीक्षक नियेन शोंग चु ने बताया कि इसके बनाने में हमने अपनी ही फैक्टरी का बचा हुआ लोहा-लंगड़ लगाया और हमारे ही 2500 कामगारों ने अतिरिक्त समय में मुफ्त काम करके यह सब कुछ बनाया ! बनाया इसलिए कि उपनिवेशवादियों और सामाजिक उपनिवेशवादियों द्वारा हम पर आक्रमण का खतरा बढ़ रहा था। चेयरमैन माओ का निर्देश आया कि—

“सुरंगें गहरी खोदो, अनाज खूब इकट्ठा करो, दबदबा कायम करने की दौड़ में मत शामिल हो।”

क्या माओ का यह तखमीना सही था ? या ढलती उम्र के साथ उसके अन्दर भी कोई समयातीत अज्ञात भय पनपने लगा था और वही भय उसने अपने नवनिर्मित राष्ट्र को बाँट दिया ? क्या सचमुच चीन पर किसी ‘सामाजिक साम्राज्यवादी शक्ति’ (साफ शब्दों में सोवियत संघ) के हमले का खतरा इतना नजदीक था ? उनसे यह पूछो कि आखिर इसका प्रमाण क्या है कि सोवियत संघ उन पर न्यूक्लीय हमला करने की तैयारी कर रहा है, तो वे चेकोस्लोवाकिया का उदाहरण देते हैं। “क्या चेकोस्लोवाकिया में इन सामाजिक साम्राज्यवादियों ने टैंक लेकर हमला नहीं किया ?” वे कहते हैं। लेकिन अगर आप पूछें कि यही तो हंगरी में भी बहुत पहले किया गया था, उस समय

माओ ने उसका समर्थन क्यों किया था ? तब उनके पास कोई उत्तर नहीं है। कहते तो यही हैं कि वह बात दूसरी थी। हंगरी में सचमुच क्रान्ति-विरोधी शक्तियाँ सक्रिय थीं, लेकिन सच बात यह है कि उस समय चीन और रूस आपस में क्रान्ति-कॉमरेड थे ! चेयरमैन माओ और खुश्चेव के मतभेद शुरू हुए, उसके बाद से रुख बदल गया, घटनाओं की व्याख्या भी !

लेकिन, यह प्रवृत्ति केवल इसी बिन्दु तक सीमित नहीं है। आप जरा गौर से देखें तो पायेंगे कि शब्दावली और मुहाविरा चाहे मार्क्सवाद का हो, पर चीन की नीतियाँ और घटनाओं पर प्रतिक्रियाएँ उनके राष्ट्रीय हितों से ही प्रेरित होती हैं। वे कहते हैं कि वे हर देश की मुक्तिकामी जनता के साथ हैं, लेकिन अगर बाँगला देश की जनता का मुक्ति-संग्राम उनके राष्ट्रीय हितों के पक्ष में नहीं है तो वे आजादी के लिए संघर्ष करती मुक्ति-वाहिनी के बजाय दमन करनेवाले यहिया खाँ और भुट्टो का साथ देना तय करते हैं ! सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान विदेशों में बसे चीनियों को बहुधा ताइवान के एजेण्ट कहकर प्रताड़ित किया गया, लेकिन आज चूँकि विदेशों में बसे करोड़ों चीनियों का उपयोग उनकी अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए हो सकता है, तो वे स्पष्ट घोषित कर रहे हैं कि विदेशों में बसे चीनियों को 'गैंग आफ फोर' ने बूर्जुआ पूँजीवादी कहा, यह गलत था। वास्तव में वे चीन के वे किसान, मजदूर, गरीब वर्ग के लोग हैं, जो सामन्तवादी शोषण के शिकार थे।

चीनी राष्ट्रीयतावाद, आर्थिक नवनिर्माण के बाद बहुत तेजी से जागा है। इसी का एक अच्छा पहलू यह भी है कि वे अपने सारे अतीत को सामन्तवादी या बूर्जुआ कह कर अस्वीकारते नहीं, अब उसे स्वीकारने लगे हैं। वर्तमान उपलब्धियों के साथ-साथ अतीत की उपलब्धियों पर भी उन्हें उतना ही गर्व है चाहे वे सम्राटों के बनवाये पत्थरों के सुन्दर बगीचे हों, कमल खिली झीलें हों, महल और पगोड़े हों, कलाकृतियाँ हों, यांगचऊ से पेकिंग तक जानेवाली बड़ी नहर हो, या चीन की बड़ी दीवार हो। यह बात दूसरी है कि उत्तरी पहाड़ों की ओर से हमला होने के भय से सारे देश को घेर कर यह विशाल दीवार बनवाना, और आकाश से हमला होने के भय से सारे देश को जमींदोज तहखानों में सुरक्षित करने की अकल्पनीय योजना बनाना—इनमें से एक घटना अतीत के सामन्ती शासन में हुई, दूसरी वर्तमान के मार्क्सवादी शासन में, पर मूलतः उनमें काफी समानता है—लगता है, जैसे ऐतिहासिक संकट के समक्ष चीन के जातीय मानस की प्रतिक्रिया की एक विशिष्ट प्रकृति है, जो कभी दीवार और कभी तहखानों का आकार ग्रहण करती है।

कभी-कभी उनका यह राष्ट्रीय अभिमान बड़े सूक्ष्म ढंग से व्यक्त होता है। 'वर्जित नगर' के राजमहलों में घूमते-घूमते हम एक विशिष्ट दरबार कक्ष में पहुँचे, जहाँ सम्राट के पुराने सिंहासन के दो ओर दो घड़ियाँ थीं। एक ओर पुराना समय यन्त्र था—पानी टपकने और बर्तन के खाली होने से समय बीतने की माप बतानेवाला, और दूसरी ओर एक विशाल आदमकद मशीनी घड़ी जो किसी यूरोपीय राजा ने चीन के सम्राट को भेंट

की थी। एक युवा चीनी साथी ने जोरदार प्रतिवाद किया कि घड़ी विदेश से नहीं आयी, चीन के ही शिल्पियों ने राजा की आज्ञा से बनायी थी। काफी बहस के बाद जब उससे कहा गया कि क्या चीन में शताब्दियों पहले रोमन लिपि का प्रचलन था, जो इस घड़ी में रोमन में 1 से 12 तक के अंक लिखे हैं, तब जाकर, उन्होंने अनिच्छा से माना कि यह घड़ी चीनी शिल्पियों का निर्माण नहीं है।

इसी प्रकार की एक घटना शंघाई के निकट की बड़ी झील के तट पर बसे वुसी नगर में हुई। बहुत सुन्दर नगर है वह, जहाँ छोटे उद्योगों को पनपाया जा रहा है। उस क्षेत्र में जलमार्ग अधिक हैं, लेकिन नाव बनाने लायक शहतीरों की कमी है। अतः तय किया गया कि लोहे की जालियों का ढाँचा बनाकर उसमें सीमेण्ट भर कर सीमेण्ट की नावें और स्टीमर बनाये जायें। वे नावें और स्टीमर बने, लकड़ी की बनी नावों और स्टीमरों से सस्ते बने और उस क्षेत्र में बहुत प्रचलित हैं। कारखाना भी कोई बहुत बड़ा नहीं।

जब हम लोगों ने पूछा कि आखिर यह मौलिक सूझ किस व्यक्ति की थी, क्या उसे कोई राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया, तो उत्तर मिला कि “यह हमारी सामूहिक कार्य-प्रणाली की उपलब्धि है किसी एक का आविष्कार नहीं।” यह तो सम्भव नहीं, सूझ तो किसी एक इंजीनियर या माझी या मजदूर की होगी, उसे सामूहिक सहयोग मिला, वह बात दूसरी है। बहरहाल आधे घण्टे तक घूम-फिरा कर पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि वास्तव में कनाडा में पहले यह प्रयोग हुआ था और वहाँ की कई झीलों में सीमेण्ट की नावें ही चलती हैं। यह इस कारखाने के चीनी मजदूरों की मौलिक उद्भावना है ही नहीं !

इसी मनोवृत्ति का एक प्रतिफल यह भी है कि वे बहुधा यह मानकर चलते रहे हैं कि जो उनके राष्ट्रीय हित का दृष्टिकोण है, वही अन्तिम सत्य है। यदि उनके इतिहास में यह बताया गया है कि कोई विशिष्ट भूभाग चीन के अधिकार में रहा है, तो वे इसकी ज्यादा चिन्ता नहीं करेंगे कि इस विशिष्ट भूभाग के इतिहास लेखकों ने अपने क्षेत्र को चीन के अधिकार में माना है, या नहीं। भारत-चीन सीमारेखा के बारे में यह तो कहेंगे कि यह सीमारेखा उपनिवेशवादी अंग्रेज शासकों की निर्धारित की हुई है, लेकिन प्रमाण में पेश करेंगे अपने पुराने नक्शे, जो प्रसारवादी, सामन्तवादी सम्राटों के बनवाये हुए हैं।

चीन के अनेक मध्यकालीन सम्राट विस्तारवादी थे और साम्राज्य विस्तार उनका शौक था। इसके प्रमाण दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक छोटे देशों के इतिहासों से तो मिलते ही हैं, स्वयं चीन के कुछ मध्यकालीन कवि इन सम्राटों के विस्तारवाद और युद्ध-लिप्सा के प्रति क्षुब्ध थे। दसवीं शताब्दी का एक कवि साओ सुंग कहता है—

हमारी पहाड़ियाँ, हमारी नदियाँ, हमारे हरे-भरे मैदान, अब सिर्फ एक फौजी नक्शे पर चिह्न बनकर रह गये हैं।

(पीस यू एजेज , पृ.109)

और उसके भी पहले का कवि तु फु कहता है—हत्याओं की भी एक हद होती है। एक देश को अपनी सरहदें निश्चित कर लेनी चाहिए और उन पर जमे रहना चाहिए :

इतना काफी है कि हम हमलावरों को भगा दें
लेकिन इतनी हाय-हत्या से क्या फायदा ?

(पीस यू एजेज, पृ-61)

कुछ सम्राट तो शेष दुनिया से विलकुल कटे, इतने आत्मतुष्ट थे कि यदि कोई पड़ोसी देश उन्हें शिष्टाचारवश उपहार भी भेजे, तो उसे वे इस बात का नजराना मान लेते थे कि वह देश उनकी अधीनता स्वीकार कर उनकी छत्रछाया में रहना चाहता है। जहाँ तक इन सामन्तों और सम्राटों के जनविरोधी, अत्याचारी, शोषण का प्रश्न था उसका तो माओ ने तुमुल विरोध किया, लेकिन इनकी विस्तारवादी विरासत का सही विश्लेषण उन्होंने किया या नहीं, यह कहना मेरे लिए कठिन है, इसलिए कि माओ का साहित्य अंग्रेजी में केवल आंशिक रूप में ही उपलब्ध है। सम्भव है मूल चीनी में संकलित उनके वक्तव्यों और कृतियों में इस पर कुछ सामग्री हो।

इतना अवश्य महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने जब ये तहखाने बनाने का आदेश दिया तो उनका आग्रह था, “सुरंगें, तहखाने गहरे खोदो, अन्न भरपूर इकट्ठा करो और दबदबा कायम करने की दौड़ में शामिल होने की कोशिश मत करो।” इस तीसरी बात की व्याख्या वे यों करते हैं कि “रूस या अमरीका की प्रतिस्पर्धा में महाशक्ति बनने की कोशिश मत करो !” वे अफ्रीका या एशिया में दबदबा न कायम करने की नीति कितनी अपनायेंगे और भारत-चीन सीमा पर जो हुआ, उसे वे अपने ही पक्ष की दृष्टि से समझेंगे या भारत की दृष्टि से भी समस्याओं को समझने की कोशिश करेंगे, यह तो भविष्य ही बतायेगा। वे आधुनिकीकरण की ओर बढ़ना चाह रहे हैं, शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व को वे अपनी घोषित नीति मानते हैं। ये दोनों लक्ष्य उसी अनुपात में सिद्ध हो सकते हैं जिस अनुपात में वे दूसरों की दृष्टि से भी समस्याओं को समझने की व्यावहारिक दृष्टि अपनायें और अतीत के आग्रहों को आड़े न आने दें।

यदि दूसरे पहलू से देखें तो इस राष्ट्रीय स्वाभिमान ने उनके जातीय चरित्र में कुछ बहुत अच्छे गुण भी उभारे हैं। अपनी समस्याओं से स्वयं जूझना और अपने ही साधनों के बल पर उनका समाधान खोजने की आत्मनिर्भरता की उनकी प्रवृत्ति सचमुच प्रशंसनीय है। पिछले दिनों चीन के कुछ हिस्सों में जबरदस्त भूकम्प आया। संसार के अनेक राष्ट्र सहायता के लिए इच्छुक थे, लेकिन चेयरमैन हुआ ने घोषित किया कि वे स्वयं इस संकट का मुकाबला करेंगे। इसका एक पक्ष यह भी हो सकता है कि वे अपने देश में विदेशी स्वयंसेवकों या विशेषज्ञों को नहीं आने

देना चाहते रहे हों, लेकिन अपनी खेती और अपने उत्पादन में आत्मनिर्भरता का जो सिद्धान्त उन्होंने अपनाया, वह उन्हें ऐसे संकट में भी आत्मनिर्भर बने रहने के लिए प्रेरित करता है।

जिन क्षेत्रों में हम नहीं गये, वहाँ की बात हम नहीं कह सकते, लेकिन फिर भी कैंटन, शंघाई, नानकिंग, पेकिंग जैसे महानगरों और अनेक प्रान्तीय राजधानियों, छोटे कस्बों और गाँवों में कहीं किसी आदमी को शराब पीकर धुत होते, बेकार भटकते, भीख माँगते या किसी काम के लिए बख्शीश लेते हमने नहीं देखा। होटलों के कमरों में ताला लगाने की कोई जरूरत नहीं होती थी, और कोई बैरा झुककर टिप की लालच में सलाम नहीं करता था। हमारे एक साथी का एक बालपेन पेकिंग के होटल में छूट गया। हम लोग कैंटन में थे तो ज्ञात हुआ कि पेकिंग होटल ने वह बालपेन अपने-आप हमारा पता लगाकर कैंटन भेज दिया है। हर होटल में ही नहीं, कई बाजारों में हमने ऐसे काउण्टर देखे, जहाँ खोयी हुई या भूल से कहीं छूटी हुई चीजें जमा हो जाती थीं। लोग आते थे और अपनी चीजें ले जाते थे।

एक विदेशी ने जो कई वर्षों से पेकिंग में रह रहा है, बातचीत के दौरान हमारे प्रशंसा भाव को थोड़ा अतिरंजित बताया। उसका कहना था कि इसके पीछे केवल चरित्र ही नहीं, भय भी है। इनकी पद्धति ऐसी है कि इनकी क्या आमदनी है, कितनी सम्पत्ति है, यह एक दूसरे को पता रहता है। यदि उससे अतिरिक्त धन इनके पास दीखा, या कोई नयी विदेशी चीज इनके पास दीखी, तो इनके अड़ोस-पड़ोस में ही कौन जाकर शिकायत कर देगा, इसका कोई भरोसा नहीं। भय और सन्देह इतना अधिक है, इसीलिए ये विदेशियों से न मिलते-जुलते हैं, न उनसे घनिष्ठता बढ़ाते हैं।

(लेकिन जहाँ तक मैंने समझा, यह भयवाली बात आंशिक रूप में भले सत्य हो, लेकिन उनमें एक प्रबल राष्ट्रीय स्वाभिमान फिर से जागा है और उसके कारण उनके चरित्र में संयम और सामाजिकता के गुण जागे हैं। सम्पत्ति के प्रति उनके बदले हुए दृष्टिकोण ने भी इस चरित्र निर्माण में सहायता की है।)

विदेशियों के प्रति इनमें यदि शंका भाव है तो वह इनके पूरे मध्यकालीन इतिहास की विरासत तो हो ही सकती है, आधुनिक काल में भी पहले पश्चिमी राष्ट्रों की अफीम कूटनीति ने और फिर जापानी आक्रमण ने उस शंका भाव को और भी गहरा किया होगा। क्रान्ति के बाद दस-बारह साल का समय ऐसा था जब विश्व मैत्री, विश्वशान्ति की काफी बातें हुईं, लेकिन सन् 60 में जब माओ और खुश्चेव में तनातनी बढ़ी उसके बाद से फिर उनकी मानसिकता अपने में सिमटने लगी। उसी समय माओ ने यह नारा दिया था कि “सुरंगें गहरी खोदो, अन्न भरपूर इकट्ठा करो।” देश की नव-अर्जित स्वतन्त्रता रूस के हाथों छिन न जाये इसके लिए माओ युद्धस्तर पर सुरक्षात्मक तैयारियाँ कर लेना चाहते थे।

लेकिन कुछ लोगों का यह भी अनुमान है कि माओ को लगने लगा था

कि अनेक नीतियों को लेकर जन-साधारण में कुछ असन्तोष पनपने लगा है और सोचने-विचारने वाले लेखक, अध्यापक बुद्धिजीवी कुछ अलग दिशा में भी सोचने लगे हैं, कुछ माओ के पुराने साथियों का प्रभाव भी ज्यादा बढ़ने लगा है। अतः एक ओर उन्होंने सुरंगें गहरी खोदने का नारा देकर जनता का ध्यान न्यूक्लीय हमले की ओर केन्द्रित किया और दूसरी तरफ सांस्कृतिक क्रान्ति को बढ़ावा देकर अपने से अलग पनपने वाले शक्ति केन्द्रों को निरस्त करने का उपक्रम किया। शायद कहीं उन्हें अपनी स्थिति, अपनी सत्ता के प्रति आशंका व्यापने लगी थी।

इस विश्लेषण में कहाँ तक सच्चाई है, नहीं कहा जा सकता, लेकिन यह अवश्य है कि उम्र के आखिरी दिनों में शायद अपनी बीमारी के कारण उनके हाथ से अनेक सूत्रों का नियन्त्रण छूट गया था। इसे तो कई चीनी मित्रों ने भी बातचीत के दौरान स्वीकार किया कि 'गैंग आफ फोर' का उत्पात इतना अधिक इसीलिए बढ़ा कि चेयरमैन माओ उन दिनों बीमार चलते रहे !

तियेन अ-मान स्वचायर में माओ का स्मारक एक सादी लेकिन कलात्मक और प्रभावशाली इमारत है। उस दिन सुबह बादल घिरे थे और हल्की झींसी पड़ रही थी। हजारों लोग समाधि के सामने दर्शन के लिए 'क्यू' लगाये खड़े थे। हर 'क्यू' में चार-चार व्यक्ति एक सीध में खड़े किये जाते हैं। दर्शन के लिए पास पहले से बनवाना होता है, जिस पर निश्चित समय लिख दिया जाता है। तीन 'क्यू' थे एक चीनी नागरिकों का, एक विदेशी यात्रियों का, एक फौजी युवकों का। फिर उन तीनों पंक्तियों में से एक-एक झुण्ड आगे बढ़ाकर मुख्य 'क्यू' बनाया जाता है। पहले 48 विदेशी, फिर 48 फौजी युवक, फिर 48 चीनी नागरिक, इसी क्रम से दर्शनार्थी प्रवेश करते हैं।

बरामदे की सीढ़ियों से ही एक सन्नाटा-सा छा जाता है। पहले बाहरी कक्ष में सामने की विशाल दीवार पर एक भित्ति-चित्र है। रंगों का नायाब संयोजन। गहरा नीला, पीला, आसमानी और सफेद। बस कोई और रंग नहीं। इन्हीं रंगों से चित्रित हैं आकाश, बादल, कोहरा, समुद्र की लहरें और फेन। बादल कोहरा, लहरें, फेन सब में गति है, उछाल है, लेकिन सब मिलकर एक अद्भुत अनन्तता और शान्ति का आभास देते हैं। उस विशाल श्वेत-नील भित्ति-चित्र के सामने है कुर्सी पर बैठे माओ की श्वेत संगमरमर की विशाल प्रतिमा। अन्दर के कक्ष में एक मंच पर है माओ का रासायनिक विधि से सुरक्षित शरीर। केवल चेहरा खुला हुआ। चूँकि रुकना मना है अतः चलते-चलते जिस चीज पर ध्यान गया, वह था उनके चित्रों और मूर्ति

के मुकाबले अपेक्षाकृत दुबले चेहरे पर अतिरिक्त लालिमा। वह लालिमा शायद रासायनिक लेप की हो !

यह संयोग ही कहिए कि जिस दिन की शुरुआत माओ के स्मारक से हुई उसी दिन चीन की दीवार और मिंग राजाओं की समाधि देखने गये। दिन भर तो मन पर दीवार और समाधि का तिलिस्मी रहस्य छाया रहा। शाम हुई, खाना चीनी रिवाज के अनुसार जल्दी ही खा लिया और अब क्या करें ? रात अँधेरी थी और बादल घिरी, खिड़की के शीशे पर कभी-कभी बूँदों की टिप-टिप होती थी। धीरे-धीरे सब भूल गया, मन पर उभरने लगा वह माओ की मूर्ति के पीछे का विशाल नीला-सफेद भित्ति-चित्र, अनन्तता का आभास देता हुआ एक समयातीत अनन्तता ! स्मारक के बाहर भव्य मूर्तिपुंज हैं, मजदूर, किसान, क्रान्तिकारी युवा, स्त्रियाँ, देश के निर्माण में गतिशील ! लेकिन अन्दर उस एकान्त, शान्त स्मृतिकक्ष में है केवल अथाह नीलिमा की रंग क्रीड़ा। आकाश, बादल, कोहरा, समुद्र की लहरें। किसने परिकल्पना की इसकी ? उस कलाकार ने राजनीति की सामयिकता के अंतरंग में जैसे काव्य-संवेदना की समयातीत अनन्तता पुनर्स्थापित कर दी। आखिर राजनेता बनने के बहुत पहले माओ ने दुनिया को कवि की नजरों से ही तो देखा था। कभी-कभी वे क्षण चरम अकेलेपन में विराट के साक्षात्कार के क्षण जरूर रहे होंगे :

“अकेला मैं खड़ा हूँ हेमन्त की ठिठुरन में
नारंगी द्वीप के छोर पर
उत्तर की ओर बहती जाती है सियांग नदी...
...चीलें मँडराती हैं हवा में
तैरती हैं मछलियाँ गहराई में—
इस हिमशीत आकाश के नीचे लाखों प्राणी
अपनी-अपनी स्वतन्त्रता में संघर्षरत :
इस विराटता पर विचारमग्न मैं
पूछता हूँ, इस असीम घरा पर
कौन है जो निर्धारित करता है मनुष्य की नियति को ?”

(माओत्से तुंग की कविताएँ, चांगशा 1925)

आज माओ नहीं हैं, सियांग नदी उसी तरह बह रही है, हेमन्ती आकाश उसी तरह ठिठुराता है, मछलियाँ गहराई में उसी तरह किलोल करती हैं, पर उन्होंने जो प्रश्न पूछा था, जो चुनौती स्वीकारी थी, उस अपने देश के मनुष्य की नियति के निर्धारण में उन्होंने अपनी निर्णायक भूमिका अदा की, इतना एक कवि के जीवन को पूर्ण बनाने के लिए क्या यथेष्ट नहीं !

लेकिन सोचता हूँ उस विशाल नील-श्वेत भित्तिचित्र के सामने माओ की कुर्सी

पर बैठी मूर्ति क्यों ? वहाँ तो होनी चाहिए थी, द्वीप के छोर पर खड़े हेमन्ती आकाश के नीचे विराटता पर विचारमग्न माओ की मूर्ति, विराट का साक्षात्कार करते हुए !

कुर्सी या सत्ता के बारे में घिसे-घिसाये आक्रोश के बजाय मैं यही कहना चाहूँगा कि मनुष्य की नियति के निर्धारण के दोनों रास्ते हैं। सत्ता ग्रहण करके भी और सत्ता छोड़कर भी। जब शिह ह्वांग ति अपनी सत्ता को अपने वंश के माध्यम से सदा सुरक्षित रखने के लिए दीवार उठवा रहा था, उसके बहुत पहले एशिया के एक दूसरे देश में एक-दूसरे प्रकार की घटना घटी। एक राजकुमार जिसे सत्ता और सिंहासन मिला हुआ था, उसने सहसा एक दिन आधी रात अपनी सत्ता, अपने सिंहासन, अपने वंश, अपने उत्तराधिकारी सबको छोड़ दिया। उसने अपने राजसी वस्त्र अपने स्वर्णभूषण भी उतार दिये और बिलकुल सर्वहारा होकर चल दिया एक ऐसी वस्तु की खोज में जिसे सत्य कहते हैं। और, जब उसे सत्य मिला तो उसकी बात पहले कोई सुनने को तैयार नहीं था। कुछ शिष्य मिले सारनाथ में, धीरे-धीरे कुछ और, फिर तो संघ बने अपने ढंग के संसार के पहले कम्यून, उसका उद्देश्य वही था—“बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय”, लेकिन उसका तरीका अलग था, अहिंसा और करुणा। और ‘बहुजन’ को लक्ष्य मानते हुए भी उसने व्यक्ति की स्वाधीनता, व्यक्ति की गरिमा और व्यक्ति के निजी विवेक को पूरा महत्त्व देते हुए स्पष्ट कहा, “मैं भिक्षुओं से कहता हूँ कि बिना तर्क और विवेक की कसौटी पर कसे कोई बात केवल अन्धविश्वास से स्वीकार न करो, न वर्ण, न आश्रम, न जाति, न शास्त्र, न ईश्वर। यहाँ तक कि मेरे वचनों को भी तभी स्वीकार करो यदि वे तुम्हारी परीक्षा में खरे उतरें !” ‘परीक्ष्य भिक्षुवी ग्राह्यम मद्वचनो न तु गौरवात्’। इस विलक्षण सर्वहारा ने अपनी एक सेना बनायी, लाल चीवर धारण करने वाले निहत्थे भिक्षुओं की लाल सेना जो येनान की गुफाओं में रहनेवाली लाल सेना की ही भांति कान्हेरी या अजन्ता की गुफाओं में रहती थी या आम के पेड़ों के नीचे, और उसके ये इक्का-दुक्का लाल चीवर पहने निहत्थे भिक्षु सैनिक केवल प्रेम और करुणा का सन्देश लेकर पूरे एशिया में फैल गये। उनका कोई साम्राज्य नहीं था पर फिर भी वे लोगों के दिलों पर राज करते थे, राजाओं के दिलों पर भी, प्रजाओं के दिलों पर भी, और जहाँ-जहाँ गये उन्होंने पहाड़ों में गुफाएँ ढूँढ़ीं और वहाँ इस विलक्षण सर्वहारा की मूर्तियाँ स्थापित कीं। इस सर्वहारा का नाम था गौतम बुद्ध, शाक्य मुनि ! उत्तर की ओर से चीन में बर्बर लुटेरे आते थे जिनके लिए दीवार उठवायी गयी, दक्षिण की ओर से चीन में आते थे प्रेम और करुणा का सन्देश लेकर ये निहत्थे बौद्ध भिक्षु जिनके लिए विहार बने, पगोड़े बने, जिन्हें राजा और प्रजा दोनों ने सिर-आँखों पर स्वीकार

किया ! एशिया को अगर किसी ने सचमुच कभी बिना किसी राजशक्ति के, एकता के सूत्र में बाँधा था तो वे थे गौतम बुद्ध ।

इसीलिए मुझे उस शाम बेहद खुशी हुई जब चीन के सबसे आकर्षक, जादूभरे सौन्दर्य स्थल हैंगचाऊ की रेवोल्यूशनरी कमेटी के उपाध्यक्ष वांग फेंग ने राजकीय 'डिनर' के समय टोस्ट प्रस्तावित करते हुए कहा, "यह टोस्ट हैंगचाऊ के लिंगयिन बौद्ध विहार और सोचिआ मोनी (शाक्य मुनि) के नाम, जो भारत और चीन की दो हजार वर्ष पुरानी मैत्री के अमर प्रतीक हैं !"

आपसे स्वीकारता हूँ कि उस शाम अपने देश की बड़ी याद आयी । रात को बड़ी देर तक छज्जे पर खड़े होकर अन्धेरे में उस अप्रतिम सौन्दर्यमयी सजी-सँवरी विशाल झील में तैरते तारों को देखता रहा । शताब्दियों पहले जंगलों में छिपी इस झील को मन्त्रमुग्ध-सा देखा होगा उस परदेशी बौद्ध भिक्षु ने जो हजारों कि.मी. पैदल चलकर भारत से आया होगा । चीनी बताते हैं कि उस अद्भुत भारतीय बौद्ध भिक्षु का नाम था हुई लि । सौरभकुमार ने अनुमान लगाया कि शायद उसका संस्कृत नाम हरि रहा होगा, चीनी उच्चारण हुआ लि हो गया । पर हुआ लि चीन में रस-बस गये, चीनी जन के साथ एकाकार हो गये । शताब्दियों बाद तुम्हारी नगरी में आया यह भारतीय आगंतुक तुम्हें सिर झुका कर प्रणाम करता है । आचार्य हुआ लि !

किम्बदन्तियों की नगरी में कविता की झील

दीवार के किनारे-किनारे उत्तरी चीन का जनजीवन आक्रमणों, युद्धों और सैनिक गतिविधियों से आक्रान्त था तो यांगत्सी का मुहाना और उसके दक्षिण का क्षेत्र रेशम-उत्पादन, और उसके इर्द-गिर्द पनपने वाले तमाम कला शिल्प, उद्यान शिल्प, मूर्तिकला, चित्रकला, लोकगीत परम्परा और धार्मिक परम्पराओं का केन्द्र बन गया था। यांगत्सी की सहायक नदी हे के तट पर बसी यांगचऊ नगरी की पुरानी बस्तियाँ बिलकुल वाराणसी की याद दिलाती हैं। जिधर देखो, उधर छोटे-बड़े पगोड़े, गलियों में बैठे बतियाते बुढ़े, फुटपाथों पर रंगे हुए रेशम के सूखते गोले, मिठाई और चाय की छोटी-छोटी दुकानें और लोगों में अपने नगर के पुराने इतिहास के प्रति अभिमान, यहाँ तक कि वाराणसी की तरह ही साइकिल रिक्शे। कई रिक्शे तो औरतें चला रही थीं। वाराणसी होती तो उन पर कजरियाँ और लोकगीत बन गये होते !

यांगचऊ की रेवोल्यूशनरी कमेटी के उपाध्यक्ष वांग न केवल अधिक मिलनसार और अतिथि-सत्कारी लगे, वरन बातचीत में भी अपने नगर के पुराने इतिहास, दन्तकथाओं और कला-शिल्प की बातें बड़े गर्व से करते रहे। उन्होंने बताया कि 2400 वर्ष पुरानी यह नगरी प्राचीन काल में रेशम की सबसे पुरानी मण्डी थी। समुद्र यात्राएँ उस समय कठिन थीं। अतः स्थल मार्ग से यहीं से रेशम के सौदागरों का कारवाँ रेशम लादकर मध्य एशिया, भारत, फारस और रोम की ओर जाता था। बहुचर्चित सिल्क-मार्ग का यह आरम्भ बिन्दु था। यहाँ के व्यावसायिक महत्त्व के ही कारण मध्यकाल के सम्राटों ने यहाँ से पेकिंग तक बड़ी नहर बनवायी थी। अब पुनः उस नहर के समानान्तर एक बड़ी नहर बनवायी जा रही है, जो बड़ी नावों और बड़े स्टीमरों के आने-जाने के लिए प्रयुक्त होगी।

मेज पर बड़ी खूबसूरत रंगबिरंगी कलात्मक दियासलाइयाँ रखी हुई थीं, जिन पर सूचाऊ लिखा हुआ था। मालूम हुआ कि यांगचाऊ, सूचाऊ तथा हैगचाऊ, यह पूरा

क्षेत्र रेशम का क्षेत्र है। सूचाऊ और हैंगचाऊ तो प्राकृतिक दृष्टि से भी इतने सुन्दर हैं कि यहाँ चीन में कहावत है कि यदि आकाश में स्वर्ग है तो पृथ्वी पर भी सूचाऊ और हैंगचाऊ हैं !

हेंगचाऊ सचमुच स्वर्ग का एक टुकड़ा लगता है। हवाई अड्डे से उतर कर 16-17 किलोमीटर का रास्ता तय कर ज्यों ही आपको झील की पहली झलक मिलती है, लगता है कि किसी जादू-बस्ती में पहुँच गये हों। बेहद सजी-सँवरी, चारों ओर हरे-भरे जंगलों-ढके पहाड़ों में घिरी विराट झील, इतनी बड़ी कि नैनीताल की 50 झीलें मिला दी जायें तो एक झील बने !

इस जगह की खूबसूरती का रहस्य मालूम हुआ ! प्रकृति ने इसे ये सारे उपकरण दिये ही थे, लेकिन सैकड़ों वर्षों तक इस झील को कविता ने सजाया है। यह प्राचीन काल से कुछ सूबेदार सामन्तों की राजधानी रहा और अनेक सम्राटों की ग्रीष्म राजधानी। झील और नदी के बीच बसी यह नगरी इतनी लुभावनी थी कि अक्सर प्रख्यात कवियों को यहाँ का प्रशासक बनाकर भेजा जाता रहा। झील के बीचोबीच से दो बड़ी खूबसूरत छायादार सड़कें बनायी गयी हैं। एक को पई मार्ग कहा जाता है, एक को सू मार्ग। पई एक प्रख्यात कवि थे। जो यहाँ के नगर शासक बनाये गये। उन्होंने झील का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए यह सुन्दर पुलोंवाला मार्ग बनाकर उसके दोनों ओर वृक्ष लगाये। वे सुबह के समय अपने पाँवों चलकर इस सड़क से झील पार करते थे। सू दूसरे कवि थे। वे भी नगर शासक होकर आये। उन्होंने सू मार्ग बनवाया। उन्हें झील की शाम ज्यादा भाती थी। वे शाम को इस सड़क से गुजरते थे। और हम जब सड़क से झील पार कर रहे थे, तो एक बहुत खूबसूरत पुल आया। उसका नाम था, टूटा हुआ पुल ! वह कहीं से टूटा हुआ नहीं था, पर मा वै कुआँ ने उस नाम का इतिहास अपनी प्यारी अस्त-व्यस्त हिन्दी में बताया—“वो एक रहती थी यहाँ ! क्या कहते हैं उसे ? वो साँप की जो लड़की होती है ? वो आपके यहाँ भी होती है।” मैंने कहा, ‘नागकन्या’ “हाँ, हाँ वो नागकन्या। बहोत सुन्दर थी। एक किसान का लड़का था। उसमें रस था। नहीं, क्या कहते हैं उसे, हाँ रसिक था। वो नागकन्या के प्रेम में गिर गया। नहीं, पड़ गया। हाँ, नागकन्या के प्रेम में पड़ गया तो पड़ गया तो नगर के लोग चिंता में पड़ गये। जब सब पड़ गये, उसके माँ-बाप भी पड़ गये तो एक बौद्ध भिक्षु ने उसको प्रेम में से खींचकर निकाल लिया। तो वो भी बौद्ध भिक्षु बन गया। तो नागकन्या का दिल, हृदय टूट गया। यह पुल भी टूटा हुआ पुल हो गया। सच्चा

इतिहास नहीं है, कथा है, कहानी... कहानी... ?' उन्होंने मुझे समझाते हुए कहा शायद मेरे चेहरे पर नागकन्या के प्रति सहानुभूति उन्होंने ताड़ ली थी। मा वै कुआँ भारत में रह चुके हैं। विनोद समझते हैं। मैंने पूछा, "क्या नागकन्या इसी पुल के पास मिलती थी ?" वे मुस्कराकर बोले, "अब नहीं मिलती। आप बहुत देर में आये।"

इस झील का चप्पा-चप्पा इतिहास किम्वदन्तियों और लोककथाओं से भरा हुआ है। दूसरे दिन एक छोटी-सी सजी-सजाई मोटर बोट ने हमें पूरी झील की सैर करायी तो कितने ही स्थल देखे, कितनी ही कहानियाँ सुनीं। हैंगचाऊ मध्यकाल में कवियों का अड्डा रहा है। उसके किनारे एक मुद्रा-संघ है। झील-सोसायटी ! यह कवियों की परिषद् थी और उनकी विशेष मुहरें हुआ करती थीं। वह मुहर उसी कविता पर लगती थी, जो कसौटी पर खरी उतरे। आज भी उस परिषद् का प्राचीन भवन और उन मुहर लगी कविताओं की पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। 'झील पर हेमन्ती चांद का मण्डप ! झील के किनारे थोड़ी पानी के अन्दर आकर बनी कलात्मक बारादरी, जहाँ से पतझड़ के मौसम की पूर्णिमा में झील पर बिखरी चाँदनी की शोभा देखने दूर-दूर से कवि, चित्रकार और दार्शनिक आया करते थे। आगे चलकर किनारे पर (मजनू) के वृक्षों का बहुत बड़ा कुंज है। उन कुंजों में खास ऋतु में झुंड-के-झुंड पीलक (ओरियोल) पक्षी आते हैं और अपने कलरव से झील के इस किनारे को गुंजा देते हैं। मध्यकाल से ही कवियों ने इस कुंज तट का नाम रखा था—'विलो कुंज में गाते पीलक !'

मार्मिक कथा है सारस मण्डप की भी। यहाँ एक वृद्ध कवि रहता था लिन पु (967-1028 ई. सन्)। उसने विवाह नहीं किया। विलकुल अकेला रहता था। जंगलों में भटकता था और हर पहाड़ पर जाकर आलू बुखारे के पेड़ लगाता रहता था। हर साल झील पर उड़कर आनेवाला एक सारस उससे हिल गया। सर्दियों में जब बर्फ पड़ती तो उड़कर दक्षिण चला जाता, भारत की ओर, लेकिन गर्मियों में फिर आ जाता और आकर सीधे लिन पु के पास जाता। एक बार बहुत घनघोर सर्दी पड़ी। लिन पु अकेला अपनी कुटी में पड़ा रहा। बूढ़ा था ही, गठिया सताने लगी। जब गर्मियों में सारस आया तो लिन पु ने कहा, "बेटा, सर्दियों में मेरी कोई देखभाल करने वाला नहीं। तुम भी चले जाते हो ?" देखिए चमत्कार कि उस साल बर्फ पड़ने पर भी सारस उड़कर भारत नहीं गया और लिन पु के ही पास रहा। किम्वदन्ती है कि ठिठुरते हुए पंखों से उड़ता तो नहीं था, पर धीरे-धीरे चलकर बर्फ में छेद कर मछली पकड़कर लाकर लिन पु को दे देता था। लोग कहने लगे कि बुढ़े सनकी कवि लिन पु का विवाह आलू बुखारे से हुआ है और सारस उसका अपना बेटा है !

उस सारस की याद में आज भी वहाँ सारस मण्डप बना हुआ है। यह मण्डप टूट-फूट गया था। 1915 में इसकी मरम्मत करायी गयी।

पेकिंग में चीन के उप-प्रधानमंत्री उलान फू ने जब हम लोगों से लम्बी भेंटवात

की थी, तब पीपुल्स हॉल के उस शानदार स्वागत कक्ष में एक खास प्रकार की चाय हमने पी थी। वह उत्कृष्ट जेस्मीन चाय से भी कहीं ज्यादा लुभावनी थी, हालाँकि उसमें न किसी फूल की सुगन्ध थी और सुखाया भी इस तरह गया था कि हर पत्ती का सोंधा हरियालापन ज्यों-का-त्यों कायम था। उबला पानी पड़ते ही हर पत्ती अँजुरी की तरह खुल जाती थी। मालूम हुआ कि चीन की सबसे महँगी, बादशाह-पसन्द वह चाय यहीं इसी झील के किनारे पैदा होती है। एक अजदहा का कुआँ है (ड्रैगन वेल)। उसी के पीछे की पहाड़ियों में यह चाय पैदा होती है और उसी पानी से सींची जाती है। बहुत कोशिश की गयी पर यह चाय और कहीं नहीं उग पायी। उगी भी तो वह स्वाद नहीं आया।

उसकी भी एक कहानी है। कुएँ में वह भयानक ड्रैगन रहता था। उसकी फुफकार में जहर की अग्निज्वालाएँ थीं, लेकिन उसकी त्रिशूली जिह्वा में अमृत था। एक बौद्ध भिक्षु ने उसको जीता और फिर उसकी फुफकार का जहर जाता रहा और उसकी अमृत भरी त्रिशूली जिह्वा चाय की एक कली दो पत्ती के रूप में पीछेवाले पूरे पहाड़ पर उग आयी। आज भी उस चाय को 'अजदहा कुआँवाली चाय' बोलते हैं।

कितनी कहानियाँ सुनेंगे आप ? अब स्टीमर बीच झील में बने एक द्वीप पर जा लगा है। द्वीप का नाम सुनेंगे ? "झील में चाँद झलकाने वाले तीन गुम्बद स्तम्भों का द्वीप।"

मालूम हुआ कि यहाँ पर झील बहुत उथली थी। किसी कवि हृदय सामन्त ने तय किया कि झील को गहरा किया जाए, क्योंकि गर्मियों में यहाँ दलदल हो जाता है और झील के सौन्दर्य में पैबन्द-जैसा लगता है। झील को गहरा करने के लिए मजदूर लगवाये और जो तलहटी की मिट्टी निकली, उससे यह द्वीप बनवाया गया। लेकिन द्वीप से ही वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। झील की तलहटी की पुरानी पंक में पंकज (कमल) के फूल खूब आसानी से लगते हैं। तो उसने झील के अन्दर द्वीप और द्वीप के अन्दर फिर झील बनवायी। और उस झील में उसने लगवाये तरह-तरह के कमल, लाल, गुलाबी, सफेद और छोटे-छोटे बटन के आकार के पीले कमल। कुछ के पत्ते पानी से ऊपर उठे हुए, कुछ के पुरइनलता की तरह पानी पर उतराते हुए। लेकिन कमल को इस द्वीप की झील के अन्दर इतनी दूर किनारे से देखा तो क्या देखा ? बात तो तब है जब सुबह खिलते हर कमल के पास खड़े होकर उससे बातें की जायें और शाम हर मुँदते कमल के उदास अकेलेपन में उसका साथ दिया जाये। अब यह हो कैसे ? जल का अन्तराल आड़े आता है।

तो सामन्त ने फिर उस बड़ी झील के अन्दर द्वीप के अन्दर की छोटी कमल

झील में एक नौ मोड़ोंवाला कलात्मक पुल बनवाया, झील के आरपार। उस पुल पर से हर कमल-गुच्छ को आप बहुत पास से देख सकते हैं और चाहें तो उससे बातें भी कर सकते हैं। कहानी इस कमल पोखरे की भी है। यहाँ सभी छोटी-छोटी मछलियाँ हैं। भूरे या काही रंग की। वे कमल की जड़ें कुतर-कुतर कर खाती हैं। इनमें एक सुन्दर-सी मछली थी। एक लाल कमल को उससे प्रेम हो गया। मछली बोली, “मैं तुमसे विवाह तो नहीं कर सकती, तुम ठहरे कमल, हम ठहरी मछली, लेकिन मैं तुम्हारे विरह में भिक्षुणी बन जाती हूँ। लाल चीवर पहनूँगी।” और वह हो गयी लाल मछली। द्वीप के उस किनारे एक बड़ा-सा पोखर है लाल मछलियों का। वहाँ पुल पर खड़े होकर लोग डबल रोटी के टुकड़े फेंकते हैं और सैकड़ों बड़ी-बड़ी लाल मछलियाँ एक-दूसरे के ऊपर तैर आती हैं उस टुकड़े के लिए। उस पोखर में मछली पकड़ना सख्त मना है।

और नौ मोड़ोंवाले उस पुल को पार कर द्वीप के दूसरे तट पर पहुँचते हैं, जहाँ झील का पानी शान्त है। विलकुल ठहरा हुआ, जैसे बिना सिलवट की नीली चादर। बीच जल में पत्थर के तीन स्तम्भ हैं, जिन पर जल से बिते भर की ऊँचाई पर पत्थर के ही तीन खोखले गुम्बद बने हैं ! उन गुम्बदों में नीचे की गोलाई में चार गोल छेद बने हुए हैं। पूर्णिमा की रात को इन कन्दीलनुमा गुम्बदों में बड़ी-सी मोमबत्ती जला दी जाती है और हर गुम्बद के चारों ओर चार-चार गोल ज्योतिवृत्त झील में तैरने लगते हैं। अब उस पूर्णिमा की रात सारी दूसरी झीलों में एक चाँद तैरता है, पर अपने इस द्वीप के इस किनारे की झील पर एक बड़ा चाँद होता है आकाशवाला और 12 छोटे-छोटे चन्द्रमा होते हैं गुम्बदों के आसपास, पानी पर झिलमिल तैरते हुए !

यहाँ द्वीप पर कई तरह के पेड़ लगे हैं। कुछ के नाम नीचे चीनी में भी लिखे हैं और रोमन लिपि में लैटिन नाम भी ! उनमें एक वृक्ष का लाल छालदार तना मुझे खास आकर्षक लगा। मैंने थोड़ी-सी छाल उखाड़ी और सूँधी। मेरा अनुमान सही था। वह हमारा चिर परिचित दालचीनी का पेड़ था। छाल की वही महक, वही स्वाद ! मालूम हुआ कि इस वृक्ष की लकड़ी से ही यहाँ कपड़े रखने के संदूक-पेटी बनाये जाते हैं, क्योंकि इसकी महक के कारण उनमें कीड़े नहीं लगते। पगोड़ों में अधिकांश बौद्ध मूर्तियाँ भी यथासम्भव इसी लकड़ी की बनती हैं, ताकि कभी नष्ट न हों। इसका चीनी नाम उन्होंने बताया, पर मेरे पल्ले नहीं पड़ा। हाँ, उन्हें मैंने यह अवश्य बताया कि इसे हमारे यहाँ बहुत जमाने से दारु-चीनी (या दालचीनी) कहते हैं अर्थात् चीन का वृक्ष !

पर एक चीनी नाम मैंने सुना था, वृक्ष का नहीं पत्थर का और इतना बढ़िया नाम था कि मुझे तुरन्त याद हो गया। कमल के पोखरे में एक लम्बा-सा पत्थर बीचोबीच गड़ा हुआ था, ऊबड़-खाबड़ जिसमें कहीं काई लगी थी, कहीं थोड़ी मिट्टी जमा कर छोटे बौने पौधे लगा लिये गये थे, जिस पद्धति का जापानी नाम बोंजाई भारत में भी प्रचलित हो गया है। उस लम्बे, छेददार पत्थर को देखते ही मैं बोल उठा—“देखिए,

देखिए, यह रहा एक चो सो लो तो !” हमारे सभी चीनी साथी ठठाकर हँस पड़े। उन्हें कल वाली घटना याद आ गयी, चो सो लो तो की।

अब हे पाठकगण ! आपको चो सो लो तो की कहानी भी सुना ही दें। चीन में बौद्ध संस्कृति ने कला-शिल्प का जो बहुविध विकास किया, उसमें उद्यान-कला भी आती है। बाग बनाने के मतलब सिर्फ मैदान पर रविशें बनाकर फूल लगाना और कतार बनाकर पेड़ लगाना ही नहीं बल्कि धरती के छोटे-से हिस्से में पत्थर, पानी और पेड़ों का ऐसा संयोजन करना कि वह छोटा-सा हिस्सा ही बड़े पहाड़ों, घने जंगलों और शान्त विस्तृत झीलों का आभास देने लगे। अब पत्थरों की छोटी चट्टानों को सजाना सम्भव है, पानी के भी छोटे-बड़े पोखरे यथा-कल्पना बनाये जा सकते हैं, लेकिन पेड़ों का क्या किया जाए। एक बड़ा पेड़ लगा और हर बरस बढ़ता गया तो दस साल में बगीचे का सारा अनुपात बिगड़ जायेगा। तो उन्होंने पेड़ों के आकार को भी छोटा करने और उनकी बाढ़ को यथाकल्पित अनुपात में रखने का तरीका विकसित किया। उनकी जड़ों को काटकर, तार में बाँधकर, उन्हें सीमित मिट्टी और पानी देकर विशालकाय वृक्षों को भी बित्ते-बित्ते भर का बना देना और इस कौशल से कि वे सैकड़ों वर्ष की आयु पाकर भी ऊँचाई में उतने ही बने रहें। इसे चीन में कहते हैं लघु दृश्य या ‘पेन-चिंग ! मूलतः यह कौशल चीन का है। यहीं से जापान गया और इसे वहाँ ‘बोंजाई’ कहा गया।

कहते हैं, सूचाऊ में इस पद्धति के अनेक अत्यन्त कलात्मक बगीचे हैं। वहाँ तो हम नहीं गये, पर उसका एक नमूना हमने वु सी में और एक नमूना नानकिंग के एक मिंग सम्राट के बगीचे में देखा। लेकिन इस सारे क्षेत्र में हैंगचाऊ में पेन चिंग के लिए ऐसे मर्यादित वृक्षों के उगाने की कला सबसे उन्नत है और उस नर्सरी में चीन के कुछ कई शताब्दी पुराने ऐसे वृक्ष हैं और कुछ सबसे कलात्मक पेनचिंग भी यहीं हैं।

हम एक बहुत लम्बे, हवादार, दोनों ओर शीशे की खिड़कियों वाले बरामदे में चीनी मिट्टी, लकड़ी, धातु और पत्थर के धालों में सजे पत्थर पानी और नाटे पेड़ों में बने लघु दृश्य देखते घूम ही रहे थे कि देखा बाहर गमलों में सौ-सौ वर्ष पुराने चीड़, देवदारु, दारुचीनी के पेड़ों के बीच एक ऊँचे से ढीहे पर एक लम्बा-सा पत्थर खड़ा है उस पत्थर पर काई है, नमी है, एक दो छोटे-छोटे पेड़ भी उस पर लगे हैं। बहुत सुन्दर लग रहा था।

पास ही शायद दक्षिण अमरीका के किसी देश से आयी एक माँ, एक पुत्री तथा एक भावी या वर्तमान दामाद, ये तीन उस पत्थर के पास खड़े थे। उनकी चीनी गाइड कन्या उन्हें स्पेनी या पुर्तगाली किसी भाषा में उस पत्थर के बारे में समझा रही थी। थोड़ी देर में लड़की उस पत्थर के नीचे फोटो खिंचाने बैठ गयी। गाइड कन्या ने घूम कर मेरा अभिवादन किया और उसी भाषा में उतने ही उत्साह से मुझे उस पत्थर के बारे में समझाने लगी। मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ रहा था सिवा चार शब्दों के—चो सो लो तो ! अन्त में चांग ने इस द्विविधा से मेरा उद्धार किया। चीनी में उस गाइड कन्या

से बात करके मुझे बताया कि उद्यान-कला में इस प्रकार के पत्थर का वही महत्व है, जो पारस पत्थर का होता है। अनेक सम्राटों ने पूरे देश में खोज करायी तो पूरे चीन में ऐसे कुल तीन पत्थर मिले। उनमें से एक यह यहाँ लगा है। मैं चकित-सा उस दिव्य पत्थर को देख रहा था। “भाई, इसमें ऐसी क्या खासियत है ?” मैंने पूछा। तो इस बार चांग ने भी हँसते हुए कहा, “चो सो लो तो !”

‘खुल जा सिम सिम’ जैसे इस तिलिस्मी शब्द का अर्थ भी सुन लें—यानी वे लम्बे होने चाहिए, यह इस चो। वे लम्बे हों पर बहुत धुलधुल मोटे न हों, पतले होने चाहिए, यह हुआ सो। वे ठस नहीं होने चाहिए यानी उनमें ऐसे छेद हों जो नाटे पेड़ों की जड़ों के लिए पानी नीचे से सोख सकें, यह हुआ लो। और उनमें ऐसे छेद भी होने चाहिए जो अतिरिक्त पानी और नमी को बाहर फेंक दें और उनसे पानी इस तरह चूता रहे मानो पत्थर के अन्दर पानी भरा है, यह हुआ तो !

यह है चो सो लो तो का रहस्य !

हैंगचाऊ में न कहानियों की कमी है न रहस्यों की। एक रहस्यमय जल का चमत्कार तो हमने अपनी आँखों से देखा—एक पहाड़ी सोते से निकलते जल का ! वैसे एक ऐसा ही पहाड़ी सोता नानकिंग के मिंग कालवाले बाग में भी था। उनका भी दावा यही था कि उस जल में भी वही चमत्कार है, जो हैंगचाऊ के इस व्याघ्र स्रोत के जल में है, पर उसे परखने का मौका नहीं मिला था।

यहाँ लिंग यिन बौद्ध विहार के पीछे वाले पहाड़ में घने बाँस कुंजों के बीच आपको एक धारीदार बाघ की मूरत मिलेगी। मूरत बहुत पुरानी नहीं दीखती, न कोई विशेष कलात्मक। ठीक वाराणसी के काठ के खिलौनों जैसी, उस मूरत के पास कच्चे कुण्ड में पानी रिस रहा है। साफ, ठण्डा और बिलकुल पारदर्शी। बहुत तृप्ति देनेवाला। यही पानी फिर आगे विहार के कुण्डों में से होता हुआ मोटी धारा के रूप में नीचे चला जाता है। व्याघ्र स्रोत नाम इसलिए पड़ा कि कहते हैं, एक दिन विहार में रहनेवाले आचार्य भिक्षु को स्वप्न आया कि पीछे के पहाड़ पर एक बाघ आया था। वह बहुत प्यासा था। अवलोकितेश्वर को दया आयी। उन्होंने व्याघ्र को मौन निर्देश दिया कि वह प्यासा न लौटे विहार से, जहाँ खड़ा है वहीं पंजों से खोदे तो पानी निकल आयेगा। बाघ ने वहाँ पंजे से खोदा और पानी निकल आया। यह मीठा, सुस्वादु और गुणकारी तो है ही, चमत्कारी भी है।

उसका चमत्कार देखा, पास के चायघर में। चाय पिलानेवाली महिला पहले गर्म पानी में भीगे अँगोछे दे गयी। हमने उससे मुँह-हाथ पोछे, ताजा महसूस करने लगे।

फिर अजदहा कुआँ वाली चाय पी। फिर वे एक बड़े प्याले में व्याघ्र सोत का जल भर लायीं।

हमने पाँच पेंस, दस पेंस के चीनी सिक्के निकाले। पानी ऐसा है कि बहुत आहिस्ते से चिपटी ओर से सिक्के डालिए तो काफी देर तक वे तैरते रहते हैं, फिर धीरे-धीरे नीचे जाते भी हैं तो बल खाते हुए मानो पानी उन्हें बार-बार दायें-बायें उछाल रहा है।

लेकिन असली चमत्कार इसके बाद आया। दो, चार, छह, दस सिक्के उस प्याले में डूबते गये। मगर पानी जहाँ-का-तहाँ था। इतने सिक्के डालने पर साधारण पानी होता तो प्याले से छलक कर बाहर बह निकलता, लेकिन यह जल यथावत था। “और सिक्के डालिए।” महिला बोली। हमने और सिक्के डाले। अब क्या देखा कि जल की सतह ऊँची हो : ^ है, फिर भी प्याले से छलक नहीं रहा है। यहाँ तक कि प्याले की गोलाई में ही जल की सतह प्याले की कोर से दो-तीन मिलीमीटर ऊँची उठ कर स्थिर थी, प्याले के बाहर बह नहीं रही थी। यानी पानी का दो मिलीमीटर ऊँचा गोल थक्का बिना किसी सहारे के ठहरा हुआ, गोया आइसक्रीम की तरह जमा हो ! चमत्कार !

इसका वैज्ञानिक कारण जो भी हो, पर कथा यही है कि यह जल अवलोकितेश्वर का वरदान पाया हुआ जल है। इसको उन हजारों बौद्ध भिक्षुओं की तपस्या का पुण्य प्राप्त है, जो इस बिहार में रहते थे।

इस विहार का चीनी में नाम है लिंग यिन। अंग्रेजी अनुवाद ‘टेंपिल ऑफ सोल्स रेक्ल्यूज’। मा वै कुआँ ने पूछा, “इसका इतना ही छोटा-सा हिन्दी नाम बताइए।” उसी समय तर्जुमा हुआ—‘आत्माश्रय विहार !’

झील के पास से ही सड़क पहाड़ों में मुड़ जाती है। पहाड़ों पर बहुत ऊँचे हरे-भरे पेड़ हैं, सीधे तने हुए। फिर बीच-बीच में पतले सीधे हरे बाँसों के कुंज। सड़क के दोनों ओर ऊबड़-खाबड़ पत्थरों के बीच बहते हुए पहाड़ी चश्मे। फिर गाड़ी से उतर कर दायीं ओर की पानी छायादार सड़क पर चढ़िए। और अब आता है ऊँचाई पर बहुत विशाल रंगा-चुंगा तोरणद्वार, लिंग यिन बिहार का। बिहार के प्रांगण में छोटे-छोटे बच्चों को लिये युवा-दम्पति, छात्र-छात्राएँ, दर्शनार्थी। काफी लोग आते हैं इसे देखने। पहले काफी खस्ता हालत में था, लेकिन 1956 में इसका जीर्णोद्धार कराया गया, मरम्मत हुई, नये सिरे से रंगाई-पुताई हुई, सीढ़ियाँ बनीं, तोरण पताकाएँ लटकायी गयीं। मुख्यद्वार के बाद आँगन, फिर सीढ़ियाँ, सीढ़ियाँ चढ़कर पहला मण्डप। एक ओर स्तम्भ पर चीनी अक्षरों में कुछ अंकित है, पता चला यह ह्वेन सांग के भारत जाने और वहाँ से सारे धर्मग्रंथ लाने का विवरण अंकित है। सामने मैत्रेय की विशाल काष्ठ प्रतिमा है। प्रतिमा का आधार भी काफी ऊँचा है। विशाल तोंदवाले, घुटनों पर अपने हाथ टिकाये बूढ़े पोपले मुँह से हँसते हुए मैत्रेय (लॉफिंग बुद्ध) चीन में काफी लोकप्रिय देवता लगे। जेड में, काष्ठ में, हाथी दाँत में उनकी तरह-तरह की प्रतिमाएँ हर जगह बिकती हुई मिलीं, हर नगर में। मैत्रेय के दोनों ओर दीवार से लगी अन्य

विशालकाय मूर्तियाँ थीं दूसरे अर्हतों की। बड़े-बड़े विलक्षण रूप थे। किसी की मूँछ महिमामयी थी, तो किसी की गदा महामारक थी। सभी के सिर छत को छूते हुए थे। जिन दिनों सिद्ध साहित्य पर काम किया था, उन दिनों महायान के इन विविध देव रूपों के नाम लक्षण—सब याद थे, अब सब भूल गया हूँ। पर हैंगचाऊ में इन सभी बन्धुओं से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। नाम याद नहीं रहा तो क्या, थे तो सब अपने पुराने परिचित लोग। गाढ़ा वक्त पड़ने पर परदेश में रक्षा तो करेंगे ही !

इस मण्डप के बाद फिर एक बड़ा-सा आँगन, दो-चार चीड़ के पेड़ और फिर मुख्य मंडप। सीढ़ियाँ चढ़कर इस मण्डप में प्रवेश कर शाक्य मुनि की जो भव्य विशाल काष्ठ प्रतिमा दीख पड़ी, वह सचमुच श्रद्धा जगाती है। उस पर नया रंगालेपन भी बहुत कलात्मक ढंग से हुआ है। प्रतिमा, एक ऊँचे चबूतरे पर है, और बैठी हुई मुद्रा में 9 मीटर ऊँची है। बताया गया कि दारुचीनी की लकड़ी के 24 खण्डों में यह मूर्ति बनी है। 24 अलग-अलग टुकड़े गढ़कर बिना किसी कील के एक-दूसरे में अन्दर-ही-अन्दर ठुँके हुए हैं और इतनी बारीकी से कि कहीं जोड़ का पता नहीं चलता। अण्डाकार, किंचित नीचे झुका हुआ चेहरा, चेहरे पर करुणामयी मन्द मुस्कान, धनुषाकार भौहें, चौड़ा मस्तक और सौम्य अमृतमयी चितवन ! शताब्दियाँ गुजर गयीं, राजवंश आये और गये, पद्धतियाँ बदलीं, लेकिन वह मन्द करुणा स्मिति आज भी वही है, जहाँ खड़े होकर आतंक नहीं होता। एक आश्वस्ति, एक गहन शान्ति !

चतुर्दिक जो लोग आये हैं, चीनी दर्शनार्थी, उनमें से अब शायद ही कोई जानते होंगे शाक्यमुनि का पूरा इतिहास, या उनके उपदेश। वे सब कुतूहलवश देखने आये हैं। परिचय-पत्रिका में यह लिखा है यह हमारे पुराने शिल्पियों की कला है, जनता की कला ! लेकिन इन मूर्तियों की धार्मिक पृष्ठभूमि इन परिचय-पत्रिकाओं में नहीं देखी !

इस मूर्ति के पृष्ठ भाग में काष्ठ मूर्तियों का जो विराट संपुंजन है वह तो और भी आश्चर्यजनक है। नीचे से छत तक एक विशाल दृश्य। अथाह जल प्रलय की ऊँची-ऊँची लहरें। उनमें बिखरी कितनी ही छोटी-छोटी मूर्तियाँ—जीव-जन्तुओं की, मनुष्यों की, देवताओं की। बीच में एक विशाल मत्स्य पर खड़े अवलोकितेश्वर। अवलोकितेश्वर के हाथ में कमण्डलु नहीं एक चीनी सुराही है, नीले रंग की, उसमें से नीला अमृत जल गिर रहा है। वह जल प्रलय के जल से अलग दीखता है। उस कमण्डलु के जल पर एक कमलपत्र है और कमलपत्र पर अँगूठा चूसते हुए, घुटनों चलते हुए नील जलज तन बाल ब्रह्म ! प्रलय और नवसृष्टि का ऐसा मनोहारी बौद्ध स्वरूप मैंने आज तक कहीं नहीं देखा ! जयदेव ने क्या कहीं ऐसा ही स्वरूप देखकर गाया होगा—

“कशव धृत बुद्ध शरीर, जय जगदीश हरे !”

मेरा नास्तिक वैष्णव मन हमेशा बुद्ध के उस व्यक्तित्व का भक्त रहा है, जो जितना घोर विद्रोही था, उतना ही सुकुमार करुणामय !

शाक्य मुनि की भव्य प्रतिमा की दायीं ओर विशाल काष्ठ स्तम्भ पर एक पताका लटकी हुई है, जिस पर चीनी अक्षरों में कोई लम्बी इबारत है। चांग उसे पढ़कर बताते हैं कि इस पर लिखा है कि सामनेवाला पहाड़ बु. युन उड़न-पहाड़ कहलाता है, क्योंकि कहा जाता है कि यह पहाड़ सुदूर दक्षिण (यानी भारत) से उड़कर आया है। यह पहाड़ पहले चीन में नहीं था। कथा है कि रातों रात एक दिन यह चुपके से उड़ कर आया और यहाँ जंगल में बैठकर ध्यान करने लगा। तब से फिर कहीं नहीं गया।

कोई कहीं से एक बहुत छोटी-सी गुटकानुमा चीनी में छपी किताब ले आया है। बहुत पहले की छपी हुई। उसमें एक कहानी है। पहले भारत के पहाड़ों के पंख हुआ करते थे। वे उड़ते रहते थे। अतः देशवासियों को बहुत कष्ट होता था। देवताओं के राजा से प्रजाओं ने शिकायत की तो उसने एक तलवार ली और सबके पंख काट डाले। लेकिन एक पहाड़ छुप गया। उसके पंख बच गये। वह मौका पाकर उड़ा और चीन में आकर लिहू (बड़ी पश्चिमी झील) के किनारे तपस्या करने लगा। उसके अंग-अंग पर बुद्ध उत्कीर्ण हो गये, तो वह उनके भार से फिर वहीं स्थिर हो गया !

नीचे उतरकर सड़क के उस ओर वह पहाड़ है। एक अनोखी बात जरूर है। उस पहाड़ के पत्थर ऐसे हैं, जैसे उस सारे क्षेत्र में कहीं नहीं हैं। ठोस, भारी सिलेटी रंग के। उस पर की घास और छोटे पौधे बूटे भी कुछ अलग किस्म के हैं। उसके आसपास अनेक पहाड़ियाँ हैं, वैसी ही जैसी उस सारे क्षेत्र में; केवल यह एक पहाड़ रूप-रंग, पत्थर और वनस्पति की दृष्टि से बिल्कुल अलग है।

यह और भी रहस्यमय हो गया है उन पानी के चशमों के कारण, जो इसके किनारे-किनारे कहीं चट्टानों पर, कहीं चट्टानों को काटते हुए और कहीं चट्टानों के नीचे जमींदोज हो कर बहते हैं, उन गुफाओं के कारण जो जगह-जगह प्रकृति ने बनायी हैं, टेढ़ी-मेढ़ी भूलभुलैयाँ जैसी। इनमें से सबसे प्रख्यात है लुंग लुंग हुंग गुफा। इस गुफा की छत में एक दरार है। और यह दरार ऐसी है कि पूरे पहाड़ को चीरती हुई ऊपर तक गयी है और इसमें से आकाश की बहुत पतली फाँक दीख पड़ती है; इतनी पतली कि उसे ‘एक धागा आकाश’ कहते हैं।

इसी पर्वत पर एक चट्टान है, लि कुंग शिला। इसी शिला पर भारतीय आचार्य हुए लि अक्सर बिराजते थे और वहीं से बैठे-बैठे लिंग यिन बिहार के निर्माण कार्य की देखरेख करते थे। उनकी समाधि भी हेंगचाऊ में ही है।

इस उड़न पहाड़ की एक-एक शिला पर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। छोटी-छोटी हजारों

मूर्तियों से पूरा पहाड़ भरा है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनती गयी हैं ये मूर्तियाँ। कुछ बड़ी भी। 16 अर्हतों की मूर्तियाँ 951 ई.स. में बनीं, मैत्रेय बुद्ध की विशाल हँसती हुई प्रतिमा 1000 ई.स. में उत्कीर्ण हुई, अमिताभ बुद्ध की प्रतिमा 1356 ई.स. में बनी। जगह-जगह पर कुछ स्पष्ट, कुछ धुँधले शिलालेख हैं चीनी अक्षरों में। एक गुफा के द्वार पर कुछ परिचित-से अक्षर दिखे। मैं रुक गया। गौर से देखा। बड़े सुडोल, मोटे अक्षरों में पत्थर पर अंकित था प्रारम्भिक नागरी में—‘ओं मणि पद्मे हुं !’

हजारों मील दूर परदेशी आकाश तले, उस शिला पर नागरी अक्षर देखकर कैसा लगा, यह क्या शब्दों में बताया जा सकता है ?

उस शाम खाने की मेज पर भी कुछ सुखद आश्चर्य घटित हुए। रेवेल्यूशनरी कमेटी के उपाध्यक्ष वांग फेंग ने स्वागत का टोस्ट प्रस्तावित करते हुए कहा, “यह टोस्ट लिंग यिन विहार और सोचिया मोनी के नाम, जो भारत-चीन मैत्री के प्रतीक हैं।” साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि हमारे लिए कुछ विशेष रसोइये बुलवाकर उन्होंने पुराने किस्म का शाकाहारी भोजन बनवाया है, जिसे यहाँ भिक्षुओं का भोजन कहते हैं। पूरे शिष्टमण्डल में मैं और वयोवृद्ध शिवरामन जी दो ही व्यक्ति शाकाहारी थे। हम दोनों के लिए भिक्षुओं का भोजन बना था—और आप जानते हैं वह भोजन क्या था ? सोंठ की चटनी में भीगी गुड़ियाँ, तिल लगे अन्दर से, धनिया-सौंफ और गरम मसाले की नमकीन चटनी में कचालू, खस्ता शकरपारे और मीठी पपड़ियाँ। अरे, ये शुद्ध उत्तर प्रदेश के व्यंजन, जो बम्बई में भी मुश्किल से नसीब हों ! तीन हफ्ते से उबली सब्जियाँ खा-खाकर थक गया था। सहसा विश्वास नहीं हुआ। मालूम हुआ हैंगचाऊ में विशेष अवसरों पर ऐसी अनेक चीजें बनती हैं—शाकाहारी व्यंजन। यह भिक्षुओं का भोजन है। निस्सन्देह शताब्दियों तक भारतीय भिक्षु यहाँ आते रहे हैं, उनके साथ ये पाक विधियाँ आयी होंगी।

यह भी मालूम हुआ कि वैशाख पूर्णिमा पर गाँवों से कुछ वृद्ध लोग अब भी लिंग यिन विहार में पूजा करने आते हैं। ‘सूत्र’ पढ़ते हैं और फूल चढ़ाते हैं। व्याघ्र मुख स्रोत का जल छोटी-छोटी सुराहियों में भरकर अपने गाँव ले जाते हैं।

हैंगचाऊ नगरी झील और नदी के बीच बसी हुई है। नदी के पास एक दूसरी पहाड़ी पर एक और पुराना चायघर है, जहाँ की एक केक बहुत मशहूर है। वहाँ गये। अजदहा कुआँ की चाय के साथ जो केक आयी वह भी मीठे तेल में पकी सादी पपड़ी थी। जिस पर थोड़ी-सी कच्ची शक्कर छिड़क देते हैं। पास में ही है प्रख्यात लियु हो पगोडा। लियु हो के अर्थ हैं छह निग्रह। यानी काय, वाक, चित्त

आदि का निग्रह। इस पगोडा के निर्माण की विशेषता यह है कि इसमें अन्दर 7 मंजिलें हैं यानी छह निग्रह और एक निर्वाण की, लेकिन बाहर से 13 मंजिलें दीखती हैं। इसका निर्माण नदी किनारे इस पहाड़ी पर तीन उद्देश्यों से किया गया था। एक तो नदी में आने-जाने वाली नौकाओं के लिए प्रकाश स्तम्भ का काम दे, दूसरे नदी में आनेवाली बाढ़ें गौतम बुद्ध के आशीर्वाद से रुकें, और तीसरा कि इसमें बुद्ध का शिलिह ला कर रखा जाये। “बुद्ध का शिलिह ? शिलिह क्या ?” बहुत घुमा-फिरा कर समझ में आया कि शिलिह शब्द तत्सम शब्द शरीर का ही चीनी उच्चारण है। बुद्ध के भस्मावशेष के लिए वे ‘शरीर’ शब्द का ही प्रयोग करते हैं, बोलते हैं उसे शिलिह !

हेनसांग और हुइ लि की कथाओं से कम रोमांचक नहीं है, यांगचाऊ के चीनी बौद्ध भिक्षु आचार्य चेनचिन की कथा। यांगचाऊ में हम उनके आश्रम फाहचिन विहार को देखने भी गये। आचार्य चेनचिंग हेनसांग के 110 वर्ष बाद हुए थे। तांग वंश की प्रख्यात नगरी सियान में वह पगोडा है, जहाँ हेनसांग के लाये हुए धर्मग्रन्थ रखे गये थे। भिक्षु बनने के बाद चेन चिन सियान गये और वहीं से उनके मन में यह प्रेरणा जागी कि जैसे हेनसांग भारत जाकर सारे धर्मग्रन्थ, और कला-कौशल लाये हैं, वैसे ही वे भी चीन से सारे धर्मग्रन्थ, कला-कौशल लेकर जापान जायें और वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार करें। समुद्र यात्रा उस समय बहुत कठिन थी। लेकिन उनके मन में तो यह स्वप्न जाग ही गया था। 10 वर्षों में पाँच बार उन्होंने प्रयास किया। द्वे नदी से नौका द्वारा यांगत्सी के मुहाने तक और वहाँ से जलपोत द्वारा, लेकिन उधर कोई व्यापारी समुद्री मार्ग तो था नहीं, बहुत मुश्किल से कोई नाविक जाने को राजी होते थे। बीच में कुछ ऐसा तूफानी समुद्र पड़ता था कि बड़े-बड़े जहाज टूट जाते थे। चार बार उनका जहाज लौट आया। आकर फिर फाहचिन विहार में रहते, भिक्षा माँगकर धन जुटाते, और फिर यात्रा पर खाना होते। पाँचवीं बार यांगत्सी नदी के मुहाने पर ही तूफान आया और इनका जहाज इस कदर भटक गया कि जब जमीन दिखी तब पता चला कि ये तो उत्तर जाने की जगह दक्षिण चीन पहुँच गये हैं।

हार कर वहीं उतर पड़े। भिक्षा माँगते, खाते फिर यांगचाऊ की ओर चल पड़े। इस बार क्वांगसी प्रान्त से गुजरे तो वहाँ कुछ विचित्र प्रकार की महामारी फैली हुई थी। ये और इनके शिष्य बीमार पड़े और इस कदर बीमार पड़े कि इन सबकी आँखों की ज्योति जाती रही। इस बार यांगचाऊ पहुँचे तो ये और इनके शिष्य अन्धे हो चुके थे। यांगचाऊ के सामन्तों, व्यापारियों, प्रजाजनों सभी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना

की कि अब यात्राएँ बन्द करें, आचार्य यहीं विश्राम करें, लेकिन आचार्य चेन चिन ने जो संकल्प कर लिया था, वह कर लिया था। उससे कैसे टलें! बुद्ध अगर करुणामय हैं तो क्या अन्धे हो जाने पर उनकी देखभाल नहीं करेंगे। अन्त में 743 ई. स. में अन्धे आचार्य ने टटोल-टटोलकर अपने सभी ग्रन्थ, कलाकृतियाँ, मूर्तियाँ सब कुछ फिर बाँधा और फिर चल पड़े तूफानी समुद्र में। इस बार सचमुच तथागत की करुणा फलीभूत हुई और ये जापान के तट पर पहुँच गये। जापान के सम्राट ने इनका बड़ा स्वागत किया। बड़ा समारोह करके उन्हें 'ज्ञानोदयाचार्य' की उपाधि दी। उनके लिए विहार बनवाये। और उन्होंने जापानी भिक्षु शिष्यों को शिक्षा देनी प्रारम्भ की। न केवल धर्मग्रन्थ, बौद्ध-दर्शन, वरन चीनी चित्रकला, मूर्तिकला, कागज काटने की कला, रेशम कढ़ाई की कला, चीनी बारूद की पद्धति, चीनी छपाई की पद्धति, चीनी साहित्यशास्त्र और काव्य सब कुछ उन्होंने अपने शिष्यों को सिखाया और कुछ ही वर्षों में उन्होंने जापानी संस्कृति में एक आमूल परिवर्तन ला दिया। वे सन् 743 में जापान पहुँचे थे और केवल दस वर्ष के बाद नारा के प्रख्यात बौद्ध विहार में निर्वाण को प्राप्त हुए ! जीवन भर की असफलताओं, दुस्तर यात्राओं, बीमारी और अन्धत्व के बाद उन्हें जीवन के केवल अन्तिम दस वर्ष मिले, अपना स्वप्न पूरा करने को। जापान की सारी संस्कृति की बुनियाद इन्हीं दस वर्षों में रखी गयी।

आज तक जापानी जाति आचार्य चेन चिन को अपना सांस्कृतिक पूर्वज पुरुष मानती है। हर वर्ष हजारों जापानी यात्री यांगचऊ आते हैं, आचार्य चेन चिन की साधना-स्थली फाहचिन विहार को देखने।

उदास, सूनी कुछ-कुछ धूलभरी सड़कों पर होते हुए रुम फाहचिन विहार पर पहुँचते हैं। किसी छोटे कस्बे के पुराने मन्दिर जैसी शान्त उदासी। लगभग देहाती-सा वातावरण। कारों का कारवाँ देखकर कुछ देहाती छोकरे कुतूहलवश इकट्ठे हो गये हैं।

स्थान सचमुच पुराना है। आचार्य चेन चिन के समय से भी पुराना। छठवीं शताब्दी में यहाँ एक पगोडा बना था चीलिंग ! उस समय यह चीलिंग कहलाता था। तीन प्राचीन प्रख्यात चीनी कवियों ने उस पगोड़ा और यहाँ के वातावरण पर कविताएँ लिखी थीं। आठ वीं शताब्दी में फिर यहाँ विहार बना और उसी समय इसका नाम फाहचिन विहार हो गया। कालान्तर में उसकी भी इमारतें टूट-फूट गयीं और वर्तमान इमारत केवल 100 वर्ष पहले बनी। जहाँ पर पहला फाटक है, वहीं पहले चीलिंग पगोडा था।

जब जापानियों ने चेन चिन की स्मृति में यांगचऊ आना प्रारम्भ किया, तब चेन चिन का स्मारक यहाँ बनाने का निर्णय किया गया। (“इसलिए नहीं कि उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रसार किया बल्कि इसलिए कि वे चीनी संस्कृति के प्रसारक थे और चीन-जापान मैत्री के सेतु हैं—” यह भी स्वागतकर्ता ने स्पष्ट कर दिया—“वैसे चीन में एक बौद्ध धर्म एसोसियेशन भी है, जिसका मुख्यालय पेकिंग में है।”) सन् 1973 में एक बड़ा उत्सव मना कर आचार्य चेन चिन का यह स्मारक बनाया गया, जिसका उद्घाटन चीन के संस्कृति मन्त्री ने किया। न केवल उद्घाटन किया वरन् अपने हस्तलेख में उन्होंने आचार्य चेन चिन की प्रशस्ति भी लिखी। वह कैलिग्राफी भी वहीं अनेक कविताओं और चित्रों के साथ टँगी हुई है। उसी स्वागत कक्ष में उन कवियों की कविताएँ फ्रेम में जड़कर टँगी हैं, जिन्होंने इस विहार में आकर, या इस विहार के बारे में कविताएँ लिखी थीं। यहीं सियान के उस पगोडे का चित्र भी टँगा है जहाँ ह्वेनसांग के लाये ग्रन्थ रखे हैं और जहाँ से चेन चिन को जापान यात्रा की प्रेरणा मिली, वहीं नारा के जापानी मन्दिर का चित्र भी टँगा है। जहाँ आचार्य को निर्वाण प्राप्ति हुई— वहीं उस पुराने किस्म के काँच के दरवाजों वाले बरामदे के बाहर छोटा-सा घास का हरा-भरा आँगन भी है और पीछे किसी पेड़ पर कोई पक्षी रह-रहकर बोल उठता है। तीसरे पहर की अलसाई धूप में एक अजीब शान्ति है। जरा, मरण, व्याधि, दारिद्र्य इन सबसे मुक्त—एक विचित्र समरसता की शान्ति ! सुख और दुख दोनों से परे। शून्य और अशून्य दोनों से परे। घास पर हल्की धूप और धूप में अलसाये निंदियारे एजेलिया के जोगिया रंग के फूल !

मन्दिर के पिछवाड़े से हम लौटते हैं। एक सादा-सा चायघर। कुछ ग्रामीण किस्म के यात्री बैठे चाय पी रहे हैं। उधर वह खपरैल का एक घर है। बताया गया है कि इसमें अब भी दस-बारह बूढ़े बौद्ध भिक्षु रहते हैं। हम मिलने की इच्छा प्रकट करते हैं तो काफी देर बाद केवल एक से भेंट हो पाती है। वे इस विशेष अवसर के लिए एक पुराना काला रेशमी चोगा पहन कर आये हैं। बेहद वृद्ध झूलती हुई पलकें। बरौनियाँ और भीहें तक श्वेत, नाम इन पो। राज्य की ओर से इनके भोजन की व्यवस्था है। कुछ आनेवाले भी कभी-कभी दान दे जाते हैं। ये सूत्र पढ़कर उनके लिए पूजा कर देते हैं। हमें देखकर खिल उठते हैं। कुशल-मंगल पूछने पर केवल सर हिला देते हैं। चलते समय दोनों हाथ जोड़कर भारतीय पद्धति से नमस्कार करते हैं।

हम लोगों के चल देने पर भी अपनी जगह भौचक्के से खड़े रहते हैं। कुछ अजीब निगाह से देखते हुए। क्या है उस निगाह में ? धर्म की घटती महत्ता के विषम वातावरण में भी एक ऐतिहासिक खण्डहर की तरह बच जाने का अवसाद ? वह दुनिया, जिसमें बौद्ध भिक्षु इन पो पले और बड़े थे, कब की बदल चुकी है। उसकी बची हुई यादों की कथरी में लिपटे भिक्षु इन पो धीरे-धीरे अपनी कोठरी में लौट गये होंगे। वास्तव में आज जब सारा देश श्रम से नवनिर्माण में लगा है तब

केवल सूत्र पढ़ कर धर्मचक्र घुमाते रहनेवाले अनुत्पादक श्रमण अपने देशकाल से असंगत हो जायं, इसमें क्या आश्चर्य ?

मन्दिर के आँगन में एक ऊँचे-से चीड़ वृक्ष पर एक पक्षी बोल उठता है और मन जैसे फिर जी जाता है और जाने क्यों अकस्मात् एक स्मृति-विम्ब मन में उभर आता है, जिसे पिछले दो साल में कभी याद भी नहीं किया था। सन् '76 की सर्दियाँ। हंगरी की कलात्मक सुन्दर राजधानी बुडापेस्ट की सड़कें रात को पहली बरफ पड़ने के कारण गीली हो चुकी हैं मैं अपने मेजबानों के साथ गाड़ी में बैठा डैन्यूब नदी को ओझल होते देख रहा हूँ कि झटके से गाड़ी रुकती है। मालूम हुआ कि 5 बजने वाले हैं और उनकी षोडशी पुत्री को अभी यहीं उतरना है, क्योंकि ठीक 5 बजे शाम को नियमित रूप से वह चर्च में मोमबत्तियाँ जलाने के लिए जाती हैं ! कहीं भी हो, 5 बजे चर्च जरूर जायेगी ! कुतूहल हुआ। कम्युनिस्ट देश की युवा पीढ़ी और चर्च की बेदी पर प्रतिदिन ज्योति-अर्पण ! फिर तो घूम-घूम कर देखा। गिरजाघरों में भीड़ थी। या तो क्रान्ति-पूर्व के बूढ़े थे या क्रान्ति के 10, 15 वर्ष बाद पैदा होने वाले युवागण। मालूम हुआ कि क्रान्ति के 30 वर्ष बाद धर्म तेजी से लौट रहा है।

उस शाम यांगचऊ की पुरानी, लम्बी शान्त झील के आर-पार घूमते हुए बार-बार यही प्रश्न मन में उठता रहा कि 'राजनीति की अगुआई' में आखिर वह कौन-सा शून्य छूट जाता है, कि मानवीय चेतना फिर-फिर एक आन्तरिक शान्ति और सामंजस्य की खोज की ओर मुड़ जाती है। वह 'सुदूर की बाँसुरी', वह 'विराट' क्या उसे बार-बार पुकारते हैं ? क्या यह केवल पलायन है, या केवल भौतिक तृप्ति के परे किन्ही गहनतम जीवन मूल्यों की प्यास ? लेकिन फिर हर धर्म के चतुर्दिक एक परजीवी, समाज-विमुख आलसी वर्ग क्यों पनप आता है ? क्यों नहीं वे कबीर हो सकते ? दिन में कपड़े के धान बुनते हुए, शाम को अपने राम की सुध में 'झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया' गाते हुए !

गौतम बुद्ध के सूत्र क्या चीन में फिर कभी लौटेंगे, जैसे पूर्वी यूरोप में गिरजाघरों की पूजा-संध्याएँ और सुबहें लौट रही हैं ? कुछ भी कहना कठिन है, इतना अवश्य है कि विहारों, पगोडाओं और प्रतिमाकित गुफाओं को अपनी ऐतिहासिक धाती के रूप में तो स्वीकार कर लिया गया है। कैंटन में हमारा स्वागत किया था क्वांगतुंग प्रान्त के शिक्षा मन्त्री ली चिया रिन ने। सम्भ्रान्त, सौम्य, किंचित वृद्ध ली चिया रिन शिक्षा मन्त्री होने के साथ-साथ कैंटन विश्वविद्यालय के चान्सलर भी हैं, सप्ताह में एक-दो

घंटे पढ़ाते भी हैं। उन्होंने बताया कि हैंगचाऊ के आचार्य हुई लि की तरह क्वांगतुंग क्षेत्र में भारत से एक बौद्ध आचार्य आये थे, चीनी उन्हें आचार्य तामो कहते हैं। तामो हेनान प्रान्त भी गये थे। वहाँ की एक गुफा की भित्ति पर उनकी छाया पत्थरों पर अंकित है। अब कैंटन विश्वविद्यालय में एक छात्र आचार्य तामो पर खोज कर रहा है, ऐसा चान्सलर महोदय ने बताया। उन्हीं से यह भी मालूम हुआ कि कन्फ्यूशियस के बारे में अब विरोधी भावनाएँ खत्म हो रही हैं। कैंटन के चुंगशान विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के डीन यांग जुंग को ने सबसे पहले कन्फ्यूशियस पर हमला बोला था—अब कुछ ही दिनों पहले उन्होंने अपनी कक्षा में अपने विद्यार्थियों के सामने अपनी गलती स्वीकार की और बताया कि यह सब उन्होंने 'गैंग आफ फोर' के बहकावे में आ कर किया था। और रेन मिन रिबाओ (पीपुल्स डेली) जिसने कुछ ही वर्षों पहले कन्फ्यूशियस को 'सड़े हुए उच्च वर्ग का प्रतिक्रियावाद प्रवक्ता' बताया था, अब उसी ने छापा है कि 'कन्फ्यूशियस द्वारा निर्देशित प्राचीन गुणों को मूल्यहीन नहीं मानना चाहिए। माओ स्वयं कन्फ्यूशियस को आदर करते थे और कभी-कभी इस सन्त की उक्तियों का उदाहरण देते थे !'

क्यों हो रहा है यह ? एक ओर आधुनिकीकरण की ओर बढ़ने की व्यग्रता और दूसरी ओर अतीत को वापस स्वीकारने की चेतना। क्या यह वही ऐतिहासिक प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत हजारों वर्ष पुराना जातीय मानस क्षणिक उथल-पुथल के बाद फिर अपने को प्रतिष्ठापित करने लगता है ? या इसके पीछे कोई और कारण भी है ?

मैं यह प्रश्न शिक्षा मन्त्री से पूछना ही चाहता था कि मा वे कुआं ने मेरी ओर झुक कर कहा—“अभी-अभी पेकिंग से आपके लिए एक सन्देश आया है !”

“मेरे लिए ?” मैं अचरज में पड़ गया।

“हाँ, पेकिंग रेडियो का हिन्दी विभाग प्रार्थना करता है कि अब परसों आप लोग लौट जायेंगे, तो आप सात मिनट की एक वार्ता हिन्दी में रेकॉर्ड करा दें कि आपने चीन में क्या देखा। कैंटन में रेकॉर्ड हो कर वह पेकिंग जायेगी और वहाँ से अगले पखवारे में प्रसारित होगी। पर वे लोग यह विदा सन्देश हिन्दी में ही चाहते हैं अंग्रेजी में नहीं !”

और दूसरे दिन कैंटन रेडियोवालों ने आकर वार्ता रेकार्ड की। सात मिनट की वार्ता में जहाँ-जहाँ हम गये, उन जगहों का नाम भी पूरी तरह गिनाना कठिन था। एकाग्र जगह कुछ आलोचना भी थी। (बाद में मैंने वह प्रसारित वार्ता सुनी, पूरी वार्ता ज्यों-की-त्यों प्रसारित की थी उन्होंने) वार्ता के अन्त में मेरे वाक्य थे—

“भारत ने प्रजातान्त्रिक तरीके को अपना कर स्वतन्त्रता के बाद अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है चीन ने चेयरमैन माओ के नेतृत्व में साम्यवादी पद्धति अपना कर उल्लेखनीय विकास किया है। हम दोनों देश एक-दूसरे से बहुत कुछ सीख सकते हैं प्राचीन और नवीन का सन्तुलित सामंजस्य ही जीवन को पूर्णता देता है, सत्य और जनसेवा का मार्ग हिंसा और दमन का नहीं, स्वाधीनता, शान्ति और मैत्री का मार्ग है।

महात्मा बुद्ध से लेकर महात्मा गांधी तक ने मानवता को यही सिखाया है। हिन्दी की महान कवयित्री महादेवी वर्मा की पंक्ति है—“सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला। हम उसी भाव से अपने मेजबान देश चीन को शुभकामनाएँ देते हुए विदा लेते हैं !”

कैंटन का रेलवे प्लेटफॉर्म। हम ट्रेन पर बैठ गये हैं। विदा की घड़ी आ गयी है। यह ट्रेन हमें चीन की सीमा तक ले जायेगी। फिर उतरकर हम पैदल एक पुल पार करेंगे। पुल के पार मिलेगी ब्रिटिश रेल हांगकांग की। वह हांगकांग पहुँचायेगी और वहीं से एयर इण्डिया के विमान से वापस अपने प्यारे देश को।

चांग चिये, मा वै कुआँ, चांग जुंग, सिनुआ संवाद एजेन्सी के तीनों साथी पूरी यात्रा में हमारे साथ रहे, बिछुड़ते हुए वे बार-बार हाथ मिला रहे हैं। ट्रेन चलती है, वे हाथ हिलाते हैं। धीरे-धीरे तीनों मैत्रीपूर्ण चेहरे पीछे छूटते जाते हैं...

पीछे छूटते जा रहे हैं वे अनेक चेहरे ताचाई के, नानचिंग के, यांगचऊ के, हेंगचाऊ के, शंघाई के। झीलें, नदियाँ, पुल, बस्तियाँ, महल, कारखाने, खेत, कम्यून, जंगल, पहाड़, पगोडे...सब पर अपने प्यार का एक-एक धागा बाँध आया हूँ...

पर एक चीज अभी भी मेरे साथ चली आ रही है, वह है 24 घण्टे पहले बितायी हुई चीन यात्रा की मुझे सबसे खूबसूरत लगनेवाली शाम। हम कैंटन से लगभग 100 किलोमीटर दूर एक पहाड़ी नगरी में रात बिताने जा रहे हैं। वहाँ गरम पानी के सोते हैं एक नदी है। और कहते हैं चियांगचिंग का वह प्रिय विश्राम स्थल था। वहीं सोते के गरम पानी में स्नान कर वह अपने खोये यौवन को वापस पाने का प्रयास करती थी। जिस होटल में हम टिकेंगे, उसी में उसने अमरीकी महिला पत्रकार को वह विवादास्पद इण्टरव्यू दिया था, जिसकी सारी दुनिया में चर्चा हुई।

छोटे-छोटे गाँव, पोखर और जिघर देखिए, लीची के बाग। कैंटन की लीचियाँ मशहूर हैं। इस साल पहले बारिश होने से लीची की फसल मारी गयी है। शाम ढले हम छुंग ह्वा काउण्टी पहुँचते हैं। ल्युशि नदी के किनारे मशहूर वेन चुअन होटल।

शाम रात में बदलने लगी है !

होटल के कमरे की खिड़की के ठीक नीचे दीवार से लग कर बहती हुई नदी है। पतली, बलखाती, पहाड़ी नदी, बायीं ओर उसमें एक रेत का टापू। उस पार सीधा खड़ा पहाड़ है, जंगलों से ढँका। बीच-बीच में एकाध रंगीन खपरैलों वाले घर हरियाली में से झाँक जाते हैं। दायीं ओर छोटा-सा पुल, जिस पर लगी बिजली की

बत्तियाँ शान्त नदी में तैर रही हैं। कोहरे की एक सफेद चौड़ी धारी दो पहाड़ियों के बीच आ कर थक कर बैठ गयी है। सिवा पुल के सब कुछ स्वाभाविक, जैसा लाखों साल पहले प्रकृति ने बनाया होगा, वैसा ही। शाम के धुँधलके में भी नदी के शान्त जल में एकाध रुपहली मछली उछलकर फिर गोता लगा जाती है। यहाँ समय जैसे थम गया है। पहाड़ जैसे समाधिस्थ हैं, निंदियारी अलसायी पड़ी है नदी, अनन्त काल से। एक विराट, असीम शांति...

सहसा उस पार चीनी धुन में कोई बाँसुरी बज उठती है। उत्तर के मुकाबले दक्षिण चीन खास तौर से क्वांगतुंग प्रान्त का संगीत ज्यादा मादक और लहरदार होता है। बाँसुरी की धुन लहरा-लहरा कर बज रही है। अब अँधेरे में सब छिप गया है। सिर्फ आसमान की पृष्ठभूमि पर पहाड़ों के उतार-चढ़ाव की रेखा, नीचे तारों की रोशनी में झलक मारती नदी और बाँसुरी...

कोई भी संस्कृति हो, कोई भी समाज-पद्धति हो सुदूर यमुना-तट की, कदम्ब-कुंज की यह बाँसुरी जाने कैसे, जाने किस शाम बज उठती है ! एक बार बजी कि फिर सारी वर्जनाएँ टूटने लगती हैं, सारे वैषम्य घुलने लगते हैं। सारे तानाशाही बन्धन खुलने लगते हैं, सार अन्तर्विरोध शमित हो जाते हैं।

आने पर अनेक मित्रों ने, घरवालों ने पूछा कि आखिर चीन से अपने निज के लिए क्या लाये ? पेंटिंग, पेन, सिल्क शर्ट, कैमरा ? अब उन्हें क्या बताऊँ कि वहाँ से एक नामालूम-सी पहाड़ी नदी ल्युशि के किनारे एक सूनी शाम को अँधेरे में बजती हुई एक बाँसुरी की लहराती धन लाया हूँ जो धँधलाते पहाड़ों में बेरोकटोक आजादी से गूँज रही थी। पता

□□

113

प्रकृति के जीवंत स्पर्श, रोमांचक यथार्थ, अदम्य साहस, भिन्न प्रदेशों में बसे विभिन्न लोक और उनकी जीवन-शैली, विचार इत्यादि का भारती आत्मीय बना देते हैं।

सजग-संपादक की पैनी नज़र से भारती आगामी समस्याओं को पहले ही महसूस कर लेते हैं। एक पत्रकार की सतर्कता, जीवट और चुनौतियों का प्रतिकार करने की दृढ़ता के साथ ही, साहित्य का गहरा भावबोध अनेक संस्कृतियों के मूल में समान रूप से विद्यमान मानवीय मूल्यों को सराहने का विवेक भी प्रदान करता है। इसीलिए इतिहास, राजनीति, दर्शन और साहित्य के संदर्भ इस यात्रा-चक्र को वैशिष्ट्य देते हैं। पीड़ितों के प्रति हार्दिक अपनापन और देश की अस्मिता का बोध इसमें झलकता है।

चीन की विश्व प्रसिद्ध दीवार, राजवंश का इतिहास, जर्मन-विभाजन, युद्धों की अंतिम नियति, शोषितों का मुक्ति युद्ध, मॉरिशस के भारतवाशियों का उत्पीड़न और उनका निजभाषा-संस्कृति को बचाए रखने का अमिट संकल्प, विस्थापितों की यंत्रणा, औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा विकसित शोषण की नवीनतम सूक्ष्म प्रविधियाँ—सभी पर भारती का मार्मिक आकलन पाठक के मानस को टिप्पणियाँ करने के लिए सक्रिय करता है।



वाणी प्रकाशन

नयी दिल्ली-110002